श्रीशार्ङ्गधराचार्यप्रणीता—

शार्ङ्गधरसंहिता

'श्यामा' विमला भाषाटीकयाऽऽदीपिता

पण्डित-पुस्तकालय, काशी

मूल्यं रूप्यकत्रयम्

अपनी बात

सन् १६४५ में 'माधवनिदान भा० टी०'का प्रथम संस्करण निकला और पाँच महीनेके भीतर उसका पूरा संस्करण मेरे प्रेमी ग्राहकोंने हाथों-हाथ लूट लिया। कारण यह था कि उसकी टीका बड़ी ही सरस सरल और हृदयग्राहिणी थी। तभीसे मित्रोंका आग्रह चालू हुआ कि "इसी प्रकारकी टीकासे सुसज्जित करके 'शार्ङ्गधरसंहिता' भी निकालिए।" ज्यों ज्यों 'माधवनिदान'के नये-नये संस्करण निकलते गये, त्यों त्यों उनका आग्रह भी उग्र रूप धारण करता गया। यह आग्रह पूर्ण करनेकी मेरी भी इच्छा थी, किन्तु कई कठिनाइयाँ थीं। इस कारण मैं चाह करके भी यह काम पूरा करनेमें असमर्थ था। भगवानकी कृपासे इधर कुछ सुविधायें मिलीं और मेरा मन इस दिव्य ग्रन्थकी ओर ध्यान आकृष्ट हुआ। तदनुसार आयुर्वेद-शास्त्रके धुरंधर विद्वान् पं० विभूतिभूषणजीसे–जिन्होंने 'माधव-निदान' पर टीकाकी थी–परामर्श करके टीकाका काम चालू होनेको हुआ। किन्तु उससे भी पहले 'शार्ङ्गधर संहिता'की जितनी तरहकी प्रतियाँ प्राप्य थीं; उनका मिलान कर लेना आवश्यक जँचा। यह काम प्रारम्भ करनेपर विचित्र गोरखधंधा सामने आया। कितने ही प्रकाशकों और टीकाकारोंने इस ग्रन्थकी मनमाना मट्टी पलीद की थी। कितनोंने तो क्षेपकों और टिप्पणीके रूपमें न जाने क्या-क्या व्यर्थकी बातें ठूँसकर इसका कलेवर इतना बढ़ा दिया था कि मूल ग्रन्थ ही लुप्त-सा होता दीखा। अन्तमें एक प्रामाणिक

हस्तलिखित प्रतिका सहारा लेकर काम आगे बढ़ाया गया। इस संस्करणमें इस बातका ध्यान रखा गया है कि व्यर्थकी बातोंसे न ग्राहकोंपर बोझ बढ़े और न कोई आवश्यक बात छूटने पाये। तदनुसार पूरे एक वर्षके कठोर परिश्रम और असाधारण व्यय करनेके बाद यह ग्रन्थ आज परम पुलकित मनसे आप महानुभावों-के हाथों अर्पण कर रहा हूँ। क्या मैं आशा करूँ कि आप भी उसी प्रेमसे इसे अपनायेंगे, जिस प्रेमके साथ हमने मनोयोग पूर्वक इसे तैयार किया है?

काशीधाम
अनन्तचतुर्दशी
२००७

विनीत
प्रकाशक

विषयानुक्रमणिका

प्रथम खण्ड

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

चतुर्थ अध्याय

छठाँ अध्याय

सप्तम अध्याय

मध्यखण्ड

अष्टम अध्याय

नवम अध्याय

दशम अध्याय

एकादश अध्याय

द्वादश अध्याय

उत्तर खण्ड

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

नवम अध्याय

दशम अध्याय

द्वादश अध्याय

❀ इति ❀

श्रीहरिः ।

महामहिम-श्रीशार्ङ्गधराचार्येण विरचिता-

शार्ङ्गधरसंहिता

'श्यामा'भिधया भाषाटीकया सनाथीकृता ।

पूर्वखण्डे प्रथमोऽध्यायः

मंगलाचरण

श्रियं स दद्याद्भवतां पुरारिर्यदंगतेजःप्रसरे भवानी ।
विराजते निर्मलचन्द्रिकायां महौषधीव ज्वलिता हिमाद्रौ ॥१॥

जैसे निर्मल चाँदनीमें हिमालय पर्वतकी औषधियाँ सुशोभित होती हैं, उसी तरह जिनके अर्धाङ्गमें पार्वतीजी विद्यमान हैं, ऐसे श्रीशंकरजी आप लोगोंको श्री अर्थात् मङ्गल, लक्ष्मी या शोभा प्रदान करें ॥ १ ॥

प्रसिद्धयोगा मुनिभिः प्रयुक्ताश्चिकित्सकैर्ये बहुशोऽनुभूताः ।
विधीयते शार्ङ्गधरेण तेषां सुसंग्रहः सज्जनरंजनाय ॥२॥

चरक-सुश्रुत आदि प्राचीन मुनियोंने जिनका आविष्कार किया और अच्छे २ चिकित्सकोंने जिनका तरह-तरहके उपायोंसे बार-बार अनुभव किया है, मैं शार्ङ्गधर सज्जनोंको प्रसन्न करनेके लिये उन योगोंका एक सुन्दर संग्रह कर रहा हूँ ॥२॥

रोगके मूल कारण

हेत्वादिरूपाकृतिसात्म्यजातिभेदैः समीक्ष्यातुरसर्वरोगान् ।
चिकित्सितं कर्षणबृंहणाख्यं कुर्वीत वैद्यो विधिवत्सुयोगैः ॥३॥

वैद्यको चाहिये कि हेतु, पूर्वरूप, रूप, सात्म्य तथा जाति, इन भिन्न-भिन्न उपायोंसे पहले रोगकी परीक्षा कर ले; तब शास्त्रोक्त विधिके अनुसार अच्छे २

प्रयोगोंसे कर्षण तथा बृंहण चिकित्सा करे। ऐसा न करनेसे दोषका भागी होना पड़ता है। अनुभवी आचार्योंका मत है कि—जिस कारण रोग उपजे, उसे हेतु कहते हैं। रोग उत्पन्न होनेके पहले जो लक्षण दीखें, उनको आदिरूप या पूर्वरूप कहते हैं। रोगोंके उत्पन्न होनेपर तृष्णा, मूर्च्छा, भ्रम, दाह आदि जो भी लक्षण दीखते हैं, उनकी आकृति संज्ञा है। यदि औषध तथा आहार-विहार रोगके अनुकूल उपयुक्त होता है, तो उसे सात्म्य या उपशय कहते हैं। वात-पित्तादि दोषोंके दूषित होकर ऊपर-नीचे स्वतन्त्रतापूर्वक विचरनेसे वस्तुतः उत्पन्न ठीक-ठीक ज्ञानको ही जाति या सम्प्राप्ति कहते हैं। बढ़े हुए वातादि दोषोंको औषधि देकर घटानेकी क्रियाको कर्षण चिकित्सा कहते हैं। क्षीण दोषोंको पुष्ट करनेवाली क्रियाको बृंहण चिकित्सा कहते हैं॥ ३॥

औषधियोंके प्रभाव

दिव्यौषधीनां बहवः प्रभेदा वृन्दारकाणामिव विस्फुरन्ति।
ज्ञात्वेति संदेहमपास्य धीरैः संभावनीया विविधप्रभावाः॥४॥

देवताओंकी तरह औषधियोंके भी विविध प्रकार हैं। धैर्यशाली वैद्योंको चाहिए कि ऐसा समझकर अपना सारा सन्देह दूर कर दें और "औषधियोंका प्रभाव अनन्त है" यह विश्वास करके उनका सम्मान करें॥ ४॥

प्रयोजन

स्वाभाविकागन्तुककायिकान्तरा रोगा भवेयुः किल कर्मदोषजाः।
तच्छेदनार्थं दुरितापहारिणः श्रेयोमयान्योगवरान्नियोजयेत्॥५॥

स्वाभाविक, आगन्तुक, कायिक और आन्तरिक इन भेदोंसे और कर्म तथा दोषसे उत्पन्न होनेवाले चार प्रकारके रोग होते हैं। उनकी शान्तिके लिए दुःखनाशक तथा मंगलमय प्रयोगोंकी योजना करे। जो रोग स्वभातः होते रहते हैं वे स्वाभाविक कहे जाते हैं। जैसे—भूख, प्यास, नींद आदि। जो किसी प्रकारके आघातसे उत्पन्न हों, उनकी आगन्तुक संज्ञा है। जैसे—साँपका डसना, किसी प्रकारकी चोट लगना आदि। वातादि दोषोंके दूषित होनेपर जो रोग उत्पन्न हों, उन्हें कायिक रोग कहते हैं। जैसे ज्वर आदि। मनके विकृत होनेसे जो रोग उपजें, उनकी आन्तरिक संज्ञा है। जैसे—मद, मूर्च्छा, न्यास, ग्रह आदि। आयुर्वेदके आचार्य रोगकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं—

'रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता ।'

अर्थात् दोषोंका दूषित होना रोग है और दोषोंका अपनी मात्राके अनुसार बराबर रहना ही आरोग्यका द्योतक है ॥ ५ ॥

ग्रन्थकी महिमा

प्रयोगानागमात्सिद्धान्प्रत्यक्षादनुमानतः ।
सर्वलोकहितार्थाय वक्ष्याम्यनतिविस्तरात् ॥६॥

प्रत्यक्ष, यथार्थ ज्ञान, अनुमान, अव्यभिचारी ज्ञान तथा आगम (बड़े अथवा आप्त पुरुषके वाक्य) इन प्रमाणोंसे सिद्ध प्रयोगोंको सर्वसाधारणके उपकारार्थ यहाँ मैं संक्षिप्त रीतिसे कहूँगा ॥ ६ ॥

पूर्वखण्डके विषय

प्रथमं परिभाषा स्याद्भैषज्याख्यानकं तथा ।
नाडीपरीक्षादिविधिस्ततो दीपनपाचनम् ॥७॥
ततः कलादिकाख्यानमाहारादिगतिस्तथा ।
रोगाणां गणना चैव पूर्वखण्डोऽयमीरितः ॥८॥

इस ग्रन्थके पूर्वखण्डमें परिभाषा (औषधियोंका तौल-नाप)से लेकर रोगोंकी गणनासम्बन्धी विचार तकका वर्णन है । जैसे—पहले अध्यायमें परिभाषावर्णन, दूसरे अध्यायमें भैषज्याख्यान, तीसरे अध्यायमें नाड़ीपरीक्षा आदिकी विधियाँ, चौथेमें दीपन-पाचन आदिके लक्षण, पाँचवेंमें कला आदिका कथन, छठेंमें आहार आदिकी गति और सातवें अध्यायमें रोगोंकी गणनाका वर्णन है ॥७॥८॥

मध्यम खण्डके विषय

स्वरसः क्वाथफांटौ च हिमः कल्कश्च चूर्णकम् ।
तथैव गुटिकालेहौ स्नेहः संधानमेव च ॥९॥
धातुशुद्धिरसाश्चैव खंडोऽयं मध्यमः स्मृतः ।

मध्यम खण्डके प्रथम अध्यायमें स्वरस तथा पुटपाककी विधि, दूसरे अध्यायमें काढ़ा एवं प्रमथी आदिकी विधि, तीसरे अध्यायमें फाण्ट तथा मन्थविधान, चौथेमें हिमविधि, पांचवेंमें कल्क, छठेंमें चूर्ण, सातवेंमें गोलियाँ आदि बनानेकी विधि, आठवेंमें मलहम आदि, नवेंमें तैल, दसवेंमें मद्य और उसका भेद, ग्यार-

हवेंमें धातुओंकी शुद्धि, बारहवेंमें रसोंके शोधन-मारण आदिकी विधियाँ बतलायी गयीं हैं। इतने विषयोंसे पूर्ण मध्यम खण्ड है ॥ ६ ॥

उत्तरखण्डके विषय

स्नेहपानं स्वेदविधिर्वमनं च विरेचनम् ॥१०॥
ततस्तु स्नेहवस्तिः स्यात्ततश्चापि निरूहणम्।
ततश्चाप्युत्तरो वस्तिस्ततो नस्यविधिर्मतः ॥११॥
धूम्रपानविधिश्चैव गंडूषादिविधिस्तथा।
लेपादीनां विधिः ख्यातस्तथा शोणितविस्रुतिः ॥१२॥
नेत्रकर्मप्रकारश्च खंडः स्यादुत्तरस्त्वयम्।

उत्तरखण्डके प्रथम अध्यायमें स्नेहपान (घृत-तेल आदि पिलाकर की जानेवाली चिकित्सा) की विधि, दूसरेमें स्वेदविधि, (पसीना निकलनेकी क्रिया), तीसरेमें वमन, चौथेमें विरेचन, पाँचवेंमें स्नेहवस्ति वर्णन, छठेंमें निरूहण (पिचकारीसे औषधि पहुँचानेकी क्रिया), सातवेंमें उत्तरबस्ति (पिचकारीकी क्रिया) वर्णन, आठवेंमें गंडूषादि विधि, ग्यारहवेंमें लेप आदिकी विधि, बारहवेंमें रुधिर निकालनेका प्रकार तथा तेरहवें अध्यायमें नेत्रचिकित्साका प्रकार बतलाया गया है। इस तरह तेरह अध्यायोंमें उत्तर खण्ड है ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

ग्रंथकी संख्या

द्वात्रिंशत्सम्मिताध्यायैर्युक्तेयं संहिता स्मृता ॥१३॥
षड्विंशतिशतान्यत्र श्लोकानां गणितानि च।

इस ग्रन्थमें कुल ३२ अध्याय हैं और २६०० श्लोकोंकी संख्या गिनी गयी है ॥ १३ ॥

मानकी परिभाषा

न मानेन विना युक्तिर्द्रव्याणां ज्ञायते क्वचित् ॥१४॥
अतः प्रयोगकार्यार्थं मानमत्रोच्यते मया।

परिमाणके विना औषधके द्रव्योंकी युक्ति किसी तरह जानी ही नहीं जा सकती। अतएव यहाँ मैं प्रयोगमें काम आनेवाले परिमाणोंका वर्णन कर रहा हूँ ॥ १४ ॥

त्रसरेणुका परिमाण

त्रसरेणुर्बुधैः प्रोक्तस्त्रिंशता परमाणुभिः ॥१५॥
त्रसरेणुस्तु पर्यायनाम्ना वंशी निगद्यते ।

तीस परमाणुओंके योगका एक त्रसरेणु होता है । उसी त्रसरेणुका पर्यायवाची शब्द 'वंशी' है ॥ १५ ॥

परमाणुका लक्षण

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः ॥१६॥
तस्य त्रिंशत्तमो भागः परमाणुः स उच्यते ।

जब कि सूर्यकी किरण घरके किसी झरोखेसे भीतर घुसती है, तो उसकी ओर देखनेसे उसमें छोटे-छोटे कण जैसे उड़ते दीखते हैं । उनमेंसे एक कणका तीसवाँ हिस्सा परमाणु कहलाता है ॥ १६ ॥

मरीचि आदिका परिमाण

षड्वंशीभिर्मरीचिः स्यात्ताभिः षड्भिस्तु राजिका ॥१७॥
तिसृभी राजिकाभिश्च सर्षपः प्रोच्यते बुधैः ।
यवोऽष्टसर्षपैः प्रोक्तो गुंजा स्यात्तच्चतुष्टयम् ॥१८॥

छ वंशी (त्रसरेणु) की एक मरीचि (बालूकी कणी) होती है, छ मरीचियोंकी एक राई, तीन राईकी एक सरसों, आठ सरसोंका एक यव और चार यवके बराबर एक गुंजा (घुंघची या रत्ती) होती है ॥ १७ ॥ १८ ॥

मासेका परिमाण

षड्भिस्तु रत्तिकाभिः स्यान्माषको हेमधान्यकौ ।

ऊपर कही रत्तीसे छ रत्तीका एक मासा होता है । जिसको लोग हेम तथा धान्यक भी कहते हैं ।

शाण तथा कोलका परिमाण

माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते ॥१९॥
टंकः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते ।
क्षुद्रभो वटकश्चैव द्रंक्षणः स निगद्यते ॥२०॥

चार मासेका एक शाण होता है । यही धरण तथा टंक भी कहलाता है । दो टंकका एक कोल होता, जिसे क्षुद्रभ, वटक द्रंक्षण तथा कोल भी कहते हैं॥१९॥२०॥

कर्षका मान

कोलद्वयं च कर्षः स्यात्स प्रोक्तः पाणिमानिका ।
अक्षः पिचुः पाणितलं किंचित्पाणिश्च तिन्दुकम् ॥२१॥
विडालपदकं चैव तथा षोडशिका मता ।
करमध्यं हंसपदं सुवर्णकवलग्रहम् ॥२२॥
उदुम्बरं च पर्यायः कर्ष एव निगद्यते ।

ऊपर कहे हुए कोलसे दो कोलका एक कर्ष होता है। पाणिमानिका, अक्ष, पिचु, पाणितल, किंचित्पाणि, तिन्दुक, विडालपदक, नखा, षोडशिका, करमध्य, हंसपद, सुवर्ण, कवलग्रह तथा उदुम्बर ये तेरह कर्षके पर्यायवाचक नाम हैं। वर्तमान समयकी तौलोंमें एक कर्षका एक तोला होता है ॥ २१ ॥ २२ ॥

अर्धपल और पलका परिमाण

स्यात्कर्षाभ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिका तथा ॥२३॥
शुक्तिभ्यां च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थिका ।
प्रकुंचः षोडशी बिल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते ॥२४॥

दो कर्षका अर्द्धपल होता है जिसे शुक्ति और अष्टमिका भी कहते हैं । दो शुक्तिका एक पल होता है । मुष्टि, आम्र, चतुर्थिका, प्रकुंच, षोडशी तथा बिल्व ये पलके पर्यायवाचक नाम माने गये हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥

प्रसृतिसे मानिका तकके मानोंकी संज्ञा

पलाभ्यां प्रसृतिर्ज्ञेया प्रसृतश्च निगद्यते ।
प्रसृतिभ्यामंजलिः स्यात्कुडवोऽर्धशरावकः ॥२५॥
अष्टमानं च संज्ञेयं कुडवाभ्यां च मानिका ।
शरावोऽष्टपलं तद्वज्ज्ञेयमत्र विचक्षणैः ॥२६॥

दो पलकी एक प्रसृति होती है, जिसे प्रसृत भी कहते हैं । दो प्रसृतिको एक अंजलि होती है । इसे कुडव, अर्द्धशराव तथा अष्टमान भी कहते हैं। दो कुडवकी एक मानिका होती है, उसीको कुछ लोग अष्टपल भी कहते हैं॥२५-२६॥

प्रस्थ और आढकका परिमाण

शरावाभ्यां भवेत्प्रस्थश्चतुःप्रस्थैस्तथाढकम् ।
भाजनं कंसपात्रं च चतुःषष्टिपलं च तत् ॥२७॥

दो शरावका एक प्रस्थ (सेर) होता है और चार प्रस्थका एक आढक कहलाता है। भाजन तथा कंसपात्र ये दो इसके पर्यायवाचक नाम हैं। तौलमें यह चौंसठ पलका हुआ करता है ॥ २७ ॥

द्रोणसे द्रोणी तकका परिमाण

चतुर्भिराढकैर्द्रोणः कलशो नल्वणार्मणौ ।
उन्मानश्च घटो राशिर्द्रोणपर्यायसंज्ञकाः ॥२८॥
द्रोणाभ्यां शूर्पकुंभौ च चतुःषष्टिशरावकाः ।
शूर्पाभ्यां च भवेद्द्रोणी वाहो गोणी च सा स्मृता ॥२९॥

उपर्युक्त आढकसे चार आढकका एक द्रोण होता है। जिसे कलश, नल्वण, अर्मण, उन्मान, घट तथा राशि भी कहते हैं। दो द्रोणका एक शूर्प होता है, इसीको कुम्भ भी कहते हैं। जिसकी तौल ६४ शरावकी होती है। दो शूर्पकी एक द्रोणी होती है। उसीको वाह और गोणी भी कहते हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

खारीका मान

द्रोणीचतुष्टयं खारी कथिता सूक्ष्मबुद्धिभिः ।
चतुःसहस्रपलिका षण्णवत्यधिका च सा ॥३०॥

चार द्रोणीकी एक खारी होती है। यह खारी चार हजार छानवे पलकी हुआ करती है ॥ ३० ॥

भार तथा तुलाका मान

पलानां द्विसहस्रं च भार एकः प्रकीर्त्तितः ।
तुला पलशतं ज्ञेया सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥३१॥

दो हजार पलका एक भार होता है। सौ पलकी एक तुला होती है। यह निश्चय किसी देशविशेषके लिए नहीं, बल्कि सर्वत्रके लिए लागू है ॥ ३१ ॥

संक्षेपमें मानका निराकरण

माषटंकाक्षविल्वानि कुडवः प्रस्थमाढकम् ।
राशिर्गोणी खारिकेति यथोत्तरचतुर्गुणा ॥३२॥

ऊपर कहे हुए सब परिमाणोंके जैसे—माष, टंक, अक्ष, बिल्व, कुडव, प्रस्थ, आढक, राशि, गोणी, खारी, इनमें माससे लेकर खारी तक एकसे दूसरीकी तौल चौगुनी हुआ करती है। जैसे—चार मासेका एक टंक, चार

टंकका एक अक्ष, चार अक्षका एक बिल्व, चार बिल्वका एक कुडव, चार कुडवका एक प्रस्थ, चार प्रस्थका एक आढक, चार आढककी एक राशि, चार राशिकी एक गोणी और चार गोणीकी एक खारी होती है ॥ ३२ ॥

द्रव तथा शुष्क पदार्थोंका मान

गुंजादिमानमारभ्य यावत्स्यात्कुडवस्थितिः ।
द्रवार्द्रशुष्कद्रव्याणां तावन्मानं समं मतम् ॥३३॥
प्रस्थादिमानमारभ्य द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः ।
मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचिन्मतम् ॥३४॥

द्रव, आर्द्र और शुष्क वस्तुओंका परिमाण रत्तीसे लेकर कुडव पर्यन्त बराबर लेवे, किन्तु पानी-दूध आदि द्रव पदार्थ या गीली औषधि लेनी हो, तो प्रस्थसे लेकर तुला पर्यन्त परिमाण तककी औषधि दूनी लेकर काममें लानी चाहिये। तुलासे द्रोण तक तौलकी गीली औषधिको दूनी लेनेका कहीं प्रमाण नहीं मिलता। इस लिए सूखी ही औषधि लेकर काममें लाना उचित है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

कुडवका मान

मृद्वृक्षवेणुलोहादेर्भांडं यच्चतुरंगुलम् ।
विस्तीर्णं च तथोच्चं च तन्मानं कुडवं वदेत् ॥३५॥

मिट्टी, बाँस या लोहका बना हुआ पात्र जो चार अंगुल विस्तृत, चार अंगुल ऊँचा और चार ही अंगुल गहरा हो, उसे कुडव कहते हैं। यह जल आदि द्रव पदार्थ नापनेके काममें आता है ॥ ३५ ॥

औषधिकी विशेषतासे नामकरण

यदौषधं तु प्रथमं यस्य योगस्य कथ्यते ।
तन्नाम्नैव स योगो हि कथ्यतेऽसौ विनिश्चयः ॥३६॥

जिस योगमें औषधियोंकी गणना करते समय जिस औषधिका नाम पहिले लिया जाय, उसी औषधिके नामसे वह योग कहा जायगा। यह निश्चित है। जैसे— गुडूच्यादि क्वाथ, चन्दनादि तैल, हिंग्वाष्टक चूर्ण आदि। इन योगोंमें गुरुच, चन्दन तथा हिंगुका नाम पहले लिखा गया है ॥ ३६ ॥

कालिंगपरिभाषा

स्थितिर्नास्त्येव मात्रायाः कालमग्निं वयो बलम्।
प्रकृतिं दोषदेशौ च दृष्ट्वा मात्रां प्रयोजयेत्॥३७॥

किसी भी औषधिके बारेमें निश्चितरूपसे यह नहीं कहा जा सकता कि किस औषधिकी कितनी मात्रा दी जाय। इस लिए काल (सरदी, गरमी या बरसातकी ऋतु) अग्नि (रोगीकी औदर्य अग्नि मन्द, तीक्ष्ण, विषम या सम कैसी है ?) बल (उत्तम, मध्यम और हीन तीन प्रकारका बल) प्रकृति, दोष (वात, पित्त, कफ) देश (भूमिदेश और देहदेश) इनको देखकर जहाँ जैसा उचित समझे, उतनी मात्रा रोगीको दे॥ ३७॥

यतो मंदाग्नयो ह्रस्वा हीनसत्त्वा नराः कलौ।
अतस्तु मात्रा तद्योगा प्रोच्यते सुज्ञसंमता॥३८॥

कलियुगमें उत्पन्न मनुष्योंकी अग्नि मन्द रहती, छोटासा क़द होता और थोड़ीसी शक्ति होती है। अतः इनके वास्ते विद्वानों द्वारा अनुमोदित औषधिका परिमाण बताते हैं॥ ३८॥

कालिंग परिभाषाकी तौल

यवो द्वादशभिर्गौरसर्षपैः प्रोच्यते बुधैः।
यवद्वयेन गुंजा स्यात्त्रिगुंजो वल्ल उच्यते॥३९॥
माषो गुंजाभिरष्टाभिः सप्तभिर्वा भवेत्क्वचित्।
स्याच्चतुर्माषकैः शाणः सनिष्कष्टंक एव च॥४०॥
गद्याणो माषकैः षड्भिः कर्षः स्याद्दशमाषकः।
चतुःकर्षैः पलं प्रोक्तं दशशाणमितं बुधैः॥४१॥
चतुःपलैश्च कुडवं प्रस्थाद्याः पूर्ववन्मताः।

बारह सफेद सरसोंका एक यव, दो यवकी एक रत्ती और तीन रत्तीका एक वल्ल होता है। आठ रत्तियोंका एक मासा होता है और कहीं-कहीं सात ही रत्तियोंका मासा होता है। चार मासेका एक शाण होता है। उसीको निष्क तथा टंक भी कहते हैं। छ मासेका एक गद्याणक और दस मासेका एक कर्ष होता है। चार कर्षका एक पल होता और उस पलमें दस शाण होते हैं। चार पलका एक कुडव होता है। बाकी प्रस्थ आदि परिमाण पूर्वकथित मागध परिभाषाके ही समान जानने चाहिये॥ ३९॥ ४०॥ ४१॥

कालिंगं मागधं चेति द्विविधं मानमुच्यते ॥४२॥
कालिंगान्मागधं श्रेष्ठं मानं मानविदो जनाः ।

कालिंग और मागध ये दो प्रकारके मान होते हैं। इन दोनोंमें मानके जाननेवाले वैद्योंने कालिंग मानकी अपेक्षा मागध मानको श्रेष्ठ माना है ॥४२॥

औषधिसम्बन्धी विचार

नवान्येव हि योज्यानि द्रव्याण्यखिलकर्मसु ॥४३॥
विना विडंगकृष्णाभ्यां गुडधान्याज्यमाक्षिकैः ।

सब प्रकारके प्रयोगोंमें नवीन औषधियाँ ही काममें लावे। किन्तु वायविडङ्ग, पीपल, गुड़, धान्य, शहद तथा घृत ये नवीन न लेकर पुरानी ही लेना चाहिए। 'योजयेन्नवमेवाज्यं भोजने तर्पणे श्रमे।' ऐसा भावप्रकाशमें लिखा है, जिसका मतलब यह है कि बृंहणचिकित्सामें शहद भी नया ले और कर्षणचिकित्सामें पुरानी ही शहद लेनी चाहिये। 'घृतमब्दात्परं पक्वं हीनवीर्यं प्रजायते। तैलं पक्वमपक्वं वा चिरस्थायि गुणाधिकम् ॥' ॥ ४३ ॥

काममें आनेवाली गीली औषधियाँ

गुडूची कुटजो वासा कूष्माण्डं च शतावरी ॥४४॥
अश्वगंधा सहचरी शतपुष्पा प्रसारणी।
प्रयोक्तव्या सदैवार्द्रा द्विगुणा नैव कारयेत् ॥४५॥

गुरुच, कोरैया, अडूसा, कूष्माण्ड, शतावरी, असगंध, सहचरी (पियाबासा) सौंफ एवं प्रसारणी ये नौ औषधियाँ हमेशा गीली ही काममें लानी चाहिये। किन्तु गीली समझकर दूनी औषधि न ले ले, बल्कि जितना परिमाण बतलाया गया हो उतना ही ले ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

शुष्क औषधियाँ

शुष्कं नवीनं द्रव्यं च योज्यं सकलकर्मसु।
आर्द्रं च द्विगुणं युंज्यादेष सर्वत्र निश्चयः ॥४६॥

पिछले श्लोकमें कही गयी औषधियोंके सिवाय सब औषधियाँ सब कामोंमें नयी और सूखी हुई ही ले, यदि गीली हों तो दूने परिमाणसे ले। यह निश्चय सर्वत्रके लिये है ॥ ४६ ॥

अनुक्त काल आदिकी योजना

कालेऽनुक्ते प्रभातं स्यादङ्गेऽनुक्ते जटा भवेत् ।
भागेऽनुक्ते तु साम्यं स्यात्पात्रेऽनुक्ते च मृन्मयम् ॥४७॥

जिस प्रयोगमें समयका निर्देश न किया गया हो, वहाँ प्रातःकाल ले । जहाँ औषधिका अंग न कहा हो, वहाँ उसकी जड़ ले । जहाँ औषधिका भाग न बताया गया हो, वहाँ सब समान भाग लेवे और जहाँ पात्रका निर्देश न किया गया हो, वहाँ मट्टीका बर्तन काममें लाना चाहिये ॥ ४७ ॥

पुनरुक्त द्रव्यका मान

एकमप्यौषधं योगे यस्मिन्यत्पुनरुच्यते ।
मानतो द्विगुणं प्रोक्तं तद्द्रव्यं तत्त्वदर्शिभिः ॥४८॥

जिस योगमें एकही औषधिको दो बार गिनाया गया हो, वहाँ उस औषधिको दूने परिमाणमें लेना चाहिये। ऐसा आयुर्वेदके तत्त्व जाननेवालोंने कहा है ॥ ४८ ॥

चन्दननिर्णय

चूर्णस्नेहासवा लेहाः प्रायशश्चन्दनान्विताः ।
कषायलेपयोः प्रायो युज्यते रक्तचन्दनम् ॥४९॥

चूर्ण, स्नेह (घृत-तेल आदि) तथा अवलेह (मलहम) में प्रायः सफेद चन्दन काममें लावे और काढ़ा तथा लेप आदिके प्रयोगमें लाल चन्दन लेना उचित है । इस श्लोकमें प्रायः शब्द सन्दिग्धार्थक है । जिसका मतलब यह निकलता है कि कहीं-कहीं सफेदके स्थानमें लाल तथा लालके स्थानमें सफेद चंदन भी काममें लाया जाता है ॥ ४९ ॥

कालयापनमें औषधियोंका गुणावगुण

गुणहीनं भवेद्वर्षादूर्ध्वं तद्रूपमौषधम् ।
मासद्वयात्तथा चूर्णं हीनवीर्यत्वमाप्नुयात् ॥५०॥
हीनत्वं गुटिकालेहौ लभेते वत्सरात्परम् ।
हीनाः स्युर्घृततैलाद्याश्चतुर्मासाधिकास्तथा ॥५१॥
औषध्यो लघुपाकाः स्युर्निर्वीर्या वत्सरात्परम् ।
पुराणाः स्युर्गुणैर्युक्ता आसवा धातवो रसाः ॥५२॥

वनको लायी हुई औषधि यदि ज्योंकी त्यों रक्खी रहे तो एक वर्ष बाद गुणविहीन हो जाती है। दो महीने बाद चूर्ण बलहीन हो जाता है। वर्ष भर बाद गोलियाँ और मलहम गुणरहित हो जाते हैं। एक साल चार मासके बाद घृत और तैल गुणहीन हो जाते हैं। यव, गेहूँ, चना आदिकी लघुपाक की हुई औषधियाँ साल भरके बाद निर्वीर्य हो जाती हैं और आसव, धातु तथा रस जितने ही पुराने होते हैं, उतने ही गुणकारी हुआ करते हैं ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

रोगोंमें उक्तानुक्त द्रव्यकथन

व्याधेरयुक्तं यद्द्रव्यं गणोक्तमपि तत्त्यजेत्।
अनुक्तमपि युक्तं यद्योज्यते तत्र तद्बुधैः ॥५३॥

किसी योगकी औषधियोंका चुनाव करते समय यदि कोई औषधि गुणविरुद्ध दीखे तो चाहे उस योगमें उस औषधिका उल्लेख किया गया हो तो भी उसे निकाल दे और जो औषधि उल्लेखमें न आयी हो, किन्तु हितकारी हो तो उसे उसमें मिला ले ॥ ५३ ॥

औषधिके लिए स्थानादिका निर्णय

आग्नेया विंध्यशैलाद्याः सौम्यो हिमगिरिर्मतः ॥५४॥
अतस्तदौषधानि स्युरनुरूपाणि हेतुभिः।
अन्येष्वपि प्ररोहंति वनेषूपवनेषु ॥५५॥

विन्ध्य, मलय, सह्य आदि पर्वतोंपर उत्पन्न औषधियाँ गरम और हिमालय आदि पर्वतोंपर उत्पन्न औषधियाँ ठंढी होती हैं। इनके सिवाय बहुतसे वन और उपवनोंमें भी औषधियाँ उत्पन्न होती हैं। अतएव यह निश्चित हुआ कि जिस प्रकारकी पृथ्वीमें, जिस ऋतुमें जो औषधि उत्पन्न होती है, उसीके अनुकूल उसमें गुण भी रहता है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

औषधि लानेकी विधि

गृह्णीयात्तानि सुमनाः शुचिः प्रातः सुवासरे।
आदित्यसंमुखो मौनी नमस्कृत्य शिवं हृदि ॥५६॥
साधारणं धराद्रव्यं गृह्णीयादुत्तराश्रितम्।
वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोषरमार्गजाः ॥५७॥
जंतुवह्निहिमव्याप्ता नौषध्यः कार्यसाधिकाः।

औषधि लानेवालेको चाहिये कि किसी अच्छे दिन प्रातःकाल उठे और स्नानादिसे पवित्र होकर स्वस्थचित्त हो, सूर्यके सम्मुख मौनभावसे खड़ा होकर मनही मन शिवजीको प्रणाम करे। फिर उत्तरकी ओर साधारण भूमिमें उत्पन्न औषधि ग्रहण करे। किन्तु ऐसी औषधि न ले, जिसमें दीमक लगी हो, जो जलप्राय प्रदेशमें हो, श्मशानपर हो, ऊसर जमीनमें उगी हो, मार्गमें हो, कीड़ेने खा लिया हो, आग लगनेसे जल गयी हो या पालेने मार दिया हो। ऐसी औषधियाँ काम लायक नहीं होतीं ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

आनयनकाल

शरद्यखिलकार्यार्थं ग्राह्यं सरसमौषधम् ॥ ५८ ॥
विरेकवमनार्थं च वसन्तान्ते समाहरेत् ।

सब कामोंके लिये शरद ऋतुमें औषधि लाकर रख लेनी चाहिये। क्योंकि इन दिनोंमें औषधियाँ सरस होती हैं। विरेचन और वमनके लिये गर्मीकी ऋतुमें औषधियाँ लाकर रखनी चाहिये। इस कथनसे यह निश्चित हुआ कि इन्हीं दो ऋतुओंमें औषधि संग्रह करे—अन्य समयमें नहीं ॥ ५८ ॥

द्रव्योंके ग्राह्य अंग

अतिस्थूलजटा याः स्युस्तासां ग्राह्यास्त्वचो बुधैः ॥५९॥
गृह्णीयात्सूक्ष्ममूलानि सकलान्यपि बुद्धिमान् ।

जिन वृक्षोंकी जड़ अधिक मोटी हो, उनकी छालमात्र लेवे और जिनकी जड़ पतली हो, उन औषधियोंका सारा हिस्सा ले लेना चाहिये। कुछ वैद्योंकी यह भी राय है कि छोटे-छोटे वृक्षकी जड़मात्र लेनी चाहिये ॥ ५९ ॥

द्रव्योंका खास अंग

न्यग्रोधादेस्त्वचो ग्राह्याः सारं स्याद्बीजकादितः ॥६०॥
तालीसादेश्च पत्राणि फलं स्यात्त्रिफलादितः ।
धातक्यादेश्च पुष्पाणि स्नुह्यादेः क्षीरमाहरेत् ॥६१॥

बरगद आदिकी छालमात्र लेवे। विजयसार आदि शब्दसे बबूल, खैर, महुआ आदिकी भीतरी छाल लेनी चाहिये। तालीस आदि शब्दसे घीकुवार और पान वगैरहके पत्ते लेने चाहियें। त्रिफला, सुपारी आदिके फल लेने चाहियें। धाय, सेवती आदिके फूल लेने चाहिये और थूहर, कपास, मदार तथा दुद्धी

आदिका दूध लेकर काममें लाना चाहिए। इनके अतिरिक्त जिनका नाम नहीं गिनाया गया है, उनका गोंद लेना चाहिए॥ ६० ॥ ६१ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां पूर्वखण्डे परिभाषाकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

—:॥—०—॥:—

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

औषधिभक्षणकाल

भैषज्यमभ्यवहरेत्प्रभाते प्रायशो बुधः ।
कषायाँश्च विशेषेण तत्र भेदस्तु दर्शितः ॥ १ ॥

विद्वान् वैद्यको चाहिये कि प्रायः प्रातः कालके समय ही रोगीको दवा खिलावे। उसमें भी कल्क, कषाय तथा हिमको सवेरे ही खिलानेका विशेष ध्यान रक्खे। अब इस विषयमें जो भेद हैं, उन्हे बतलाते हैं—॥ १ ॥

औषधिभक्षणके पाँच समय

ज्ञेयः पंचविधः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम् ।
किंचित्सूर्योदये जाते तथा दिवसभोजने ॥ २ ॥
सायंतने भोजने च मुहुश्चापि तथा निशि ।

किसी भी रोगी मनुष्यको औषधभक्षण करानेके लिए पाँच काल नियत हैं। जैसे—थोड़ा दिन निकलनेपर, दिनमें भोजन करनेके समय, शामको भोजनके समय, आवश्यकतानुसार दिन एवं रात्रिको कई बार, ये ही पाँच समय औषध भक्षणके हैं ॥ २ ॥

प्रथम काल

प्रायः पित्तकफोद्रेके विरेकवमनार्थयोः ॥ ३ ॥
लेखनार्थे च भैषज्यं प्रभातेऽनन्नमाहरेत् ।
एवं स्यात्प्रथमः कालो भैषज्यग्रहणे नृणाम् ॥ ४ ॥

पित्त और कफके कुपित होनेपर कफके विरेचन तथा कफका वमन करानेके लिए और लेखन अर्थात् दोषोंको पतला बनानेके लिए हमेशा सवेरेके समय

दवा खिलावे और कुछ अन्न न खाने दे। दोषके विशेष बढ़ जानेपर और समय भी दवा दे सकते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

द्वितीय काल

भैषज्यं विगुणेऽपाने भोजनाग्रे प्रशस्यते ।
अरुचौ चित्रभोज्यैश्च मिश्रं रुचिरमाहरेत् ॥५॥
समानवाते विगुणे मन्देऽग्नावग्निदीपनम् ।
दद्याद्भोजनमध्ये च भैषज्यं कुशलो भिषक् ॥६॥
व्यानकोपे च भैषज्यं भोजनांते समाहरेत् ।
हिक्काक्षेपककम्पेषु पूर्वमन्ते च भोजनात् ॥७॥
एवं द्वितीयकालश्च प्रोक्तो भैषज्यकर्मणि ।

यदि अपान वायु दूषित होजाय तो उसकी शान्तिके निमित्त भोजन करनेके कुछ पहले-ही दवा खा लेनी चाहिये। अरुचि हो तो रोगीको चाहिये कि किस्म-किस्मके भोज्य पदार्थोंमें औषधि मिलाकर भोजन करे। यदि समान (नाभिमें रहनेवाली) वायु दूषित हो या औदर्य अग्नि मन्द पड़ गयी हो तो वैद्य अग्निदीपनकारी वस्तुएँ भोजनमें मिलाकर देवे। समस्त शरीरमें रहनेवाली व्यान वायु दूषित हो तो भोजन करनेके पश्चात् औषध ग्रहण करे। हिक्का (हिचकी) तथा आक्षेपक (अंगको हिलाने-डुलाने वाली) वायु दूषित हो तो भोजनके पहले और भोजनके अनन्तर इन दो समयोंमें औषध भक्षण करे। यह औषधग्रहणका दूसरा काल बतलाया गया है ॥ ५–७ ॥

तृतीय काल

उदाने कुपिते वाते स्वरभंगादिकारिणी ॥८॥
ग्रासं ग्रासांतरे देयं भैषज्यं सांध्यभोजने ।
प्राणे प्रदुष्टे सांध्यस्य भक्ष्यस्यान्ते च दीयते ॥९॥
औषधं प्रायशो धीरैः कालोऽयं स्यात्तृतीयकः ।

स्वरभंग आदि कंठसम्बन्धी उपद्रवोंको उत्पन्न करनेवाला उदान वायु दूषित हो जाय तो शामको भोजन करते समय प्रत्येक ग्रासमें या दो ग्रासके बीचमें औषधि देवे। यदि प्राणवायु दूषित हो तो प्रायशः शामको भोजन करनेके अनन्तर ही धैर्यशाली वैद्य रोगीको औषधि दे। यह औषधभक्षणका तृतीय काल है ॥ ८ ॥ ९ ॥

चतुर्थ काल

मुहुर्मुहुश्च तृट्छर्दिहिक्काश्वासगरेषु च ॥१०॥
सान्नं च भेषजं दद्यादिति कालश्चतुर्थकः ।

यदि तृष्णा (प्यास) छर्दि (वमन) हिचकी, श्वास तथा विषसम्बन्धी कोई रोग उभड़ा हो तो वैद्यको चाहिये कि अन्नके साथ बार बार औषधि दे। "मुहुर्मुहुश्च" इसमें चकार पड़ता है, जिसका यह मतलब यह है कि ऊपर गिनाये तृषा आदि रोगोंमें यदि अन्नविहीन औषधि भी दे दे, तो कोई हानि नहीं। यह चौथा काल बतलाया गया ॥ १० ॥

पंचम काल

ऊर्ध्वजत्रुविकारेषु लेखने बृंहणे तथा ॥११॥
पाचनं शमनं देयमनन्नं भेषजं निशि ।
इति पंचमकालः स्यात्प्रोक्तो भैषज्यकर्मणि ॥१२॥

हँसलियोंसे ऊपर किसी अंग आँख, नाक, कान आदिमें यदि किसी प्रकारका विकार हो या वातादि दोषोंकी वृद्धि हो गयी हो अथवा अतिक्षीण रोगको उभाड़नेकी जरूरत आ पड़े तो रात्रिके समय पाचनमयी तथा शमनकारिणी औषधियाँ बिना अन्नके ही खिलावे। यही पंचम काल है ॥ ११ ॥ १२ ॥

द्रव्यमें रसादिकी विशेष आवश्यकता

द्रव्ये रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च ।
संवेदनक्रमादेताः पंचावस्थाः प्रकीर्त्तिताः ॥१३॥

द्रव्यमें रस, गुण, वीर्य, विपाक और शक्ति ये पाँच अवस्थायें रहती हैं। उन्हें क्रमशः बतलाते हैं ॥ १३ ॥

रसका रूप

मधुरोऽम्लः पटुश्चैव कटुतिक्तकषायकाः ।
इत्येते षड्रसाः ख्याता नानाद्रव्यसमाश्रिताः ॥१४॥

मधुर (मीठा), अम्ल (खट्टा), क्षार (नमकीन), पटु (चटपटा), कटु (कड़ुआ), तिक्त (तीखा मिरचे आदिका स्वाद), कषाय (कसैला, हड़ आदिके जैसा) ये छ प्रकारके रस विविध प्रकारके द्रव्योंमें रहते हैं ॥ १४ ॥

रसकी उत्पत्तिका क्रम

धराम्बुद्मानलजलज्वलनाकाशमारुतैः।
वाय्वग्निद्मानिलैर्भूतद्वयै रसभवः क्रमात् ॥ १५ ॥

पृथ्वी और जलतत्त्वके संयोगसे मधुर रस, पृथ्वी तथा अग्नितत्त्वके संयोगसे खट्टा रस, जल और अग्नितत्त्वके संयोगसे क्षार रस, आकाश तथा वायुतत्त्वके संयोगसे तीक्ष्ण रस, पृथ्वी और वायुतत्त्वके संयोगसे कषाय रस उत्पन्न होता है। इस प्रकार दो-दो तत्त्वोंके संयोगसे एक-एक रसकी उत्पत्ति होती है ॥ १५ ॥

गुणोंका स्वरूप

गुरुः स्निग्धश्च तीक्ष्णश्च रूक्षो लघुरिति क्रमात्।
धराम्बुवह्निपवनव्योम्नां प्रायो गुणाः स्मृताः ॥१६॥
एष्वेवान्तर्भवन्त्यन्ये गुणेषु गुणसंचयाः।

पृथ्वीका गुण है गुरुत्व, जलका गुण स्निग्धत्व (चिकनाहट), अग्निका गुण तीक्ष्णत्व, वायुका गुण रूक्षत्व (रूखापन) और आकाशका गुण लघुत्व (हल्कापन) है। ये पाँचों तत्त्वोंके पाँच गुण हैं। इन्हींके अन्तर्गत और भी बहुत-से गुण रहा करते हैं ॥ १६ ॥

वीर्यका स्वरूप

वीर्यमुष्णं तथा शीतं प्रायशो द्रव्यसंश्रयम् ॥१७॥
तत्सर्वमग्निषोमीयं दृश्यते भुवनत्रये।
अत्रैवान्तर्भविष्यन्ति वीर्याण्यन्यानि यान्यपि ॥१८॥

उष्ण तथा शीत दो प्रकारका वीर्य होता है और ये दोनों द्रव्यके ही सहारे रहते हैं। इसीसे त्रैलोक्यके द्रव्यसमूह अग्न्यात्मक और सोमात्मक माने जाते हैं। इन्हींके अन्तर्गत स्निग्ध-विशद आदि दूसरे गुण भी रहा करते हैं ॥१७॥१८॥

विपाकका स्वरूप

त्रिधा विपाको द्रव्यस्य स्वाद्वम्ललवणात्मकः।
मिष्टः पटुश्च मधुरमम्लोऽम्लं पच्यते रसः।
कषायकटुतिक्तानां पाकः स्यात्प्रायशः कटुः ॥१९॥
मधुराज्जायते श्लेष्मा पित्तमम्लाच्च जायते।
कटुकाज्जायते वायुः कर्माणीति विपाकतः ॥२०॥

विपाक यानी औदर्य अग्निके संयोगसे प्रत्येक पदार्थका जो एक विशिष्ट पाक होता है, उसे विपाक कहते हैं। वह तीन प्रकारका होता है।

मीठे और क्षार रसका विपाक मधुर होता है। खट्टे रसका विपाक खट्टा होता है। इनके अतिरिक्त कसैले, चरपरे तथा कडुए रसका विपाक तीक्ष्ण होता है। मधुर पाकसे कफ उभड़ता, अम्ल पाकसे पित्त उपजता और तीक्ष्ण पाकसे वायु जोर करता है। इस तरह तीन प्रकारके विपाकसे तीन दोष जायमान होते हैं॥ १९॥ २०॥

प्रभावके स्वरूप

प्रभावस्तु यथा धात्री लघुश्चापि रसादिभिः।
समापि कुरुते दोषत्रितयस्य विनाशनम् ॥२१॥
कचित्तु केवलं द्रव्यं कर्म कुर्यात्प्रभावतः।
ज्वरं हन्ति शिरे बद्धा सहदेवीजटा यथा ॥२२॥

प्रभावका मतलब यह है कि जैसे आँवलेका रस, गुण, वीर्य, विपाकादि गुणोंके समान हल्का होनेपर भी तीनों दोषोंका नाशक है। कहीं-कहीं तो केवल एक ही द्रव्य अपने प्रभावसे बातकी बातमें सब दोषोंको नष्ट कर देता है। जैसे सहदेइयाकी जड़ मस्तकमें बाँधनेसे भी ज्वर नष्ट कर देती है। यह प्रभावकी ही शक्ति है॥ २१ ॥ २२ ॥

रसादिकोंकी उत्कृष्टता

कचिद्रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च।
कर्म स्वं स्वं प्रकुर्वन्ति द्रव्यमाश्रित्य ये स्थिताः ॥२३॥

रस, गुण, वीर्य, विपाक तथा प्रभाव ये सब किसी न किसी द्रव्यके आश्रयीभूत होकर अपना-अपना काम करते हैं। रसका उदाहरण। जैसे—गुरुचका रस कटु तथा उष्ण होनेपर भी पित्तको दबाता है। इसका एकमात्र कारण गुरुचके रसका उष्ण और कटु रहना है। गुणका उदाहरण। जैसे—तीक्ष्ण गुणवती होती हुई भी मूली कफको बढ़ाती है। क्योंकि उसका गुण स्निग्ध है। वीर्यका उदाहरण। जैसे—पञ्चमूलका काढ़ा कसैला और कडुआ होनेपर भी वातको शान्त करता है। क्योंकि इसका वीर्य उष्ण होता है। विपाकका उदाहरण। जैसे—सोंठ तीक्ष्ण होती हुई भी वायुनाशिनी है। क्योंकि इसका विपाक

मधुर होता है। प्रभावका उदाहरण। जैसे—खैर कुष्ठ रोगका विनाशक है। क्योंकि इसमें विलक्षण प्रभाव रहा करता है॥ २३॥

वातादि दोषोंका संचय, प्रकोप और उपशम

चयकोपसमा यस्मिन्दोषाणां संभवंति हि।
ऋतुषट्कं तदाख्यातं रवे राशिषु संक्रमात्॥२४॥

जिन ऋतुओंमें दोषोंकी वृद्धि, प्रकोप तथा शमन होता है, वे छहों ऋतुयें सूर्यके बारह राशियोंके संक्रमणके अनुसार होती हैं॥ २४॥

ऋतुओंके नाम

ग्रीष्मे मेषवृषौ प्रोक्तौ प्रावृण्मिथुनकर्कयोः।
सिंहकन्ये स्मृता वर्षास्तुलावृश्चिकयोः शरत्॥२५॥
धनुर्ग्राहौ च हेमंतो वसंतः कुंभमीनयोः।

मेषकी संक्रान्तिसे लेकर वृष राशिके अन्त तक ग्रीष्म ऋतु रहती है। मिथुनकी संक्रान्तिसे कर्क संक्रान्तिके अन्त पर्यन्त प्रावृट (वर्षा) ऋतु होती है। सिंहसे कन्याकी संक्रान्ति तक वर्षा ऋतु होती है। तुलासे वृश्चिक संक्रान्ति तक शरदऋतु रहती है। धनसे मकर तक हेमन्त तथा कुम्भसे मीन पर्यन्त वसन्त ऋतु होती है। इस प्रकार दो-दो राशियोंके दो-दो महीनोंकी एक-एक ऋतु होती है॥ २५॥

ऋतुभेदसे वातादि दोषोंका संचय, प्रकोप और शमन

ग्रीष्मे संचीयते वायुः प्रावृट्काले प्रकुप्यति॥२६॥
वर्षासु चीयते पित्तं शरत्काले प्रकुप्यति।
हेमंते चीयते श्लेष्मा वसंते च प्रकुप्यति॥२७॥
प्रायेण प्रशमं याति स्वयमेव समीरणः।
शरत्काले वसन्ते च पित्तं प्रावृडृतौ कफः॥२८॥

ग्रीष्म ऋतुमें वायु संचित होकर प्रावृट् कालमें कुपित होता है। वर्षा ऋतुमें पित्त संचित होकर शरत्कालमें कुपित होता है। हेमन्त ऋतुमें कफ संचित होकर वसन्तमें प्रकुपित होता है। शरद् ऋतुमें वायु, वसन्त ऋतुमें पित्त तथा प्रावृट् ऋतुमें कफ अपने आप शान्त हो जाया करता है॥ २६॥ २७॥ २८॥

दोषाणां सञ्चयप्रकोपशमनचक्रम्

नाम	वात	पित्त	कफ
संचय	ग्रीष्मऋतु वैशाख-ज्येष्ठ मेष-वृष	वर्षाऋतु भाद्रपद-आश्विन सिंह-कन्या	हेमंतऋतु पौष-माघ धन-मकर
कोप	प्रावृट्ऋतु मिथुन-कर्क आषाढ़-श्रावण	शरदऋतु तुला-वृश्चिक कार्तिक-मार्गशीर्ष	वसंतऋतु कुंभ-मीन फाल्गुन-चैत्र
शमन	शरदऋतु तुला-वृश्चिक कार्तिक-मार्गशिर	वसंतऋतु कुंभ-मीन फागुन-चैत्र	प्रावृट्ऋतु मिथुन-कर्क आषाढ़-श्रावण

दोषोंके अकालमें भी चयादिका निमित्त कारण

चयकोपशमा दोषा विहाराहारसेवनैः ।
समानैर्यान्त्यकालेऽपि विपरीतैर्विपर्ययम् ॥२६॥

वातादि दोषोंके गुणके समानही आहार-विहारके सेवनसे दोषोंका संचय, प्रकोप तथा शमन होता है । और वातादि दोषोंके विपरीत गुणवाले पदार्थोंका सेवन करनेसे असमयमें भी दोषोंका नाश हो जाया करता है ॥ २९ ॥

वायुका प्रकोप तथा शमन

लघुरूक्षमिताहारादतिशीताच्छ्रमात्तथा ।
प्रदोषे कामशोकाभ्यां भीचिन्तारात्रिजागरैः ॥३०॥
अभिघातादपां गाहाज्जीर्णेऽन्ने धातुसंक्षयात् ।
वायुः प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति ॥३१॥

ज्यादा हल्के, रूखे-सूखे तथा एक परिमाणके भोजन करनेसे, अतिशय ठण्ढी वस्तुयें खानेके कारण, ज्यादा परिश्रम करनेसे, प्रदोष कालमें भोजन करनेसे, कामके वशीभूत होने या किसी प्रकारका शोक करनेसे, चिन्तासे, रातको

अधिक जागनेके कारण, किसी प्रकारका आघात लगनेसे, जलमें अधिक रहनेसे, आहारके जीर्ण होनेपर तथा धातुके नष्ट हो जानेसे वायु कुपित हो जाता है। ऊपर गिनाये कारणोंसे विपरीत पदार्थोंका सेवन किया जाय तो वह शान्त भी हो जाता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

पित्तका कोप और शमन

विदाहिकटुकाम्लोष्णभोज्यैरत्युष्णसेवनात्।
मध्याह्ने क्षुत्तृषारोधाज्जीर्यत्यन्नेऽर्धरात्रिके ॥३२॥
पित्तं प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति।

किसी दाहकारी, कड़ुये, खट्टे, गरम तथा पदार्थोंका सेवन करने, अधिक अग्नि सेवन करने, दोपहरके समय भूख-प्यासका वेग रोकनेसे तथा रात्रिके समय अन्न पच जानेके बाद पित्त कुपित होता और इनके विपरीत उष्ण तथा स्निग्धादि पदार्थोंका सेवन करनेसे उसका शमन हो जाया करता है ॥ ३२ ॥

कफका कोप और शमन

मधुरस्निग्धशीतादिभोज्यैर्दिवसनिद्रया ॥३३॥
मंदेऽग्नौ च प्रभाते च भुक्तमात्रे तथा श्रमात्।
श्लेष्मा प्रकोपं यात्येभिः प्रत्यनीकैश्च शाम्यति ॥३४॥

मीठा, स्निग्ध, शीतल और भारी पदार्थोंके सेवन करनेसे, दिनमें सोनेके कारण अग्निके मन्द रहनेपर भी भोजन करनेसे, सवेरा होते ही खाने तथा अधिक परिश्रम करनेके कारण कफ प्रकुपित होता और इनके विपरीत उष्ण तथा रूक्ष पदार्थोंके खानेसे कफ शान्त भी हो जाया करता हैं ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां पूर्वखण्डे भैषज्याख्यानकं
नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

—:❀:—

अथ तृतीयोऽध्यायः।

नाड़ीपरीक्षाविधि

करस्यांगुष्ठमूले या धमनी जीवसाक्षिणी।
तच्चेष्टया सुखं दुःखं ज्ञेयं कायस्य पण्डितैः ॥१॥

पण्डितोंको चाहिए कि हाथके अंगूठेमें रहनेवाली जीवसाक्षिणी धमनी नाड़ीकी चालसे प्राणीके सुख-दुःख जानें ॥ १ ॥

दोषोंका स्वरूप और उनकी चेष्टा

नाडी धत्ते मरुत्कोपे जलौकासर्पयोर्गतिम् ।
कुलिंगकाकमंडूकगतिं पित्तस्य कोपतः ॥२॥
हंसपारावतगतिं धत्ते श्लेष्मप्रकोपतः ।

वायुके प्रकोपमें नाड़ी कुलिंग (गौरैया) कौआ तथा मेढककी चालसे चलती है और कफके प्रकोपमें नाड़ी हंस और कबूतरकी चालके समान चलती है ॥ २ ॥

सन्निपात और द्विदोषकी नाड़ी

लावतित्तिरवर्तीनां गमनं सन्निपाततः ॥३॥
कदाचिन्मंदगमना कदाचिद्वेगवाहिनी ।
द्विदोषकोपतो ज्ञेया हंति च स्थानविच्युता ॥४॥

सन्निपात यानी तीनों दोषोंके कुपित होनेपर नाड़ी बटेर तथा तित्तिरकी चालसे चलती है । जब कि तीन दोषोंमेंसे केवल दो दोष कुपित होते तो नाड़ी कभी धीरे २ और कभी जोरोंसे चलने लगती है । नाड़ी चलते २ यदि अपना स्थान छोड़कर अन्यत्र चलने लगे तो प्राणीके लिए सांघातिक अवस्था हो जाती है ॥ ३ ॥ ४ ॥

असाध्य नाड़ीके लक्षण

स्थित्वा स्थित्वा चलति या सा स्मृता प्राणनाशिनी ।
अतिक्षीणा च शीता च जीवितं हंत्यसंशयम् ॥५॥

जो नाड़ी रुक-रुककर चलने लगे तो वह प्राणीके प्राण लेनेवाली होती है । जो नाड़ी बिल्कुल क्षीण तथा ठंढी हो गई हो, वह निःसन्देह प्राणीको मार डालती है ॥ ५ ॥

ज्वरादिकी नाड़ीके लक्षण

ज्वरकोपेन धमनी सोष्णा वेगवती भवेत् ।
कामक्रोधाद्वेगवहा क्षीणा चिंताभयप्लुता ॥६॥
मन्दाग्नेः क्षीणधातोश्च नाडी मंदतरा भवेत् ।
असृक्पूर्णा भवेत्कोष्णा गुर्वी सामा गरीयसी ॥७॥

ज्वरके प्रकोपसे नाड़ी गरम तथा वेगवती होती है। काम और क्रोधके समय नाड़ी वेगके साथ चलने लगती और चिन्ता तथा भयके समय क्षीण हो जाती है। जब कि प्राणीकी औदर्य अग्नि मन्द पड़ जाती या धातु क्षीण हो जाता तब नाड़ी बहुत धीरे-धीरे चलने लगती है। रक्तके प्रकोपमें नाड़ी कुछ गरम हो जाती है। आमका प्रकोप होता तो नाड़ी बहुत भारी चलने लगती है। अग्निके मन्द हो जानेपर बिना पचा हुआ जो रस बच जाता है, उसे 'आम' कहते हैं। कोई कोई विद्वान् यहाँ आमसे आमाजीर्णका संकेत करते हैं॥ ६ ॥ ७ ॥

उत्तम नाड़ीके लक्षण

लघ्वी वहति दीप्ताग्नेस्तथा वेगवती भवेत्।
सुखितस्य स्थिरा ज्ञेया तथा बलवती मता ॥८॥
चपला क्षुधितस्यापि तृप्तस्य वहति स्थिरा।

जिस पुरुषकी अग्नि प्रदीप्त होती, उसकी नाड़ी हल्की रहती और जोरोंके साथ चलती है। जो प्राणी स्वस्थ होता, उसकी नाड़ी स्थिर तथा बलवती हुआ करती है। भूखे प्राणीकी नाड़ी चंचल होती और तृप्तकी नाड़ी स्थिर गतिसे चलती है। ॥ ८ ॥

दूतपरीक्षा

दूताः स्वजातयो व्यंगाः पटवो निर्मलाम्बराः ॥९॥
सुखिनोऽश्ववृषारूढाः शुभ्रपुष्पफलैर्युताः।
सुजातयः सुचेष्टाश्च सजीवदिशि संगताः ॥१०॥
भिषजं समये प्राप्ता रोगिणः सुखहेतवे।

रोगीका समाचार देनेवाला दूत रोगीका सजातीय हो, किसी अंगसे रहित न हो, प्रत्येक कार्यमें निपुण हो, अच्छे कपड़े पहने हो, प्रसन्न मन हो, घोड़े या बैलकी गाड़ीपर बैठा हो, सफेद फूल या फल हाथमें लिये हो, उत्तम कुलका हो, चेष्टा भी उसकी अच्छी हो, दाहिना या बायाँ जो श्वास चल रहा हो वह उसी तरफ आकर बैठ जाय, ठीक समयपर वैद्यके पास पहुँच जाय, ऐसा दूत रोगीका सुखकारी होता है॥ ९ ॥ १० ॥

दूतके शकुन

वैद्याह्वानाय दूतस्य गच्छतो रोगिणः कृते ॥११॥
न शुभं सौम्यशकुनं प्रदीप्तं च सुखावहम्।

जब कि दूत वैद्यको बुलाने चले, उस समय मार्गमें यदि कोई शुभ शकुन दीख पड़े तो ठीक नहीं, बल्कि अंगार-तेल आदि अशुभ शकुन दिखाई पड़ें तो ठीक है ॥ ११ ॥

वैद्यके शकुन

चिकित्सां रोगिणः कर्तुं गच्छतो भिषजः शुभम् ।
यात्रायां सौम्यशकुनं प्रोक्तं दीप्तं न शोभनम् ॥१२॥

जब कि वैद्य रोगीकी चिकित्सा करने जा रहा हो, उस समय रास्तेमें कोई शुभ शकुन दिखाई पड़ जाय तो अच्छा है और अशुभ शकुन अच्छा नहीं होता ॥ १२ ॥

चिकित्सायोग्य रोगी

निजप्रकृतिवर्णाभ्यां युक्तः सत्त्वेन संयुतः ।
चिकित्स्यो भिषजा रोगी वैद्यभक्तो जितेंद्रियः ॥१३॥

वैद्यको चाहिये कि ऐसे रोगीकी चिकित्सा करे, जिसकी प्रकृति और आकृति विपरीत न हो गई हो, रोगी सत्त्वगुणी हो, वैद्यका भक्त हो और उसने अपनी इन्द्रियोंको जीत लिया हो ॥ १३ ॥

दुष्ट स्वप्न

स्वप्नेषु नग्नान्मुंडाँश्च रक्तकृष्णाम्बरावृतान् ।
व्यंगाँश्च विकृतान्कृष्णान्सपाशान्सायुधानपि ॥१४॥
बध्नतो निघ्नतश्चापि दक्षिणां दिशमाश्रितान् ।
महिषोष्ट्रखरारूढान्स्त्रीपुंसान्यस्तु पश्यति ॥
स स्वस्थो लभते व्याधिं रोगी यात्येव पंचताम् ॥१५॥

यदि स्वप्नमें नंगे मनुष्यों, संन्यासी, लाल या काले कपड़े पहने, नकटे, कनकटे या किसी अंगसे विहीन, काले वर्णके, हाथोंमें फाँसी तथा शस्त्र लिये हुए, किसी दूसरेको या खुद अपनेको बाँध कर मारते हुए, दक्षिण दिशामें महिष, ऊँट तथा गधेपर बैठे हुए स्त्री-पुरुषोंको यदि सपनेमें देखे तो स्वस्थ प्राणी रोगी हो जाता और रोगी देखे तो मर जाता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

अधो यो निपतत्युच्चाज्जलेऽग्नौ वा विलीयते ।
श्वापदैर्हन्यते योऽपि मत्स्याद्यैर्गिलितो भवेत् ॥१६॥

यस्य नेत्रे विलीयेते दीपो निर्वाणतां व्रजेत्।
तैलं सुरां पिबेद्वापि लोहं वा लभते तिलान् ॥१७॥
पक्वान्नं लभतेऽश्नाति विशेत्कूपरसातलम्।
स स्वस्थो लभते व्याधिं रोगी यात्वेव पंचताम् ॥१८॥

यदि स्वप्नमें अपनेको किसी ऊँचे स्थानसे गिरता देखे, गिरकर अग्नि या जलमें विलीन हो जाय, कुत्ते काट खायँ, मछली आदि निगल जायँ, नेत्र फूट जायँ, दीपक बुझ जाय, तेल या शराब पीवे, लोह या तिल पाये, पूड़ी-कचौड़ी आदि पकवान खाय, कुयें या रसातलमें प्रवेश कर जाय, ये स्वप्न यदि स्वस्थ मनुष्य देखे तो रोगी हो जाय और रोगी देखे तो मर जावै ॥१६॥१७॥१८॥

दुःस्वप्नका परिहार

दुःस्वप्नानेवमादींश्च दृष्ट्वा ब्रयान्न कस्यचित्।
स्नानं कुर्यादुषस्येव दद्याद्धेमतिलानथ ॥१९॥
पठेत्स्तोत्राणि देवानां रात्रौ देवालये वसेत्।
कृत्वैवं त्रिदिनं मर्त्यो दुःस्वप्नात्परिमुच्यते ॥२०॥

ऊपर कहे हुए दुःस्वप्नोंको देखकर किसीसे कहे नहीं। बड़े सबेरे स्नान करे और सुवर्ण तथा तिलका दान करे। रात्रिके समय देवताओंका स्तोत्र पाठ करे और देवालयमें रहे। इस तरह तीन दिन करनेसे प्राणी दुःस्वप्नजन्य दोषसे मुक्त हो जाता है ॥ १९ ॥ २० ॥

शुभ स्वप्न

स्वप्नेषु यः सुरान्भूपाञ्जीवतः सुहृदो द्विजान्।
गोसमिद्धाग्नितीर्थानि पश्येत्सुखमवाप्नुयात् ॥२१॥

जो प्राणी स्वप्नमें देवताओं, राजाओं, जीवित मित्रों, गौओं, जलती अग्नि, तीर्थस्थान, इनको देखता वह सुखी होता है ॥ २१ ॥

अपर शुभ स्वप्न

तीर्त्वा कलुषनीराणि जित्वा शत्रुगणानपि।
आरुह्य सौधगोशैलकरिवाहान्सुखी भवेत् ॥२२॥

जो प्राणी स्वप्नमें किसी कलुषित जलवाले नहर आदिको पार करे, शत्रुको पराजित करके स्वच्छ प्रासाद, बैल, पर्वत तथा हाथी-घोड़ेपर सवार अपनेको देखे तो वह सुखी होता है ॥ २२ ॥

और भी शुभ स्वप्न

शुभ्रपुष्पाणि वासांसि मांसं मत्स्यान्फलानि च।
प्राप्नातुरः सुखी भूयात्स्वस्थो धनमवाप्नुयात् ॥२३॥

स्वच्छ पुष्प, कपड़े, मांस, मछली, फल, इन वस्तुओंको स्वप्नमें पाकर प्राणी यदि बीमार हो तो स्वस्थ हो जाय, और स्वस्थ हो तो धन पावे ॥ २३॥

अन्य शुभ स्वप्न

अगम्यागमनं लेपो विष्ठया रुदितं मृतिम्।
आममांसाशनं स्वप्ने धनारोग्याप्तये विदुः ॥२४॥

यदि स्वप्नमें अगम्या स्त्रीके साथ गमन करे, देह भर विष्ठासे सनी देखे, अपनेको या दूसरेको रोता देखे, किसीका मरण तथा कच्चे मांसका भोजन करता देखे तो वह प्राणी रोगी हो तो आरोग्य लाभ करे और रोगरहित हो तो धन पावे ॥ २४ ॥

और शुभ स्वप्न

जलौका भ्रमरी सर्पो मक्षिका वापि यं दशेत्।
रोगी स भूयादारोग्यः स्वस्थो धनमवाप्नुयात् ॥२५॥

यदि स्वप्नमें जोंक, भ्रमरी, साँप तथा मक्खी काट खाय तो वह रोगी रोगमुक्त हो जाय और आरोग्यवान् प्राणी धन पावे ॥ २५ ॥

इति श्रीपूर्वखण्डे नाडीपरीक्षादिविधिर्नाम शार्ङ्गधरसंहितायां तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

—❀०❀—

अथ चतुर्थोऽध्यायः

दीपन तथा पाचन औषध

पचेन्नामं वह्निकृच्च दीपनं तद्यथा मिशिः।
पचत्यामं न वह्निं च कुर्याद्यत्तद्धि पाचनम्।
नागकेशरवद्विद्याच्चित्रो दीपनपाचनः ॥ १ ॥

जो औषधि अग्निको प्रदीप्त करे किन्तु आमको न पचावे, उस औषधिकी दीपन संज्ञा है। जैसे सौंफ। जो आमको पचावे और अग्निको प्रदीप्त न कर

सके, उसे पाचन औषध कहते हैं। जैसे—नागकेसर। जो औषधि दीपन-पाचन दोनों काम कर सकती हो, उसे दीपन-पाचन औषधि कहते हैं। जैसे—चित्रक ॥ १ ॥

संशमनो औषधि

न शोधयति न द्वेष्टि समान्दोषाँस्तथोद्धतान्।
समीकरोति विषमाच्छमनं तद्यथाऽमृता ॥२॥

जो औषधि बराबरवाले वातादि दोषोंको न बिगड़ने दे और न शोधन ही करे और उद्धत दोषोंमें मिलकर उन्हें बराबर कर दे अर्थात् रोगीने जो कुछ खा लिया हो उसको वमन-दस्त आदि न कराकर ज्यों का त्यों रहने दे और औषधि द्वारा शान्त कर दे। ऐसी औषधिकी संशमनी संज्ञा है। जैसे गुरुच ॥ २ ॥

अनुलोमन औषधि

कृत्वा पाकं मलानां यद्भित्त्वा बंधमधो नयेत्।
तच्चानुलोमनं ज्ञेयं यथा प्रोक्ता हरीतकी ॥३॥

जो औषधि वातादि दोषोंके प्रकोपको शान्त करे और बँधे भये मलको गुदा द्वारा निकाल दे, उसे अनुलोमनकी नामकी औषधि कहते हैं। जैसे—हरीतकी ॥ ३ ॥

स्रंसन औषधि

पक्तव्यं यदपक्त्वैव श्लिष्टं कोष्ठे मलादिकम्।
नयत्यधः स्रंसनं तद्यथा स्यात्कृतमालकः ॥४॥

जो औषधि पश्चात् पचने लायक वातादि दोषों तथा कोष्ठमें रहनेवाले मल आदिको बिना पचाये ही नीचेकी ओर लाकर गुदा द्वारा निकाल दे, उस औषधिकी स्रंसन संज्ञा है। जैसे—अमलतासका गूदा ॥ ४ ॥

भेदन औषधि

मलादिकमबद्धं वा बद्धं वा पिण्डितं मलैः।
भित्त्वाधः पातयति तद्भेदनं कटुकी यथा ॥५॥

जो औषधि वात-पित्त आदिके दोषोंसे बँधे हुए या बिना बँधे मलका भेदन करके नीचे लावे और गुदाके द्वारा निकाल दे। ऐसी औषधिकी भेदनी संज्ञा है। जैसे कुटकी होती है ॥ ५ ॥

रेचनी औषधि

विपक्वं यदपक्वं वा मलादि द्रवतां नयेत् ।
रेचयत्यपि तज्ज्ञेयं रेचनं त्रिवृता यथा ॥६॥

जो औषधि पके हुए या बिना पके हुए मल आदिकोंको पतला करके गुदा द्वारा निकाल दे, ऐसी औषधिकी रेचनी संज्ञा है । जैसे–निसोथ ॥ ६ ॥

वमन औषधि

अपक्वपित्तश्लेष्माणौ बलादूर्ध्वं नयेत्तु यत् ।
वमनं तद्धि विज्ञेयं मदनस्य फलं यथा ॥७॥

जो औषधि बिना पचे हुए ही पित्त और कफको जबर्दस्ती ऊपर लाकर मुखके द्वारा निकाल दे, ऐसी औषधिकी वमन संज्ञा है । जैसे–मैनफल ॥ ७ ॥

संशोधन औषध

स्थानाद्बहिर्नयेदूर्ध्वमधो वा मलसंचयम् ।
देहसंशोधनं तत्स्याद्देवदालीफलं यथा ॥८॥

जो औषधि अपने स्थानमें ही संशोधित मलको वहाँसे ऊपर या नीचे लाकर बाहर निकाल दे, उसे संशोधन औषधि कहते हैं । जैसे–घघरबेलका फल । संशोधनके साथ देह शब्दका प्रयोग करनेसे यह जाना जाता है कि फस्त खोलना भी संशोधनमें शामिल है ॥ ८ ॥

छेदन औषधि

श्लिष्टान्कफादिकान्दोषानुन्मूलयति यद्बलात् ।
छेदनं तद्यथा क्षारो मरिचानि शिलाजतु ॥६॥

आपसमें एक दूसरेसे मिले हुए कफादि दोषोंको जो औषधि जबर्दस्ती भेदन करके अलग-अलग कर दे । ऐसी औषधिकी छेदन संज्ञा है । जैसे–जवाखार लाल या काली मिर्च और शिलाजीत ॥ ६ ॥

लेखन औषधि

धातून्मलान्वा देहस्य विशोष्योल्लेखयेच्च यत् ।
लेखनं तद्यथा क्षौद्रं नीरमुष्णं वचा यवाः ॥१०॥

जो औषधि रसादि धातु तथा वातादि दोषोंको सुखाकर बाहर निकालनेमें समर्थ हो, ऐसी औषधिकी लेखनसंज्ञा है । जैसे–शहद, गरम पानी, बच और जौ ॥ १० ॥

ग्राही औषधि

दीपनं पाचनं यत्स्यादुष्णत्वाद्द्रवशोषकम्।
ग्राहि तच्च यथा शुंठी जीरकं गजपिप्पली ॥११॥

जो औषधि दीपन-पाचन दोनों काम करे और गरम होनेसे शरीरके द्रवरूप कफ आदि दोषोंका शोषण भी करे, उसे ग्राही औषधि कहते हैं। जैसे—सोंठ, जीरा और गजपीपल ॥ ११ ॥

स्तंभन औषधि

रौक्ष्याच्छैत्यात्कषायत्वाल्लघुपाकाच्च यद्भवेत्।
वातकृत्स्तंभनं तत्स्याद्यथा वत्सकटुंटुकौ ॥१२॥

जो औषधि रूखी, कसैली और जल्द पचनेवाली होनेके कारण वात उत्पन्न करे, ऐसे द्रव्यको स्तम्भन औषधि कहते हैं। जैसे—वत्सक (कुड़ा) और टुंटुक ॥ १२ ॥

रसायनी औषधि

रसायनं च तज्ज्ञेयं यज्जराव्याधिनाशनम्।
यथाऽमृता रुदन्ती च गुंग्गुलुश्च हरीतकी ॥१३॥

जो औषधि देहकी वृद्धावस्थारूपिणी व्याधिको दूर करनेमें समर्थ हो, उसे रसायनी औषधि कहते हैं। जैसे—गुरुच, रुदन्ती,गूगुल तथा हरीतकी। यहांपर कुछ लोगोंको यह शंका होती है कि श्लोकमें व्याधिमात्र कहनेसे वृद्धावस्थाका भी ग्रहण हो जाता, फिर "जरा" शब्दको लिखनेकी क्या आवश्यकता थी? सो ऐसा जानना चाहिए कि यहाँ जराशब्दसे व्याधिके कारण नहीं, बल्कि स्वाभाविक वृद्धावस्थाका संकेत है, जो ६५ या ७० सत्तर वर्षके अनन्तर आपसे आप आती है ॥ १३ ॥

वाजीकरण

यस्माद्द्रव्याद्भवेत्स्त्रीषु हर्षो बाजीकरं च तत्।
यथा नागबलाद्यास्तु बीजं च कपिकच्छुकम् ॥१४॥

जिस चीजसे स्त्रियोंको विशेषरूपसे मैथुन करानेकी इच्छा उपजे, उसको वाजीकरण द्रव्य कहते हैं। जैसे—खरेटी, जायफल, शतावर और केवाँचके बीज आदि ॥ १४ ॥

धातुवृद्धिकारी द्रव्य

यस्माच्छुक्रस्य वृद्धिः स्याच्छुक्रलं च तदुच्यते ।
यथाश्वगंधा मुसली शर्करा च शतावरी ॥१५॥

जो औषधि धातुको बढ़ावे, उसे शुक्रल औषधि कहते हैं। जैसे-असगन्ध, मुसली, मिश्री तथा शतावर ॥ १५ ॥

वीर्यजनक द्रव्य

दुग्धं माषाश्च भल्लातफलमज्जाऽऽमलानि च ।
प्रवर्तकानि कथ्यंते जनकानि च रेतसः ॥१६॥

दूध, उड़द, भिलावेके फलका बीज और आँवलेका फल ये वस्तुयें धातुको प्रवर्त्तित करनेवाली होती हैं ॥ १६ ॥

विशेष वाजीकरण द्रव्य

प्रवर्तनं स्त्रीशुक्रस्य रेचनं बृहतीफलम् ।
जातीफलं स्तंभकं च शोषणी च हरीतकी ॥१७॥

बड़ी कटेरीका फल स्त्रियोंके वीर्य (रज) का प्रवर्त्तक और पुरुषके शुक्रका रेचक है, जायफल वीर्यका स्तम्भक है और हरीतकी वीर्यको सुखाती है ॥१७॥

सूक्ष्म औषधि

देहस्य सूक्ष्माच्छिद्रेषु विशेद्यत्सूक्ष्ममुच्यते ।
तद्यथा सैन्धवं क्षौद्रं निंबस्तैलं रुबूद्भवम् ॥१८॥

जो औषधि शरीरके सूक्ष्म छिद्रों अर्थात् रोमकूपमें भी प्रविष्ट होकर अपना असर पैदा करे, उसे सूक्ष्म औषधि कहते हैं। जैसे-सेंधा नमक, शहद, नीम और रेंड़ीका तेल आदि ॥ १८ ॥

व्यवायी औषधि

पूर्वं व्याप्याखिलं कायं ततः पाकं च गच्छति ।
व्यवायि तद्यथा भंगा फेनं चाहिसमुद्भवम् ॥१९॥

जो द्रव्य पहिले शरीर भरमें व्याप्त हो जाय, फिर पचकर अपना असर दिखावे, उसे व्यवायी औषधि कहते हैं। जैसे-भाँग और अहिफेन (अफीम)१९

विकाशी औषधि

संधिबंधाँस्तु शिथिलान्यत्करोति विकाशि तत् ।
विश्लेष्यौजश्च धातुभ्यो यथा क्रमुककोद्रवाः ॥२०॥

जो औषधि शरीरके भीतर पहुँचकर देहकी जोड़ोंको ढीली कर दे और धातुओंके तेजको धातुसे अलग करके शोषण करे। उसे विकाशी औषधि कहते हैं। जैसे–सुपारी और कोदव (धान्यविशेष) ॥ २० ॥

मदकारी औषधि

बुद्धिं लुंपति यद्द्रव्यं मदकारि तदुच्यते।
तमोगुणप्रधानं च यथा मद्यं सुरादिकम् ॥२१॥

जो द्रव्य पेटमें पहुँचकर बुद्धि हर ले, उस तमोगुणप्रधान द्रव्यको मदकारी द्रव्य कहते हैं। जैसे–सुरा, मद्य, ताड़ी आदि ॥ २१ ॥

प्राणहारी औषधि (विष)

व्यवायि च विकासि स्यात्सूक्ष्मं छेदि मदावहम्।
तमोगुणप्रधानं च यथा मद्यं सुरादिकम् ॥२२॥

पहलेकी गिनायी हुई व्यवायी, विकाशी, सूक्ष्म, छेदी, मदकारिणी तथा आग्नेय औषधियाँ जीवनको हरण करनेवाली, (गरम चीज़के साथ बहुत ही गरम तथा शीतलके साथ अतिशय शीतल होनेवाली) औषधिको विष कहते हैं। जैसे संखिया-बछनाग आदि ॥ २२ ॥

प्रमाथी द्रव्य

निजवीर्येण यद्द्रव्यं स्रोतोभ्यो दोषसंचयम्।
निरस्यति प्रमाथि स्यात्तद्यथा मरिचं वचा ॥२३॥

जो द्रव्य अपने बलसे नाक-कान आदि स्रोतस इन्द्रियोंसे कफ आदिके दोषसमूहको निकालकर बाहर कर दे, उसे प्रमाथी द्रव्य कहते हैं। जैसे–लाल या काली मिर्च और वचा ॥ २३ ॥

अभिष्यन्दी औषधिके लक्षण

पैच्छिल्याद्गौरवाद् द्रव्यं रुद्ध्वा रसवहाः शिराः।
धत्ते यद्गौरवं तस्मादभिष्यन्दि यथा दधि ॥२४॥

जो द्रव्य पिच्छिल तथा गुरुतम होनेके कारण रसवाहिनी नाड़ियोंकी गति रोककर देहको भारी बना दे। उस पदार्थको अभिष्यन्दी (स्रोतः स्रावी) द्रव्य कहते हैं। जैसे–दही ॥ २४ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां पूर्वखण्डे दीपनपाचनादिकथनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

अथ पंचमोऽध्यायः ।

कला आदिका विवेचन

कलाः सप्ताशयाः सप्त धातवः सप्त तन्मलाः ।
सप्तोपधातवः सप्त त्वचः सप्त प्रकीर्त्तिताः ॥१॥
त्रयो दोषा नवशतं स्नायूनां संधयस्तथा ।
दशाधिकं च द्विशतमस्थ्नां च त्रिशतं तथा ॥२॥
सप्तोत्तरं मर्मशतं शिराः सप्तशतं तथा ।
चतुर्विंशतिराख्याता धमन्यो रसवाहिकाः ॥३॥
मांसपेश्यः समाख्याता नृणां पंचशतं बुधैः ।
स्त्रीणां च विंशत्यधिकाः कंडराश्चैव षोडश ॥४॥
नृदेहे दश रंध्राणि नारीदेहे त्रयोदश ।
एतत्समासतः प्रोक्तं विस्तरेणाऽधुनोच्यते ॥५॥

रस आदि धातुओंके आस-पास सात कलायें रहती हैं। सात ही कोष्ठ, आशय या स्थान हैं । रस, रुधिर, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र ये सात धातु हैं । इन सातोंके सात ही मल भी हैं । धातुके समीपस्थ सात उपधातु हैं । सात त्व-त्वचायें हैं । वात-पित्त-कफ, ये तीन दोष हैं । इस शरीरमें नौ सौ बन्धन हैं, जो स्नायुके नामसे पुकारे जाते हैं । दो सौ दस संधियाँ हैं । तीन सौ हड्डियाँ हैं । ७०० शिरायें हैं और केवल रसको बनानेवाली २४ धमनी नामक नाड़ियाँ हैं । बड़े-बड़े पंडितोंका कहना है कि पुरुषके शरीरमें पाँच सौ मांसपेशियाँ हैं, किन्तु ऊपर गिनायी हुई चीजोंके अतिरिक्त स्त्रियोंके २० मांसपेशियाँ अधिक हैं और सोलह कंडरा अर्थात् बड़ी स्नायुयें भी अधिक हैं । पुरुषके शरीरमें केवल दस, किन्तु स्त्रियोंके तेरह छिद्र होते हैं । इस रीतिसे संक्षेपमें कला आदि गिना दिया । अब विस्तारसे कहते हैं– ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

कलाओंकी व्यवस्था

मांसासृङ्मेदसां तिस्रो यकृत्प्लीह्नोश्चतुर्थिका ।
पंचमी च तथांत्राणां षष्ठी चाग्निधरा मता ॥६॥

रेतोधरा सप्तमी स्यादिति सप्त कलाः स्मृताः ।

ऊपर गिनायी हुई सात कलाओंमेंसे पहली कला मांस धारण करती है, इस लिए वह मांसधरा कहलाती है । दूसरी रक्तधारिणी होती, इससे रक्तधरा और तीसरी मेद धारण करती अतएव वह मेदोधरा कहलाती है । चौथी कला यकृत् और प्लीहाके बीचमें रहती, इससे वह कफाश्रया कही जाती है । पाँचवीं अँतड़ियोंके मध्यमें रहती, इससे उसे पुरीषधरा कहते हैं । छठीं कला अग्नि धारण करनेसे पित्तधरा और सातवीं शुक्र धारण करनेके कारण रेतोधरा कहलाती है । ये ही सातों कलायें कही गयी हैं ॥ ६ ॥

श्लेष्माशयः स्यादुरसि तस्मादामाशयस्त्वधः ॥७॥
ऊर्ध्वमग्न्याशयो नाभेर्वामभागे व्यवस्थितः ।
तस्योपरि तिलं ज्ञेयं तदधः पवनाशयः ॥८॥
मलाशयस्त्वधस्तस्य बस्तिर्मूत्राशयः स्मृतः ।
जीवरक्ताशयमुरो ज्ञेयाः सप्ताशयास्त्वमी ॥९॥
पुरुषेभ्योऽधिकाश्चान्ये नारीणामाशयास्त्रयः ।
धरा गर्भाशयः प्रोक्तः स्तनौ स्तन्याशयौ मतौ ॥१०॥

बीच छातीमें श्लेष्मा यानी कफका स्थान है । उससे नीचे आमाशय है । नाभीके वामभागमें अग्निका स्थान है, जिसे लोग ग्रहणी भी कहते हैं । उस अग्न्याशयके ऊपर एक तिल है, जिसे क्लोम कहते हैं । वह पिपासाका स्थान है । उससे नीचे पवनाशय (वायुका स्थान) है । पवनाशयके नीचेकी तरफ मलाशय है, जहाँ मल एकत्रित होता है । उस मलाशयके नीचे दहिनी तरफ मूत्राशय है, जिसे लोग बस्ति भी कहते हैं । ये ही सात आशय पुरुषोंके हैं, किन्तु स्त्रियोंके तीन आशय अधिक हैं । जैसे–गर्भाशय और दोनों स्तन्याशय, जहाँ कि बच्चेके लिए दूध एकत्रित होता है ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ १० ॥

रसादि सात धातुओंका विवरण

रसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ।
जायंतेऽन्योन्यतः सर्वे पाचिताः पित्ततेजसा ॥११॥

रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र यानी वीर्य, ये सात धातु हैं । ये सब पित्तके तेजसे पचकर उत्तरोत्तर एकसे एक धातु उत्पन्न करते जाते हैं ।

जैसे रससे रुधिर, रुधिरसे मांस, मांससे मेद, मेदसे हड्डी, हड्डीसे मज्जा और मज्जासे शुक्रकी उत्पत्ति होती है ॥ ११ ॥

धातुओंके मल

जिह्वानेत्रकपोलानां जलं पित्तं च रञ्जकम् ।
कर्णविड्रसनं दन्तकक्षामेढ्रादिजं मलम् ॥१२॥
नखनेत्रमलं वक्त्रस्निग्धत्वं पिटिकास्तथा ।
जायन्ते सप्तधातूनां मलान्येतान्यनुक्रमात् ॥१३॥
कफः पित्तं मलं खेषु प्रस्वेदो नखरोम च ।
नेत्रविट् त्वक्षु च स्नेहो धातूनां क्रमशो मलाः ॥ १४ ॥

अब सातों धातुओंके मल गिनाते हैं—जीभ, नेत्र और कपोलका पसीना रसधातुका मल है। रञ्जक पित्त रुधिरका मल है। कानका मैल मांसका मल है। जीभ, दाँत, आँख तथा लिंग, इनका मल मेदका मल है। देहका पसीना पेटका मल समझा जाता है। किन्तु शार्ङ्गधर आचार्य ऐसा नहीं मानते। क्योंकि पसीनेको उन्होंने उपधातुओंमें गिनाया है। नाखून हड्डीका मल है। नेत्रोंका कीचड़ तथा मुँहकी चिकनाई, ये मज्जाके मल हैं। मुँहमें मुहासे आदि वीर्यके मल हैं। कुछ आचार्योंका कहना है कि दाढ़ी-मूँछ आदि भी शुक्रधातुके ही मल हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

अब उपधातुओंको गिनाते हैं—

स्तन्यं रजश्च नारीणां काले भवति गच्छति ।
शुद्धमांसभवः स्नेहः सा वसा परिकीर्तिता ॥१४॥
स्वेदो दन्तास्तथा केशास्तथैवौजश्च सप्तमम् ।
इति धातुभवा ज्ञेया एते सप्तोपधातवः ॥१५॥

स्तनसे निकला दूध रसधातुका उपधातु है। मासिक धर्ममें निकलनेवाला रज रुधिरधातुका उपधातु है। कुछ आचार्योंके मतसे रज भी रसका ही उपधातु माना जाता है। ये उपधातु तथा रोमराजि स्त्रियोंके उत्पन्न होते और नष्ट भी हो जाया करते हैं। शुद्ध मांससे जो स्निग्ध उपधातु उत्पन्न होता, उसे लोग वसा कहते हैं। पसीना मेद धातुका उपधातु है। दाँत हड्डीके उपधातु हैं। केश मज्जाका उपधातु है। ओज (तेज) वीर्यका उपधातु है। इस प्रकार सात धातुओंके सात ही उपधातु भी होते हैं ॥ १४ ॥ १५

सात त्वचायें

ज्ञेयाऽवभासिनी पूर्वसिध्मस्थानं च सा मता।
द्वितीया लोहिता ज्ञेया तिलकालकजन्मभूः ॥१६॥
श्वेता तृतीया संख्याता स्थानं चर्मदलस्य च।
ताम्रा चतुर्थी विज्ञेया किलासश्वित्रभूमिका ॥१७॥
पञ्चमी वेदिनी ख्याता सर्पकुष्ठोद्भवस्ततः ॥१८॥
स्थूला त्वक्सप्तमी ख्याता विद्रध्यादेः स्थितिश्च सा।
इति सप्त त्वचः प्रोक्ताः स्थूला व्रीहिद्विमात्रया॥१९॥

जो सात त्वचायें बतलायी गयी हैं, उनमें पहली त्वचाका नाम 'अवभासिनी' है। यह सिध्म नामक रोगकी जन्मभूमि मानी गयी है। दूसरी त्वचाका नाम है, 'लोहिता'। तिलकालक नामक रोगकी उत्पत्ति इसी त्वचासे होती है। तीसरी त्वचा 'श्वेता'के नामसे पुकारी जाती है। चर्मदल नामक कुष्ठरोगकी उत्पत्ति इसी त्वचासे हुआ करती है। चौथी त्वचाका नाम 'ताम्रा' है। यह किलास नामक कुष्ठरोगकी जननी है। पाँचवीं त्वचाका नाम 'वेदिनी' है। यह त्वचा सब प्रकारके कुष्ठरोगोंकी जन्मभूमि मानी गयी है। छठवीं त्वचाका नाम है 'रोहिणी'। यह ग्रन्थि, गण्डमाला आदिकी जनयित्री है। सातवीं त्वचाका नाम है 'स्थूला'। यह विद्रधि तथा अर्श आदिकी जन्मभूमि है॥ १६—१९॥

वातादि तीन दोष

वायुः पित्तं कफो दोषा धातवश्च मलास्तथा।
तत्रापि पंचधा ख्याताः प्रत्येकं देहधारणात् ॥२०॥

वात, पित्त और कफ ये तीन दोष हैं। रस आदि धातुओंको दूषित करनेके कारण ये दोष कहे जाते हैं, किन्तु शरीरको धारण करनेके कारण इन्हींको धातु भी कहना पड़ता है। ये ही रस आदि धातुओंको मलीन करनेके कारण मल भी कहे जाते हैं। ये भी शरीरको धारण करते हैं और इनके पाँच भेद होते है॥ २०॥

वायुका स्वरूप तथा विवरण

पवनस्तेषु बलवान्विभागकरणान्मतः।
रजोगुणमयः सूक्ष्मः शीतो रूक्षो लघुश्चलः ॥२१॥

मलाशये चरन्कोष्ठवह्निस्थाने तथा हृदि ।
कण्ठे सर्वांगदेशेषु वायुः पंचप्रकारतः ॥२२॥
अपानः स्यात्समानश्च प्राणोदानौ तथैव च ।
व्यानश्चेति समीरस्य नामान्युक्तान्यनुक्रमात् ॥२३॥

वातादि तीनों दोषोंमें वात सर्वप्रधान दोष है । क्योंकि यह मल आदिको अलग करके कफ और पित्तको अपनी इच्छानुसार जहाँ चाहे ले जा सकता है । इसीकारण इसे प्रधानता दी गयी है । इसमें रजोगुणकी मात्रा विशेष है, यह बहुत सूक्ष्म है (क्योंकि शरीरके महीनसे महीन छिद्रमें प्रविष्ट हो सकता है) यह शीतल और रूखा भी है । यह हल्का और चंचल प्रकृतिका है । इससे कुछ देरतक एक स्थान पर नहीं रुकता । यह शरीरके पाँच स्थानोंमें रहता है । इसीसे इसके पाँच प्रकार होते हैं । उन पाँचोका नाम इस प्रकार है—पक्वाशयमें रहनेसे इसका 'अपान' नाम है । कोष्ठ अग्निके पास रहनेवाली वायुका 'समान' नाम है । हृदयमें रहने वाली वायुको 'प्राण' वायु कहते हैं । कंठमें रहनेवाली वायुको 'उदान' वायु तथा समस्त शरीरमें विचरनेवाली वायुको लोग 'व्यान' वायु कहते हैं । इस प्रकार वातके पाँच नाम बतलाये गये ॥ २१ ॥ २२ ॥ २३ ॥

पित्तका स्वरूप और विवरण

पित्तमुष्णं द्रवं पीतं नीलं सत्त्वगुणोत्तरम् ।
कटुतिक्तरसं ज्ञेयं विदग्धं चाम्लतां व्रजेत् ॥२४॥
अग्न्याशये भवेत्पित्तमग्निरूर्ध्वतिलोन्मितम् ।
त्वचि कान्तिकरं ज्ञेयं लेपाभ्यंगादिवाचकम् ॥२५॥
दृश्यं यकृति यत्पित्तं तादृशं शोणितं नयेत् ।
यत्पित्तं नेत्रयुगले रूपदर्शनकारि तत् ॥२६॥
यत्पित्तं हृदये तिष्ठन्मेधाप्रज्ञाकरं च तत् ।
पाचकं भ्राजकं चैव रञ्जकालोचके तथा ॥२७॥
साधकं चेति पंचैव पित्तनामान्यनुक्रमात् ।

पित्त उष्ण प्रकृतिवाला पीले रंगका एक द्रव पदार्थ है । जो पित्त दूषित होता, उसका स्वरूप नीला होता है । शुद्ध पित्तका रूप पीला हुआ करता है । इसमें तमोगुणकी मात्रा विशेष रहती है । शुद्ध पित्तका स्वाद कडुआ या तीता

रहता है, किन्तु किसी कारण यदि वह दूषित हो जाता तो खट्टा हो जाया करता है। यह पित्त शरीरके भिन्न-भिन्न पाँच स्थानोंमें रहता है। उनके नाम इस प्रकार जानने चाहिए। यह पित्त अग्न्याशयमें अग्निरूपसे तिलके बराबर रहता है। वहाँ कई प्रकारके अग्नियोंको पचानेके कारण 'पाचक' पित्त कहलाता है। त्वचामें रहनेवाले पित्तकी 'भ्राजक' संज्ञा है। यह शरीरमें कान्ति उत्पन्न करता और लेप-अभ्यंग आदि जो कुछ किया जाता, उसे पचाता है। प्लीहाके वाम-भागमें रहता हुआ पित्त रससे रुधिर उत्पन्न करता है। ठीक उसी प्रकार यह यकृत्के दाहिनी ओर रहता और इससे रुधिर प्रकट किया करता है। यह पित्त औरोंकी अपेक्षा दृश्य रहता है। इसी करण लोग इसे 'रञ्जक' पित्त कहते हैं। दोनों नेत्रोंमें रहनेवाला पित्त संसारके पदार्थोंको देखता है। इसे 'आलोचक' पित्त कहते हैं। हृदयमें रहनेवाला पित्त मेधा अर्थात् बुद्धिको उत्पन्न करता है, इसीसे वह 'साधक' पित्त कहलाता है। इस प्रकार क्रमशः पित्तोंके पाँचो नाम बतलाये गये ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

कफका स्वरूप और विवरण

कफः स्निग्धो गुरुः श्वेतः पिच्छिलः शीतलस्तथा ॥२८॥
तमोगुणाधिकः स्वादुर्विदग्धो लवणो भवेत्।
कफश्चामाशये मूर्ध्नि कंठे हृदि च संधिषु ॥२९॥
तिष्ठन्करोति देहेषु स्थैर्यं सर्वाङ्गपाटवम्।
क्लेदनः स्नेहनश्चैव रसनश्चावलंबनः ॥३०॥

कफ स्निग्ध (चिकना) गुरु, पिच्छिल (लबाबदार) और ठंढा होता है। इसमें तमोगुणकी अधिकता रहती है। विदग्ध होनेपर नमक जैसा इसका स्वाद हो जाता है। यह ही कफ आमाशय, माथा, कंठ, हृदय तथा संधियोंमें रहता हुआ देहको स्थिर तथा पुष्ट बनाता है। यही चार प्रकारके आहारोंका आधार होता है। यह क्लेदन, स्नेहन, रसन एवं अवलम्बन इन पाँच नामोंसे अभिहित होता है ॥२८–३०॥

स्नायुके कार्य

स्नायवो बंधनं प्रोक्ता देहे मांसास्थिमेदसाम् ॥३१॥

स्नायु संज्ञा है बंधन की। ये मांस, हड्डी तथा मेदको आपसमें बाँधे रहती

हैं। इन्हींके प्रभावसे मांस, हड्डी तथा मेद एक दूसरेको बराबर अपनी ओर खींचे रहते हैं ॥ ३१ ॥

संधिके लक्षण

संधयश्चांगसंधानाद्देहे प्रोक्ता कफान्विताः।

हाथ-पैर आदि शरीरके अवयवोंकी जहाँसे जोड़ें हैं, उन्हींको लोग सन्धि कहते हैं। इन सन्धियोंमें कफ भरा रहता है।

अस्थिके कार्य

आधारश्च तथा सारः कायेऽस्थीनि बुधा विदुः ॥३२॥

हड्डी इस शरीरका आधार एक सार वस्तु है। ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं ॥ ३२ ॥

मर्मके कार्य

मर्माणि जीवाधाराणि प्रायेण मुनयो जगुः।

मर्म जीवके आधार हैं। ऐसा मुनियोंका कहना है।

शिराओंके कार्य

संधिबंधनकारिण्यो दोषधातुवहाः शिराः ॥३३॥

शरीरमें रहनेवाली शिरायें (नसें) प्रत्येक संधियोंको बाँधे रहती हैं और वातादि दोष तथा रस आदि धातुओंको एक स्थानसे दूसरे स्थानपर पहुँचाती हैं ॥ ३३ ॥

धमनीके कार्य

धमन्या रसवाहिन्यो धमन्ति पवनं तनौ।

रस वहन करनेवाली नाडियोंको धमनी कहते हैं। ये रसको तो वहन करती ही हैं, साथ ही पवनको भी उत्तेजित करती हैं।

पेशीके कार्य

मांसपेश्यो बलाय स्युरवष्टम्भाय देहिनाम् ॥३४॥

शरीरमें रहनेवाली मांसपेशियाँ (मांसके टुकड़े) मानवके शरीरको बली बनातीं और बिना किसी आधारके शरीरको खड़ा किए रहती हैं ॥ ३४ ॥

कण्डराके कार्य

प्रसारणाकुंचनयोरंगानां कण्डरा मता।

कंडरा कहते हैं शरीरकी उस जबर्दस्त स्नायुको, जो अंगोंको फैलाने या समेटनेका काम करती है।

रंध्रों (छिद्रों) का विवरण

नासानयनकर्णानां द्वे द्वे रंध्रे प्रकीर्तिते ॥३५॥
मेहनापानवक्त्राणामेकैकं रंध्रमुच्यते।
दशमं मस्तके चोक्तं रंध्राणीति नृणां विदुः ॥३६॥
स्त्रीणां त्रीण्यधिकानि स्युः स्तनयोर्गर्भवर्त्मनः।
सूक्ष्मच्छिद्राणि चान्यानि मतानि त्वचि जन्मिनाम् ॥३७॥

नाक, कान, नेत्र इन अंगोंमें दो-दो छिद्र होते हैं। लिंग, गुदा तथा मुख इनमें केवल एक छिद्र रहता है। इस प्रकार नौ छिद्र हुए और दसवाँ छिद्र मस्तकमें रहता है, जिसे लोग ब्रह्मरंध्र कहते हैं। ऊपर गिनाये कान आदिके छिद्र तो खुले रहते हैं, किन्तु मस्तकवाला छिद्र ढंका रहता है। इन दसोंके सिवाय स्त्रियोंके तीन छिद्र और होते हैं—दो छिद्र स्तनोंमें और एक गर्भके रास्तेमें। प्राणियोंके शरीरकी त्वचामें और भी बहुतसे सूक्ष्म छिद्र रहा करते हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥३७॥

फुफ्फुसादिकोंका स्वरूप

तद्वामे फुफ्फुसं प्लीहा दक्षिणांगे यकृन्मतम्।
उदानवायोराधारः फुफ्फुसं प्रोच्यते बुधैः ॥३८॥
रक्तवाहिशिरामूलं प्लीहाऽख्याता महर्षिभिः।
यकृद्रञ्जकपित्तस्य स्थानं रक्तस्य संश्रयम् ॥३९॥

हृदयकी बायीं ओर प्लीहा और फुफ्फुस (फेफड़ा) हैं। दक्षिण भागमें यकृत् है। उसीको लोग कलेजा भी कहते हैं। फुफ्फुस उदान वायु (कंठमें रहनेवाली वायु) का आधार है। प्लीहा रुधिरको बहानेवाली नाड़ियोंका मूल आधार है। यकृत् (कलेजा) रंजक पित्त तथा रुधिरका आधार है। ऐसा महर्षियोंका कथन है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

तिलके लक्षण

जलवाहिशिरामूलं तृष्णाच्छादनकं तिलम्।

जल वहन करनेवाली नाड़ियोंका मूल आधार तिल यानी क्लोम है। रुधिरके कीटसे इसकी उत्पत्ति होती और यह यकृत्के पास रहता है। यह ही प्यासको भी आच्छादित किये रहता है।

वृक्कके लक्षण

वृक्कौ पुष्टिकरौ प्रोक्तौ जठरस्थस्य मेदसः ॥४०॥

उदरमें रहनेवाले मेदके पुष्टिकर्ता वृक्क (कुक्षिगोलक) कहलाते हैं ॥ ४० ॥

वृषणके लक्षण

वीर्यवाहिशिराधारौ वृषणौ पौरुषावहौ ।

वीर्यको वहन करनेवाली नाड़ियोंके मूल आधारको वृषण (अण्डकोश) कहते हैं । प्राणियोंमें पुंस्त्वबल इसीसे आता है ।

लिङ्गके लक्षण

गर्भाधानकरं लिङ्गमयनं वीर्यमूत्रयोः ॥४१॥

गर्भाधान करानेवाले तथा वीर्य और मूत्रके घरको लोग लिंग कहते हैं ॥ ४१ ॥

हृदयके लक्षण

हृदयं चेतनास्थानमोजसश्चाश्रयं मतम् ।

हृदय चैतन्यताका स्थान और ओजका (समस्त धातुओंके तेजका) आश्रय है । यह कमलकी कलीकी नाईं किंचित् विकसित और अधोमुख रहा करता है ।

शरीरपोषणार्थ व्यापार

शिराधमन्यो नाभिस्थाः सर्वां व्याप्य स्थितास्तनुम् ॥४२॥
पुष्णन्ति चानिशं वायोः संयोगात्सर्वधातुभिः ।

नाभीमें रहनेवाली नाड़ियाँ तथा धमनी नाड़ी सारे शरीरमें व्याप्त है । वे ही सब नाड़ियाँ वायुके संयोगसे सारे शरीरमें रस आदि धातुओंको पहुँचाकर देहका पोषण करती हैं ॥ ४२ ॥

प्राणवायुका व्यापार

नाभिस्थः प्राणपवनः स्पृष्ट्वा हृत्कमलांतरम् ॥४३॥
कंठाद्बहिर्विनिर्याति पातुं विष्णुपदामृतम् ।
पीत्वा चाम्बरपीयूषं पुनरायाति वेगतः ॥४४॥
प्रीणयन्देहमखिलं जीवं च जठरानलम् ।

नाभिमें रहनेवाला प्राणवायु हृदयकमलके भीतरी भागका स्पर्श करके विष्णुपदामृत (यानी आकाशकी स्वच्छ वायु) का पान करनेके लिए कंठसे बाहर आता और आकाशकी स्वच्छ वायुको पीकर वेगके साथ उसी मार्गसे अपने स्थानपर वापस जाता है। और वहाँसे सारे शरीर, जीव तथा औदर्य अग्निको सन्तुष्ट करता है। इसी वायुकी प्राणवायु संज्ञा है ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

आयु और मरणके लक्षण

शरीरप्राणयोरेवं संयोगादायुरुच्यते ॥४५॥
कालेन तद्वियोगाद्धि पंचत्वं कथ्यते बुधैः ।

जब तक शरीर और वायुका पूर्वोक्त रीतिसे संयोग रहता तब तक मनुष्य जीवित रहता है। इसीको आयुष्य कहते हैं। और समय पाकर जब शरीर तथा वायुका वियोग होता तब शरीर नष्ट हो जाता है। इसीको लोग पंचत्व या मृत-अवस्था कहते हैं ॥ ४५ ॥

वैद्यका कर्तव्य

न जन्तुः कश्चिदमरः पृथिव्यां जायते क्वचित् ॥४६॥
अतो मृत्युरवार्यः स्यात्किंतु रोगान्निवारयेत् ।

इस पृथ्वीपर कोई भी प्राणी अमर होकर नहीं जन्मा है। इस लिए मृत्यु अनिवार्य है। किन्तु वैद्यका धर्म है कि वह यथाशक्य रोगोंके निवारणका उद्योग करे ॥ ४६ ॥

साध्य व्याधिका यत्न न करनेसे अवस्थान्तर

याप्यत्वं याति साध्यश्च याप्यो गच्छत्यसाध्यताम् ॥४७॥
जीवितं हंत्यसाध्यस्तु नरस्याप्रतिकारिणः ।

यदि व्याधिकी अच्छी तरह चिकित्सा नहीं होती तो साध्य व्याधि भी याप्य हो जाती है। और याप्य व्याधिकी यदि चिकित्सा नहीं की जाती तो वह असाध्य हो जाया करती है। इस प्रकार असाध्य होनेपर व्याधि प्राणीके प्राण ही लेकर छोड़तो है ॥ ४७ ॥

मनुष्यका कर्तव्य

धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरं साधनं यतः ॥४८॥
अतो रुग्भ्यस्तनुं रक्षेन्नरः कर्मविपाकवित् ।

शुभाशुभ कर्मके फल जाननेवाले मनुष्यका यह परम कर्तव्य है कि व्याधियोंसे इस शरीरकी रक्षा करे। क्योंकि शरीर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारोंका साधक है ॥ ४८ ॥

दोषोंकी विषम और सम अवस्था

धातवस्तन्मला दोषा नाशयंत्यसमास्तनुम् ॥४६॥
समाः सुखाय विज्ञेया बलायोपचयाय च।

पूर्वोक्त रस आदि सात धातु और उसके मल तथा वातादि त्रिदोष, ये यदि अपनी मात्रासे कुछ न्यूनाधिक हो जाते तो शरीरको नष्ट कर डालते हैं। और यदि ये अपने परिमाणके अनुसार बराबर रहते तो प्राणीको सुखी रखते और उसका बल बढ़ाते हैं ॥ ४९ ॥

ईश्वर और उसकी प्रकृतिका स्वरूप

जगद्योनेरनिच्छस्य चिदानंदैकरूपिणः ॥५०॥
पुंसोऽस्ति प्रकृतिर्नित्या प्रतिच्छायेव भास्वतः।

संसारके उत्पत्तिकर्ता, सब प्रकारको इच्छाओंसे रहित, चिदानन्द ज्ञानमय एकरूप पुरुषको ईश्वर कहते हैं। उस महापुरुषकी प्रकृति नित्य और सूर्यकी प्रतिच्छायाके समान चञ्चल रहती है ॥ ५० ॥

अचेतनाऽपि चैतन्ययोगेन परमात्मनः ॥५१॥
अकरोद्विश्वमखिलमनित्यं नाटकाकृति।

यद्यपि चिदानन्दमय ईश्वरकी वह प्रकृति जड़ है, किन्तु परमात्माकी चेतनाके संयोगसे इस विश्वकी उसी प्रकार रचना करती है। जैसे विविध पात्रगण रंगमंचपर आकर नाटक करते हैं ॥ ५१ ॥

प्रकृतिके कार्यका उत्पत्तिक्रम

प्रकृतिर्विश्वजननी पूर्वं बुद्धिमजीजनत् ॥५२॥
इच्छामयीं महद्रूपामहंकारस्ततोऽभवत्।
त्रिविधः सोऽपि संजातो रजःसत्त्वतमोगुणैः ॥५३॥

विश्वकी जननी प्रकृतिने सबसे पहले बुद्धिको उत्पन्न किया। बुद्धिने अहंकारको उत्पन्न किया। वह अहंकार रजोगुण, सतोगुण तथा तमोगुण इन भेदोंसे तीन प्रकारका होता है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

त्रिविध अहंकारके कार्य

तस्मात्सत्त्वरजोयुक्तादिन्द्रियाणि दशाभवन् ।
मनश्च जातं तान्याहुः श्रोत्रं त्वङ्नयनं तथा ॥५४॥
जिह्वाघ्राणत्वचो हस्तपादोपस्थगुदानि च ।
पंचबुद्धीन्द्रियाण्याहुः प्राक्तनानीतराणि च ॥५५॥
कर्मेन्द्रियाणि पंचैव कथ्यंते सूक्ष्मबुद्धिभिः ।

राजस और तामस अहंकारसे मिश्रित सात्त्विक अहंकारसे कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा, नाक, वाणी हाथ, पावँ, लिंग, भग और मन ये ग्यारह इन्द्रियाँ उत्पन्न हुईं । इनमें पाँच बुद्धीन्द्रियाँ हैं, शेष कमेन्द्रियाँ जाननी चाहिये । सूक्ष्म-बुद्धिवाले लोग कर्मेन्द्रियोंको भी पाँच ही प्रकारकी बतलाते हैं ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

तन्मात्राओंकी उत्पत्ति

तमःसत्त्वगुणोत्कृष्टादहंकारादथाभवत् ॥५६॥
तन्मात्रपंचकं तस्य नामान्युक्तानि सूरिभिः ।
शब्दतन्मात्रकं स्पर्शतन्मात्रं रूपमात्रकम् ॥५७॥
रसतन्मात्रकं गंधतन्मात्रं चेति तद्विदुः ।

रजोगुणकी सहायता और सतोगुणके मेलसे तामस अहंकारने पाँच तन्मात्राओंकी सृष्टि की है । विद्वान् पंडितोंने उनके नाम इस प्रकार बतलाये हैं— शब्दतन्मात्रा, स्पर्शतन्मात्रा, रूपतन्मात्रा, रसतन्मात्रा और गंधतन्मात्रा ॥५६-५७॥

तन्मात्रापंचकोंकी विशेषता

शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसगंधावनुक्रमात् ॥५८॥
तन्मात्राणां विशेषाः स्युः स्थूलभावमुपागताः ।

(१) शब्द, (२) स्पर्श (३) रूप (४) रस और (५) गंध, ये क्रमशः उपर्युक्त पाँचों तन्मात्राओंकी स्थूल विशेषतायें हैं । इनका सूक्ष्म- भाव जानना असंभव ही है ॥ ५८ ॥

भूतपंचकोंकी उत्पत्ति

तन्मात्रपंचकात्तस्मात्संजातं भूतपंचकम् ॥५९॥
व्योमानिलानलजलक्षोणीरूपं च तन्मतम् ।

उन्हीं पाँच तन्मात्राओंसे इन पंचतत्त्वोंकी रचना हुई है। जैसे—आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी ॥ ५९ ॥

इन्द्रियोंके विषय

बुद्धीन्द्रियाणां पञ्चैव शब्दाद्या विषया मताः ॥६०॥
कर्मेन्द्रियाणां विषया भाषादानविहारिताः ।
आनंदोत्सर्गकौ चैव कथितास्तत्त्वदर्शिभिः ॥६१॥

श्रोत्र, त्वचा आदि पाँच बुद्धीन्द्रियोंके क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ये पाँच विषय होते हैं। जैसे—श्रोत्रका शब्द, त्वचाका स्पर्श, नेत्रका रूप, जिह्वाका रस और घ्राणका विषय गंध होता है। वाणी, हाथ, पैर, उपस्थ (लिंग) और गुदा इनके क्रमशः भाषण, आदान, विहार, आनन्द और उत्सर्ग, ये पाँच विषय हैं। जैसे—वाणीका भाषण, हाथोंका आदान, पैरका विहार, लिंगका आनन्द तथा गुदाका विषय उत्सर्ग है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

मूल प्रकृतिके पर्यायवाचक नाम

प्रधानं प्रकृतिः शक्तिर्नित्या चाविकृतिस्तथा ।
एतानि तस्या नामानि शिवमाश्रित्य या स्थिता ॥६२॥
महानहंकृतिः पंचतन्मात्राणि पृथक् पृथक् ।
प्रकृतिर्विकृतिश्चैव सप्तैतानि बुधा जगुः ॥६३॥
दशेन्द्रियाणि चित्तं च महाभूतानि पंच च ।
विकाराः षोडश ज्ञेयाः सर्वं व्याप्य जगत्स्थिताः ॥६४॥

प्रधान, प्रकृति, शक्ति, नित्य, अविकृति ये पाँच प्रकृतिके पर्यायवाचक शब्द हैं। ये सब शिवजीके आधारपर रहते हैं। महत्तत्वसे अहंकृतिका रूप भासमान होता है। सांख्यशास्त्रके रचयिता कपिल मुनिका मत है कि प्रकृति आठ प्रकार-की है, उसके कार्य ही जगत्में रूपका काम दे जाते हैं। विकृतिका भी रूप इन्हीं-से जाना जाता है। इस तरह पाँच बुद्धीन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और उभयात्मक मन सब मिलाकर ग्यारह हुए। इन्हींमें पंचतत्त्व भी मिला दिया गया तो सोलह विकार हो गये। ये ही सारे संसारमें व्याप्त हैं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

चौबीस तत्त्वराशि

एवं चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः सिद्धे वपुर्गृहे ।
जीवात्मा नियतो नित्यं वसति स्वान्तदूतवान् ॥६५॥

स देही कथ्यते पापपुण्यदुःखसुखादिभिः।
व्याप्तो बद्धश्च मनसा कृत्रिमैः कर्मबंधनैः ॥६६॥

ऊपर गिनायी रीतिके अनुसार (अर्थात् १ अव्यक्त, २ महत्तत्व, ३ अहंकार, ४ शब्दतन्मात्रा, ५ स्पर्शतन्मात्रा, ६ रूपतन्मात्रा, ७ रसतन्मात्रा, ८ गन्धतन्मात्रा, ९ श्रोत्र, १० त्वक्, ११ चक्षु, १२ नासिका, १३ जिह्वा, १४ वाणी १५ हाथ, १६ पाँव, १७ उपस्थ (लिंग और योनि), १८ गुदा, १९ मन, २० पृथ्वी, २१ जल, २२ तेज, २३ वायु, २४ आकाश, इस तरह २४ तत्त्व हुए। चौबीसों तत्त्वोंसे बनी हुई देहमें सर्वदा पचीसवाँ तत्त्व बनकर पुरुष स्वयं निवास करती है। उसके पास मनरूपी दूत रहता है। इस शरीरमें जीवात्मा महदादिसे बनकर सूक्ष्मरूपसे रहा करता है। इसी लिए लोग इसे देही तथा कर्मपुरुष कहते हैं। इस कारण वह पाप-पुण्य, सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे युक्त है और मनके साथवाले और-और कर्मबन्धनोंसे बँधा रहता है। इनके सिवाय इच्छा-द्वेष आदि भी इसके बन्धन बने रहते हैं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

बंधन, मुक्ति, व्याधि और आरोग्यके लक्षण

आप्नोति बंधमज्ञानादात्मज्ञानाच्च मुच्यते।
तद्दुःखयोगकृद्व्याधिरारोग्यं तत्सुखावहम् ॥६७॥

अज्ञानवश जीव बन्धनोंमें बँधा रहता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि इसके बन्धन होते हैं। और जीवात्माको जब आत्मज्ञान हो जाता तब वह दुःखोंसे बन्धन-मुक्त हो जाया करता है। ऐसे जीवात्माको दुःखमें डालनेवाले रोगसमूह हैं और आरोग्य उसके लिए सुखकारी है ॥ ६७ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां कलादिकाख्यानं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

——०——

अथ षष्ठोऽध्यायः

आहारकी गति और अवस्था

यात्यामाशयमाहारः पूर्वं प्राणानिलेरितः।
माधुर्यं फेनभावं च षड्रसोऽपि लभेत सः ॥१॥

अथ पाचकपित्तेन विदग्धश्चाम्लतां व्रजेत् ।
ततः समानमरुता ग्रहणीमभिनीयते ॥२॥
ग्रहण्यां पच्यते कोष्ठवह्निना जायते कटुः ।

प्राणी जो कुछ भी खाता है, उसे पहले प्राणवायु आमाशयमें पहुँचाता है। इसके अनन्तर वह षड्रससम्पन्न भोजन भी केवल एक रस यानी मीठा हो जाता है। फिर वह पाचक पित्तके तेजसे विकृत होकर खट्टे स्वादका हो जाता है। फिर समान नामक वायुकी प्रेरणासे वह अन्न ग्रहणीमें पहुँचता है। वहां कोष्ठाग्नि उसे पचाता है। उस समय पाकका स्वाद कटु हो जाया करता है। इस प्रकार आहारकी ३ अवस्थायें होती है। १ मधुर, २ अम्ल और ३ कटु ॥१॥२॥

उक्त आहारकी दो अवस्थाएँ

रसो भवति संपक्वादपक्वादामसंभवः ॥३॥

वह आहार यदि अच्छी तरह पक जाता तो रसके रूपमें परिणत हो जाता और न पकनेपर आमका रूप धारण कर लिया करता है॥ ३ ॥

रस और आमके कार्य

वह्नेर्बलेन माधुर्यं स्निग्धतां याति तद्रसः ।
पुष्णाति धातूनखिलान्सम्यक्पक्वोऽमृतोपमः ॥ ४ ॥
मंदवह्निविदग्धश्च कटुश्चाम्लो भवेद्रसः ।
विषभावं व्रजेद्वापि कुर्याद्वा रोगसंकरम् ॥ ५ ॥

पूर्वोक्त रस अग्निकी सहायतासे मीठा और चिकना बन जाता एवं रक्त आदि शरीरके समस्त धातुओंको परिपुष्ट करता है। अच्छी तरह पका हुआ रस अमृतका काम करता है और केवल कडुआ या अम्ल होकर रह जाता तो विष सदृश होकर, अधिक मात्रामें होता तो प्राण ही ले लेता है और अल्प होता तो दोषोंको दूषित करके विविध व्याधियाँ उत्पन्न कर दिया करता है ॥ ४ ॥ ५ ॥

आहारस्य रसः सारः सारहीनो मलद्रवः ।
शिराभिस्तज्जलं नीतं बस्तौ मूत्रत्वमाप्नुयात् ॥ ६ ॥
तत्किट्टं च मलं ज्ञेयं तिष्ठेत्पक्वाशये च तत् ।

आहारके रसको सार कहते हैं और आहारके निःसार अंशको मल संज्ञा होती है। उसमें जो तरल अंश रहता सो नाड़ियों द्वारा बस्तिमें पहुँचकर मूत्र हो

जाता है । जो बाकी बचता वह कीट अंश पक्वाशयके एक कोनेमें जाकर विष्ठा बन जाता है ॥ ६ ॥

मलका अधोगमन

वलित्रितयमार्गेण यात्यपानेन नोदितम् ॥ ७ ॥
प्रवाहिनी सर्जनी च ग्राहिकेति वलित्रयम् ।

आमाशयके एक देशवाला वह मल अपान वायुकी प्रेरणासे त्रिवलीके भागसे होता हुआ नीचे गिर जाता है । उदरमें–प्रवाहिनी, सर्जनी, ग्राहिका नामकी तीन वलियें हैं । जैसे शंखमें त्रिवली होती है, ठीक वही आकार इसका भी होता है ॥ ७ ॥

सारभूत रसकी स्थानान्तरप्राप्ति

रसस्तु हृदयं याति समानमरुतेरितः ॥ ८ ॥
रंजितः पाचितस्तत्र पित्तेनायाति रक्तताम् ।

रस समान वायुकी प्रेरणासे चलकर ऊपर हृदयमें जाता और वहां रंजक पित्तकी सहायतासे लाल वर्णका होता, फिर पाचक पित्तसे पककर रक्त बन जाता है ॥ ८ ॥

रक्तकी प्रधानता

रक्तं सर्वशरीरस्थं जीवस्याधारमुत्तमम् ॥ ९ ॥
स्निग्धं गुरु चलं स्वादु विदग्धं पित्तवद्भवेत् ।

समस्त शरीरमें रहनेवाला वह रक्त ही जीवका एक सर्वश्रेष्ठ आधार है । स्निग्ध, गुरु, चञ्चल तथा स्वादु ये इसके गुण हैं । यदि किसी कारण वह विकृत होजाता तो पित्तकी तरह कटु और अम्ल हो जाया करता है ॥ ९ ॥

रसादि धातुओंका उत्पत्तिक्रम

पाचिताः पित्ततापेन रसाद्या धातवः क्रमात् ॥ १० ॥
शुक्रत्वं यान्ति मासेन तथा स्त्रीणां रजो भवेत् ।

रस-रक्त आदि सातों धातुयें पित्तके तापसे परिपक्व होकर एक महनेमें वीर्य उत्पन्न करती हैं । स्त्रियोंके रजका भी यही क्रम है ॥ १० ॥

गर्भोत्पत्तिक्रम

कामान्मिथुनसंयोगे शुद्धशोणितशुक्रजः ॥ ११ ॥
गर्भः संजायते नार्याः स जातो बाल उच्यते ।

कामवश स्त्री-पुरुषका संयोग होनेसे शुद्ध शोणित (रज) तथा शुद्ध वीर्य-के मेलसे स्त्रीके गर्भाशयमें गर्भ ठहरता है। वही गर्भ जब गर्भाशयसे निकलकर बाहर आ जाता तो उसकी बालक संज्ञा हो जाती है ॥ ११ ॥

पुत्र या कन्या होनेमें कारण

आधिक्ये रजसः कन्या पुत्रः शुक्राधिके भवेत् ॥ १२ ॥
नपुंसकं समत्वेन यथेच्छा पारमेश्वरी ।

स्त्रीपुरुषके संयोगसमय यदि स्त्रीके रजकी अधिकता रहती तो कन्या और यदि पुरुषके वीर्यकी अधिकता होती तो पुत्र होता है। और यदि दोनोंका बराबर हिस्सा होता तो नपुंसक बालक उत्पन्न होता है। मुख्य बात तो यह है कि परमेश्वरकी जैसी इच्छा होती है, उस समय वैसा बालक बन जाता है ॥ १२ ॥

बालकके लिए औषधिकी मात्राका परिमाण

बालस्य प्रथमे मासि देया भेषजरक्तिका ॥ १३ ॥
अवलेहीकृतैकैव क्षीरक्षौद्रसिताघृतैः ।
वर्द्धयेत्तावदेकैकां यावद्भवति वत्सरः ॥ १४ ॥
माषैर्वृद्धिस्तदूर्ध्वं स्याद्यावत्षोडशवत्सरः ।
ततः स्थिरा भवेत्तावद्यावद्वर्षाणि सप्ततिः ॥ १५ ॥
ततो बालकवन्मात्रा ह्रासनीया शनैः शनैः ।
मात्रेयं कल्कचूर्णानां कषायाणां चतुर्गुणा ॥ १६ ॥

एक महीनेके बालकको औषधि देनेकी आवश्यकता आ पड़े तो देशकालके अनुसार माँके दूध, शहद, चीनी या घी जो उपयुक्त मालूम पड़े, उसमें एक रत्ती औषधि मिलावे और चाटनेके लायक बनाकर दे। जब तक कि बच्चा एक वर्षका न होजाय, तब तक महीनेके अनुसार एक-एक रत्ती मात्रा बढ़ाता जाय अर्थात् एक महीनेके बच्चेको एक रत्ती, दो महीनेके बच्चेको दो रत्ती इत्यादि। वर्ष पूरा हो जानेपर मासेका क्रम चलता है। यानी एक वर्षवालेको एक मासा, दो वर्षवालेको दो मासा, तीन वर्षवालेको तीन मासा इत्यादि। यह क्रम सोलह वर्ष तक चलता है। सोलह वर्षसे लेकर सत्तर वर्षकी अवस्था तक १६ मासा तक ही औषधि देवे। सत्तर वर्षसे अधिक अवस्थावाले वृद्धके लिए बालकके समान

ही मात्रीकी वृद्धि करनी चाहिए। विशेषता केवल इतनी है कि कल्क, चूर्ण और क्वाथ औषधिकी मात्रा बालककी अपेक्षा वृद्धके लिए चौगुनी होती है ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥

अंजनादि लगानेका काल

अंजनं च तथा लेपः स्नानमभ्यंगकर्म च।
वमनं प्रतिमर्शश्च जन्मप्रभृति शस्यते॥ १७॥

बच्चोंके नेत्रोंमें अंजन लगाना, उबटन लगाना, स्नान कराना, तेलकी मालिश करना, वमन कराना, प्रतिमर्शकर्म (गुदामें पिचकारी आदि मारनेकी चिकित्सा) करना, इत्यादि कार्य जन्मसे ही करना श्रेयस्कर होता है ॥ १७ ॥

वमन-विरेचनादि कर्म

कवलः पंचमाद्वर्षादष्टमान्नस्यकर्म च।
विरेकः षोडशाद्वर्षाद्विंशतेश्चैव मैथुनम्॥ १८॥

बच्चेके पाँच वर्षका होजानेके अनन्तर कवलचिकित्सा (औषधियोंसे कुल्ला आदि करना) करे, आठ वर्षका हो जानेपर नस्य औषधि, सोलह वर्षके पश्चात् जुलाबकी औषधि और बीस वर्षके बाद मैथुन करनेकी आज्ञा दे—इसके भीतर नहीं ॥ १८ ॥

बाल्यादि दस अवस्थाओंका ह्राससमय

बाल्यं वृद्धिर्वपुर्मेधा त्वग्दृष्टिः शुक्रविक्रमौ।
बुद्धिः कर्मेन्द्रियं चेतो जीवितं दशतो ह्रसेत्॥ १९॥

बाल्य, वृद्धि (शरीरका बढ़ना) वपु (मोटा होना) मेधा (बुद्धि) शुक्र (वीर्य) विक्रम (शारीरिक शक्ति) बुद्धि और कर्मेन्द्रियाँ, ये सब क्रम-क्रमसे दस-दस वर्षपर क्षीण होती जाती हैं। जैसे जन्मसे लेकर दस वर्षके बाद बाल्यत्व नष्ट हो जाता है। बीस वर्षके बाद डीलका बढ़ना रुक जाता है। तीस वर्षके बाद शरीरका मोटा होना रुक जाता है। चालीस वर्षके बाद बुद्धि नहीं बढ़ती। पचास वर्ष बाद शरीरकी त्वचा ढीली पड़ जाती है। साठ वर्ष बाद दृष्टि क्षीण होने लगती है। सत्तर वर्ष बाद शरीरमें वीर्य नहीं रह जाता। अस्सी वर्ष बाद बल नष्ट हो जाता है। नब्बे वर्षके पश्चात् बुद्धि नहीं रह जाती। सौ वर्षके अनन्तर सब

कर्मेन्द्रियाँ जवाब दे देती हैं। एक सौ दस वर्षके अनन्तर चेतनता जाती रहती है और एक सौ बीस वर्ष बाद शरीर नहीं रहता यानी प्राणी मर जाता है ॥ १९ ॥

वातप्रकृतिवाले प्राणीके लक्षण

अल्पकेशः कृशो रूक्षो वाचालश्चलमानसः ।
आकाशचारी स्वप्नेषु वातप्रकृतिको नरः ॥ २० ॥

जिस मनुष्यकी वात प्रकृति होती उसके बाल छोटे २ होते, शरीर कृश और रूखा होता, वह बातें अधिक करता, उसका चित्त चञ्चल रहता और सोते समय स्वप्न देखते हुए अपनेको आकाशमें उड़ता देखता है ॥२० ॥

पित्तप्रकृतिवाले मनुष्यके लक्षण

अकाले पलितैर्व्याप्तो धीमान्स्वेदी च रोषणः ।
स्वप्नेषु ज्योतिषां द्रष्टा पित्तप्रकृतिको नरः ॥ २१ ॥

पित्त प्रकृतिवाले मनुष्यके बाल विना समय ही पक जाते, वह मनुष्य बुद्धिमान् होता, उसके शरीरमें पसीना विशेष आता, वह प्रकृतिका क्रोधी होता और स्वप्नमें नक्षत्रों या अग्निको अधिक देखता है ॥ २१ ॥

कफप्रकृतिवाले मनुष्यके लक्षण

गंभीरबुद्धिः स्थूलांगः स्निग्धकेशो महाबलः ।
स्वप्ने जलाशयालोकी श्लेष्मप्रकृतिको नरः ॥ २२ ॥

कफ प्रकृतिवाले मनुष्यकी बुद्धि गंभीर होती, शरीरसे मोटा-ताजा रहता, उसके बाल चिकने होते और पराक्रम भी खूब रहता है । वह स्वप्नावस्थामें ज्यादातर जलाशयोंको देखता है ॥ २२ ॥

द्विदोषज और त्रिदोषज प्रकृतिके लक्षण

ज्ञातव्या मिश्रचिह्नैश्च द्वित्रिदोषोल्बणा नराः ।

जिस मनुष्यमें दो दोषोंके लक्षण दीखें, उसे द्विदोषज और जिसमें तीनों दोष दिखाई दें, उसे त्रिदोष प्रकृतिवाला मनुष्य समझना चाहिए ।

निद्रादिकोंकी उत्पत्ति

तमःकफाभ्यां निद्रा स्यान्मूर्छा पित्ततमोभवा ॥ २३ ॥
रजःपित्तानिलैर्भ्रान्तिस्तन्द्रा श्लेष्मतमोनिलैः ।

तमोगुण और कफके संयोगसे निद्रा आती है। पित्त और तमोगुणके संयोग-से मूर्च्छा आती है। रजोगुण, पित्त तथा तमोगुण इनके संसर्गसे भ्रम (चक्कर) आता है। कफ, तमोगुण तथा वायु इन तीनोंके संयोगसे तन्द्रा आती है। तन्द्रा उसे कहते हैं, जिसमें कि जँभाई विशेष आती और विना परिश्रम किये ही शरीरमें थकावट-सी मालूम पड़ने लगती है॥ २३॥

ग्लानिके लक्षण

ग्लानिरोजःक्षयाद्दुःखादजीर्णाच्च श्रमाद्भवेत्॥ २४॥

जब कि मनुष्यके शरीरसे वीर्य आदि धातुओंका सार अंश ओज नष्ट हो जाता तो एक प्रकारका दुःख होता है। उससे या अजीर्ण तथा अधिक परिश्रम करनेसे उदासीनता आ जाती है। उसीको ग्लानि कहते हैं॥ २४॥

आलस्यके लक्षण

यः सामर्थ्येऽप्यनुत्साहस्तदालस्यमुदीर्यते।

शरीरमें बल रहनेपर भी काम करनेको इच्छा न हो, इसीकी आलस्य संज्ञा है।

जँभाईके लक्षण

चैतन्यशिथिलत्वाद्यः पीत्वैकश्वासमुद्धरेत्॥ २५॥
विदीर्णवदनः श्वासं जृम्भा सा कथ्यते बुधैः।

चित्तकी शिथिलतामें मनुष्य एक श्वास लेकर उसे कुछ देर तक भीतर रोकता, फिर मुँह फैलाकर बाहर निकाल देता है। इसीको आयुर्वेदिक आचार्य जँभाई कहते हैं॥ २५॥

छींकके लक्षण

उदानप्राणयोरूर्ध्वयोगान्मौलिकफस्रवात्॥ २६॥
शब्दः संजायते तेन क्षुतं तत्कथ्यते बुधैः।

जब उदान वायु तथा प्राण वायु दोनों मस्तकमें पहुँच जाते और वहाँ इनका संयोग हो जाता तो वेगके साथ कफ गिरनेसे एक प्रकारका शब्द होता है, उसीको क्षुत या छींक कहते हैं॥ २६॥

डकारके लक्षण

उदानकोपादाहारसुस्थितत्वाच्च यद्भवेत्।
पवनस्योर्ध्वगमनं तमुद्गारं प्रचक्षते॥ २७॥

उदान यानी कंठमें रहनेवाली वायुके कुपित होने या आहारके अपने नियत स्थानमें पहुँचनेपर एक प्रकारकी वायु ऊपर आकर मुखसे निकलती है। इसीको लोग उद्गार या डकार कहते हैं ॥ २७ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां पूर्वखण्डे आहारादिगतिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

—❀◦❀—

अथ सप्तमोऽध्यायः।

रोगोंकी गणना

रोगाणां गणना पूर्व मुनिभिर्या प्रकीर्तिता।
मयाऽत्र प्रोच्यते सैव तद्भेदा बहवो मताः ॥ १ ॥

प्राचीन मुनियोंने रोगोंकी जो गणना की है, वही गणना इस स्थान-पर मैं भी कर रहा हूँ। उन मुनियोंने रोगके बहुतसे भेद भी बतलाये हैं ॥ १ ॥

ज्वररोग और उसकी संख्या

पंचविंशतिरुद्दिष्टा ज्वरास्तद्भेद उच्यते ॥ २ ॥
पृथग्दोषैस्तथा द्वंद्वभेदेन त्रिविधः स्मृतः।
एकश्च सन्निपातेन तद्भेदा बहवः स्मृताः ॥ ३ ॥

पच्चीस प्रकारके ज्वर होते हैं। उनके भेद इस तरह जानने चाहियें—तीन दोषोंके भेदसे तीन प्रकारके जैसे—वातज्वर, पित्तज्वर, कफज्वर। फिर द्वन्द्वभेदसे तीन प्रकारके जैसे—वातपित्तज्वर, वातकफज्वर, पित्तकफज्वर। वातादि तीनों दोषोंके मिलनेसे एक प्रकारका सन्निपातज्वर। सन्निपातज्वरके अनेक भेद हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

विषम ज्वर और आगन्तुक ज्वरके भेद

प्रायशः सन्निपातेन पंच स्युर्विषमज्वराः।
तथागन्तुज्वरोऽप्येकस्त्रयोदशविधो मतः ॥ ४ ॥
अभिचारग्रहावेशशापैरागन्तुकस्त्रिधा।
श्रमाद्दाहात्क्षताच्छेदाच्चतुर्धा घातजो ज्वरः ॥ ५ ॥
कामाद्भीतेः शुचो रोषाद्विषादौषधगंधतः।
अभिषंगज्वराः षट् स्युरेवं ज्वरविनिश्चयः ॥ ६ ॥

पाँच प्रकारके विषमज्वर माने गये हैं। जैसे—सन्तत, सतत, अन्येद्यु, तृतीयक और चतुर्थक । इसी तरह एक प्रकारका आगन्तुक ज्वर होता है। ज्वरके तेरह भेद और होते हैं। जैसे-अभिचार (जादू-टोनेसे उत्पन्न) ज्वर, ग्रहावेश (भूत-प्रेतसे जायमान) ज्वर और शापज्वर ये तीन आगन्तुक ज्वरके भेद हैं। उसी तरह श्रम, दाह, क्षत और छेद यानी किसी अस्त्र-शस्त्रके आघातसे उत्पन्न ज्वर ये चार प्रकारके अभिघातज्वर होते हैं। किसी इच्छित स्त्रीके न मिलनेसे भी एक प्रकारका ज्वर होता है, जिसे लोग कामज्वर कहते हैं। भयसे उत्पन्न ज्वर भयज्वर कहलाता है। उसी तरह शोकसे उत्पन्न ज्वर शोकज्वर, किसी प्रकारके विष आदि खा लेनेसे उत्पन्न ज्वरको विषज्वर, किसी तीखी औषधिके गन्धसे जायमान ज्वरको लोग गन्धज्वर कहते हैं। ये छ प्रकारके अभिषंगज्वर कहलाते हैं। इस रीतिसे तेरह पहलेवाले और बारह ये सब मिलाकर पचीस प्रकारके ज्वर हुए ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

अतिसारके भेद

पृथक्त्रिदोषैः सर्वैश्च शोकादामाद्भयादपि ॥ ७ ॥
अतिसारः सप्तधा स्यात् ।

वात पित्त और कफ इन भेदोंसे तीन और सन्निपात, शोक, भय तथा आमसे चार इस तरह कुल सात प्रकारका अतीसार रोग होता है ॥ ७ ॥

ग्रहणी

ग्रहणी पंचधा मता ।
पृथग्दोषैः सन्निपातात्तथा चामेन पंचमी ॥ ८ ॥

ग्रहणी रोग पाँच प्रकारका होता है । जैसे—वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज और आमज। ये ही पाँच भेद इसके होते हैं ॥ ८ ॥

प्रवाहिका

प्रवाहिका चतुर्धा स्यात्पृथग्दोषैरथास्रतः ।

प्रवाहिका रोग चार प्रकारका होता है । जैसे—वातज प्रवाहिका, पित्तज प्रवाहिका, कफज प्रवाहिका और रुधिरसे जायमान प्रवाहिका, ये ही इसके चार भेद हैं।

अजीर्ण

अजीर्णं त्रिविधं प्रोक्तं विष्टब्धं वायुना मतम् ॥ ९ ॥
पित्ताद्विदग्धं विज्ञेयं कफेनामं तदुच्यते ।
विषाजीर्णं रसादेकं

वातज, पित्तज और कफज इन भेदोंसे अजीर्ण रोग तीन प्रकारका होता है। इसमें जो अजीर्ण वातसे होता, वह विष्टब्धाजीर्ण, पित्तसे उत्पन्न अजीर्ण विदग्धाजीर्ण और कफसे उत्पन्न होनेवाला अजीर्ण आमाजीर्ण कहलाता है। इनके अतिरिक्त अन्नसे जो अजीर्ण उत्पन्न होता, उसे लोग विषाजीर्ण कहते हैं॥९॥

अलसकविसूच्यादि रोग

दोषैः स्यादलसस्त्रिधा ॥ १० ॥
विषूची त्रिविधा प्रोक्ता दोषैः सा स्यात्पृथक्पृथक् ।
दण्डकालसकश्चैक एकैव स्याद्विलम्बिका ॥ ११ ॥

उसी प्रकार वात-पित्त तथा कफ इन तीनों भेदोंसे अलसक रोग भी तीन प्रकारका होता है। विषूचिका (हैजा) भी वातादि भेदोंसे तीन प्रकारका होता है। किन्तु दण्डकालसक और विलम्बिका ये एक ही प्रकारके होते हैं ॥१०॥११॥

अर्शरोग (बवासीर)

अर्शांसि षड्विधान्याहुर्वातपित्तकफास्रतः ।
सन्निपाताच्च संसर्गात्तेषां भेदो द्विधा स्मृतः ॥ १२ ॥
सहजोत्तरजन्मभ्यां तथा शुष्कार्द्रभेदतः ।

वातज, पित्तज, कफज, रक्तज, सन्निपातज और संसर्गज भेदसे अर्श रोग (बवासीर) छः प्रकारका होता है। उस बवासीरके दो भेद होते हैं। उनमें पहला बवासीर सहज यानी जन्मके साथ-साथ उत्पन्न होता और दूसरा जन्म होने के बाद आहार-विहार आदिकी असावधानी करनेसे वातादि दोषके कुपित होने पर उत्पन्न होता है। इसके सिवाय उसीके अन्तर्गत आर्द्र (गीला) और शुष्क ये दो भेद भी होते हैं। कुछ लोग इसीको खूनी और वादीके नामसे भी बवासीर दो प्रकारका मानते हैं ॥ १२ ॥

चर्मकील रोग

त्रिधैव चर्मकीलानि वातात्पित्तात्कफादपि ॥ १३ ॥

उक्त रीतिके अनुसार वात पित्त और कफ इन भेदोंसे चर्मकील रोग भी तीन प्रकारका होता है ॥ १३ ॥

कृमिरोग

एकविंशतिभेदेन कृमयः स्युर्द्विधोच्यते ।
बाह्यास्तथाभ्यन्तराश्च तेषु यूका बहिश्चराः ॥ १४ ॥
लिक्षाश्चान्येऽन्तरचराः कफात्ते हृदयोदकाः ।
अन्त्रादा उदरावेष्टाश्चुरवश्च महागुदाः ॥ १५ ॥
सुगन्धा दर्भकुसुमास्तथा रक्ताश्च मातरः ।
सौरसा लोमविध्वंसा रोमद्वीपा ह्युदुम्बराः ॥ १६ ॥
केशादाश्च तथैवान्ये शकृज्जाता ककेरुकाः ।
लेलिहाश्च सशूलाश्च सौसुरादाः मकेरुकाः ॥ १७ ॥
तथान्यः कफरक्ताभ्यां संजातः स्नायुकः स्मृतः ।

बाह्य और आभ्यन्तर इन भेदोंसे कृमि दो प्रकारके होते हैं और इनके इक्कीस भेद हैं । उनमें यूका (जूँ) लीख और चपटा ये कृमि शरीरके बाहरी भागमें रहते हैं । इनके सिवाय कफसे उत्पन्न सात प्रकारके कृमि शरीरके भीतर रहते हैं । उनके नाम इस प्रकार हैं—हृदयाद, अंत्राद, उदरावेष्ट, चुरव, महागुद, सुगन्ध दर्भकुसुम, मातृ, सौरस, लोमविध्वंस, रोमद्वीप, उदुम्बर और केशाद ये छ प्रकारके कृमि रुधिरसे जायमान होते हैं ककेरुक, लेलिह, सशूल सौसुराद और मकेरुक ये पाँच प्रकारके कृमि मलसे उत्पन्न होते हैं । ये अठारह प्रकारके आभ्यन्तर(भीतरी) और प्रथम कहे हुए तीन प्रकारके बाह्य कृमि सब मिलाकर इक्कीस प्रकारके कृमि होते हैं । इनके अतिरिक्त कफ और रक्तसे भी एक प्रकारका कृमि उत्पन्न होता है । उसे लोग स्नायुक कृमि कहते हैं ॥ १४–१७ ॥

पाण्डुरोग

पाण्डुरोगाश्च पंच स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ १८ ॥
त्रिदोषैर्मृत्तिकाभिश्च

पांडुरोग पाँच प्रकारका होता है । पहला वातसे, दूसरा पित्तसे, तीसरा कफसे चौथा सन्निपातसे और पाँचवाँ मिट्टी खानेसे उत्पन्न होता है ॥ १८ ॥

कामला, कुम्भकामला तथा हलीमक

तथैका कामला स्मृता ।
स्यात्कुम्भकामला चैका तथैव च हलीमकम् ॥

एक प्रकारका कामला रोग होता है। पूर्वोक्त पांडुरोगकी भी उपेक्षा करनेसे इसकी उत्पत्ति होती है। कुम्भकामला और हलीमक इन भेदोंसे कामला रोग दो प्रकारका होता है।

रक्तपित्त रोग

रक्तपित्तं त्रिधा प्रोक्तमूर्ध्वगं कफसंगतम्।
अधोगं मारुताज्ज्ञेयं तद्द्वयेन द्विमार्गगम्॥ १६॥

रक्तपित्त रोग तीन प्रकारका होता है। एक ऊर्ध्वगामी, दूसरा अधोगामी और तीसरा ऊर्ध्वाधोगामी अर्थात् ऊपर-नीचे दोनों तरफ जानेवाला। इनमें ऊर्ध्वगामी ऊपरके मुख आदिके मार्गसे गिरता है। उसकी उत्पत्ति कफसे होती है। अधोगामी नीचे गुदा आदि मार्गसे गिरता है। इसकी उत्पत्ति वातसे होती है। ऊर्ध्वाधोगामी रक्तपित्त गुदा तथा मुख इन दोनों मार्गोंसे निकलता और कफ तथा वातसे इसकी उत्पत्ति होती है॥ १६॥

कास रोग

कासाः पञ्च समुद्दिष्टास्ते त्रयस्तु त्रिभिर्मलैः।
उरःक्षताच्चतुर्थः स्यात्क्षयाद्धातोश्च पंचमः॥ २०॥

कास रोग पाँच तरहका होता है। पहला वातसे, दूसरा पित्तसे, तीसरा कफसे, चौथा छातीमें कुठार आदिसे चोट लगनेके समान पीडाके साथ जायमान होता है। इसे लोग उरःक्षत कास कहते हैं। पाँचवाँ धातुके क्षीण होनेपर होता है। ये पाँच इसके भेद हैं॥ २०॥

क्षयरोग

क्षयाः पंचैव विज्ञेयास्त्रिभिर्दोषैस्त्रयश्च ये।
चतुर्थः सन्निपातेन पंचमः स्यादुरःक्षतात्॥ २१॥

क्षयरोग भी पाँच ही प्रकारका होता है। पहला वातज, दूसरा पित्तज, तीसरा कफज, चौथा सन्निपातज और पाँचवाँ उरःक्षतज। इसीको लोग क्षय, राजरोग या राजयक्ष्मा भी कहते हैं॥ २१॥

शोषरोग

शोषाः स्युः षट्प्रकारेण स्त्रीप्रसंगाच्छुचो व्रणात्।
अध्वश्रमाच्च व्यायामाद्वार्धक्याद्वैष जायते॥ २२॥

अधिक स्त्रीप्रसंग करनेसे, विशेष शोक करनेसे, व्रणसे, अधिक रास्ता चलनेसे, व्यायाम आदि द्वारा विशेष परिश्रम करनेसे और वृद्धावस्थाके कारण शोष रोग होता है। इससे शरीरके रस आदि धातु सूख जाते हैं और देह क्षीण होने लगती है। यह भी क्षयरोगका ही एक भेद है॥ २२॥

श्वास रोग और उसके भेद

श्वासाश्च पंच विज्ञेयाः क्षुद्रः स्यात्तमकस्तथा।
ऊर्ध्वश्वासो महाश्वासश्छिन्नश्वासश्च पंचमः॥ २३॥

क्षुद्र, तमक, ऊर्ध्वश्वास, महाश्वास तथा छिन्नश्वास ये पाँच प्रकारके श्वासरोग होते हैं॥ २३॥

हिक्का रोग

कथिताः पंच हिक्कास्तु तासु क्षुद्रान्नजा तथा।
गम्भीरा यमला चैव महती पंचमीति च॥ २४॥

क्षुद्रा, अन्नजा, गंभीरा, यमला और महती इन भेदोंसे हिक्का (हिचकी) रोग पाँच प्रकारका होता है॥ २४॥

अग्निके विकार

चत्वारोऽग्निविकाराः स्युर्विषयो वातसम्भवः।
तीक्ष्णः पित्तात्कफान्मन्दो भस्मको वातपित्तकः॥ २५॥

जठर (पेट) में रहनेवाले अग्निमें चार प्रकारके विकार होते हैं। उनके भेद इस तरह हैं। जैसे—विषमाग्नि, तीक्ष्णाग्नि, मंदाग्नि और भस्माग्नि। इनमें वातसे विषमाग्नि, पित्तसे तीक्ष्णाग्नि, कफसे मंदाग्नि एवं वात-पित्तसे भस्माग्निकी उत्पत्ति होती है॥ २५॥

अरोचक रोग

पञ्चैवारोचका ज्ञेया वातपित्तकफैस्त्रिधा।
संनिपातान्मनस्तापात्

पाँच प्रकारका अरोचक रोग होता है। उनमें वात, पित्त और कफ इनसे तीन प्रकारका, चौथा सन्निपातसे और पाँचवाँ हार्दिक सन्तापसे जायमान होता है।

छर्दिरोग

छर्दयः सप्तधा मताः ॥ २६ ॥
त्रिभिर्दोषैः पृथक्किस्त्रः कृमिभिः सन्निपाततः ।
घृणया च तथा स्त्रीणां गर्भाधानाच्च जायते ॥ २७ ॥

सात प्रकारका छर्दि रोग होता है । तीन प्रकारका वात, पित्त और कफसे, चौथा सन्निपातसे, पाँचवाँ कृमिसे, छठाँ घृणासे और सातवाँ गर्भाधान हो जाने-पर केवल स्त्रियोंको होता है ॥ २६ ॥ २७ ॥

स्वरभेद रोग

स्वरभेदाः षडेव स्युर्वातपित्तकफैस्त्रयः ।
मेदसा सन्निपातेन क्षयात्षष्ठः प्रकीर्तितः ॥ २८ ॥

स्वरभेद (गलेका बैठना) रोग छ प्रकारका होता है । पहला वातज स्वरभेद, दूसरा पित्तज स्वरभेद, तीसरा कफज स्वरभेद, चौथा मेदवृद्धिजनित स्वरभेद, पाँचवाँ सन्निपातज स्वरभेद और छठाँ क्षयरोगसे जायमान स्वरभेद, ये ही इसके छ भेद हैं ॥ २८ ॥

तृष्णारोग

तृष्णा च षड्विधा प्रोक्ता वातात्पित्तात्कफादपि ।
त्रिदोषैरुपसर्गेण क्षयाद्धातोश्च षष्ठिका ॥ २९ ॥

तृष्णा रोग भी छ प्रकारका होता है । वात, पित्त और कफ इनसे तीन प्रकारका, चौथा सन्निपातसे उत्पन्न होनेवाला, पाँचवाँ उपसर्गज (किसी प्रकारकी चोट लगने-से उत्पन्न होनेवाला) और छठवाँ धातुके क्षीण होनेपर उत्पन्न होता है । इसके होनेपर मनुष्य बार-बार पानी पीता है, फिर भी प्यास नहीं शान्त होने आती ॥ २९ ॥

मूर्च्छारोग

मूर्च्छा चतुर्विधा ज्ञेया वातपित्तकफैः पृथक् ।
चतुर्थी संनिपातेन—

मूर्छारोग चार प्रकारका होता है । वात, पित्त और कफ इनसे तीन प्रकारका और चौथा सन्निपातसे । इस रोगका आक्रमण होनेके समय शरीरकी संज्ञा (होश) और चेष्टा वहन करनेवाले छिद्र वातके विकारसे आच्छादित हो जाते

हैं और एकाएक तमोगुण बढ़ जाता है। जिससे मनुष्यको दुःख-सुख आदिका कुछ भी ज्ञान नहीं रह जाता और वह लकड़ी की तरह पृथ्वीमें गिर जाता है ॥

भ्रम, निद्रा, तंद्रा तथा संन्यास रोग

—तथैकश्च भ्रमः स्मृतः ॥ ३० ॥
निद्रा तन्द्रा च संन्यासो ग्लानिश्चैकैकशः स्मृतः ।

भ्रम, निद्रा, तन्द्रा, संन्यास और ग्लानि ये भी एक-एक प्रकारके रोग होते हैं ॥ ३० ॥

मदरोग

मदाः सप्त समाख्याता वातपित्तकफैस्त्रयः ॥ ३१ ॥
त्रिदोषैरसृंजो मद्याद्विषादपि च सप्तमः ।

मदरोग सात प्रकारका होता है। जैसे—वात, पित्त और कफ, इनसे तीन तरहका, चौथा सन्निपातसे जायमान, पाँचवाँ रुधिरके कुपित होनेसे, छठाँ प्रमाणसे अधिक मदिरा आदि पीनेसे और सातवाँ वत्सनाग आदि विष भक्षण करनेसे। ये ही मदरोगके सात भेद हैं ॥ ३१ ॥

मदात्यय रोग

मदात्ययश्चतुर्धा स्याद्वातात्पित्तात्कफादपि ॥ ३२ ॥
त्रिदोषैरपि विज्ञेय एकः परमदस्तथा ।
पानाजीर्णं तथा चैकं तथैकः पानविभ्रमः ॥ ३३ ॥
पानात्ययस्तथा चैकः—

मदात्यय रोग चार प्रकारका होता है —वात, पित्त और कफ इन भेदोंसे तीन प्रकारका और एक त्रिदोषसे होता है। ये इसके चार भेद हैं। इनके अतिरिक्त एक प्रकारका परमद रोग होता है। एक ही एक प्रकारका पानाजीर्ण, पानात्यय, पानविभ्रम रोग भी होता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

दाहरोग

—दाहाः सप्त मतास्तथा ।
रक्तपित्तात्तथा रक्तात्तृष्णायाः पित्ततस्तथा ॥ ३४ ॥
धातुक्षयान्मर्मघाताद्रक्तपूर्णोदरादपि ।

दाह रोग सात प्रकारका होता है। जैसे—पहला रक्तपित्तके कुपित होनेसे, दूसरा रुधिरके प्रकोपसे, तीसरा तृष्णा रोकनेसे, चौथा पित्तसे, पाँचवाँ धातुक्षय होनेसे, छठाँ मर्मस्थानमें किसी प्रकारकी चोट आदि लगनेसे और सातवाँ पेटमें रुधिरके जम जानेसे उत्पन्न होता है। ये इस रोगके सात भेद गिनाये गये हैं ॥ ३४ ॥

उन्माद रोग

उन्मादाः षट् समाख्यातास्त्रिभिर्दोषैस्त्रयश्च ते ।
संनिपाताद्विषाज्ज्ञेयः षष्ठो दुःखेन चेतसः ॥ ३५ ॥

उन्माद रोग भी छः प्रकारका होता है। जैसे वात, पित्त तथा कफ इनके प्रकोपसे उत्पन्न तीन प्रकारका, चौथा सन्निपातसे, पाँचवाँ किसी विष आदिके खा लेनेसे और छठाँ किसी प्रकारकी मानसिक पीड़ासे उत्पन्न होता है ॥ ३५ ॥

भूतोन्माद रोग

भूतोन्मादा विंशतिः स्युस्ते देवाद्दानवादपि ।
गन्धर्वात्किन्नराद्यक्षात्पितृभ्यो गुरुशापतः ॥ ३६ ॥
प्रेताच्च गुह्यकाद्वृद्धात्सिद्धाद्भूतात्पिशाचतः ।
जलादिदेवतायाश्च नागाच्च ब्रह्मराक्षसात् ॥ ३७ ॥
राक्षसादपि कूष्माण्डात्कृत्यावेतालयोरपि ।

भूतग्रहके बीस भेद होते हैं। जैसे—देवग्रह, असुरग्रह, गणमातृग्रह, दानव, गन्धर्व, किन्नर, यक्ष, पितर, गुरु, प्रेत, वृद्ध, सिद्ध, भूत, पिशाच, जल आदि देवगण, नाग, ब्रह्मराक्षस, राक्षस, कूष्मांड राक्षस, कृत्या (शाप) और वैतालग्रह, ये ही भूतोन्मादके भेद हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

अपस्मार रोग

अपस्मारश्चतुर्धा स्यात्समीरात्पित्ततस्तथा ॥ ३८ ॥
श्लेष्मणोऽपि तृतीयः स्याच्चतुर्थः संनिपाततः ।

अपस्मार (मृगी) रोग चार तरहका होता है। जैसे—एक वायुके प्रकोपसे, दूसरा पित्तके, तीसरा कफके और चौथा सन्निपातके प्रकोपसे होता है। ये ही इसके चार भेद हैं ॥ ३८ ॥

आमवात रोग

चत्वारश्चामवाताः स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ ३९ ॥
चतुर्थः संनिपाताच्च—

चार ही प्रकारका आमवात रोग होता है। वात, पित्त और कफ इनके प्रकोपसे तीन प्रकारका और चौथा सन्निपातसे। ये ही इसकेभी चार भेद हैं ॥३९॥

शूलरोग

शूलान्यष्टौ बुधा जगुः।
पृथग्दोषैस्त्रिधा द्वन्द्वभेदेन त्रिविधान्यपि ॥ ४० ॥
आमेन सप्तमं प्रोक्तं संनिपातेन चाष्टमम्।

शूलरोग आठ प्रकारका होता है। वात, पित्त तथा कफ इन तीनोंसे तीन प्रकारका और तीन ही प्रकारका द्वन्द्वज (वातकफशूल, वातपित्तशूल, पित्तकफशूल) ये छ हुए, सातवाँ आमसे उत्पन्न होनेवाला और आठवाँ त्रिदोष (सन्निपात) से। ये ही इसके आठ भेद हैं ॥ ४० ॥

परिणामशूल

परिणामभवं शूलमष्टधा परिकीर्तितम् ॥ ४१ ॥
मलैयैः शूलसंख्या स्यात्तैरेव परिणामजे।
अन्नद्रवभवं शूलं जरत्पित्तभवं तथा ॥ ४२ ॥
एकैकं गणितं सुज्ञैः—

उसी प्रकार परिणामशूल नामक रोग भी कई प्रकारका होता है। जैसे—पूर्वकथित रीतिके अनुसार वातादि तीन दोषोंसे तीन प्रकारका, उनके द्वन्द्वज भेदसे भी तीन तरहके, ये छ हुए। सातवाँ आमसे उत्पन्न होनेवाला और आठवाँ सन्निपातसे, ये आठ भेद हुए। विद्वानोंने एक प्रकारका अन्नद्रव तथा एक ही प्रकारका जरित्पित्त नामक शूल भी गिनाया है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

उदावर्तरोग

—उदावर्तास्त्रयोदश।
एकः क्षुधानिग्रहजस्तृष्णारोधाद्द्वितीयकः ॥ ४३ ॥
निद्राघातात्तृतीयः स्याच्चतुर्थः श्वासनिग्रहात्।
छर्दिरोधात्पंचमः स्यात्षष्ठः क्षवथुनिग्रहात् ॥ ४४ ॥

जृम्भारोधात्सप्तमः स्यादुद्गारग्रहतोऽष्टमः ।
नवमः स्यादश्रुरोधाद्दशमः शुक्रवारणात् ॥ ४५ ॥
मूत्ररोधान्मलस्यापि रोधाद्वातविनिग्रहात् ।
उदावर्तास्त्रयश्चैते घोरोपद्रवकारकाः ॥ ४६ ॥

उदावर्त रोग तेरह प्रकारका होता है । पहला भूख रोकनेसे, दूसरा तृष्णा रोकनेसे, तीसरा नींद रोकने, चौथा श्वासकी गति रोकने, पाँचवाँ वमन रोकने, छठाँ छींक रोकने, सातवाँ जँभाई रोकने, आठवाँ उद्गार रोकने, नवाँ आँसू रोकने, दसवाँ वीर्यका वेग रोकने, ग्यारहवाँ-बारहवाँ मलमूत्रका वेग रोकने और तेरहवाँ अपान वायुके रोकनेसे उदावर्त रोग उत्पन्न होता है। ये तेरहों उदावर्त बड़े घोर उपद्रव खड़े करनेवाले रोग होते हैं ॥ ४३–४६ ॥

आनाह तथा प्रत्यानाह रोग

आनाहो द्विविधः प्रोक्त एकः पक्वाशयोद्भवः ।
आमाशयोद्भवश्चान्यः प्रत्यानाहः स कथ्यते ॥ ४७ ॥

आनाह (अफरा) रोग दो प्रकारका होता है । एक तो पक्वाशयसे उत्पन्न होकर पेट फुलाता और दूसरा आमाशयमें उत्पन्न होता है । उसे लोग प्रत्यानाह रोग कहते हैं ॥ ४७ ॥

उरोग्रह और हृदयरोग

उरोग्रहस्तथा चैको हृद्रोगाः पंच कीर्तिताः ।
वातादयस्त्रयः प्रोक्ताश्चतुर्थः संनिपाततः ॥ ४८ ॥
पंचमः क्रिमिसंजातः—

उरोग्रह नामक रोग एक ही प्रकारका होता है । इसके उत्पन्न होनेपर छाती-में कोंचनेके समान पीड़ा होने लगती है । हृदयरोग पाँच प्रकारका होता है । जैसे—वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंसे तीन प्रकार का, चौथा सन्निपातसे एवं पाँचवाँ कृमिरोगसे । ये ही इसके पाँच भेद हैं ॥ ४८ ॥

उदररोग

—तथाष्टावुदराणि च ।
वातात्पित्तात्कफात्त्रीणि त्रिदोषेभ्यो जलादपि ॥ ४९ ॥
प्लीहः क्षताद्बद्धगुदादष्टमं परिकीर्तितम् ।

उदर रोग आठ प्रकारका होता है। जैसे-एक प्रकारका वातसे, दूसरा पित्त-से, तीसरा कफसे, चौथा सन्निपातसे, पाँचवाँ जलसे, छठाँ प्लीहासे, सातवाँ किसी प्रकारकी चोट लगनेसे और आठवाँ बद्धगुद नामक रोगसे उत्पन्न होता है॥ ४९॥

गुल्मरोग

गुल्मास्त्वष्टौ समाख्याता वातपित्तकफैस्त्रयः॥ ५०॥
द्वन्द्वभेदात्त्रयः प्रोक्ताः सप्तमः सन्निपाततः।
रक्तस्त्वष्टम आख्यातः—

गुल्म (वायुगोला) रोग आठ प्रकारका होता है। जैसे-वात, पित्त, कफ, वातपित्त, पित्तकफ, कफवात और सन्निपातसे। ये ही इस रोगके आठ भेद होते हैं॥ ५०॥

मूत्राघातरोग

—मूत्राघातास्त्रयोदश॥ ५१॥
वातकुण्डलिका पूर्वं वाताष्ठीला ततः परम्।
वातबस्तिस्तृतीयः स्यान्मूत्रातीतश्चतुर्थकः॥ ५२॥
पंचमं मूत्रजठरं षष्ठो मूत्रक्षयः स्मृतः।
मूत्रोत्सर्गः सप्तमः स्यान्मूत्रग्रन्थिस्तथाष्टमः॥ ५३॥
मूत्रशुक्रं तु नवमं विड्घातो दशमः स्मृतः।
मूत्रसादश्चोष्णवातो वस्तिकुण्डलिका तथा॥ ५४॥
त्रयोऽप्येते मूत्रघाताः पृथग्घोराः प्रकीर्तिताः।

मूत्राघात रोग तेरह प्रकारका होता है। जैसे-पहला वातकुंडलिका, दूसरा वाताष्ठीला, तीसरा वातबस्ति, चौथा मूत्रातीत, पाँचवाँ मूत्रजठर, छठाँ मूत्रक्षय, सातवाँ मूत्रोत्सर्ग, आँठवाँ मूत्रग्रन्थि, नवाँ मूत्रशुक्र, दसवाँ विड्घात, ग्यारहवाँ मूत्र-साद, बारहवाँ उष्णवात और तेरहवाँ बस्तिकुंडलिका ये ही मूत्राघात रोगके भेद हैं। इनमेंसे अन्तवाले मूत्रसाद, उष्णवात और कुंडलिका ये तीन बड़े ही भयंकर रोग माने गये हैं। इस रोगके उत्पन्न होनेपर धीरे-धीरे पीड़ाके साथ मूत्र रुक जाता है॥ ५१—५४॥

मूत्रकृच्छ्र रोग

मूत्रकृच्छ्राणि चाष्टौ स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ ५५ ॥
संनिपाताच्चतुर्थं स्याच्छुक्रकृच्छ्रं तु पञ्चमम् ।
विट्कृच्छ्रं षष्ठमाख्यातं घातकृच्छ्रं च सप्तमम् ॥ ५६ ॥
अष्टमं चाश्मरीकृच्छ्रं—

मूत्रकृच्छ्र रोग आठ प्रकारका होता है। वात, पित्त और कफ, इन तीनसे तीन प्रकारका, चौथा सन्निपातसे, पाँचवाँ शुक्रकृच्छ्र, छठाँ विट्कृच्छ्र, सातवाँ घातकृच्छ्र और आठवाँ अश्मरीकृच्छ्र कहलाता है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

अश्मरीरोग

—चतुर्धा चाश्मरी मता ॥
वातात्पित्तात्कफाच्छुक्रात्—

वात, पित्त, कफ और शुक्र भेदसे अश्मरी (पथरी) रोग चार प्रकारका होता है। जिनको लोग वाताश्मरी, पित्ताश्मरी, कफाश्मरी और शुक्राश्मरी इन नामोंसे भी पुकारते हैं।

प्रमेहरोग

तथा मेहाश्च विंशतिः ॥ ५७ ॥
इक्षुमेहः सुरामेहः पिष्टमेहश्च सान्द्रकः ।
शुक्रमेहोदकाख्यौ च लालामेहश्च शीतकः ॥ ५८ ॥
सिकताह्वः शनैर्मेहो दशैते कफसंभवाः ।
मंजिष्ठाख्यो हरिद्राह्वो नीलमेहश्च रक्तकः ॥ ५९ ॥
कृष्णमेहः क्षारमेहः षडेते पित्तसंभवाः ।
हस्तिमेहो वसामेहो मज्जामेहो मधुप्रभः ॥ ६० ॥
चत्वारो वातजा मेहा इति मेहाश्च विंशतिः ।

प्रमेह रोग बीस प्रकारका होता है। जैसे—इक्षुमेह, सुरामेह, पिष्टमेह, सांद्रमेह, शुक्रमेह, उदकमेह, लालामेह, शीतमेह, सिकतामेह एवं शनैर्मेह, ये इतने प्रमेह कफके प्रकोपसे जायमान होते हैं। मंजिष्ठमेह, हरिद्रामेह, नीलमेह, रक्तमेह, तृष्णामेह तथा क्षारप्रमेह ये छः प्रमेह पित्तसे जायमान होते हैं। हस्तिमेह, बसामेह, मज्जामेह और मधुमेह ये चार प्रकारके प्रमेह वातसे उत्पन्न होते हैं। ये सब मिलकर बीस प्रकारके प्रमेह होते हैं ॥ ५७–६० ॥

सोमरोग

सोमरोगस्तथा चैकः

सोमरोग केवल एक प्रकारका होता है। इस रोगके उत्पन्न होनेपर स्त्रीके शरीर भरका जल क्षुभित हो जाता और सफेद-सफेद पानी बनकर योनिमार्गसे गिरने लगता है।

प्रमेहपिटिका

प्रमेहपिटिका दश ॥ ६१ ॥
शराविका कच्छपिका पुत्रिणी विनताऽलजी ।
मसूरिका सर्षपिका जालिनी च विदारिका ॥ ६२ ॥
विद्रधिश्च दशैताः स्युः पिटिका मेहसंभवाः ।

दस प्रकारका प्रमेहपिटिका रोग होता है। जैसे—शराविका, कच्छपिका, पुत्रिणी, विनता, अलजी, मसूरिका, सर्षपिका, जालिनी, विदारिका तथा विद्रधि। यह रोग प्रमेहरोगकी उपेक्षा करनेसे उत्पन्न होता है। इसके होनेपर जो मांसल स्थान होते, वहाँ छोटी २ फुंसियाँ निकल आया करती हैं ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

मेदोरोगकी संख्या

मेदोदोषस्तथा चैकः

मेदोदोष केवल एक प्रकारका होता है।

शोथरोगकी संख्या

शोथरोगा नव स्मृताः ॥ ६३ ॥
दोषैः पृथग्भवैः सर्वैरभिघाताद्विषादपि ।

शोथरोग नौ प्रकारका होता है। वात, पित्त, कफ इन तीनोंसे एक-एक प्रकारका। तीन प्रकारका द्वन्द्वज यानी वातपित्तज शोथ, पित्तकफज शोथ और कफवातज शोथ, एक प्रकारका सन्निपातज शोथ, एक ही प्रकारका अभिघातज एवं एक प्रकारका विषशोथ। कुल मिलाकर नौ प्रकार हुए ॥ ६३ ॥

वृद्धिरोगकी संख्या

वृद्धयः सप्त गदिता वातात्पित्तात्कफेन च ॥ ६४ ॥
रक्तेन मेदसा मूत्रादन्त्रवृद्धिश्च सप्तमी ।

वृद्धिरोग सात प्रकारका होता है। जैसे—वातज वृद्धि, पित्तज वृद्धि, कफज वृद्धि, रक्तज वृद्धि, मेदोवृद्धि, मूत्रज वृद्धि और सातवाँ अन्त्रज वृद्धि। जब कि वायु किसी कारण वश कुपित होकर सूजन तथा शूल उत्पन्न करती हुई वंक्षणानाड़ी द्वारा अण्डकोशोंमें जा पहुँचती तो वृषणकी नाड़ियोंको दूषित करके अण्डकोशको बढ़ा देती है। इसी लिए इसे वृद्धिरोग कहते हैं॥ ६४॥

अंडवृद्धिरोगकी संख्या

अण्डवृद्धिस्तथा चैकः

अण्डवृद्धि रोग केवल एक प्रकारका होता है। कुछ लोग इसे पोतेका छिटकना तथा कुरंड रोग भी कहते हैं।

गण्डमाला, गलगण्ड और अपची रोगकी संख्या

तथैका गण्डमालिका॥ ६५॥
गण्डापचीति चैका स्यात्

गण्डमाला, गलगण्ड और अपची रोग केवल एक-एक प्रकारके होते हैं॥ ६५॥

ग्रंथि (गाँठ) रोगकी संख्या

ग्रन्थयो नवधा मताः।
त्रिभिर्दोषैस्त्रयो रक्ताच्छिराभिर्मेदसो व्रणात्॥ ६६॥
अस्थ्ना मांसेन नवमः—

ग्रन्थिरोग नौ प्रकारका होता है। जैसे—वातज ग्रन्थि, पित्तज ग्रन्थि, कफज ग्रन्थि, शिराग्रन्थि, मेदोग्रन्थि, व्रणग्रन्थि, अस्थिग्रन्थि एवं मांसग्रन्थि। ये सब मिलाकर नौ प्रकारके होते हैं॥ ६६॥

अर्बुद (रसौली) रोगकी संख्या

षड्विधं स्यात्तथार्बुदम्।
वातात्पित्तात्कफाद्रक्तान्मांसादपि च मेदसः॥ ६७॥

अर्बुद रोग छ प्रकारका होता है। जैसे—वातज अर्बुद, पित्तज अर्बुद, कफज अर्बुद, रक्तज अर्बुद, मेदज अर्बुद और मांसज अर्बुद, ये ही इसके छ प्रकार हैं॥ ६७॥

श्लीपद (पीलपावँ) रोगकी संख्या

श्लीपदं च त्रिधा प्रोक्तं वातात्पित्तात्कफादपि।

श्लीपद रोग तीन प्रकारका होता है। वातज, पित्तज और श्लेष्मज, ये ही इसके तीनों प्रकार हैं।

विद्रधि (फोड़ा) रोगकी संख्या

रक्तात्क्षतात्त्रिदोषैश्च

विद्रधि रोग छः प्रकारका होता है। जैसे—वात, पित्त और कफसे तीन, चौथा रुधिरसे जायमान, पाँचवाँ अभिघातज और छठाँ सन्निपातसे उत्पन्न होनेवाला। ये ही इस रोगके छहों प्रकार हैं।

व्रणरोगकी संख्या

व्रणाः पंचदशोदिताः ॥ ६८ ॥
तेषां चतुर्धा भेदः स्यादागंतुर्देहजस्तथा ॥ ६९ ॥
शुद्धो दुष्टश्च विज्ञेयस्तत्संख्या कथ्यते पृथक्।
वातव्रणः पित्तजश्च कफजो रक्तजो व्रणः ॥ ७० ॥
वातपित्तभवश्चान्यो वातश्लेष्मभवस्तथा।
तथा पित्तकफाभ्यां च सन्निपातेन चाष्टमः ॥ ७१ ॥
नवमो वातरक्तेन दशमो रक्तपित्ततः।
श्लेष्मरक्तभवश्चान्यो वातपित्तासृगुद्भवः ॥ ७२ ॥
वातश्लेष्मासृगुत्पन्नः पित्तश्लेष्मास्रसंभवः।
सन्निपातासृगुद्भूत इति पंचदश व्रणाः ॥ ७३ ॥

व्रणरोग पन्द्रह प्रकारका होता है। उसके भी चार खास भेद हैं। जैसे आगन्तुक, देहज, शुद्ध एवं दुष्टव्रण। अब उनकी अलग-अलग संख्या बतलाते हैं। वातज व्रण, पित्तज व्रण, कफज व्रण, रक्तज व्रण, वातपित्तज व्रण, वातश्लेष्मज व्रण, पित्तकफज व्रण, सन्निपातज व्रण, वातरक्तज व्रण, रक्तपित्तज व्रण, कफरक्तज व्रण, वात-पित्त एवं रक्तज व्रण, वात-कफ तथा रक्तज व्रण, पित्त-कफ एवं रक्तज व्रण, सन्निपात तथा रक्तज व्रण, ये सब मिलाकर पन्द्रह प्रकारके व्रण होते हैं ॥ ६८–७३ ॥

सद्योव्रणरोगकी संख्या

सद्योव्रणस्त्वष्टधा स्यादवक्लृप्तविलम्बितौ ।
छिन्नभिन्नप्रचलिता घृष्टविद्धनिपातिताः ॥ ७४ ॥

कुल आठ प्रकारके सद्योव्रण यानी आगन्तुक व्रण होते हैं—१ अवक्लृप्त २ विलम्बित ३ छिन्न ४ भिन्न ५ प्रचलित ६ घृष्ट ७ विद्ध और ८ निपातित, ये ही आठ प्रकार व्रणके हैं ॥ ७४ ॥

कोष्ठभेद (छिन्नान्त्र-निःसृतान्त्र)की संख्या

कोष्ठभेदो द्विधा प्रोक्तश्छिन्नान्त्रो निःसृतान्त्रकः ।

कोष्ठभेद रोग कुल दो प्रकारका होता है । एकका नाम छिन्नान्त्रक है और दूसरा निःसृतांत्रक ।

अस्थिभंग रोगकी संख्या

अस्थिभंगोऽष्टधा प्रोक्तो भग्नपृष्ठविदारिते ॥ ७५ ॥
विवर्तितश्च विश्लिष्टस्तिर्यक्क्षिप्तस्त्वधोगतः ।
ऊर्ध्वगः संधिभंगश्च

अस्थिभंग रोग आठ प्रकारका होता है । किसी प्रकार हड्डी टूटनेको अस्थिभंग कहते हैं । जैसे—भग्न, विदारित, विवर्तित, विश्लिष्ट, तिर्यक्क्षिप्त, अधोगत, ऊर्ध्वगत और सन्धिभंग, ये ही इसके आठ प्रकार होते हैं ॥ ७५ ॥

वह्निदग्ध रोगकी संख्या

वह्निदग्धश्चतुर्विधः ॥ ७६ ॥
प्लुष्टोऽतिदग्धो दुर्दग्धः सम्यग्दग्धश्च कीर्तितः ।

वह्निदग्ध रोग चार प्रकारका होता है । जैसे प्लुष्ट, अतिदग्ध, दुर्दग्ध एवं सम्यग्दग्ध, ये ही इसके चार भेद हैं ॥ ७६ ॥

नाडीव्रण (नासूर) रोगकी संख्या

नाड्यः पंच समाख्याता वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ ७७ ॥
त्रिदोषैरपि शल्येन

नाडीव्रण रोग पाँच प्रकारका होता है । जैसे—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज एवं शल्यज । नाडीव्रण ही को लोग नासूर भी कहते हैं ॥ ७७ ॥

भगंदर रोगकी संख्या

तथाष्टौ स्युर्भगन्दराः।
शतपोनस्तु पवनादुष्ट्रग्रीवस्तु पित्ततः ॥ ७८ ॥
परिस्रावि कफाज्ज्ञेयमृजुर्वातकफोद्भवः।
परिक्षेपी मरुत्पित्तादर्शोजः कफपित्ततः ॥ ७९ ॥
आगंतुजातश्चोन्मार्गी शंखावर्तस्त्रिदोषजः।

भगंदर रोग आठ प्रकारका होता है। जैसे—वातके प्रकोपसे उत्पन्न शतपोनक, पित्तके प्रकोपसे जायमान उष्ट्रग्रीव, कफसे उत्पन्न परिस्रावी, वात-कफसे ऋजु, वात-पित्तसे परिक्षेप, कफ-पित्तसे अर्शोज, आगन्तु शल्यसे आगन्तुक तथा त्रिदोषसे शंखावर्त भगन्दर, ये ही इसके आठ प्रकार हैं॥ ७८॥ ७९॥

उपदंश (गर्मी) रोगकी संख्या

मेढ्रे पंचोपदंशाः स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ ८० ॥
संनिपातेन रक्ताच्च

लिंगमें उपदंश (गर्मी) रोग पाँच प्रकारका होता है। जैसे—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज एवं रुधिरजन्य, ये ही इसके पाँच भेद हैं॥ ८०॥

शूकरोगकी संख्या

मेढ्रशूकामयास्तथा।
चतुर्विंशतिराख्याता लिंगार्शो ग्रथितं तथा ॥ ८१ ॥
निवृत्तमवमंथश्च मृदितं शतपोनकः।
अष्ठीलिका सर्षपिका त्वक्पाकश्चावपाटिकाः ॥ ८२ ॥
मांसपाकः स्पर्शहानिर्निरुद्धमणिरुद्धतः।
मांसार्बुदं पुष्करिका संमूढपिटिकाऽलजी ॥ ८३ ॥
रक्तार्बुदं विद्रधिश्च कुंभिका तिलकालकः।
निरुद्धप्रकशः प्रोक्तस्तथैव परिवर्त्तिका ॥ ८४ ॥

शूकदोषसे लिंगमें उत्पन्न होनेवाला शूकरोग चौबीस प्रकारका होता है। जैसे—लिंगार्श, ग्रथित, निवृत्त, अवमंथ, मृदित, शतपोनक, अष्ठीलिका, सर्षपिका, त्वक्पाक, अवपीटिका, मांसपाक, स्पर्शहानि, निरुद्धमणि, उत्तमा, मांसार्बुद,

पुष्करिका, संमूढ़पिटिका, अलजी, रक्तार्बुद, विद्रधि, कुम्भिका, तिलकालक, निरुद्ध-प्रकश तथा परिवर्तिका, ये ही शूकरोगके चौवीसों प्रकार हैं ॥८१–८४॥

कुष्ठरोग (कोढ़)की संख्या

कुष्ठान्यष्टादशोक्तानि वातात्कापालिकं भवेत् ।
पित्तेनौदुम्बरं प्रोक्तं कफान्मण्डलचर्चिके ॥ ८५ ॥
मरुत्पित्तादृक्षजिह्वं श्लेष्मवाताद्विपादिका ।
तथा सिध्मैककुष्ठं च किट्टिभं चालसं तथा ॥ ८६ ॥
कफपित्तात्पुनर्दद्रूः पामा विस्फोटकं तथा ।
महाकुष्ठं चर्मदलं पुण्डरीकं शतारुकम् ॥ ८७ ॥
त्रिदोषैः काकणं ज्ञेयं तथान्यच्छ्वित्रसंज्ञितम् ।
तथा वातेन पित्तेन श्लेष्मणा च त्रिधा भवेत् ॥ ८८ ॥

कुष्ठरोग अठारह प्रकारका होता है। जैसे—वायुके प्रकोपसे उत्पन्न कापालिक, पित्तसे औदुम्बर, कफसे मण्डल और चर्चिका, वातपित्तसे ऋक्षजिह्व, कफ-वातसे विपादिका, सिध्मकुष्ठ, किट्टिभ, अलस, कफ-पित्तसे दद्रु, पामा, विस्फोटक, महाकुष्ठ, चर्मदल, पुण्डरीक, शतारुक, काकण तथा श्वित्रकुष्ठ रोग, ये ही कुष्ठ रोगके अठारह प्रकार हैं ॥ ८५–८८ ॥

क्षुद्ररोग, विस्फोटक और मसूरिका रोगकी संख्या

क्षुद्ररोगाः षष्टिसंख्यास्तेष्वादौ शर्करार्बुदम् ।
इन्द्रवृद्धा पनसिका विवृत्तान्धालजी तथा ॥ ८९ ॥
वराहदंष्ट्रो वल्मीकं कच्छपी तिलकालकः ।
गर्दभी रकसा चैव यवप्रख्या विदारिका ॥ ९० ॥
कंदरो मसकश्चैव नीलिका जालगर्दभः ।
ईरिवेल्ली जतुमणिर्गुदभ्रंशोऽग्निरोहिणी ॥ ९१ ॥
संनिरुद्धगुदः कोठः कुनखोऽनुशयी तथा ।
पद्मिनीकंटकश्चिप्पमलसो मुखदूषिका ॥ ९२ ॥
कक्षा वृषणकच्छूश्च गंधः पाषाणगर्दभः ।
राजिका च तथा व्यंगश्चतुर्धा परिकीर्तितः ॥ ९३ ॥

वातात्पित्तात्कफाद्रक्तादित्युक्तं व्यङ्गलक्षणम्।
विस्फोटाः क्षुद्ररोगेषु तेऽष्टधा परिकीर्तिताः ॥ ९४ ॥
पृथग्दोषैस्त्रयो द्वन्द्वैस्त्रिविधाः सप्तमोऽसृजः।
अष्टमः संनिपातेन क्षुद्ररुक्तु मसूरिका ॥ ९५ ॥
चतुर्दशप्रकारेण त्रिभिर्दोषैस्त्रिधा च सा।
द्वन्द्वजा त्रिविधा प्रोक्ता संनिपातेन सप्तमी ॥ ९६ ॥
अष्टमी त्वग्गता ज्ञेया रक्तजा नवमी स्मृता।
दशमी मांसजा ख्याता चतस्रोऽन्याश्च दुस्तराः ॥
मेदोऽस्थिमज्जशुक्रस्थाः क्षुद्ररोगा इतीरिताः ॥ ९७ ॥

क्षुद्ररोग साठ प्रकारके होते हैं—शर्कराबुर्द, इन्द्रवृद्धा, पनसिका, विवृता, अन्धालजी, वराहदंष्ट्रा, वल्मीक, कच्छपी, तिलकालक, गर्दभी, रकसा, यवप्रख्या, विदारिका कदर, मसक, नीलिका, जालगर्दभ, ईरिवेल्लिका, जन्तुमणि, गुदभ्रंश, अग्निरोहिणी,सन्निरुद्धगुद,कोठ,कुनख,अनुशयी, पद्मिनीकंटक, चिप्प, अलस, मुखदूषिका, कक्षा, वृषणकच्छु, गंध, पाषाणगर्दभ, राजिका, व्यंग (यह व्यंगरोग वातपित्त आदि भेदसे चार प्रकारका होता है)। विस्फोटक रोग भी आठ प्रकारका होता है। जैसे—वातज, पित्तज, कफज, रक्तज, तीन प्रकारके द्वन्द्वज छ हुए। सातवाँ अस्रज और आठवाँ सन्निपातज। इसी तरह मसूरिका रोग चौदह प्रकारका होता है। जैसे—वातज, पित्तज, कफज, कफपित्तज, वातपित्तज, वातकफज, सन्निपातज, ये सात प्रकार हुए। आठवाँ त्वग्गता, नवाँ रक्तज, दसवाँ मांसज, ग्यारहवाँ मेदोज, बारहवाँ अस्थिज, तेरहवाँ मज्जाजन्य और चौदहवाँ शुक्रधातुज ये सब मिलाकर क्षुद्ररोगके साठ प्रकार हुए ॥ ८९–९७ ॥

विसर्परोगकी संख्या

विसर्परोगा नवधा वातपित्तकफैस्त्रिधा।
त्रिधा च द्वन्द्वभेदेन संनिपातेन सप्तमः ॥ ९८ ॥
अष्टमो वह्निदाहेन नवमश्चाभिघातजः।

विसर्परोग नौ प्रकारका होता है। जैसे—वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, कफवातज, कफपित्तज, सन्निपातज, जठराग्नितापज एवं अभिघातज, ये ही विसर्परोगके नौ प्रकार हैं ॥ ९८ ॥

शीतपित्तरोगकी संख्या

तथैकः श्लेष्मपित्ताभ्यामुदर्दः परिकीर्तितः ॥ ६६ ॥
वातपित्तेन चैकस्तु शीतपित्तामयः स्मृतः ।

श्लेष्मा और पित्तके प्रकोपसे उदर्द नामक रोगकी उत्पत्ति होती है । इसी तरह वात और पित्तके दूषित होनेपर एक प्रकारका शीतामय नामक रोग उत्पन्न होता है ॥ ९९ ॥

अम्लपित्तरोगकी संख्या

अम्लपित्तं त्रिधा प्रोक्तं वातेन श्लेष्मणा तथा ॥ १०० ॥
तृतीयं श्लेष्मवाताभ्यां

अम्लपित्त नामक रोग तीन प्रकारका होता है । जैसे—वातज, कफज एवं कफवातज ॥ १०० ॥

वातरक्तरोगकी संख्या

वातरक्तं तथाष्टधा ।
वाताधिक्येन पित्ताच्च कफाद्दोषत्रयेण च ॥ १०१ ॥
रक्ताधिक्येन दोषाणां द्वन्द्वेन त्रिविधः स्मृतः ।

वातरक्त रोग आठ प्रकारका होता है । इसमें वायुकी प्रबलता रहती है । यह वातरक्त वातज, पित्तज, कफज सन्निपातज, रक्तज, तीन तरहके द्वन्द्वज, ये सब मिलाकर वातरक्त रोगके आठ भेद हुए ॥ १०१ ॥

वातरोगकी संख्या

अशीतिर्वातजा रोगाः कथ्यन्ते मुनिभाषिताः ॥ १०२ ॥
आक्षेपको हनुस्तंभ ऊरुस्तम्भः शिरोग्रहः ।
बाह्यायामोऽन्तरायामः पार्श्वशूलः कटिग्रहः ॥ १०३ ॥
दण्डापतानकः खल्ली जिह्वास्तम्भस्तथार्दितः ।
पक्षाघातः क्रोष्टुशीर्षो मन्यास्तम्भश्च पंगुता ॥ १०४ ॥
कलायखंजता तूनी प्रतितूनी च खञ्जता ।
पादहर्षो गृध्रसी च विश्वाची चापबाहुकः ॥ १०५ ॥
अपतानो व्रणायामो वातकण्टोऽपतन्त्रकः ।
अङ्गभेदोऽङ्गशोषश्च मिन्मिनत्वं च कल्लता ॥ १०६ ॥

प्रत्यष्ठीलाऽष्ठीलिका च वामनत्वं च कुब्जता।
अंगपीडांगशूलं च संकोचस्तम्भरूक्षताः॥ १०७॥
अंगभंगोऽङ्गविभ्रंशो विड्ग्रहो बद्धविट्कता।
मूकत्वमतिजृम्भा स्यादत्युद्गारांत्रकूजनम्॥ १०८॥
वातप्रवृत्तिः स्फुरणं शिराणां पूरणं तथा।
कम्पः कार्श्यं श्यावता च प्रलापः क्षिप्रमूत्रता॥ १०९॥
निद्रानाशः स्वेदनाशो दुर्बलत्वं बलक्षयः।
अतिप्रवृत्तिः शुक्रस्य कार्श्यं नाशश्च रेतसः॥ ११०॥
अनवस्थितचित्तत्वं काठिन्यं विरसास्यता।
कषायवक्त्रताध्मानप्रत्याध्मानं च शीतता॥ १११॥
रोमहर्षश्च भीरुत्वं तोदः कंडू रसाज्ञता।
शब्दाज्ञता प्रसुप्तिश्च गंधाज्ञत्वं दृशः क्षयः॥ ११२॥

अस्सी प्रकारके वातरोग मुनियोंने कहे हैं। उन्हें गिनाते हैं, जैसे—आक्षेपक, हनुस्तम्भ, ऊरुस्तम्भ, शिरोग्रह, बाह्यायाम, आभ्यन्तरायाम, पार्श्वशूल, कटिग्रह, दण्डापतानक, खल्ली, जिह्वास्तम्भ, अर्दित, पक्षाघात, क्रोष्टुशीर्ष, मन्यास्तम्भ, पंगु, कलायखंज, तूनी, प्रतितूनी, खंज, पादहर्ष, गृध्रसी, विश्वाची, अवबाहुक, अपतंत्रक, व्रणायाम, वातकण्टक, अपतानक, अंगभेद, अंगशोष, मिन्मिन, कल्लता, प्रत्यष्ठीलिका, अष्ठीला, वामनत्व, कुब्जत्व, अंगपीड़ा, अंगशूल, संकोच, स्तम्भ, रूक्षता, अंगभंग, अंगविभ्रंश, विड्ग्रह, बद्धविट्कता, मूकत्व, अतिजृम्भ, अत्युद्गार, अन्त्रकूजन, वातप्रवृत्ति, स्फुरण, शिरापूरण, कम्पवायु, कार्श्य, श्यावता, प्रलाप, क्षिप्रमूत्रता, निद्रानाश, स्वेदनाश, दुर्बलत्व, बलक्षय, शुक्रातिप्रवृत्ति, शुक्रकार्श्य, शुक्रनाश, अनवस्थितचित्तत्व, काठिन्य, विरसास्यता, कषायवक्त्रता, आध्मान, प्रत्याध्मान, शीतता, रोमहर्ष, भीरुत्व, तोदकण्डू, रसाज्ञता, शब्दाज्ञता, प्रसुप्ति, गंधाज्ञत्व, दृष्टिनाश, वातव्याधिके ये ही अस्सी भेद हैं॥ १०२—११२॥

पित्तरोग

अथ पित्तभवा रोगाश्चत्वारिंशदिहोदिताः।
धूमोद्गारो विदाहः स्यादुष्णाङ्गत्वं मतिभ्रमः॥ ११३॥

कान्तिहानिः कंठशोषो मुखशोषोऽल्पशुक्रता ।
तिक्तास्यताम्लवक्त्रत्वं स्वेदस्रावोऽङ्गपाकता ॥ ११४ ॥
क्लमो हरितवर्णत्वमतृप्तिः पीतकामिता ।
रक्तस्रावोऽङ्गदरणं लोहगंधास्यता तथा ॥ ११५ ॥
दौर्गंध्यं पीतमूत्रत्वमरतिः पीतविट्कता ।
पीतावलोकनं पीतनेत्रता पीतदन्तता ॥ ११६ ॥
शीतेच्छा पीतनखता तेजोद्वेषोऽल्पनिद्रता ।
कोपश्च गात्रसादश्च भिन्नविट्कत्वमन्धता ॥ ११७ ॥
उष्णोछ्वासत्वमुष्णत्वं मूत्रस्य च मलस्य च ।
तमसोऽदर्शनं पीतमण्डलानां च दर्शनम् ॥ ११८ ॥
निःसहत्वं च पित्तस्य चत्वारिंशद्रुजः स्मृताः ।

पित्तरोग कुल चालीस प्रकारके होते हैं। जैसे—धूमोद्गार, विदाह, उष्णाङ्गत्व, मतिभ्रम, कान्तिहानि, कण्ठशोष, मुखशोष, अल्पशुक्रता, तिक्तास्यता, अम्लवक्त्रत्व, स्वेदस्राव, अंगपाकता, क्लम, हरितवर्णत्व, अतृप्ति, पीतकामिता, रक्तस्राव, अंगदरण, लोहगंधास्यता, दौर्गन्ध्य, पीतमूत्रत्व, अरति, पीतविट्कता, पीतावलोकन, रक्तनेत्रता, पीतदन्तता, शीतेच्छा, पीतनखता, तेजोद्वेष, अल्पनिद्रता, कोप, गात्रसाद, भिन्नविट्कत्व, अन्धता, उष्णोच्छ्वासत्व, मूत्र और मलमें उष्णता, अन्धकारदर्शन, पीतमंडलदर्शन एवं निःसारत्व ये ४० प्रकारके पित्तरोग माने गये हैं ॥ ११३—११८ ॥

कफरोग

कफस्य विंशतिः प्रोक्ता रोगास्तंद्रातिनिद्रता ॥ ११९ ॥
गौरवं मुखमाधुर्यं मुखलेपः प्रसेकता ।
श्वेतावलोकनं श्वेतविट्कत्वं श्वेतमूत्रता ॥ १२० ॥
श्वेतांगवर्णता शैत्यमुष्णेच्छा तिक्तकामिता ।
मलाधिक्यञ्च शुक्रस्य बाहुल्यं बहुमूत्रता ॥ १२१ ॥
आलस्यं मन्दबुद्धित्वं तृप्तिर्घर्घरवाक्यता ।
अचैतन्यं च गदिता विंशतिः श्लेष्मजा गदाः ॥ १२२ ॥

कफ रोग बीस प्रकारका होता है। जैसे—तन्द्रा, अतिनिद्रा, गौरव, मुखमाधुर्य, मुखलेप, प्रसेकता, श्वेतावलोकन, श्वेतविट्क्त्व, श्वेतमूत्रत्व, श्वेताङ्गवर्णता, शैत्य, उष्णेच्छा, तिक्तकामिता, मलाधिक्य, शुक्राधिक्य, बहुमूत्रता, आलस्य, मन्दबुद्धित्व, तृप्ति, घर्घरवाक्यत्व और अचैतन्यता, ये बीस प्रकारके कफरोग हैं ॥ ११९–१२२ ॥

रक्तरोग

रक्तस्य च दश प्रोक्ता व्याधयस्तस्य गौरवम्।
रक्तमंडलता रक्तनेत्रत्वं रक्तमूत्रता ॥ १२३ ॥
रक्तष्ठीवनता रक्तपिटिकानां च दर्शनम्।
उष्णत्वं पूतिगंधित्वं पीडापाकश्च जायते ॥ १२४ ॥

बीसप्रकारके रक्तज रोग होते हैं। जैसे—गौरव, रक्तमंडलता, रक्तनेत्रत्व, रक्तमूत्रता, रक्तष्ठीवता, रक्तपिटिकादर्शन, उष्णत्व, पूतिगन्धित्व, पीडा तथा पाक, ये दस प्रकारके रक्तरोग हैं ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

ओष्ठरोगकी संख्या

चतुःसप्ततिसंख्याका मुखरोगास्तथोदिताः।
तेष्वोष्ठरोगा गणिता एकादशमिता बुधैः ॥ १२५ ॥
वातपित्तकफैस्त्रेधा त्रिदोषैरस्रजस्तथा।
क्षतमांसार्बुदं चैव खंडोष्ठश्च जलार्बुदम् ॥ १२६ ॥
मेदोऽर्बुदं चार्बुदं च रोगा एकादशौष्ठजाः।

कुल चौबीस प्रकारके मुखरोग होते हैं। उनमें ग्यारह प्रकारके ओष्ठ रोग हैं। जैसे—वातज ओष्ठरोग, पित्तज ओष्ठरोग, कफज ओष्ठरोग, त्रिदोषज ओष्ठरोग, रक्तज क्षतज, मांसार्बुद, खण्डौष्ठ, जलार्बुद, मेदोऽर्बुद एवं अर्बुद ये ही ग्यारह ओष्ठरोग कहे गये हैं ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

दन्तरोगकी संख्या

दन्तरोगा दशाख्याता दालनः कृमिदन्तकः ॥ १२७ ॥
दन्तहर्षः करालश्च दन्तचालश्च शर्करा।
अधिदन्तः श्यावदन्तो दन्तभेदः कपालिका ॥ १२८ ॥

दस तरहके दन्त रोग होते हैं। जैसे—दालन, कृमिदन्त, दन्तहर्ष, कराल, दन्तचाल, शर्करा, अधिदन्त, श्यावदरत, दन्तभेद और कपालिका ॥ १२७ ॥ १२८ ॥

दन्तमूल रोगकी संख्या

तथा त्रयोदशमिता दन्तमूलामयाः स्मृताः ।
शीतादोपकुशौ द्वौ तु दन्तविद्रधिपुप्पुटौ ॥ १२९ ॥
अधिमांसो विदर्भश्च महासौषिरसौषिरौ ।
तथैव गतयः पंच वातात्पित्तात्कफादपि ॥ १३० ॥
संनिपातगतिश्चान्या रक्तनाडी च पंचमी ।

तेरह प्रकारके दन्तमूल रोग हैं। जैसे शीताद, उपकुश, दन्तविद्रधि, पुप्पुट, अधिमांस, विदर्भ, महासौषिर, सौषिर और पाँच ही प्रकार के वातादि दोषसे जायमान, जैसे—वातनाड़ी, पित्तनाड़ी, कफनाड़ी, सन्निपातनाड़ी और रक्तनाड़ी ये सब मिलाकर तेरह प्रकारके दंतमूल रोग हुए ॥ १२९ ॥ १३० ॥

जिह्वारोगकी संख्या

तथा जिह्वामयाः षट् स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ १३१ ॥
अलासश्च चतुर्थः स्यादधिजिह्वश्च पंचमः ।
षष्ठश्चैवोपजिह्वः स्यात्

छ प्रकारके जिह्वारोग होते हैं। जैसे—वातज, पित्तज, कफज, अलास, अधिजिह्व और उपजिह्व। ये छ प्रकारके जिह्वरोग गिनाये गये ॥ १३१ ॥

तालुरोगकी संख्या

तथाष्टौ तालुजा गदाः ॥ १३२ ॥
अर्बुदं तालुपिटका कच्छपी मांससंहतिः ।
गलशुंठी तालुशोषस्तालुपाकश्च पुप्पुटः ॥ १३३ ॥

आठ प्रकारके तालुरोग होते हैं। जैसे—अर्बुद, तालुपिटिका, कच्छपी, मांससंहति, गलशुण्ठी, तालुशोष, तालुपाक और पुप्पुट। ये ही आठ प्रकार तालुरोगके हैं ॥ १३२ ॥ १३३ ॥

गलरोगकी संख्या

गलरोगास्तथाऽख्याता अष्टादशमिता बुधैः ।
वातरोहिणिका पूर्वं द्वितीया पित्तरोहिणी ॥ १३४ ॥
कफरोहिणिका प्रोक्ता त्रिदोषैरपि रोहिणी ।
मेदोरोहिणिका वृन्दो गलौघो गलविद्रधिः ॥ १३५ ॥

स्वरहा तुंडिकेरी च शतघ्नी तालुकाऽर्बुदम्।
गिलायुर्वलयश्चापि वातगंडः कफात्तस्तथा॥ १३६॥
मेदोगंडस्तथैव स्यादित्यष्टादश कण्ठजाः।

गलरोग अट्ठारह प्रकारके बतलाये गये हैं। जैसे—वातरोहिणी, पित्तरोहिणी, कफरोहिणी, त्रिदोषरोहिणी, मेदोरोहिणी, वृन्द, गलौघ, गलविद्रधि, स्वरहा, तुण्डिकेरी, शतघ्नी, तालुक, अर्बुद, गिलायु, वलय, वातगण्ड, कफगण्ड और मेदोगण्ड ये अट्ठारह गलरोग हुए॥ १३४॥ १३५॥ १३६॥

मुखान्तर्गत रोगकी संख्या।

मुखांतःसंश्रया रोगा ह्यष्टौ ख्याता महर्षिभिः॥ १३७॥
मुखपाको भवेद्वातात्पित्तात्तद्वत्कफादपि।
रक्ताच्च संनिपाताच्च पूत्यास्योर्ध्वं गुदावपि॥ १३८॥
अर्बुदं चेति मुखजाश्चतुःसप्ततिरामयाः।

मुखके भीतरी रोग आठ प्रकारके होते हैं ऐसा मुनियोंने कहा है। जैसे—वातज मुखपाक, पित्तज मुखपाक, कफज मुखपाक, रक्तज मुखपाक, पूत्यास्य, ऊर्ध्व-गुद और अर्बुद ये ही आठों मुखपाक रोग हैं। इस तरह कुल सत्तर प्रकारके मुखरोग होते हैं॥ १३७॥ १३८॥

कर्णरोगकी संख्या

कर्णरोगाः समाख्याता अष्टादशमिता बुधैः॥ १३९॥
वातात्पित्तात्कफाद्रक्तात्संनिपाताच्च विद्रधिः।
शोथाऽर्बुदं पूतिकर्णः कर्णार्शः कर्णहल्लिका॥ १४०॥
बाधिर्यं तंत्रिका कंडूः शष्कुलीः कृमिकर्णकः।
कर्णनादः प्रतीनाह इत्यष्टादश कर्णजाः॥ १४१॥

अट्ठारह प्रकारके कर्णरोग होते हैं। जैसे—वातज, पित्तज, कफज, रक्तज, सन्निपातज, विद्रधि, शोथ, अर्बुद, पूतिकर्ण, कर्णार्श, कर्णहल्लिका, बाधिर्य, तंत्रिका, कण्डू, शष्कुली, कृमिकर्ण, कर्णनाद और प्रतीनाह, ये ही अट्ठारह कर्णरोग हैं॥ १३९॥ १४०॥ १४१॥

कर्णपाली रोगकी संख्या

कर्णपालीसमुद्भूता रोगाः सप्त इहोदिताः ।
उत्पातः पालिशोषश्च विदारी दुःखवर्धनः ॥ १४२ ॥
परिपोटश्च लेही च पिप्पली चेति संस्मृताः ।

कर्णपाली (कनपटी) के भी सात रोग होते हैं । जैसे–उत्पात, पालिशोष, विदारी, दुःखवर्धन, परिपोट, लेही और पिप्पली, ये सात कर्णपाल रोग हुए ॥ १४२ ॥

कर्णमूलरोगकी संख्या

कर्णमूलामयाः पंच वातात्पित्तात्कफादपि ॥ १४३ ॥
संनिपाताच्च रक्ताच्च

कर्णमूल रोग पाँच प्रकारके होते हैं । जैसे—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और रक्तज, ये ही पाँच प्रकार कर्णमूल रोगके हैं ॥ १४३ ॥

नासारोगकी संख्या

तथा नासाभवा गदाः ।
अष्टादशैव संख्याताः प्रतिश्यायास्तु तेष्वपि ॥ १४४ ॥
वातात्पित्तात्कफाद्रक्तात्संनिपातेन पंचमः ।
अपीनसः पूतिनासो नासार्शो भ्रंशथुः क्षवः ॥ १४५ ॥
नासाऽऽनाहः पूतिरक्तमर्बुदं दुष्टपीनसम् ।
नासाशोषो घ्राणपाकः पूयस्रावश्च दीप्तकः ॥ १४६ ॥

अठारह प्रकारके नासिकारोग हैं । जैसे–वातज प्रतिश्याय, पित्तज प्रतिश्याय, कफज प्रतिश्याय, रक्तज प्रतिश्याय, त्रिदोषज प्रतिश्याय, अपीनस, पूतिनास, नासार्श, भ्रंशथु, क्षव, नासानाह, पूतिरक्त, अर्बुद, दुष्टपीनस, नासाशोष, घ्राणपाक, पुयस्राव एवं दीप्तक, ये ही अठारह प्रकार नासिकारोगके हैं ॥ १४४ ॥ १४५ ॥ १४६ ॥

शिरोरोगकी संख्या

तथा दश शिरोरोगा वातेनार्धावभेदकः ।
शिरस्तापश्च वातेन पित्तात्पीडा तृतीयका ॥ १४७ ॥
चतुर्थी कफजा पीडा रक्तजा संनिपातजा ।
सूर्यावर्ताच्छिरःपाकात्क्रमिभिः शंखकेन च ॥ १४८ ॥

दस प्रकारके शिरोरोग होते हैं। जैसे—अर्धावभेदक, वातज शिरस्ताप, पित्तज शिरस्ताप, कफज शिरस्ताप, रक्तज शिरस्ताप, सन्निपातज शिरस्ताप, सूर्यावर्त, शिरःपाक, कृमिज तथा शंखक, ये ही दस प्रकारके शिरोरोग हैं॥ १४७-१४८॥

कपालरोग

तथा कपालरोगाः स्युर्नव तेषूपशीर्षकम्।
अरूंषिका विद्रधिश्च दारुणं पिटिकार्बुदम्॥ १४९॥
इन्द्रलुप्तं च खालित्यं पलितं चेति ते नव।

नौ प्रकारके कपालरोग हैं। जैसे—उपशीर्षक, अरूंषिका, विद्रधि, दारुण, पिटिका, अर्बुद, इन्द्रलुप्त, खालित्य एवं पलित। ये ही नौ प्रकारके कपालरोग होते हैं॥ १४९॥

वर्त्मरोगकी संख्या

तथा नेत्रभवाः ख्यातश्चतुर्नवतिरामयाः॥ १५०॥
तेषु वर्त्मगदाः प्रोक्ताश्चतुर्विंशतिसंज्ञिताः।
कृच्छ्रोन्मीलः पक्ष्मशातः कफोत्क्लिष्टश्च लोहितः॥ १५१॥
अरुङ्निमेषः कथितो रक्तोत्क्लिष्टः कुकूणकः
पक्ष्मार्शः पक्ष्मरोधश्च पित्तोत्क्लिष्टश्च पोथकी॥ १५२॥
श्लिष्टवर्त्मा च बहलः पक्ष्मोत्संगस्तथाऽर्बुदम्।
कुंभिका सिकतावर्त्म लगणोऽञ्जननामिका॥ १५३॥
कर्दमः श्याववर्त्मादि बिसवर्त्म तथाऽलजी।
उत्क्लिष्टवर्त्मेति गदाः प्रोक्ता वर्त्मसमुद्भवाः॥ १५४॥

कुल मिलाकर ९४ प्रकारके नेत्ररोग होते हैं, उनमें चौबीस प्रकारके केवल नेत्रवर्त्म (पलक) के हैं। जैसे कृच्छ्रोन्मील, पक्ष्मशात, कफोत्क्लिष्ट, लोहित, अरुङ्निमेष, रक्तोत्क्लिष्ट, कुकूणक, पक्ष्मशात, पक्ष्मरोध, पित्तोत्क्लिष्ट, पोथकी, श्लिष्टवर्त्मा, बहल, पक्ष्मोत्संग, पक्ष्मार्बुद, कुंभिका, सिकतावर्त्म, लगण, अंजन-नामिका, कर्दम, श्याववर्त्म, बिसवर्त्म, अलजी एवं उत्क्लिष्टवर्त्म, ये चौबीस नेत्र-वर्त्म रोग हैं॥ १५०—१५४॥

नेत्रसंधिगत रोगोंकी संख्या

नेत्रसंधिसमुद्भूता नव रोगाः प्रकीर्तिताः।
जलस्रावः कफस्रावो रक्तस्रावश्च पर्वणी॥ १५५॥

पूयस्रावः कृमिग्रन्थीरुपनाहस्तथाऽलजी ।
पूयालस इति प्रोक्ता रोगा नयनसंधिजाः ॥ १५६ ॥

नेत्रकी संधियोंमें नौ रोग होते हैं। जैसे—जलस्राव, कफस्राव, रक्तस्राव; पर्वणी, पूयस्राव, कृमिग्रन्थि, उपनाह, अलजी और पूयालस, ये सब मिलाकर नेत्रकी संधियोंमें होनेवाले नौ रोग हैं ॥ १५५ ॥ १५६ ॥

नेत्रकी पुतलीके श्वेतभागके रोग

तथा शुक्लगता रोगा बुधैः प्रोक्तास्त्रयोदश।
शिरोत्पातः शिराहर्षः शिराजालं च शुक्तिकः ॥ १५७ ॥
शुक्लार्म चाधिमांसार्म प्रस्तार्यर्म च पिष्टकः ।
शिराजा पिटिका चैव कफग्रन्थितकोऽर्जुनः ॥ १५८ ॥
स्नाय्वर्म चाधिमांसः स्यादिति शुक्लगता गदाः ।

नेत्रके भीतर सफेद भागमें होनेवाले तेरह प्रकारके रोग होते हैं। जैसे—शिरोत्पात, शिराहर्ष, शिराजाल, शुक्तिक, शुक्लार्म, अधिमांसार्म, प्रस्तार्यर्म, पिष्टक, शिराजपिटिका, कफग्रन्थि, अर्जुन, स्नाय्वर्म और अधिमांस ये नेत्रके शुक्ल भागमें होनेवाले तेरह रोग हैं ॥ १५७ ॥ १५८ ॥

नेत्रके काले भागके रोगोंकी संख्या

तथा कृष्णसमुद्भूताः पञ्च रोगाः प्रकीर्तिताः ॥ १५९ ॥
शुद्धशुक्रं शिराशुक्रं क्षतशुक्रं तथाऽजकः ।
शिरासंगश्च सर्वेऽपि प्रोक्ताः कृष्णगता गदाः ॥ १६० ॥

नेत्रकी काली पुतलीमें पाँच प्रकारके रोग होते हैं। जैसे—शुद्धशुक्र, शिराशुक्र, क्षतशुक्र, अजक और शिरासंग ये पाँच रोग काली पुतलियोंके हैं ॥१५९-१६०॥

काचबिंदुरोग

काचं तु षड्विधं ज्ञेयं वातात्पित्तात्कफादपि ।
सन्निपाताच्च रक्ताच्च षष्ठं संसर्गसम्भवम् ॥ १६१ ॥

वातादि दोषोंके प्रकोपसे दृष्टिपटलमें छः प्रकारका काचबिन्दु यानी मोतियाबिन्द नामक रोग होता है। जैसे—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज, तथा संसर्गज ये छः प्रकारके मोतियाबिन्द नामक रोग हैं ॥ १६१ ॥

तिमिररोगकी संख्या

तिमिराणि षडेव स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ।
संसर्गेण च रक्तेन षष्ठं स्यात्संनिपाततः ॥ १६२ ॥

वात, पित्त एवं कफ इन तीनों दोषोंके प्रकोपसे नेत्रपटल दूषित हो जाते, जिससे इस तिमिर रोगकी उत्पत्ति होती है। इसके होनेपर प्राणीको विविध प्रकारके विपरीत स्वरूप दिखायी पड़ते हैं। यदि वातादि दोषोंसे नेत्रका पहला पटल दूषित होता तो उसे सब चीजें धुँधली नजर आतीं और वातादि दोषोंके समान सब पदार्थोंके रंग दीखते हैं। दोषोंके वर्ण इस प्रकार जानने चाहियें—वातके प्रकोपसे काजलके समान, पित्तसे नीले रंगकी, कफसे सफेद रंगकी और रुधिरके दोषसे लालरंगकी सब वस्तुयें दीखती हैं। यदि दोष दूसरे पटलमें पहुँच जाता तो दृष्टि विह्वल हो जाया करती है। कहनेका मतलब यह कि ऐसी अवस्थामें मच्छड़, मक्खी, बाल तथा मण्डल आदि अँधेरेके समान दीखते हैं। कुछ दिनों बाद वही अँधेरा रोगके रूपमें परिणत होकर काच (मोतियाबिंद) हो जाता है ॥ १६२ ॥

लिंगनाश रोगकी संख्या

लिंगनाशः सप्तधा स्याद्वातात्पित्तात्कफेन च ।
त्रिदोषैरुपसर्गेण संसर्गेणासृजा तथा ॥ १६३ ॥

ऊपर बतलाया हुआ तिमिर रोग जब नेत्रके चौथे परदेमें पहुँच जाता तो उससे सारी दृष्टि व्याप्त हो जाती और कुछ भी नहीं दिखलायी पड़ता। इसीको लिंगनाश नामक रोग कहते हैं। यह लिंगनाश वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, उपसर्गज, संसर्गज एवं रक्तज इस प्रकार सात तरहका होता है ॥ १६३॥

दृष्टिरोगकी संख्या

अष्टधा दृष्टिरोगाः स्युस्तेषु पित्तविदग्धकम् ।
अम्लपित्तविदग्धं च तथैवोष्णविदग्धकम् ॥ १६४ ॥
नकुलान्ध्यं धूसरान्ध्यं रात्र्यान्ध्यं ह्रस्वदृष्टिकः ।
गंभीरदृष्टिरित्येते रोगा दृष्टिगताः स्मृताः ॥ १६५ ॥

आठ प्रकारके दृष्टिरोग होते हैं। जैसे—पित्तविदग्ध, अम्लपित्तविदग्ध, उष्णविदग्ध, नकुलान्ध्य, धूसरान्ध्य, रात्र्यान्ध्य, ह्रस्वदृष्टि और गम्भीरदृष्टि ये ही दृष्टिरोगके आठों प्रकार हैं ॥ १६४ ॥ १६५ ॥

अभिष्यन्दरोगकी संख्या

अभिष्यन्दाश्च चत्वारो रक्ताद्दोषैस्त्रिभिस्तथा ।

अभिष्यन्द रोग चार प्रकारका होता है । जैसे—रक्ताभिष्यन्द, वाताभिष्यन्द, पित्ताभिष्यन्द एवं कफाभिष्यन्द ।

अधिमंथ रोग

चत्वारश्चाधिमंथाः स्युर्वातपित्तकफास्रतः ॥ १६६ ॥

चार ही प्रकारका अधिमन्थ रोग होता है । जैसे–वातज अधिमंथ, पित्तज अधिमंथ, कफज अधिमन्ध एवं रक्तज अधिमंथ, ॥ १६६ ॥

सर्वाक्षिरोग

सर्वाक्षिरोगाश्चाष्टौ स्युस्तेषु वातविपर्ययः ।

अल्पशोथोऽन्यतोवातस्तथा पाकात्ययः स्मृतः ॥ १६७ ॥

शुष्काक्षिपाकश्च तथा शोफोऽध्युषित एव च ।

हताधिमंथ इत्येते रोगाः सर्वाक्षिसंभवाः ॥ १६८ ॥

आठ प्रकारका सर्वाक्षिरोग (सारे नेत्रमें व्याप्त होनेवाला) होता है । जैसे–वातविपर्यय, अल्पशोष, अन्यतोवात, पाकात्यय, शुक्राक्षिपाक, शोफ, अध्युषित और हताधिमंथ ॥ १६७ ॥ १६८ ॥

षंढरोगकी संख्या

पुंस्त्वदोषाश्च पंचैव प्रोक्तास्तत्रेर्ष्यकः स्मृतः ।

आसेक्यश्चैव कुंभीकः सुगंधिः षंढसंज्ञकः ॥ १६९ ॥

षंढ (नपुंसकत्व) रोग पाँच प्रकारका होता है । जैसे–ईर्ष्यक, आसेक्य, कुंभीक, सुगंधि और षंढसंज्ञक, ये ही इसके पाँचों प्रकार हैं ॥ १६९ ॥

शुक्ररोगकी संख्या

शुक्रदोषास्तथाष्टौ स्युर्वातात्पित्तात्कफेन च ।

कुणपं चास्रपित्ताभ्यां पूयाभं श्लेष्मपित्ततः ॥ १७० ॥

क्षीणं च वातपित्ताभ्यां ग्रन्थिलं श्लेष्मवाततः ।

मलाभं संनिपाताच्च शुक्रदोषा इतीरिताः ॥ १७१ ॥

आठ प्रकारके शुक्ररोग होते हैं । जैसे–वातज, पित्तज, कफज, रक्तपित्तज (कुणपसंज्ञक), कफपित्तज (पूयाभ), वातपित्तज (क्षीण) और सन्निपातज (मलाभ) ये ही इसके आठों प्रकार हैं ॥ १७० ॥ १७१ ॥

स्त्रियोंके आर्तवदोषकी संख्या

अथ स्त्रीरोगनामानि प्रोच्यन्ते पूर्वशास्त्रतः।
अष्टावार्तवदोषाः स्युर्वातपित्तकफैस्त्रिधा ॥ १७२ ॥
पूयाभं कुणपं ग्रन्थि क्षीणं मलसमं तथा।

अब पूर्वशास्त्रके अनुसार स्त्रियोंके रोगोंके नाम गिनाते हुए सर्व प्रथम आर्तव (मासिक धर्म) रोगकी संख्या बतलाते हैं। जैसे—वातज, पित्तज, कफज, पूयाभ, कुणप, ग्रन्थि, क्षीण और मलसम, ये ही आठ आर्तव रोग हैं ॥ १७२ ॥

प्रदररोगकी संख्या

तथा च रक्तप्रदरं चतुर्विधमुदाहृतम् ॥ १७३ ॥
वातपित्तकफैस्त्रेधा चतुर्थं संनिपाततः।

प्रदर रोग चार प्रकारका होता है। जैसे—वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज ॥ १७३ ॥

योनिरोगकी संख्या

विंशतिर्योनिरोगाः स्युर्वातपित्तकफादपि ॥ १७४ ॥
संनिपाताच्च रक्ताच्च लोहितक्षयतस्तथा।
शुष्का च वमिनी चैव षण्ढी चांतर्मुखी तथा॥ १७५ ॥
सूचीमुखी विप्लुता च जातघ्नी च परिप्लुता।
उपप्लुता प्राक्चरणा महायोनिश्च कर्णिका॥ १७६ ॥
स्यान्नन्दा चातिचरणा योनिरोगा इतीरिताः।

बीस प्रकारके योनिरोग होते हैं। जैसे—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज, लोहितक्षय, शुष्का, वमिनी, षण्ढी, अन्तर्मुखी, सूचीमुखी, विप्लुता, जातघ्नी, परिप्लुता, उपप्लुता, प्राक्चरणा, महायोनि, कर्णिका, नन्दा और अतिचरणा, ये ही बीस प्रकारके योनिरोग हैं ॥ १७४—१७६ ॥

योनिकन्दरोगकी संख्या

चतुर्विधं योनिकन्दं वातापित्तकफैस्त्रिधा ॥ १७७ ॥
चतुर्थं संनिपातेन

चार प्रकारका योनिकन्द, रोग होता है। जैसे—वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज ये ही चार प्रकार योनिकन्द रोगके होते हैं ॥ १७७ ॥

गर्भज रोगकी संख्या

तथाष्टौ गर्भजा गदाः ।
उपविष्टकगर्भः स्यात्तथा नागोदरः स्मृतः ॥ १७८ ॥
मक्कलो मूढगर्भश्च विष्टम्भो गूढगर्भकः ।
जरायुदोषो गर्भस्य पातश्चाष्टमकः स्मृतः ॥ १७९ ॥

आठ प्रकारका गर्भरोग होता है। जैसे—उपविष्टक, नागोदर, मक्कल, मूढगर्भ, विष्टम्भ, गूढगर्भ, जरायुदोष और गर्भपात, ये ही आठों प्रकार गर्भरोग-के हैं ॥ १७८ ॥ १७९ ॥

स्तनरोगकी संख्या

पञ्चैव स्तनरोगाः स्युर्वातात्पित्तात्कफादपि ।
संनिपातात्क्षताच्चैव तथा स्तन्योद्भवा गदाः ॥ १८० ॥
बालरोगेषु गदिताः

पाँच प्रकारके स्तनरोग हैं। जैसे—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और क्षतज ये पाँचों प्रकारके स्तनरोग बालरोगके अन्तर्गत माने जाते हैं ॥ १८० ॥

स्त्रीदोषकी संख्या

स्त्रीदोषाश्च त्रयः स्मृताः ।
अदत्तपुरुषोत्पन्नः सपत्नीविहितस्तथा ॥ १८१ ॥
दैवाज्जातस्तृतीयस्तु

तीन प्रकारके स्त्रीदोष होते हैं। जैसे—अदत्तपुरुषोत्पन्न, सपत्नीविहित और दैविक ये ही तीनों दोष स्त्रियोंके हैं ॥ १८१ ॥

प्रसूतिरोग

तथा च सूतिकागदाः ।
ज्वरादयश्चिकित्स्यास्ते यथादोषं यथाबलम् ॥ १८२ ॥

बच्चा हो जानेके अनन्तर जो ज्वर आदि बाधाएँ उत्पन्न होती हैं, उन्हींको प्रसूतिरोग मानते हैं। वैद्योंको उचित है कि रोगोंके दोषानुसार बलाबल देखकर इसकी चिकित्सा करें ॥ १८२ ॥

बालरोगकी संख्या

द्वाविंशतिर्बालरोगास्तेषु क्षीरभवास्त्रयः ।
वातात्पित्तात्कफाच्चैव दन्तोद्भवश्चतुर्थकः ॥ १८३ ॥

दन्तघातो दन्तशब्दोऽकालदन्तोऽहिपूतनम्।
मुखपाको मुखस्रावो गुदपाकोपशीर्षके ॥ १८४ ॥
पार्श्वारुणस्तालुकण्ठो विच्छिन्नं पारिगर्भिकः।
दौर्बल्यं गात्रशोषश्च शय्यामूत्रं कुकूणकः ॥ १८५ ॥
रोदनं चाजगल्ली स्यादिति द्वाविंशतिः स्मृता।

बाईस प्रकारके बालरोग होते हैं। उनमें तीन तरहके स्तनसम्बन्धी विकार होते हैं। जैसे—वातज, पित्तज एवं कफज, दन्तोद्भेद, दन्तघात, दन्तशब्द, अकालदन्त, अहिपूतन, मुखपाक, मुखस्राव, गुदपाक, उपशीर्षक, पार्श्वारुण, तालुकण्ठ, विच्छिन्न, पारिगर्भिक, दौर्बल्य, गात्रशोष, शय्यामूत्र, कुकूणक, रोदन और अजगल्ली, ये ही बाईस प्रकारके बालरोग हैं ॥ १८३ ॥ १८४ ॥ १८५ ॥

बालग्रहरोगकी संख्या

तथा बालग्रहाः ख्याता द्वादशैव मुनीश्वरैः ॥ १८६ ॥
स्कंदग्रहो विशाखः स्यात्स्वग्रहश्च पितृग्रहः।
नैगमेयग्रहस्तद्वच्छकुनिः शीतपूतना ॥ १८७ ॥
मुखमंडनिका तद्वत्पूतना चान्धपूतना।
रेवती चैव संख्याता तथा स्याच्छुष्करेवती ॥ १८८ ॥

प्राचीन मुनियोंने बारह प्रकारके बालग्रहरोग गिनाये हैं। जैसे—स्कन्धग्रह, विशाखग्रह, स्वग्रह, पितृग्रह, नैगमेयग्रह, शकुनि, शीतपूतना, मुखमंडनिका, पूतना, अन्धपूतना, रेवती और शुष्करेवती ये ही बारह बालग्रह रोग हैं ॥ १८६–१८८॥

अनुक्त रोगोंका संग्रह

तथा चरणभेदास्तु वातरक्तादिकाश्च ये।
द्विचत्वारिंशदुक्तास्ते रोगेष्वेव मुनीश्वरैः ॥ १८९ ॥
द्विषष्टिर्दोषभेदाः स्युः सन्निपातादिकाश्च ये।
तेऽपि रोगेषु गणिताः पृथक्प्रोक्ता न ते क्वचित् ॥ १९० ॥

वातरक्त रोगमें जो पादभेदके भेद बतलाये हैं, उन्हींके अन्तर्गत और बयालीस भेद मुनियों द्वारा बतलाये गये हैं। बासठ प्रकारके जो सन्निपातादि दोषभेद बतलाये हैं, वे सब भी वातव्याधिके अन्तर्गत ही जानने चाहियें। क्योंकि अलग कहीं भी उनका उल्लेख नहीं किया गया है ॥ १८९ ॥ १९० ॥

पंचकर्मोंके मिथ्यादि योगसे होनेवाले रोग

हीनमिथ्यातियोगानां भेदाः पंचदशोदिताः ।
पंचकर्मभवा रोगा रोगेष्वेव प्रकीर्तिताः ॥ १६१ ॥

वमन, विरेचन, निरूहणबस्ति, अनुवासनबस्ति और नस्य ये पाँचकर्म आगे चलकर उत्तरखण्डमें कहे जानेवाले हैं। उन पाँचों कर्मोंमेंसे जिस किसी कर्मका हीनयोग, मिथ्यायोग या अतियोग होता तो इन्हीं तीन कारणोंसे तीन प्रकारके रोग उत्पन्न होते है। इस प्रकार उन पाँचोंको मिलानेसे उनके पन्द्रह भेद हो जाते हैं। उनका अन्तर्भाव उक्त रोगोंमें ही हुआ करता है, अन्यत्र नहीं ॥ १६१ ॥

(१) वमन–

किसी उपयोगी औषधि द्वारा रद्द करानेके निमित्त जो प्रयोग किया जाता, उसे लोग वमनक्रिया कहते हैं।

(२) विरेचन–

किसी औषधिसे दस्त लानेकी जो क्रिया की जाती, उसकी विरेचन संज्ञा है

(३) निरूहणबस्ति–

पिचकारीसे गुदामें औषधिप्रवेशकी क्रिया निरूहणबस्ति कही जाती है।

(४) अनुवासनबस्ति–

ऊपर निरूहण बस्तिकी क्रियाके अनुरूप ही जो प्रयोग किया जाता, वह अनुवासन बस्ति कहलाता है।

(५) नस्य–

नाकमें औषध डालकर जो चिकित्सा की जाती, उसकी नस्य संज्ञा है।

(६) हीनयोग–

जिस औषधिका जो परिमाण बतलाया गया है, उससे कम परिमाणमें उपयोग करनेकी क्रिया हीनयोग कहलाती है।

(७) मिथ्यायोग–

जिसमें परिमाणविहीन उपयोग किया जाता, उसे मिथ्यायोग कहते हैं।

(८) अतियोग—

विहित परिमाणसे अधिक परिमाणके उपयोगको अतियोग कहते हैं।

स्नेहादिकोंसे होनेवाले रोग

स्नेहस्वेदौ तथा धूमो गण्डूषोऽञ्जनतर्पणे ।
अष्टादशैतज्जाः पीडास्तास्ताश्च रोगेषु लक्षिताः ॥ १९२ ॥

स्वेद, स्नेह, धूम, गण्डूष, अञ्जन, तर्पण इन छहोंके हीनयोग, मिथ्यायोग और अतियोगके मिलनेसे इनके अठारह भेद हो जाते हैं। उनसे उत्पन्न होनेवाले समस्त रोग उन रोगोंमें ही लक्षित किये गये हैं।

(१) स्वेदविधि—

शरीरमें पसीना लानेके लिए जो उपचार किया जाता, उसे स्वेदविधि कहते हैं।

(२) स्नेहपान—

तैल, घृत आदि स्निग्ध पदार्थ पिलाकर जो चिकित्सा की जाती, उसे स्नेहपान कहते हैं।

(३) धूम्रपान—

हुक्का अथवा चिलमपर रखकर जिस औषधिपान द्वारा चिकित्सा की जाती, उसकी धूम्रपान संज्ञा है।

(४) गण्डूषविधि—

किसी औषधि अथवा रस आदिके द्वारा कुल्ली करानेकी क्रिया गण्डूषविधि कहलाती है।

(५) अंजनविधि—

नेत्रमें औषधि डालकर जो चिकित्सा जाती, उसे अंजनविधि कहते हैं।

(६) तर्पण—

किसी औषधिके सहारे धातुओंकी वृद्धिके लिए जो प्रयोग किये जाते, उनकी तर्पण संज्ञा है। कुछ लोग नेत्रकी तृप्तिको भी तर्पण ही कहते हैं ॥१९२॥

शीतादिकोंसे होनेवाले रोग

शीतोपद्रव एकः स्यादेकश्चोष्णोपतापकः ।
शल्योपद्रव एकश्च क्षाराच्चैकः स्मृतस्तथा ॥ १९३ ॥

एक प्रकारका रोग शीतके उपद्रवसे, एक प्रकारका गर्मीके उपद्रवसे (अत्यन्त गरमी पहुँचानेवाला) एक ही प्रकारका शल्यसे जायमान उपद्रव और एक ही

प्रकारका उपद्रव क्षारसे होता है। ये ही चार प्रकारके उपद्रव शीतादिकोंसे होते हैं ॥ १९३ ॥

विषरोग

स्थावरं जंगमं चैव कृत्रिमं च त्रिधा विषम्।
तेषां च कालकूटाद्यैर्नवधा स्थावरं विषम् ॥ १९४ ॥
जंगमं बहुधा प्रोक्तं तत्र लूताभुजंगमाः।
वृश्चिका मूषकाः कीटाः प्रत्येकं ते चतुर्विधाः ॥ १९५ ॥
दंष्ट्राविषं नखविषं बालशृंगास्थिभिस्तथा।
मूत्रात्पुरीषाच्छुक्राच्च दृष्टेर्निःश्वासतस्तथा ॥ १९६ ॥
लालायाः स्पर्शतस्तद्वत्तथा शंकाविषं मतम्।
कृत्रिमं द्विविधं प्रोक्तं गरदूषीविभेदतः ॥ १९७ ॥

विष तीन प्रकारके होते हैं जैसे–स्थावर, जंगम और कृत्रिम। उनमें कालकूट आदि भेदोंसे कालकूट विष नौ प्रकारका होता है। जंगम विष बहुत प्रकारके होते हैं। जैसे लूता (मकड़ी) भुजंगम, वृश्चिक, मूषक, कीट आदि भेदोंसे प्रत्येक जंगम विषके चार भेद होते हैं। जैसे–दाढ़, नख, केश, सींग, हड्डी, मूत्र, मल, शुक्र, धातु, दृष्टि, श्वाव, लार और स्पर्श आदि। किसी प्रकारकी शंका होनेसे यदि वायु कुपित हो जाय, इस कारण सारी देह फूल जाय और ज्वर आदि भीषण उपद्रव घेर लें तो उसे लोग शंकाविष कहते हैं। गर और दूषिका, इन दो भेदोंसे कृत्रिम विष दो प्रकारका होता है ॥ १९४–१९७ ॥

विषके भेद

सप्तधातुविषं ज्ञेयं तथा सप्तोपधातुजम्।
तथैवोपविषेभ्यश्च जातं सप्तविधं ततः ॥ १९८ ॥

धातुसे जायमान सात प्रकारके विष हैं अर्थात् सुवर्ण आदि सात धातुओंकी शुद्धि किये विना भस्म करके खानेसे, उसी प्रकार हरिताल आदि सात धातुओंकी अशुद्ध भस्म और आक आदि अशुद्ध उपविषको खानेसे विषके समान ही क्लेशका सामना करना पड़ता है। इसीलिए इनका विषके अन्तर्गत ही समावेश किया गया है ॥ १९८ ॥

विषके अन्य भेद

दुष्टनीरविषं चैकं तथैकं दिग्धजं विषम् ।

एक प्रकारका दूषित जलसे जायमान विष और एक ही प्रकारका विषसे बुझाये अस्त्र-शस्त्रके प्रहारसे जायमान घाव आदि यह जल्दी अच्छा नहीं होने आता और उसमें भी विषके समान ही ज्वर आदि उपद्रव होते हैं ॥

विषके उपद्रव

कपिकच्छुभवा कंडू दुष्टनीरभवा तथा ॥ १९९ ॥
तथा सूरणकंडूश्च शोथो भल्लातजस्तथा ।

केंवाचके लोम, दूषित जल, सूरन तथा भेलावेके तेलका स्पर्श हो जानेपर शरीरमें सूजन हो आती और खुजली होने लगती है । ये ही इसके उपद्रव होते हैं ॥ १९९ ॥

मदके भेद

मदश्चतुर्विधश्चान्यः पूगभंगाक्षकोद्रवैः ॥ २०० ॥
चतुर्विधोऽन्यो द्रव्याणां फलत्वङ्मूलपत्रजः ।

सुपारी, भाँग, बहेड़ेके फलके भीतरका बीज और कोदो, ये चार चीजें खानेसे चार प्रकारके मद उत्पन्न होते हैं । इस बातका उल्लेख मदात्यय रोगमें भी किया गया है । चार ही प्रकारका मद और-और चीज़ोंके फल, छाल, मूल और पत्र खानेसे भी होता है ॥ २०० ॥

इति प्रसिद्धा गणिता ये किलोपद्रवा भुवि ।
असंख्याश्चापरे धातुमूलजीवादिसम्भवाः ॥ २०१ ॥

इस प्रकार प्रसिद्ध-प्रसिद्ध उपद्रवों और रोगोंकी संख्या गिनायी है । इनके सिवाय स्वर्ण आदि धातु अनेक प्रकारकी वनस्पतियों, औषधियों और जीव आदिसे भी उपद्रव उत्पन्न होते हैं । उनकी अनन्त संख्या है । केवल अनुमान ही उस विषयमें काम दे सकता है ॥ २०१ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां पूर्वखण्डे रोगगणनानाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

समाप्तोऽयं प्रथमः खण्डः ।

श्री हरिः ।

अथ मध्यखण्डम्

प्रथमोऽध्यायः

कषायके पाँच प्रकार

अथातः स्वरसः कल्कः क्वाथश्च हिमफांटकौ ।
ज्ञेयाः कषायाः पंचैते लघवः स्युर्यथोत्तरम् ।। १ ।।

इसके अनन्तर शार्ङ्गधराचार्य चिकित्साका प्रकरण बतलाते हुए पहले पाँच प्रकारके कषायोंकी गणना करते हैं । जैसे—स्वरस, कल्क, क्वाथ, हिम और फांट इन पाँचोंकी कषाय संज्ञा है । ये पाँचों क्रमशः एककी अपेक्षा दूसरे हल्के हैं । किसी भी वनस्पतिके अंगोंसे जो रस निकलता, वह स्वरस कहलाता है । स्वरसकी अपेक्षा कल्क, कल्ककी अपेक्षा क्वाथ,-क्वाथकी अपेक्षा हिम और हिमकी अपेक्षा फांट हल्का होता है ।। १ ।।

स्वरसकी विधि

अहतात्तत्क्षणात्कृष्टाद्द्रव्यात्क्षुण्णात्समुद्भवः ।
वस्त्रनिष्पीडितो यः स रसः स्वरस उच्यते ।। २ ।।

जो औषधि कृमि, अग्नि, पवन तथा जल आदिके संयोगसे विकृत न हुई हो यानी ताजी हो, उसे तुरन्त कूटकर वस्त्रसे निचोड़नेपर निकले रसको लोग स्वरस कहते हैं ।। २ ।।

स्वरसकी दूसरी विधि

कुडवं चूर्णितं द्रव्यं क्षिप्तं चेद्द्विगुणे जले ।
अहोरात्रं स्थितं तस्माद्भवेद्वा रस उत्तमः ।। ३ ।।

अथवा एक कुडव (१६ तोले) सूखी औषधिको कूटकर चूर्ण कर ले । तदनन्तर औषधिसे द्विगुण जल डालकर उसे रात-दिन भीगने दे और दूसरे दिन खूब

अच्छी तरह उस औषधिको मलकर उसका पानी कपड़ेसे छान ले। यह भी एक प्रकारका स्वरस ही माना जाता है ॥ ३ ॥

तीसरी विधि

आदाय शुष्कद्रव्यं वा स्वरसानामसंभवे ।
जलेऽष्टगुणिते साध्यं पादशेषं च गृह्यते ॥ ४ ॥

संयोग वश यदि ताजी (गीली) औषधि न मिल सके तो सूखी ही ले आवे और औषधिकी अपेक्षा उसमें आठगुना पानी डालकर आगपर चढ़ा दे। जलते-जलते जब एक चौथाई पानी रह जाय तो उसे उतारकर कपड़ेसे छान ले। यह भी एक प्रकारका स्वरस कहलाता है ॥ ४ ॥

स्वरसकी मात्रा

स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्धं प्रयोजयेत् ।
निःशोषितं चाग्निसिद्धं पलमात्रं रसं पिबेत् ॥ ५ ॥

स्वरस एक गुरु वस्तु है। अतएव केवल आधा पल (दो) तोले उसका सेवन करना चाहिये। ऊपर बतलायी रीतिके अनुसार जिस औषधिको भिगोकर स्वरस निकाला गया हो, उसके सेवनको चार तोले स्वरस लेना चाहिये ॥ ५ ॥

स्वरसमें औषधियोंके डालनेका परिमाण

मधुश्वेतागुडक्षाराञ्जीरकं लवणं तथा ।
घृतं तैलं च चूर्णादीन्कोलमात्रं रसे क्षिपेत् ॥ ६ ॥

शहद, खाँड़, गुड़, जवाखार, जीरा, नमक, घी, तेल तथा चूर्ण आदि एक कोल (छ मासा) लेकर स्वरसमें डालना चाहिए ॥ ६ ।

अथ स्वरसप्रकरणम् ।

प्रमेहपर अमृतादि स्वरस

अमृताया रसः क्षौद्रयुक्तः सर्वप्रमेहजित् ।
हारिद्रचूर्णयुक्तो वा रसो धात्र्याः समाक्षिकः ॥ ७ ॥

यदि गिलोयके स्वरसको शहद मिलाकर पिया जाय तो सब प्रकारके प्रमेह दूर हो जाते हैं। ऐसा न हो सके तो आमलेके स्वरसमें स्वरसके समान भाग हल्दीका चूर्ण मिलाकर पीवे, इससे भी प्रमेहकी शान्ति हो जाती है ॥ ७ ॥

रक्तपित्तादिकोंपर वासकादि स्वरस

वासकस्वरसः पेयो मधुना रक्तपित्तजित् ।
ज्वरकासक्षयहरः कामलाश्लेष्मपित्तहा ॥ ८ ॥

त्रिफलाया रसः क्षौद्रयुक्तो दार्वीरसोऽथवा ।
निम्बस्य वा गुडूच्या वा पीतो जयति कामलाम् ॥ ९ ॥

यदि अडूसेके स्वरसको शहदके साथ पिया जाय तो रक्तपित्तकी शान्ति हो जाती है साथ ही ज्वर, खाँसी तथा क्षयरोग भी दूर हो जाता है। इसके अतिरिक्त यदि त्रिफला, दारु हल्दी, नीमकी छाल और गुरुचके रसको मधु मिलाकर पिया जाय तो कफ तथा पित्तदोषकी शान्ति होती और कामला रोग भी दूर हो जाता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

विषमज्वरपर तुलसी और द्रोणपुष्पीका रस

पीतो मरिचचूर्णेन तुलसीपत्रजो रसः ।
द्रोणपुष्पीरसो वापि निहंति विषमज्वरान् ॥ १० ॥

यदि तुलसीके पत्तोंके स्वरस अथवा द्रोणपुष्पी (गूमा)के स्वरसमें काली मिर्चका चूर्ण मिलाकर पीवे तो विषम ज्वर शान्त हो जाता है ॥ १० ॥

रक्तातिसारपर जम्ब्वादि स्वरस

जम्ब्वाम्रामलकीनां च पल्लवोत्थो रसो जयेत् ।
मध्वाज्यक्षीरसंयुक्तो रक्तातीसारमुल्बणम् ॥ ११ ॥

यदि जामुन, आम तथा आँवलेके रसको शहद, घी तथा दूधके साथ पीवे तो भयंकर अतीसार रोग भी दूर हो जाता है ॥ ११ ॥

सब अतिसारोंपर स्थूल बब्बुल्यादि स्वरस

स्थूलबब्बूलिकापत्ररसः पानाद्व्यपोहति ।
सर्वातिसारान्छ्योनाककुटजत्वग्रसोऽथवा ॥ १२ ॥

यदि स्थूल यानी बिना काँटे वाली बबूलकी पत्तियोंके रसको पीवे तो सब प्रकारका अतीसार रोग शान्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त टेंटू अथवा कुड़ेकी छालका रस भी सब प्रकारके अतीसारको दूर करता है ॥ १२ ॥

वृषणवात और श्वासपर आर्द्रक स्वरस

आर्द्रकस्वरसः क्षौद्रयुक्तो वृषणवातनुत् ।
श्वासकासारुचीर्हन्ति प्रतिश्यायं व्यपोहति ॥ १३ ॥

यदि अदरखके स्वरसको शहदके साथ पीवे तो अण्डकोषकी बादी शान्त हो जाती और श्वास, कास, अरुचि तथा जुकाम भी दूर हो जाता है ॥ १३ ॥

पार्श्वादि शूलोंपर बिजौरेका स्वरस

बीजपूररसः पानान्मधुक्षारयुतो जयेत् ।
पार्श्वहृद्बस्तिशूलानि कोष्ठवायुं च दारुणम् ॥ १४ ॥

यदि बिजौरेके स्वरसको शहद अथवा जवाखार मिलाकर पीवे तो पार्श्व (पशलियों), हृदय तथा बस्ति (पेंडूके ऊपरी हिस्से) के शूलकी शान्ति हो जाती है, इससे दारुण कोष्ठवायु भी दूर हो जाता है ॥ १४ ॥

पित्तशूलपर शतावरका स्वरस और तिल्लीपर घीगुवारका स्वरस

शतावर्याश्च मधुना पित्तशूलहरो रसः ।
निशाचूर्णयुतः कन्यारसः प्लीहापचीहरः ॥ १५ ॥

शतावरका स्वरस शहद मिलाकर पीनेसे पित्तशूल दूर हो जाता और घीकुवारके स्वरसमें हल्दीका चूर्ण मिलाकर पिया जाय तो प्लीहा तथा अपची रोग दूर हो जाता है ॥ १५ ॥

गंडमालापर अलंबुषारस

अलंबुषायाः स्वरसः पीतो द्विपलमात्रया ।
अपचीगण्डमालानां कामलायाश्च नाशनः ॥ १६ ॥

यदि अलंबुषा (गोरखमुंडी) के स्वरसको रोज़ दो पल पीवे तो अपची, गण्डमाला तथा कामला रोग दूर हो जाता है ॥ १६ ॥

सूर्यावर्त्तादिकोंपर मुण्डीरस

रसो मुंड्याः सकोष्णो वा मरिचैरवधूलितः ।
जयेत्सप्तदिनाभ्यासात्सूर्यावर्तार्धभेदकौ ॥ १७ ॥

यदि गोरखमुंडीके रसको थोड़ा गरम करके काली मिर्चका चूर्ण मिलाकर केवल सात दिन तक पीवे तो सूर्यावर्त तथा अर्धावभेदक रोग दूर हो जाता है ॥ १७ ॥

उन्मादरोगपर ब्राह्मयादिका स्वरस

ब्राह्मीकूष्मांडषड्ग्रंथाशंखिनीस्वरसः पृथक् ।
मधुकुष्ठयुतः पीतः सर्वोन्मादापहारकः ॥ १८ ॥

यदि ब्राह्मी, सफेद कुम्हड़ा तथा शंखपुष्पी, इनमेंसे किसी एकके स्वरसको शहद तथा कूठका चूर्ण मिलाकर पीवे तो सब तरहका उन्माद रोग दूर हो जाता है ॥ १८ ॥

मदरोगपर कूष्मांडक स्वरस

कूष्माण्डकस्य स्वरसो गुडेन सह योजितः ।
दुष्टकोद्रवसंजातं मदं पानाद्व्यपोहति ॥ १९ ॥

यदि सफेद कुम्हड़ेके रसको गुड़के साथ पीवे तो दुष्ट कोदौ (मतौने कोदौ) का मद दूर हो जाता है ॥ १९ ॥

व्रणरोगपर गांगेरुकी स्वरस

खड्गादिच्छिन्नगात्रस्य तत्कालपूरितो व्रणः ।
गांगेरुकीमूलरसैर्जायते गतवेदनः ॥ २० ॥

यदि गंगेरन की जड़का स्वरस निकालकर तलवार आदि शस्त्रोंके घावमें भर दिया जाय तो तत्काल पीड़ा दूर हो जाती है ॥ २० ॥

अथ पुटपाकप्रकरणम् ।

पुटपाक कहनेका कारण

पुटपाकस्य कल्कस्य स्वरसो गृह्यते यतः ।
अतस्तु पुटपाकानां युक्तिरत्रोच्यते मया ॥ २१ ॥

क्योंकि कल्कका पुटपाक करके उसका भी स्वरस लिया जाता है, इसलिये अब पुटपाककी विधि बतलाते हैं ॥ २१ ॥

पुटपाककी विधि

पुटपाकस्य मात्रेयं लेपस्यांगारवर्णता ।
लेपं च द्व्यंगुलं स्थूलं कुर्याद्व्यंगुलमात्रकम् ॥ २२ ॥
काश्मरीवटजम्ब्वाम्रपत्रैर्वेष्टनमुत्तमम् ।
पलमात्रं रसो ग्राह्यः कर्षमात्रं मधु क्षिपेत् ॥ २३ ॥
कल्कचूर्णद्रवाद्यास्तु देयाः स्वरसवद्बुधैः ।

पुटपाक करनेकी रीति यह है कि गीली वनस्पति कूट-पीसकर एक गोला सा बना ले। फिर उसे गम्भारी, बरगद तथा जामुनके पत्तेमें लपेटे और उसके ऊपर एक अंगुल या दो अंगुल मोटा मिट्टीका लेप करे। उस गोलेको उपलोंके बीचमें रखकर आग लगा दे और तबतक उसे जलने दे, जबतक ऊपरकी मिट्टी लाल न हो जाय। लाल हो जानेपर उसके ऊपरकी मिट्टी तथा पत्ता दूर कर दे और औषधिके गोलेसे रस निचोड़ ले। इसीकी पुटपाक संज्ञा है। इसके सेवनका परिमाण चार तोले होता है। यदि शहद डालना हो तो दो तोले डाल सकते हैं। इसके अतिरिक्त कल्क, चूर्ण तथा दूध आदि द्रव द्रव्य स्वरसके समान भागका ही डालना चाहिये ॥ २२ ॥ २३ ॥

सर्वातिसारपर कुटजपुटपाक

तत्कालाकृष्टकुटजत्वचं तंडुलवारिणा ॥ २४ ॥
पिष्टां चतुः पलमितां जंबूपल्लववेष्टिताम् ।
सूत्रेण बद्धां गोधूमपिष्टेन परिवेष्टिताम् ॥ २५ ॥
लिप्तां च घनपंकेन गोमयैर्वह्निना दहेत् ।
अंगारवर्णां च मृदं दृष्ट्वा वह्नेः समुद्धरेत् ॥ २६ ॥
ततो रसं गृहीत्वा च शीतं क्षौद्रयुतं पिबेत् ।
जयेत्सर्वानतीसारान्दुस्तरान्सुचिरोत्थितान् ॥ २७ ॥

ताजी कोरैयाकी छाल ४ पल ले और चावलके धोवनके जलमें पीसकर उसका गोला बना ले। तदनन्तर उसे जामुनके पत्तोंमें लपेटकर सूतसे बाँध दे। ऊपरसे गेहूँका आटा सानकर लपेट दे और उसके ऊपर गाढ़ी-गाढ़ी मिट्टीका लेप करे। फिर उसको उपलोंके बीचमें रखकर फूँक दे। जब ऊपरकी मिट्टी लाल हो जाय तब ऊपरकी मिट्टी, पिसान तथा पत्ते आदि दूर करके गोलेको कपड़ेमें रखकर रस निचोड़ ले। जब वह ठण्ढा हो जाय तो शहद मिलाकर सेवन करे। इसके पीनेसे कितने ही दिनोंका पुराना अतीसार दूर हो जाया करता है ॥२४–२७॥

चावलोंका धोवन निकालनेकी विधि

कंडितं तंडुलपलं जलेऽष्टगुणिते क्षिपेत् ।
भावयित्वा जलं ग्राह्यं देयं सर्वत्र कर्मसु ॥ २८ ॥

एक पल अर्थात् चार तोले छाँटे और बीने-फटके चावलोंमें अठगुना पानी मिलाकर अच्छी तरह मल-मलकर धोवे। चावल अलग करके लिया हुआ यह पानी ही ऊपर बतलायी औषधिमें तथा जहाँ-कहीं आवश्यकता पड़े काममें लाना चाहिए ॥ २८ ॥

सर्वातिसारपर अरलुपुटपाक

अरलुत्वक्कृतश्चैव पुटपाकोऽग्निदीपनः ।
मधुमोचरसाभ्यां च युक्तः सर्वातिसारजित् ॥ २९ ॥

टेंटूकी ताजी छालको कूटकर गोला बना ले। फिर पूर्वोक्त रीतिके अनुसार पुटपाक सिद्ध करे और उसका रस निकालकर उसमें शहद तथा और मोचरसका चूर्ण डालकर पीवे तो सब प्रकारके अतीसार नष्ट हो जाते हैं ॥२९॥

न्यग्रोधादि पुटपाक

न्यग्रोधादेश्च कल्केन पूरयेद्गौरतित्तिरेः ।
निरंत्रमुदरं सम्यक्पुटपाकेन तत्पचेत् ॥ ३० ॥
तत्कल्कः स्वरसः क्षौद्रयुक्तः सर्वातिसारनुत् ।

न्यग्रोध (बड़-गूलर) आदिकी छालको कूटकर पानीमें पीसे फिर उसको सफेद तीतरके अँतड़ीरहित साफ पेटमें भरकर पुटपाककी रीतिके अनुसार सिद्ध कर ले। जब मिट्टी लाल हो जाय तब मिट्टी आदि दूर करके तीतरके पेटसे औषधि निकालकर निचोड़ ले और शहद मिलाकर पीवे तो सब प्रकारका अतीसार रोग दूर हो जाता है ॥ ३० ॥

दाडिमादि पुटपाक

पुटपाकेन विपचेत्सुपक्वं दाडिमीफलम् ॥ ३१ ॥
तद्रसो मधुसंयुक्तः सर्वातीसारनाशनः ।

पके हुए अनारको पूर्वोक्त पुटपाककी विधिसे पकावे और उसके रसको शहद मिलाकर पीवे तो सब प्रकारका अतीसार दूर हो जाता है ॥ ३१ ॥

बीजपूरादि पुटपाक

बीजपूराम्रजम्बूनां पल्लवानि जटाः पृथक् ॥ ३२ ॥
विपचेत्पुटपाकेन क्षौद्रयुक्तश्च तद्रसः ।
छर्दिं निवारयेद्घोरां सर्वदोषसमुद्भवाम् ॥ ३३ ॥

बिजौरा, नीबू आम और जामुन, इनके पत्ते या जड़को लेकर पूर्वकथित रीतिके अनुसार गोला बनाकर पुटपाककी विधिसे पकावे । सिद्ध हो जानेपर रस निकाल ले और शहद मिलाकर सेवन करे तो वह रस सब प्रकारके वमन रोगको दूर कर देता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

पिष्टानां वृषपत्राणां पुटपाकरसो हिमः ।
मधुयुक्तो जयेद्रक्तपित्तकासज्वरक्षयान् ॥ ३४ ॥

यदि पिसे हुए बाँसके पत्तेका पुटपाक करके उससे निकले रसको शहदके साथ पीवे तो रक्तपित्त, खाँसी, ज्वर तथा क्षयरोग नष्ट हो जाता है ॥ ३४ ॥

कंटकारि पुटपाक

पचेत्क्षुद्रां सपञ्चांगां पुटपाकेन तद्रसः ।
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तः कासश्वासकफापहः ॥ ३५ ॥

पाँचों अंगों समेत छोटी कटेरीका पुटपाक बनाकर उसके रसमें पिप्पलीका चूर्ण मिलाकर पीनेसे खाँसी, श्वास तथा कफ नष्ट हो जाया करता है ॥३५॥

बिभीतक पुटपाक

बिभीतकफलं किंचिद्घृतेनाभ्यज्य लेपयेत् ।
गोधूमपिष्टेनांगारैर्विपचेत्पुटपाकवत् ॥ ३६ ॥
ततः पक्वं समुद्धृत्य त्वचं तस्य मुखे क्षिपेत् ।
कासश्वासप्रतिश्यायस्वरभंगाञ्जयेत्ततः ॥ ३७ ॥

बहेड़ेके फलको थोड़ासा घी लगाकर उसके ऊपर गेहूँके आँटेका लेप करके पुटपाककी विधिसे पकावे । पक जानेके बाद उसे निकाल ले और उसके छिलकेको मुखमें रक्खे तो खाँसी, श्वास, जुकाम तथा स्वरभंग आदि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

आमातिसारपर शुंठीपुटपाक

चूर्णं किंचिद्घृताभ्यक्तं शुंठ्या एरंडजैर्दलैः ।
वेष्टितं पुटपाकेन विपचेन्मंदवह्निना ॥ ३८ ॥
तत उद्धृत्य तच्चूर्णं ग्राह्यं प्रातः सितान्वितम् ।
तेन याति शमं पीडा आमातीसारसंभवाः ॥ ३९ ॥

सोंठको कूटकर एक गोला बनावे, उसके ऊपर थोड़ेसे घीका लेप कर दे। इसके बाद रेंड़के पत्तोंमें लपेटकर पुटपाककी विधिसे पकावे। पक जानेपर निकाल ले और उसमें खाँड़ मिलाकर सवेरेके समय खाय तो आमातीसार (आँव गिरने) की असह्य पीड़ा शान्त हो जाती है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

आमवातपर दूसरा शुंठीपुटपाक

शुंठीकल्कं विनिक्षिप्य रसैरेरंडमूलजैः ।
विपचेत्पुटपाकेन तद्रसः क्षौद्रसंयुतः ॥ ४० ॥
आमवातसमुद्भूतां पीडां जयति दुस्तराम् ।

सोंठके चूर्णको डाल करके रेंड़की जड़ पीसकर गोला बनावे और उसको पुटपाककी विधिसे पकाकर रस निकाल ले। इसको शहदके साथ पीनेसे आमवातसे उत्पन्न घोर पीड़ा भी दूर हो जाती है ॥ ४० ॥

बवासीरपर सूरणपुटपाक

सौरणं कन्दमादाय पुटपाकेन पाचयेत् ॥ ४१ ॥
स तैललवणस्तस्य रसश्चार्शोविकारनुत् ।

जिमीकन्दको कूटकर गोला बनावे और पुटपाककी विधिसे पका ले। जब पक जाय तो उसका रस निचोड़कर उसमें कड़ुआ तेल तथा नमक डालकर पिये। इसके पीनेसे बवासीरकी भयानक पीड़ा भी दूर हो जाती है ॥ ४१ ॥

हृदयशूलपर मृगशृङ्ग भस्म

शरावसंपुटे दग्धं शृंगं हरिणजं पिबेत् ।
गव्येन सर्पिषा पिष्टं हृच्छूलं नश्यति ध्रुवम् ॥ ४२ ॥

मिट्टीके कसोरेको सम्पुट करके अर्थात् एक कसोरेमें हिरनकी सींगके कुछ टुकड़े रखकर दूसरे कसोरेसे उसे ढाँक दे और उसके उपर मिट्टीका लेप चढ़ावे। फिर उसे उपलोंमें रखकर फूँक दे। जल जानेपर इस भस्मको गौके घीमें मिलाकर चाटे तो हृदयका शूल दूर हो जाता है ॥ ४२ ॥

इति श्रीशाङ्गधरसंहितायां मध्यखण्डे स्वरसादिकल्पनानाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

क्वाथप्रकरणम्

काढ़ा बनानेकीविधि

पानीयं षोडशगुणं क्षुण्णे द्रव्यपले क्षिपेत् ।
मृत्पात्रे क्वाथयेद्ग्राह्यमष्टमांशावशेषितम् ॥ १ ॥
तज्जलं पाययेद्धीमान्कोष्णं मृद्वग्निसाधितम् ।
शृतः क्वाथः कषायश्च निर्यूहः स निगद्यते ॥ २ ॥
आहाररसपाके च संजाते द्विपलोन्मितम् ।
वृद्धवैद्योपदेशेन पिवेत्क्वाथं सुपाचितम् ॥ ३ ॥

एक पल औषधिको सोलह पल पानीमें डालकर मन्द अग्निसे पकावे । जब दो पल पानी बच जाय तब उतारे और कुछ गुनागुना रहते ही पीवे । शृत, क्वाथ, कषाय और निर्यूह, ये चार क्वाथके नाम हैं । अनुभवी वैद्यको चाहिये कि खूब अच्छी तरह पका हुआ काढ़ा रोगीको दे । इसकी मात्रा दो पल अर्थात् चार तोलेकी रहती है ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

काढ़ेमें खांड और शहद डालनेका परिमाण

क्वाथे क्षिपेत्सितामंशैश्चतुर्थाष्टमषोडशैः ।
वातपित्तकफातंके विपरीतं मधु स्मृतम् ॥ ४ ॥

यदि काढ़ेमें खाँड डालनी हो तो वातज रोगमें काढ़ेकी चौथाई, पित्तज रोगोंमें अष्टमांश और श्लेष्मज रोगोंमें काढ़ेका षोडशांश डालना चाहिये । किन्तु शहदके लिए विपरीत नियम है । जैसे-वातज रोगोंमें षोडशांश, पित्तसे जायमान रोगोंमें अष्टमांश और कफके प्रकोपसे उत्पन्न रोगोंमें एक चौथाई शहद डालना चाहिये ॥ ४ ॥

चूर्णद्रव्य तथा द्रवद्रव्यका परिमाण

जीरकं गुग्गुलुं क्षारं लवणं च शिलाजतु ।
हिंगु त्रिकटुकं चैव क्वाथे शाणोन्मितं क्षिपेत् ॥ ५ ॥
क्षीरं घृतं गुडं मूत्रं चान्यद्द्रवं तथा ।
कल्कं चूर्णादिकं क्वाथे निक्षिपेत्कर्षसंमितम् ॥ ६ ॥

यदि काढ़ेमें जीरा, गूगुल, जवाखार, सेंधा नमक, शिलाजीत, हींग अथवा त्रिकुटा, ये पदार्थ डालने हों तो शाण प्रमाण अर्थात् चार मासे डाले। उसी तरह दूध, घी, गुड़, तेल तथा गोमूत्रादि तरल पदार्थ काढ़ेमें डालने हों तो एक कर्ष यानी केवल दो तोले डालना चाहिये। कल्क और चूर्णके लिए भी यही परिमाण निश्चित है ॥ ५ ॥ ६ ॥

काढेके पात्रको ढकनेका निषेध

अपिधानमुखे पात्रे जलं दुर्जरतां व्रजेत्।
तस्मादावरणं त्यक्त्वा क्वाथादीनां विनिश्चयः ॥ ७ ॥

काढ़ा तैयार करते समय पात्रको किसी चीजसे ढाँके नहीं। क्योंकि ढाँकनेसे काढ़ा अच्छी तरह पकता नहीं और भारी हो जाता है। इसलिये ढकन हटाकर ही काढ़ा पकावे। यह नियम सब काढ़ोंके लिए लागू है ॥ ७ ॥

सर्वज्वरपर गुडूच्यादि काढ़ा

गुडूचीधान्यकारिष्टरक्तचंदनपद्मकैः।
गुडूच्यादिगणक्वाथः सर्वज्वरहरः स्मृतः ॥ ८ ॥
दीपनो दाहहृल्लासतृष्णाछर्द्यरुचीर्जयेत्।

गिलोय, धनियाँ, नीमकी छाल, लाल चन्दन तथा पद्माख इन पाँच औषधियोंका काढ़ा तैयार करके पीनेसे सब प्रकारके ज्वर, मन्दाग्नि, तृष्णा और अरुचि दूर हो जाती है ॥ ८ ॥

सर्वज्वरपर नागरादि तथा शुण्ठ्यादि काढा

नागरं देवकाष्ठं च धान्याकं बृहतीद्वयम् ॥ ९ ॥
दद्यात्पाचनकं पूर्वं ज्वरितानां ज्वरापहम्।

सोंठ, देवदारु, धनियाँ, छोटी-बड़ी दोनों कण्टकारी इन पाँच औषधियोंका काढ़ा तैयार करके देनेसे ज्वर दूर हो जाता है ॥ ९ ॥

क्षुद्रादि क्वाथ

क्षुद्राकिराततिक्तं च शुण्ठीछिन्नां च पौष्करम् ॥ १० ॥
कषाय एषां शमयेत्पीतश्चाष्टविधं ज्वरम्।

कटेरी, चिरायता, कुटकी, सोंठ और गिलोय इन पाँच औषधियोंका काढ़ा तैयार करके पीवे तो आठ प्रकारके ज्वर शान्त हो जाते हैं ॥ १० ॥

गुडूच्यादि क्वाथ

गुडूचीपिप्पलीमूलनागरैः पाचनं स्मृतम् ॥ ११ ॥
दद्याद्वातज्वरे पूर्णलिंगे सप्तमवासरे।

गिलोय, पिपरामूल तथा सोंठ इन तीन औषधियोंका काढ़ा तैयार करके उस रोगी को दे, जिसके शरीरमें वातज्वरके पूर्ण लक्षण विद्यमान हों। विशेषकर ज्वरके सातवें रोज यह काढ़ा देना चाहिए ॥ ११ ॥

वातज्वरपर शालिपर्ण्यादि काढ़ा

शालिपर्णी बला रास्ना गुडूची सारिवा तथा ॥ १२ ॥
आसां क्वाथं पिबेत्कोष्णं तीव्रवातज्वरच्छिदम्।

शालपर्णी, बला (कटेरी) रास्ना, गिलोय और अनन्तमूल, इन औषधियोंका गुनगुना काढ़ा पीनेसे तीव्र वातज्वर दूर हो जाता है ॥ १२ ॥

वातज्वरपर काश्मर्यादि क्वाथ

काश्मरीसारिवाद्राक्षात्रायमाणामृताभवः ॥ १३ ॥
कषायः सगुडः पीतो वातज्वरविनाशनः।

काश्मरी (गंभारी), सरिवन, मुनक्का, त्रायमाण (गावजुआ) और गिलोय इन औषधियोंका काढ़ा यदि गुड़ मिलाकर पीवे तो वातज्वर दूर हो जाता है ॥ १३ ॥

पित्तज्वरपर कट्फलादि पाचन

कट्फलेन्द्रयवाम्बष्ठातिक्तामुस्तैः शृतं जलम् ॥ १४ ॥
पाचनं दशमेऽह्नि स्यात्तीव्रेऽपित्तज्वरे नृणाम्।

कायफल, इन्द्रजौ, पाढ़, नागरमोथा और कुटकी इन पाँच औषधियोंका काढ़ा तैयार करके पीनेसे दारुण पित्तज्वर भी दूर हो जाता है ॥ १४ ॥

पित्तज्वरपर पर्पटादि काढ़ा

पर्पटो वासकस्तिक्ताकिरातो धन्वयासकः ॥ १५ ॥
प्रियंगुश्च कृतः क्वाथ एषां शर्करया युतः।
पिपासादाहपित्तास्रैर्युक्तं पित्तज्वरं जयेत् ॥ १६ ॥

पित्तपापड़ा, अड़ूसा, कुटकी, चिरायता, धमासा, प्रियंगु, इन औषधियोंका काढ़ा पीनेसे तृष्णा, दाह तथा रक्तपित्तयुक्त पित्तज्वर शान्त हो जाता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

पित्तज्वरपर द्राक्षादि काढ़ा

द्राक्षा हरीतकी मुस्तं कटुकी कृतमालकः ।
पर्पटश्च कृतः क्वाथ एषां पित्तज्वरापहः ॥ १७ ॥
तृण्मूर्च्छादाहपित्तासृक्शमनो भेदनः स्मृतः ।

दाख, छोटी हर्रे, नागरमोथा, कुटकी, अमिलतास, पित्तपापड़ा, इन छ औषधियोंका बना हुआ काढा पीनेसे ज्वर दूर हो जाता है। साथ ही यह काढ़ा तृष्णा, मूर्छा, दाह तथा रक्तपित्त, इनको शान्त करता हुआ बँधे हुए मलको पतला कर देता है ॥ १७ ॥

कफज्वरपर बीजपूरादि पाचन

बीजपूरशिवापथ्यानागरग्रंथिकैः शृतम् ॥ १८ ॥
सक्षारं पाचनं श्लेष्मज्वरे द्वादशवासरे ।

बिजौरेकी जड़, हर्रे, सोंठ, पिपरामूल, इन औषधियोंका काढ़ा तैयार करके यदि कफज्वरमें बारहवें दिन दिया जाय तो ज्वर शान्त हो जाता है। इस काढ़ेमें पाचनशक्ति भी है ॥ १८ ॥

कफज्वरपर भूनिम्बादि क्वाथ

भूनिम्बनिम्बपिप्पल्यः शठी शुण्ठी शतावरी ॥ १९ ॥
गुडूची बृहती चेति क्वाथो हन्यात्कफज्वरम् ।

चिरायता, नीमकी छाल, पीपल, कचूर, सोंठ, शतावर, गिलोय, कटेरी, इन औषधियोंका काढ़ा कफज्वरको दूर करता हैं ॥ १९ ॥

कफज्वरपर पटोलादि काढ़ा

पटोलत्रिफलातिक्ताशठीवासामृताभवः ॥ २० ॥
क्वाथो मधुयुतः पीतो हन्यात्कफकृतं ज्वरम् ।

परवल, त्रिफला (हरड़, बहेरा, आमला) कुटकी, कचूर, अडूसा और गिलोय, इन औषधियोंका काढ़ा तैयार करके शहदके साथ पीनेसे कफज्वर दूर हो जाता है ॥ २० ॥

वातपित्तज्वरपर पञ्चभद्र क्वाथ

पर्पटाब्दामृताविश्वकिरातैः साधितं जलम् ॥ २१ ॥
पंचभद्रमिदं ज्ञेयं वातपित्तज्वरापहम् ।

पित्तपापड़ा, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ और चिरायता, इन पाँच औषधियों-का काढ़ा तैयार करके पीनेसे वातपित्तज्वर दूर होता है ॥ २१ ॥

वातकफज्वरपर लघुक्षुद्रादि काढ़ा

क्षुद्राशुण्ठीगुडूचीनां कषायः पौष्करस्य च ॥ २२ ॥
कफवाताधिके पेयो ज्वरे वापि त्रिदोषजे।
कसश्वासारुचिकरे पार्श्वशूलविधायिनि ॥ २३ ॥

भटकटैया, सोंठ, गुरुच और पोहकरमूल इन चार औषधियोंका काढ़ा वात ज्वर और सन्निपातज्वरमें पीना चाहिये। यह काढ़ा ज्वरमें उत्पन्न कास, श्वास, अरुचि, पसलियोंका दर्द, इन उपद्रवोंको भी दूर करता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

वातकफज्वरपर आरग्वधादि काढ़ा

आरग्वधकणामूलमुस्ततिक्ताभयाकृतः।
क्वाथः शमयति क्षिप्रं ज्वरं वातकफोद्भवम् ॥ २४ ॥
आमशूलप्रशमनो भेदी दीपनपाचनः।

अमिलतास, पिपरामूल, नागरमोथा, कुटकी, हरड़, इनका काढा शीघ्र ही वातकफज्वरको नष्ट कर देता है। साथ ही आमशूलको नष्ट करता हुआ मलको पतला करता, अग्निको प्रदीप्त करता एवं पाचनशक्तिको बढ़ाता है ॥ २४ ॥

पित्तश्लेष्मज्वरपर अमृताष्टक

अमृतारिष्टकटुकामुस्तेन्द्रयवनागरैः ॥ २५ ॥
पटोलचन्दनाभ्यां च पिप्पलीचूर्णयुक्शृतम्।
अमृताष्टकमेतच्च पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ॥ २६ ॥
छर्द्यरोचकहृल्लासदाहतृष्णानिवारणम्।

गुरुच, नीमकी छाल, कुटकी, नागरमोथा, इन्द्रजौ, सोंठ, परवलकी पत्तियाँ, लालचन्दन, इन वस्तुओंका काढ़ा थोड़ासा पीपरका चूर्ण मिलाकर पीवे तो पित्त-कफज्वर नष्ट हो जाता है। साथही वमन, अरुचि, जीकी मिचलाहट, दाह तथा तृष्णा भी दूर हो जाती है ॥ २५ ॥ २६ ॥

पित्तकफज्वरपर कंटकार्यादि काढा

पटोलं चंदनं मूर्वातिक्तापाठामृतागणः ॥ २७ ॥
पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहकंडूविषापहः।

पटोलपत्र, चन्दन, मूर्वा, कुटकी, पाठा और गुरुचका काढ़ा पीनेसे पित्तश्लेष्मज्वर, वमन, दाह तथा खुजली और विषबाधा दूर होती है ॥ २७ ॥

पित्तकफज्वरपर पटोलादि काढा

कण्टकारीद्वयं शुण्ठीधान्यकं सुरदारु च ॥ २८ ॥
एभिः शृतं पाचनं स्यात्सर्वज्वरविनाशतम् ।

दोनों प्रकार की कटेरी, सोंठ, धनियाँ, देयदारु, इन पाँच औषधियोंका काढा तैयार करके पीनेसे सब प्रकारके ज्वर दूर हो जाते हैं ॥ २८ ॥

वातकफज्वरादिपर दशमूलादि काढा

शालिपर्णी पृष्ठपर्णी बृहतीद्वयगोक्षुरः ॥ २९ ॥
बिल्वाग्निमंथ श्योनाककाश्मरीपाटलायुतैः ।
दशमूलमिति ख्यातं क्वथितं तज्जलं पिबेत् ॥ ३० ॥
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं वातश्लेष्मज्वरापहम् ।
सन्निपातज्वरहरं सूतिकादोषनाशनम् ॥ ३१ ॥
शोषशैत्यभ्रमस्वेदकासश्वासविकारनुत् ।
हृत्कम्पग्रहपार्श्वार्तितन्द्रामस्तकशूलहृत् ॥ ३२ ॥

शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी-बड़ी कटेरी, गोखरू, बेलगिरी, अरनी, श्योनाक, टेंटू, गंभारी, पाढ़ इन दस प्रकारकी औषधियोंका दशमूल नामक काढ़ा तैयार होता है। पीपरका चूर्ण मिलाकर इसके पीनेसे वातकफज्वर, सन्निपातज्वर, सूतिकारोग, शोष, शीतस्वेद, खाँसी, श्वास, हृद्ग्रह, कंठग्रह, पसलियोंका दर्द, तन्द्रा तथा मस्तकशूल, ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २९-३२ ॥

त्रिदोषज्वरपर अभयादि काढा

अभयामुस्तधान्याकरक्तचदनपद्मकैः ।
वासकेंद्रयवोशीरगुडूचीकृतमालकैः ॥ ३३ ॥
पाठानागरतिक्ताभिः पिप्पलीचूर्णयुक्शृतम् ।
पिबेत्त्रिदोषज्वरजित्पिपासादाहकासनुत् ॥ ३४ ॥
प्रलापश्वासतन्द्राघ्नं दीपनं पाचनं परम् ।
विण्मूत्रानिलविष्टम्भवमिशोषारुचिच्छिदम् ॥ ३५ ॥

बड़ी हरें, नागरमोथा, धनियाँ, लालचन्दन, पद्माख, अडूसा, इन्द्रजौ, खस, गुरुच, अमिलतासका गूदा, पाठाकी जड़, कुटकी इनके काढ़ेमें पीपरिका चूर्ण मिलाकर पीनेसे सन्निपात, तृष्णा, दाह, खाँसी, प्रलाप, श्वास और तन्द्रा दूर हो जाती है। यह काढ़ा अग्निको प्रदीप्त करनेवाला, पाचन और मलमूत्रका अवरोधक होता है। यह वमन, कण्ठशोष और अरुचि, इनको नष्ट करता है ३३-३५

सन्निपातादिकोंपर अष्टादशांग काढा

किरातकटुकीमुस्ताधान्येंद्रयवनागरैः ।
दशमूलमहादारुगजपिप्पलिकायुतैः ॥ ३६ ॥
कृतः कषायः पार्श्वार्तिसन्निपातज्वरं जयेत् ।
कासश्वासवमीहिक्कातन्द्राहृद्ग्रहनाशनः ॥ ३७ ॥

चिरायता, कुटकी, नागरमोथा, धनियाँ, इन्द्रजौ, सोंठ, दशमूल अर्थात् ऊपर दशमूल काढ़ेमें गिनाई हुई औषधियाँ, देवदारु, गजपीपली, इन औषधियोंका काढा बनाकर पीनेसे पसलियोंका शूल, सन्निपातज्वर, खाँसी, श्वास, वमन, हिचकी, तन्द्रा, हृद्ग्रह, ये व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं॥ ३६ ॥ ३७ ॥

श्वासादिकोंपर यवान्यादि काढा

यवानी पिप्पली वासा तथा वत्सकवल्कलः ।
एषां क्वाथं पिवेत्कासे श्वासे च कफजे ज्वरे ॥ ३८ ॥

अजवायन, पिप्पली, अडूसेके पत्ते और कूडेकी छाल इन चार औषधोंका काढ़ा करके पीवे तो खाँसी, श्वास और कफज्वर इनका नाश हो ॥ ३८ ॥

कासादिपर कट्फलादि काढा

कट्फलाम्बुदभार्ङ्गीभिर्धान्यरोहिषपर्पटैः ।
वचाहरीतकीशृंगीदेवदारुमहौषधैः ॥ ३९ ॥
क्वाथः कासं ज्वरं हन्ति श्वासश्लेष्मगलग्रहान् ।
क्वाथो जीर्णज्वरं हन्ति गुडूच्याः पिप्पलीयुतः ॥ ४० ॥
तथा पर्पटजः क्वाथः पित्तज्वर हरः परः ।
किं पुनर्यदि युज्येत चंदनोदीच्यनागरैः ।
निदिग्धकामृता शुंठीकषायं पाययेद्भिषक् ॥ ४१ ॥

पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं श्वासकासार्दितापहम् ।
पीनसारुचिवैस्वर्यशूलजीर्णज्वरच्छिदम् ॥ ४२ ॥

कायफल, नागरमोथा, भारंगी, धनियाँ, रोहिष तृण, इसके अभावमें चिरायता या पित्तपापड़ा, वचं, हड़, काकड़ासिंगी, देवदारु, सोंठ, इनका काढ़ा पीनेसे खाँसीयुक्त ज्वर, श्वास, कफ, कण्ठरोग, ये व्याधियें नष्ट हो जाती हैं। गिलोयके काढ़ेमें पीपरिका चूर्ण मिलाकर पीनेसे जीर्णज्वर दूर हो जाता और पित्तपापड़ेके काढ़ेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे पित्तज्वर दूर हो जाया करता है। उसमें यदि चन्दन, खस तथा सोंठ मिला दे तो उसकी उपयोगिता और बढ़ जाती है। कटेरी, गिलोय, सोंठ, इन औषधियोंके काढ़ेमें पीपरिका चूर्ण मिलाकर पीनेसे श्वास, खाँसी, जुकाम, अरुचि, स्वरभंग, शूल तथा जीर्णज्वर ये व्याधियें नष्ट होजाती हैं ॥ ३९–४२ ॥

प्रसूतिदोषपर देवदार्वादि काढा

देवदारुवचाकुष्ठपिप्पली विश्वभेषजम् ।
कट्फलं मुस्तभूनिम्बतिक्तधान्या हरीतकी ॥ ४३ ॥
गजकृष्णा च दुस्पर्शा गोक्षुरं धन्वयासकम् ।
बृहत्यतिविषाच्छिन्ना कर्कटी कृष्णजीरकम् ॥ ४४ ॥
क्वाथमष्टावशेषं तु प्रसूतां पाययेत्स्त्रियम् ।
शूलकासज्वरश्वासमूर्च्छाकम्पशिरोर्तिजित् ॥ ४५ ॥

देवदारु, वच, कूठ, पीपरि, सोंठ, कायफल, नागरमोथा, चिरायता, कुटकी, धनियाँ, जंगीहरड, गजपीपल, लाल धमासा, गोखरू, धमासा, कटेरी, अतीस, गिलोय, काकडासिंगी और काला जीरा इन बीस औषधोंका अष्टावशेष काढ़ा करके पीवे तो प्रसूतिरोग, शूल, खाँसी, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, कम्पवायु और मस्तकपीडा ये सब रोग दूर हो जाते हैं ॥ ४३–४५ ॥

सर्वशीतज्वरोंपर क्षुद्रादि काढा

क्षुद्राधान्यकशुंठीभिर्गुडूचीमुस्तपद्मकैः ।
रक्तचन्दनभूनिम्बपटोलवृषपौष्करैः ॥ ४६ ॥
कटुकेंद्रयवारिष्टभार्ङ्गीपर्पटकैः समैः ।
क्वाथं प्रातर्निषेवेत सर्वशीतज्वरच्छिदम् ॥ ४७ ॥

कटेरी, नागरमोथा, धनियाँ, सोंठ, गिलोय, पद्माख, लालचन्दन, चिरायता, परवल, अडूसा, पोहकरमूल, कुटकी, इन्द्रजौ, नीमकी छाल, भारंगी और पित्तपापड़ा इनके काढ़ेको प्रातःकालके समय सेवन करनेसे सब प्रकारके शीतज्वर नष्ट हो जाते हैं॥ ४६ ॥ ४७ ॥

विषमज्वरपर मुस्तादि काढा

मुस्ताक्षुद्रामृताशुण्ठीधात्रीक्वाथः समाक्षिकः।
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तो विषमज्वरनाशनः ॥ ४८ ॥

नागरमोथा, कटेरी, गिलोय, सोंठ, आँवला, इनका काढ़ा मधु और पीपरिका चूर्ण मिलाकर पीनेसे विषमज्वर शान्त हो जाता है॥ ४८ ॥

एकाहिक ज्वरपर पटोलादि काढा

पटोलत्रिफलानिम्बद्राक्षाशम्याकविश्वकैः।
क्वाथः सितामधुयुतो जयेदेकाहिकं ज्वरम् ॥ ४९ ॥

परवलके पत्ते, त्रिफला, नीमकी छाल, दाख, अमिलतास और बाँस इन वस्तुओंका काढ़ा तैयार करके शहदमें मिलाकर पीनेसे एकाहिक ज्वर दूर हो जाता है॥ ४९ ॥

सन्ततादि ज्वरपर पटोलादि क्वाथ

पटोलेन्द्रयवादारुत्रिफलामुस्तगोस्तनैः।
मधुकामृतवासानां क्वाथं क्षौद्रयुतं पिबेत् ॥ ५० ॥
सन्तते सतते चैव द्वितीयकतृतीयके।
एकाहिके वा विषमं दाहपूर्वे नवज्वरे ॥ ५१ ॥

पटोलपत्र, इन्द्रजौ, देवदारु, त्रिफला, नागरमोथा, मुनक्का, मुलहठी, गिलोय और अडूसा इन नौ औषधोंका काढ़ा सहत मिलाकर पीवे तो संतत-ज्वर, सततज्वर, द्वितीयकज्वर, तृतीयज्वर, एकाहिकज्वर, विषमज्वर, दाहपूर्वकज्वर, और नवज्वर इतने रोग दूर हो जाते हैं॥ ५० ॥ ५१ ॥

तृतीयज्वरपर गुडूच्यादि काढा

गुडूचीधान्यमुस्ताभिश्चन्दनोशीरनागरैः।
कृतं काथं पिबेत्क्षौद्रसितायुक्तं ज्वरातुरः ॥ ५२ ॥
तृतीयज्वरनाशाय तृष्णादाहनिवारणम्।

गुरुच, धनियाँ, नागरमोथा, लाल चन्दन, खस, सोंठ, इनका काढ़ा तैयार करके यदि शहद और मिश्री मिलाकर पीवे तो तृतीयज्वर शान्त हो जाता और तृष्णा तथा दाह भी दब जाती है ॥ ५२ ॥

चातुर्थिकज्वरपर देवदार्वादि काढा

देवदारुशिवावासाशालिपर्णीमहौषधैः ॥ ५३ ॥
धात्रीयुतं शृतं शीतं दद्यान्मधुसितायुतम् ।
चातुर्थिकज्वरश्वासकासे मंदानले तथा ॥ ५४ ॥

देवदारु, हरड़, अडूसा, शालपर्णी, सोंठ, आँवला, इनसे बने काढ़ेमें शहद और मिश्री मिलाकर पीनेसे चातुर्थिक ज्वर, श्वास, खाँसी तथा मंदाग्नि रोग दूर हो जाता है ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

ज्वरातिसारपर गुडूच्यादि काढा

गुडूचीधान्यकोशीरशुंठीबालकपर्पटैः ।
बिल्वप्रतिविषापाठारक्तचंदनवत्सकैः ॥ ५५ ॥
किरातमुस्तेंद्रयवैः क्वथितं शिशिरं पिबेत् ।
सक्षौद्रं रक्तपित्तघ्नं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ ५६ ॥

गुरुच, धनियाँ, खस, सोंठ, नेत्रबाला, पित्तपापड़ा, बेलगिरी, अतीस, पाठा, लालचन्दन, कुड़ेकी छाल, चिरायता, नागरमोथा, इन्द्रजौ, इनका काढ़ा तैयार करे, जब वह ठंढा हो जाय तब शहद मिलाकर पीवे तो रक्तपित्त तथा ज्वरातीसार रोग शान्त हो जाता है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

ज्वरातिसारपर नागरादि काढा

नागरं कुटजो मुस्तममृतातिविषा तथा ।
एभिः कृतं पिबेत्क्वाथं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ ५७ ॥

सोंठ, कुड़ेकी छाल, नागरमोथा, गिलोय, अतीस, इनका काढा पीनेसे ज्वरातीसार रोग दूर हो जाता है ॥ ५७ ॥

आमशूलपर धान्यपंचक

धान्यबालकबिल्वाब्दनागरैः साधितं जलम् ।
आमशूलहरं ग्राहि दीपनं पाचनं परम् ॥ ५८ ॥

धनियाँ, सोंठ, बेलगिरी, नागरमोथा, नेत्रबाला, इन औषधियोंका काढ़ा तैयार करके पीनेसे आमशूलको नष्ट करता, दस्तको बाँधता और दीपन तथा पाचनका भी काम दे जाता है ॥ ५८ ॥

दीपन-पाचनपर धान्यकादि काढा

धान्यनागरजः क्वाथो दीपनः पाचनस्तथा ।
एरण्डमूलमुक्तं च जयेदामाविलव्यथाम् ॥ ५९ ॥

धनियाँ और सोंठका काढ़ा दीपन और पाचन है। इसमें एरण्डकी जड़ मिला दी जाय तो आमवातकी पीड़ा दूर करनेकी भी शक्ति इसमें आ जाती है ॥ ५९ ॥

आमातिसार और रक्तातिसारपर वत्सकादि काढा

वत्सकातिविषाबिल्वमुस्तबालकमाश्रृतम् ।
अतिसारं जयेत्सामं चिरजं रक्तशूलजित् ॥ ६० ॥

कुड़ेकी जड़, अतीस, बेलगिरी, नागरमोथा, नेत्रबाला, इन औषधियोंका काढ़ा तैयार करके यदि पुराने आमातीसार तथा रक्तशूलपर दे तो वे रोग शान्त हो जाते हैं ॥ ६० ॥

अतिसारादिकोंपर कुटजाष्टक काढा

कुटजातिविषापाठाधातकीलोध्रमुस्तकैः ।
ह्रीबेरदाडिमयुतः कृतः क्वाथः समाक्षिकः ॥ ६१ ॥
पेयो मोचरसेनैव कुटजाष्टकसंज्ञकः ।
अतिसाराञ्जयेद्वातरक्तशूलामदुस्तरान् ॥ ६२ ॥

कुड़ेकी छाल, अतीस, पाठा, धायके फूल, लोध, नागरमोथा, नेत्रबाला, अनारकी छाल, इनका काढ़ा तैयार करके शहदके साथ या मोचरस मिलाकर पीवे तो सब प्रकारके अतीसार, रक्तशूल तथा आम आदिके उपद्रव शान्त हो जाते हैं ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

अतिसारादि रोगोंपर ह्रीबेरादि काढा

ह्रीबेरधातकीलोध्रपाठालज्जालुवत्सकैः ।
धान्यकातिविषामुस्तगुडूचीबिल्वनागरैः ॥ ६३ ॥

कृतः कषायः शमयेदतिसारं चिरोत्थितम् ।
अरोचकामशूलास्रज्वरघ्नः पाचनः स्मृतः ॥ ६४॥

नेत्रबाला, धायके फूल, लोध, पाठा, लज्जावन्ती, कुड़ेकी छाल, धनियाँ, अतीस, नागरमोथा, गिलोय, बेलगिरी, सोंठ, इससे बना काढ़ा पुराने अतीसार, अरोचक, आमशूल और ज्वरको दूर करता है। साथ ही पाचन भी है ॥६३॥६४॥

बालकोंके सब अतिसारोंपर धातक्यादि काढा

धातकीबिल्वलोध्राणि बालकं गजपिप्पली ।
एभिः कृतं शृतं शीतं शिशुभ्यः क्षौद्रसंयुतम् ॥ ६५ ॥
प्रदद्यादवलेहं वा सर्वातीसारशान्तये ।

धायके फूल, बेलगिरी, लोध, नेत्रबाला, गजपीपल, इन औषधियोंसे बने काढ़ेको शीतल करके उसमें शहद मिलाकर बच्चोंको पिलावे अथवा अवलेह बनाकर चटावे तो सब प्रकारके अतीसार दूर हो जाते हैं ॥ ६५ ॥

संग्रहणीपर शालपर्ण्यादि काढा

शालिपर्णी बलाबिल्वधान्यशुण्ठीकृतं शृतम् ॥ ६६ ॥
आध्मानशूलसहितां वातजां ग्रहणीं जयेत् ।

शालपर्णी, बरियारा, बेलगिरी, धनियाँ, सोंठ, इनका काढ़ा पीनेसे अफरा उदरशूल तथा नाभिशूलयुक्त वातज संग्रहणी रोग दूर होता है ॥ ६६ ॥

आमसंग्रहणीपर चतुर्भद्रादि काढा

गुडूच्यतिविषाशुण्ठीमुस्तैः क्काथः कृतो जयेत् ॥ ६७ ॥
आमानुषक्तां ग्रहणीं ग्राही पाचनदीपनः ।

गिलोय, अतीस, सोंठ, नागरमोथा, इनका काढ़ा आमयुक्त संग्रहणीको दूर करता, दस्तको बाँधता और दीपन-पाचनका भी काम दे जाता है ॥ ६७ ॥

सब अतिसारोंपर इन्द्रयवादि काढा

यवधान्यपटोलानां क्वाथः सक्षौद्रशर्करः ॥ ६८ ॥
योज्यः सर्वातिसारेषु बिल्वाम्रास्थिभवस्तथा ।

इन्द्रजौ, धनियाँ, परवल, इनका काढ़ा खाँड़ और शहद मिलाकर पीनेसे अथवा आमकी गुठलियोंका काढ़ा तैयार करके शहद और खाँड़ मिलाकर पीनेसे अतिसार रोग दूर हो जाता है ॥ ६८ ॥

कृमिरोगपर त्रिफलादि काढा

त्रिफला देवदारुश्च मुस्तामूषककर्णिका ॥ ६९ ॥
शिग्रुरेतैः कृतः क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ।
विडंगचूर्णयुक्तश्च कृमिघ्नः कृमिरोगहा ॥ ७० ॥

त्रिफला, देवदारु, नागरमोथा, मूसाकानी, सहिंजनकी छाल, इनका बना काढ़ा पीपरि और वायविडंगके चूर्णके साथ पीनेसे कृमि नष्ट हो जाते और कृमिरोग भी दूर हो जाता है ॥ ६९ ॥ ७० ॥

कामला और पांडुरोगपर फलत्रिकादि काढा

फलत्रिकामृतातिक्तानिम्बकैरातवासकः ।
जयेन्मधुयुतः क्वाथः कामलां पांडुतां तथा ॥ ७१ ॥

त्रिफला, (हरड़, बहेड़ा, आँवला) गिलोय, कुटकी, नीमकी छाल, चिरायता, अडूसेके पत्ते, इनका काढ़ा तैयार करके शहदके साथ पीवे तो कामला और पाण्डुरोग दूर हो जाता है ॥ ७१ ॥

पांडुकासादि रोगोंपर पुनर्नवादि काढा

पुनर्नवाभयानिम्बदार्वीतिक्तापटोलकैः ।
गुडूचीनागरैर्युक्तः क्वाथो गोमूत्रसंयुतः ॥ ७२ ॥
पांडुकासोदरश्वासशूलसर्वांगशोथहा ।

पुनर्नवाकी जड़, हरड़, नीमकी छाल, दारुहल्दी, कुटकी, परवलके पत्ते, गिलोय, सोंठ, इनका काढ़ा तैयार करके गोमूत्रमें मिलाकर पीनेसे पाण्डुरोग, खाँसी ,उदररोग, शूल और अंगोंका शोथ आदि रोग दूर हो जाते हैं ॥ ७२ ॥

वासादि काढा

वासाद्राक्षाभयाक्वाथः पीतः सक्षौद्रशर्करः ॥ ७३ ॥
निहन्ति रक्तपित्तार्तिश्वासकासान्सुदारुणान् ।

अडूसा, दाख, हरड़, इन औषधियोंका काढ़ा तैयार करके शहद और खाँड़के साथ पीनेसे रक्तपित्त, श्वास और खाँसी नष्ट हो जाती है ॥ ७३ ॥

रक्तपित्तक्षयादिपर अडूसेका काढा

रक्तपित्तक्षयं कासं श्लेष्मपित्तज्वरं तथा ॥ ७४ ॥
केवलो वासकक्वाथः पीतः क्षौद्रेण नाशयेत् ।

अकेले अडूसेके पत्तोंका काढ़ा शहद मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त, क्षय, खाँसी और कफपित्तज्वर ये रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ७४ ॥

ज्वर और खाँसीपर वासादि काढा

वासाक्षुद्रामृताक्वाथः क्षौद्रेण ज्वरकासहा ॥ ७५ ॥

अडूसा, कटेरी, गिलोय, इनके काढ़ेमें शहद मिलाकर पीनेसे ज्वर और खाँसी नष्ट हो जाती है ॥ ७५ ॥

खाँसीपर क्षुद्रादि काढा

कासघ्नः पिप्पलीचूर्णयुक्तः क्षुद्राश्रृतस्तथा ।

कटेरीके काढ़ेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे खाँसी दूर हो जाती है ।

खाँसीपर क्षुद्रादि काढा

क्षुद्रा कुलित्थवासाभिर्नागरेण च साधितः ॥ ७६ ॥
क्वाथः पौष्करचूर्णाढ्यः श्वासकासौ निवारयेत् ।

कटेरी, कुलथी, अडूसा तथा सोंठ, इनके काढ़ेमें पोहकरमूलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे श्वास और खाँसी नष्ट हो जाती है ॥ ७६ ॥

हिक्कापर रेणुकादि काढा

रेणुकापिप्पलीक्वाथो हिंगुकल्केन संयुतः ॥ ७७ ॥
पानादेव हि पंचापि हिक्का नाशयति क्षणात् ।

रेणुका और पीपलका काढ़ा भुनी हींगके चूर्णके साथ पीवे तो पाँच प्रकारकी हिचकी तुरन्त दूर हो जाती है ॥ ७७ ॥

गृध्रसी रोगपर हिंग्वादि काढा

हिंगुपुष्करचूर्णाढ्यं दशमूलश्रृतं जयेत् ॥ ७८ ॥
गृध्रसीं केवलः क्वाथः शेफालीपत्रजस्तथा ।

दशमूलके काढ़ेमें भुनी हींग तथा पोहकरमूलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे गृध्रसी रोग दूर हो जाता है । उसी प्रकार निर्गुण्डीके पत्तोंके काढ़ेमें पोहकरमूलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे भी गृध्रसी वायु शान्त हो जाता है ॥ ७८ ॥

बिल्वादि वा गुडूच्यादि क्वाथ

बिल्वत्वचो गुडूच्या वा क्वाथः क्षौद्रेण संयुतः ॥ ७९ ॥
जयेत्त्रिदोषजां छर्दिं पर्पटः पित्तजां तथा ।

वेलकी छाल अथवा गिलोयका काढ़ा शहद मिलाकर पीनेसे वात-पित्त कफ, इन तीनों दोषोंसे जायमान वमनरोग दूर हो जाता है। पित्तपापड़ेका काढ़ा शहद मिलाकर पीनेसे पित्तज छर्दि दूर हो जाती है ॥ ७९ ॥

सर्वांग वातपर रास्नादिपंचक क्वाथ

रास्नाऽमृता महादारुनागरैरंडजं शृतम् ॥८०॥
सप्तधातुगते वाते सामे सर्वांगजे पिबेत् ॥

रास्ना, गुरुच, देवदारु, सोंठ, रेंड़की जड़, इन औषधियोंका काढ़ा पीनेसे सात धातुओंतकमें पहुँचनेवाले सब प्रकारके वातजनित रोग और आमवात रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ८० ॥

रास्नासप्तक

रास्नागोक्षुरकैरंडदेवदारुपुनर्नवाः ॥ ८१ ॥
गुडूच्यारग्वधश्चैव क्वाथ एषां विपाचयेत्।
शुण्ठीचूर्णेन संयुक्तः पिबेज्जंघाकटिग्रहे ॥ ८२ ॥
पार्श्वपृष्ठोरुपीडायामामवाते सुदुस्तरे ।

रास्ना, गोखरू, रेंड़की जड़, देवदारु, कचूर, गिलोय, अमिलतास, इन औषधियोंका काढ़ा तैयार करके सोंठके चूर्णके साथ पीवे तो जाँघ, कमर, पसली, पीठ और छातीकी पीड़ा तथा भयानक आमवात रोग शान्त हो जाता है ॥ ८१॥८२॥

सम्पूर्ण-वातरोगोंपर महारास्नादि काढा

रास्ना द्विगुणभागा स्यादेकभागास्ततः परे ॥ ८३ ॥
धन्वयासबलैरंडदेवदारुशठीवचा ।
वासको नागरं पथ्या चव्या मुस्ता पुनर्नवा ॥ ८४ ॥
गुडूचीवृद्धदारुश्च शतपुष्पा च गोक्षुरः ।
अश्वगंधा प्रतिविषा कृतमालः शतावरी ॥ ८५ ॥
कृष्णा सहचरश्चैव धान्यकं बृहतीद्वयम् ।
एभिः कृतं पिबेत्क्वाथं शुण्ठीचूर्णेन संयुतम् ॥ ८६ ॥
कृष्णाचूर्णेन वा योगराजगुग्गुलुनाऽथवा ।
अजमोदादिना वापि तैलेनैरंडजेन वा ॥ ८७ ॥

सर्वांगकम्पे कुब्जत्वे पक्षाघातेऽपबाहुके ।
गृध्रस्यामामवाते च श्लीपदे चापतानके ॥ ८८ ॥
अंडवृद्धौ तथाध्मानं जंघाजानुगदार्दिते ।
शुक्रामये मेढ्रोगे वंध्यायोन्याशयेषु च ॥ ८९ ॥
महारास्नादिराख्यातो ब्रह्मणा गर्भकारणम् ।

रास्ना दो भाग, धमासा, खरैंटी, रेंड़की जड़, देवदारु, कचूर, वच, अड़ूसा, सोंठ, हर्र, चव्य, नागरमोथा, पुनर्नवा, गिलोय, बिधारा, सौंफ, गोखरू, असगंध, अतीस, अमिलतास, सतावर, पीपरि, पियाबासा, धनियाँ, छोटी-बड़ी दोनों कटेरी, इन औषधियोंका काढा तैयार करके सोंठका चूर्ण, पीपरिका चूर्ण, योगराज गूगुल, अजमोदादि चूर्ण और रेंड़ीका तेल मिलाकर पीनेसे सर्वाङ्गवात, पक्षाघात, अपबाहुक, गृध्रसी, आमवात, श्लीपद, अपतानक वायु, अण्डवृद्धि, आध्मान, जंघारोग, जानुरोग, अर्दितवात, शुक्रदोष, लिंगरोग, वंध्याका योनिरोग और गर्भाशयका रोग दूर हो जाता है । ब्रह्माजीने इस महारास्नानामक क्वाथको गर्भके स्थापनमें मूल कारण कहा है ॥ ८३–८९ ॥

स्तनादिगत वायुपर एरंडसप्तक

एरंडो बीजपूरश्च गोक्षुरो बृहतीद्वयम् ॥ ९० ॥
अश्मभेदस्तथा बिल्व एतन्मूलैः कृतः शृतः ।
एरंडतैलहिंग्वाढ्यः सयवक्षारसैंधवः ॥ ९१ ॥
स्तनस्कंधकटीमेढ्रहृदयोत्थव्यथां जयेत् ।

रेंड़की जड़, बिजौरेकी जड़, गोखरू, छोटी-बड़ी दोनों प्रकारको कटेरी, पाषाण-भेद और बेलगिरी, इन सात औषधियोंका काढा बनाकर उसमें रेंड़ीका तेल, भुनी हींग, जवाखार और सेंधा नमक इनका चूर्ण डाल करके पीवे तो स्तन, कन्धा, कमर, लिंग और छातीपर वायुके विकारसे होनेवाली पीड़ा शान्त हो जाती है ॥ ९० ॥ ९१ ॥

वातशूलपर नागरादि काढ़ा

नागरैरंडयोः क्वाथः क्वाथ इंद्रयवस्य वा ॥ ९२ ॥
हिंगुसौवर्चलोपेतो वातशूलनिवारणः ।

सोंठ और रेंड़की जड़का काढ़ा बनाकर भुनी हींग और काला नमक मिलाकर पीनेसे अथवा इन्द्रजौके काढ़ेमें काला नमक और हींग मिलाकर पीनेसे वातसे सम्बन्ध रखनेवाली सब पीड़ायें दूर हो जाती हैं॥ ९२॥

पित्तशूलपर त्रिफलादि काढ़ा

त्रिफलारग्वधक्वाथः शर्कराक्षौद्रसंयुतः ॥ ९३॥
रक्तपित्तहरो दाहपित्तशूलनिवारणः।

हरड़, बहेड़ा, आमला और अमिलतास, इनका काढ़ा खाँड और शहद मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त, दाह और शूलरोग नष्ट हो जाता है॥ ९३॥

कफशूलपर एरंडमूलकादि काढ़ा

एरंडमूलं द्विपलं जलेऽष्टगुणिते पचेत्॥ ९४॥
तत्क्वाथो यावशूकाढ्यः पार्श्वहृत्कफशूलहा।

दो पल रेंडकी जड़को आठ पल पानीमें डालकर काढ़ा चढ़ावे, जब सब पानी जलकर केवल अष्टमांश बाकी रहे तब उतार ले और उसमें जवाखार मिलाकर पीवे तो पसलियों तथा हृदयमें उत्पन्न होनेवाला कफजन्य शूल शान्त हो जाता है॥ ९४॥

हृद्रोगादिकोंपर दशमूलादि काढ़ा

दशमूलकृतः क्वाथः सयवक्षारसैंधवः॥ ९५॥
हृद्रोगगुल्मशूलार्तिकासश्वासाँश्च नाशयेत्।

दशमूलके काढ़ेमें जवाखार और सेंधा नमक मिलाकर पीनेसे हृदयरोग, वायुगोला, शूल, श्वास और खाँसी ये रोग नष्ट हो जाते हैं॥ ९५॥

मूत्रकृच्छ्रपर हरीतक्यादि काढ़ा

हरीतकीदुरालम्भाकृतमालकगोक्षुरैः॥ ९६॥
पाषाणभेदसहितैः क्वाथो माक्षिकसंयुतः।
विबन्धे मूत्रकृच्छ्रे च सदाहे सरुजे हितः॥ ९७॥

छोटी हरड़, धमासा, अमिलतासका गूदा, गोखरू और पाषाणभेद, इन पाँच औषधियोंका काढ़ा तैयार करके शहद मिलाकर पीवे तो दाह, मूत्रकी रुकावट, वायुका अवरोध तथा इन उपद्रवोंसे युक्त मूत्रकृच्छ्र रोग शान्त हो जाता है॥ ९६॥ ९७॥

मूत्राघातादिकोंपर वीरतर्वादि काढ़ा

वीरतरुर्वृत्तवंदा काशः सहचरत्रयम् ।
कुशद्वयं नलो गुंद्रा बकपुष्पोऽग्निमंथकः॥ ६८ ॥
मूर्वापाषाणभेदश्च स्योनाको गोत्तुरस्तथा ।
अपामार्गश्च कमलं ब्राह्मी चेति गणो वरः ॥ ६६ ॥
वीरतर्वादिरित्युक्तः शर्कराश्मरिकृच्छ्रहा ।
मूत्राघातं वायुरोगान्नाशयेन्निखिलानपि ॥ १०० ॥

गाँडर, बाँदा, कास, सफेद-काला-पीला ये तीनों प्रकारका पियाबासा, कुशा, डाभ, देवनल, गुन्द्रा, वकपुष्पी (शिवलिंगी) अरनीकी जड़, मूर्वा, पाषाणभेद, टेंटूकी जड़, गोखरू, चिचिड़ा, कमल और ब्राह्मीकी पत्ती, इन औषधियोंका काढ़ा बनाकर पीनेसे शर्करा, पथरी, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और सब प्रकारके वातज रोग नष्ट हो जाते हैं। इसका नाम वीरतर्वादि क्वाथ है ॥ ९८ ॥ ६९ ॥ १०० ॥

पथरी-शर्करादिपर एलादि काढ़ा

एलामधुकगोकंटरेणुकैरंडवासकः ।
कृष्णाश्मभेदसहितः काथ एषां सुसाधितः ॥ १०१ ॥
शिलाजतुयुतः पेयः शर्कराश्मरिकृच्छ्रहा ।

छोटी इलायची, मुलहठी, गोखरू, रेणुका, एरंडकी जड़, अडूसा, पीपरि, पाषाणभेद इन औषधियोंका काढ़ा बना करके शिलाजीत डालकर पीनेसे शर्करा, पथरी और मूत्रकृच्छ्र रोग दूर हो जाते हैं ॥ १०१ ॥

प्रमेहपर त्रिफलादि काढ़ा

समूलगोत्तुरकाथः सितामाक्षिकसंयुतः ॥ १०२ ॥
नाशयेन्मूत्रकृच्छ्राणि तथा चोष्णसमीरणम् ।

जड़ समेत गोखरूका काढ़ा तैयार करके उसमें शहद मिलाकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्र और उष्णवात रोग शान्त हो जाता है ॥ १०२ ॥

प्रमेहपर दूसरा फलत्रिकादि काढ़ा

वरादार्व्यब्ददारूणां काथः त्तौद्रेण मेहहा ॥ १०३ ॥
वत्सकत्रिफलादार्वीमुस्तको बोजकस्तथा ।

हरड़, बहेड़ा, आमला, दारुहल्दी, नागरमोथा और देवदारु, इन औषधियों-का काढ़ा बनाकर शहदके साथ पीनेसे प्रमेह रोग शान्त हो जाता है। कुडेकी छाल, हरड़, बहेड़ा, आमला, दारुहल्दी, नागरमोथा और विजयसार, इन सात औषधियाँको शहद मिलाकर पीनेसे भी प्रमेह रोग दूर होता है ॥ १०३ ॥

प्रमेहपर दूसरा फलत्रिकादि काढ़ा

फलत्रिकाब्ददार्वीणां विशालायाः कृतं पिबेत् ॥ १०४ ॥
निशाकल्कयुतं सर्वप्रमेहविनिवृत्तये।

हरड़, बहेड़ा, आँवला, दारुहल्दी, नागरमोथा और इन्द्रायनकी जड़ इन छः औषधियोंके काढ़ेमें हल्दी मिलाकर पीनेसे सब प्रकारके प्रमेह रोग शान्त हो जाते हैं ॥ १०४ ॥

प्रदररोगपर दार्व्यादि काढ़ा

दार्वी रसांजनं मुस्तं भल्लातः श्रीफलं वृषः।
कैरातश्च पिबेदेषां क्वाथं शीतं समाक्षिकम्।
जयेत्सशूलं प्रदरं पीतश्वेतासितारुणम् ॥ १०५ ॥

दारुहल्दी, रसौत, नागरमोथा, शुद्ध भिलावा, वेलगिरी, अडूसा और चिरायता, इस सात औषधियोंके काढ़ेमें शहद मिलाकर पीनेसे शूलयुक्त, पीला, सफेद, लाल या काला रंगवाला प्रदररोग दूर हो जाता है ॥ १०५ ॥

योनि रोगोंपर न्यग्रोधादि काढ़ा

न्यग्रोधप्लक्षकोशाम्रवेतसो बदरी तुणिः।
मधुयष्टिप्रियालुश्च लोध्रद्वयमुदुम्बरः ॥ १०६ ॥
पिप्पल्यश्च मधूकश्च तथा पारिसपिप्पलः।
शल्लकी तिंदुकी जम्बूद्वयमाम्रतरुः शिवा ॥ १०७ ॥
कदम्बककुभौ चैव भल्लातकफलानि च।
न्यग्रोधादिगणक्वाथं यथा लाभं च कारयेत् ॥ १०८ ॥
अयं क्वाथो महाग्राही व्रण्यो भग्नं च साधयेत्।
योनिदोषहरो दाहमेदोमेहविषापहः ॥ १०९ ॥

बड़ और पाकड़की छाल, अंबाड़ेकी छाल, बेंतकी छाल, बेरकी छाल, सहतू-तकी छाल, मुलहठी, चिरौंजी, लाल लोध, सफेद लोध, गूलरकी छाल, पीपलकी

छाल, महुआकी छाल, पारिस पीपलकी छाल, सलई वृक्षकी छाल, तेंदु, छोटी जामुन और बड़ी जामुन (फरेंदे) की छाल, छोटी हरें, आम तथा कदम्बकी छाल, कोहकी छाल और मिलावा, इन तेइस औषधियोंका काढ़ा पीनेसे मल बँध जाता और उसके साथ-साथ व्रणरोग, अस्थिभंग, योनिदोष, दाह, मेदोरोग तथा विषदोष ये उपद्रव शान्त हो जाया करते हैं ॥ १०६ ॥ १०७ ॥ १०८ ॥ १०६ ॥

मेदोरोगपर बिल्वादि काढ़ा

बिल्वोऽग्निमंथः स्योनाकः काश्मरी पाटला तथा ।
काथ एषां जयेन्मेदोदोषं क्षौद्रेण संयुतः ॥ ११० ॥

बेल, अरनी, टेंटू, गंभारी, पाटल, इन पाँच औषधियोंके काढ़ेमें शहद मिलाकर पीनेसे शरीरमें चर्बी बढ़ जानेके कारण जो तकलीफ होती, वह दूर हो जाया करती है । इसीको लोग बृहत्पंचमूल काढ़ा कहते हैं ॥ ११० ॥

दूसरा त्रिफलादि काढ़ा

क्षौद्रेण त्रिफलाक्वाथः पीतो मेदोहरः स्मृतः ।
शीतीभूतं तथोष्णाम्बु मेदोहृत्तद्रसंयुतम् ॥ १११ ॥

त्रिफलाके काढ़ेमें शहद मिलाकर पीने और केवल जलको औटाकर शहद मिलाकर पीनेसे भी मेदोरोग नष्ट हो जाता है ॥ १११ ॥

उदररोगपर चव्यादि काढ़ा

चव्यचित्रकविश्वानां साधितो देवदारुणा ।
क्वाथस्त्रिवृच्चूर्णयुतो गोमूत्रेणोदराञ्जयेत् ॥ ११२ ॥

चव्य, चीतेकी छाल, सोंठ और देवदारु, इन चार औषधियोंके काढ़ेमें निशोथका चूर्ण और गोमूत्र मिलाकर पीनेसे उदररोग दूर हो जाते हैं ॥ ११२ ॥

शोथोदरपर पुनर्नवादि काढ़ा

पुनर्नवामृतादारुपथ्यानागरसाधितः ।
गोमूत्रगुग्गुलुयुतः क्वाथः शोथोदरापहः ॥ ११३ ॥

गदहपुर्नाकी जड़, गिलोय, देवदारु, जंगी हरें और सोंठ, इनका काढ़ा बनाकर गूगुल तथा गोमूत्र मिलाकर पीनेसे सूजनवाला उदररोग नष्ट हो जाता है ॥ ११३ ॥

यकृत्प्लीहादिकोंपर पथ्यादि काढ़ा

पथ्यारोहितककाथं यवक्षारकणायुतम्।
प्रातः पिबेद्यकृत्प्लीहगुल्मोदरनिवृत्तये ॥ ११४॥

जंगी हरें और रक्त रोहित, इन दो औषधियोंके काढ़ेमें पीपरिका चूर्ण और जवाखार मिलाकर प्रातःकाल पीनेसे यकृत्, गुल्मोदर तथा प्लीहा, ये रोग नष्ट होते हैं ॥ ११४ ॥

सूजनपर पुनर्नवादि काढ़ा

पुनर्नवा दारुनिशा निशा शुण्ठी हरीतकी।
गुडूची चित्रको भार्ङ्गी देवदारु च तैः शृतः ॥ ११५ ॥
पाणिपादोदरमुखप्राप्तं शोफं निवारयेत्।

साँठीकी जड़, दारुहल्दी, हल्दी, सोंठ, हरड़, गिलोय, चीतेकी छाल, भारंगी, देवदारु, इन औषधियोंका काढ़ा पीनेसे सारे अंगकी सूजन दूर हो जाती है ॥११५॥

वृषणशोथपर त्रिफलादि काढ़ा

फलत्रिकोद्भवं क्वाथं गोमूत्रेणैव पाययेत् ॥ ११६ ॥
वातश्लेष्मकृतं हन्ति शोथं वृषणसंभवम्।

हरड़, बहेड़ा, आँवला, इन तीन औषधियोंके काढ़ेमें गोमूत्र मिलाकर पीनेसे वात-कफजनित अंडकोषकी सूजन दूर हो जाती है ॥ ११६ ॥

अन्त्रवृद्धिपर रास्नादि काढ़ा

रास्नाऽमृताऽबला यष्टी गोकण्टैरंडजः शृतः ॥ ११७ ॥
एरंडतैलसंयुक्तो वृद्धिमन्त्रोद्भवां जयेत्।

रास्ना, गिलोय, खरेंटी, मुलहठी, गोखरू, रेंड़की जड़, इन छ औषधियोंके काढ़ेमें अंडीका तेल मिलाकर पीनेसे अंत्रवृद्धि (यानो अंडकोशको वृद्धि) का रोग दूर हो जाता है ॥ ११७ ॥

गण्डमालापर कांचनारादि काढ़ा

कांचनारत्वचः क्वाथः शुण्ठीचूर्णेन नाशयेत् ॥ ११८ ॥
गण्डमालां तथा क्वाथः क्षौद्रेण वरुणत्वचः।

कचनार वृक्षकी छालका काढ़ा तैयार करे और उसमें सोंठका चूर्ण मिलाकर पीवे अथवा वरनाकी छालके काढ़ेमें शहद मिलाकर पीवे तो गण्डमाला रोग दूर हो जाता है ॥ ११८ ॥

पीलपावँ तथा मेदोरोगपर शाखोटकादि काढ़ा

शाखोटवल्कलक्वाथं गोमूत्रेण युतं पिबेत् ॥ ११९ ॥
श्लीपदानां विनाशाय मेदोदोषनिवृत्तये ।

सिहोरकी छालके काढ़ेमें गोमूत्र मिलाकर पीनेसे श्लीपद (फीलपाँव) रोग दूर हो जाता है और मेदोरोगको भी आराम करता है ॥ ११९ ॥

अन्तर्विद्रधिपर पुनर्नवादि काढ़ा

पुनर्नवावरुणयोः क्वाथोऽन्तर्विद्रधीञ्जयेत् ॥ १२० ॥
तथा शिग्रुभवः क्वाथो हिंगुकल्केन संयुतः ।

पुनर्नवा और वरना इन दो औषधियोंका काढ़ा पीनेसे अन्तर्विद्रधि रोग दूर होता है । उसी तरह सहजनकी छालके काढ़ेमें भूनी हींग डालकर पीनेसे भी अन्तर्विद्रधि रोग दूर हो जाता है ॥ १२० ॥

मध्यविद्रधिपर वरुणादि काढ़ा

वरुणादिगणक्वाथमपक्वे मध्यविद्रधौ ॥ १२१ ॥
ऊषकादिरजोयुक्तं पिबेच्छमनहेतवे ।

आगे कहे जानेवाली वरुणादि औषधियोंके काढ़ेमें आगे कहे जानेवाली औषधियोंका चूर्ण डालकर सेवन करनेसे कच्चा विद्रधि रोग दूर हो जाता है॥१२१॥

वरुणादि काढ़ा

वरुणो वकपुष्पश्च बिल्वापामार्गचित्रकाः ॥ १२२ ॥
अग्निमन्थद्वयं शिग्रुद्वयं च बृहतीद्वयम् ।
सैरेयकत्रयं मूर्वा मेषशृङ्गी किरातकः ॥ १२३ ॥
अजशृङ्गी च बिम्बी च करञ्जश्च शतावरी ।
वरुणादिगणक्वाथः कफमेदोहरः स्मृतः ॥ १२४ ॥
हन्ति गुल्मं शिरःशूलं तथाभ्यन्तरविद्रधीन् ।

वरनाकी छाल, शिवलिंगी, बेलका फल, अपामार्ग, चित्रक, छोटी अरनी, बड़ी अरनी, कड़ुआ सहिंजन, मीठा सहिंजन, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, पीले फूलका पियाबाँसा, सफेद फूलका पियाबासा, काले फूलका पियाबाँसा, मूर्वा, काकड़ासिंगी, चिरायता, मेढ़ासिंगी, कड़ुए कुंदुरूकी जड़ या पत्ते, कंजा और

शतावर इन इक्कीस औषधियोंको पीनेसे कफमेदरोग, मस्तकशूल, वायुगोला और अन्तर्विद्रधि रोग दूर हो जाता है ॥ १२२–१२४ ॥

ऊषकादि गण

ऊषकस्तुत्थकं हिंगुकाशीसद्वयसैन्धवम् ॥ १२५ ॥
सशिलाजतुकृच्छ्राश्मगुल्ममेदःकफापहम् ।

खारी मिट्टी, शुद्ध मोचरस, भूनी हींग, शोधित सफेद तथा पीला हीराकसीस, सेंधा नमक और शिलाजीत, इन सात औषधियोंके चूर्णका सेवन करनेसे मूत्रकृच्छ्र, पथरी, गोला और मेदोरोग दूर हो जाते हैं ॥ १२५ ॥

भगंदररोगपर खदिरादि काढ़ा

खदिरत्रिफलाक्वाथो महिषीघृतसंयुतः ॥ १२६ ॥
विडङ्गचूर्णयुक्तश्च भगन्दरविनाशनः ।

खैर, त्रिफला (हड़, बहेड़ा और आमलाका) काढ़ा बनाकर उसमें भैंसका घी और वायबिडंगका चूर्ण मिलाकर पीनेसे भगंदर रोग आराम होता है ॥ १२६ ॥

उपदंशपर पटोलादि काढ़ा

पटोलत्रिफलानिंबकिरातखदिरासनैः ॥ १२७ ॥
क्वाथः पीतो जयेत्सर्वानुपदंशान्सगुग्गुलुः ।

पटोलपत्र, त्रिफला, नीमकी छाल, चिरायता, खैर और विजयसार इन औषधियोंके काढ़ेमें गुगूल मिलाकर पीनेसे उपदंश (गर्मी) रोग दूर होता है ॥ १२७ ॥

वातरक्तपर अमृतादि काढ़ा

अमृतैरंडवासानां क्वाथ एरंडतैलयुक् ॥ १२८ ॥
पीतः सर्वाङ्गसंचारि वातरक्तं जयेद्ध्रुवम् ।

गुरुच, रेंडकी जड़ और अडूसा इन औषधियोंके काढ़ेमें रेंडीका तेल डालकर पीनेसे सब अंगोंमें रहनेवाला वातरक्त रोग दूर हो जाता है ॥ १२८ ॥

दूसरा पटोलादि काढ़ा

पटोलं त्रिफला तिक्ता गुडूची च शतावरी ॥ १२९ ॥
एष क्वाथो जयेत्पीतो वातास्रं दाहसंयुतम् ।

पटोलपत्र, त्रिफला, कुटकी, गुरुच और शतावर इन औषधियोंसे बने काढ़ेको पीनेसे दाहयुक्त वातरक्त रोग दूर हो जाता है ॥ १२९ ॥

श्वेतकुष्ठपर अवल्गुजादि काढ़ा

क्वाथोऽवल्गुजचूर्णाख्यो धात्रीखदिरसारयोः ॥ १३० ॥
जयेत्सशीलितो नित्यं श्वित्रं पथ्याशिनां नृणाम् ।

आमला और खैरसार, इन दो औषधियोंके काढ़ेमें बाकुचीका चूर्ण मिलाकर पीने और परहेजसे रहनेवाले प्राणीका श्वेतकुष्ठ (जीतवण) रोग शान्त हो जाता है ॥ १३० ॥

वातरक्त और कुष्ठादिकोंपर लघुमंजिष्ठादि काढ़ा

मंजिष्ठात्रिफलातिक्तावचदारुनिशाऽमृता ॥ १३१ ॥
निम्बश्चैषां कृतः क्वाथो वातरक्तविनाशनः ।
पामाकपालिकाकुष्ठरक्तमंडलजिन्मतः ॥ १३२ ॥

मंजीठ, हरड़, बहेड़ा, आमला, कुटकी, वच, दारुहल्दी, गुरुच और नीमकी छाल, इन औषधियोंका काढ़ा पीनेसे वातरक्त, खुजली, कापालिक कुष्ठ तथा रक्तमंडल ये रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १३१ ॥ १३२ ॥

कुष्ठादिकोंपर वृहन्मञ्जिष्ठादि काढ़ा

मंजिष्ठामुस्तकुटजगुडूचीकुष्ठनागरैः ।
भार्ङ्गीक्षुद्रावचानिंबनिशाद्वयफलत्रिकैः ॥ १३३ ॥
पटोलकटुकीमूर्वाविडंगासनचित्रकैः ।
शतावरी त्रायमाणा कृष्णेंद्रयववासकैः ॥ १३४ ॥
भृंगराजमहादारुपाठाखदिरचंदनैः ।
त्रिवृद्वरुणकैरातबाकुचीकृतमालकैः ॥ १३५ ॥
शाखोटकमहानिंबकरंजातिविषाजलैः ।
इंद्रवारुणकानंतासारिवापर्पटैः समैः ॥ १३६ ॥
एभिः कृतं पिबेत्क्वाथं कणागुग्गुलुसंयुतम् ।
अष्टादशसु कुष्ठेषु वातरक्तार्दिते तथा ॥ १३७ ॥
उपदंशे श्लीपदे च प्रसुप्तौ पक्षघातके ।
मेदोदोषे नेत्ररोगे मंजिष्ठादि प्रशस्यते ॥ १३८ ॥

मंजीठ, नागरमोथा, कुडेकी छाल, गुरुच, कूठ, सोंठ, भारंगी, कटेरीका पंचांग, वच, नीमकी छाल, हल्दी, दारुहल्दी, हड़, आमला, पटोलपत्र, कुटकी,

मूर्वा, वायविडंग, विजयसार, चीतेकी छाल, शतावर, त्रायमाणा, पीपल, इन्द्रजौ, अडूसेके पत्ते, भाँगरा, देवदारु, पाठ, खैरसार, लाल चन्दन, निसोथ, वरनाकी छाल, चिरायता, बकुची, अमिलतासका गूदा, सिहोड़की छाल, बकायन, कंजा, अतीस, नेत्रवाला, इन्द्रायनकी जड़, धमासा, सारिवा और पित्तपापड़ा इन औषधियोंको कूट-पीस और जौकुट करके काढ़ा बनावे और उसमें पीपलका चूर्ण और गूगुल मिलाकर पीवे तो अठारह प्रकारके कुष्ठ, वातरक्त, उपदंश, श्लीपद (फीलपाँव) अंगशून्य, पक्षाघात, वायु एवं मेदोरोग तथा नेत्रमें होनेवाली व्याधियाँ नष्ट हो जाती है ॥ १३३–१३८ ॥

शिरोरोगादिकोंपर पथ्यादि काढ़ा

पथ्याक्षधात्रीभूनिम्बनिशानिम्बामृतायुतैः।
कृतः क्वाथः षडंगोऽयं सगुडः शीर्षशूलहा ॥ १३९ ॥
भ्रूशंखकर्णशूलौ च तथार्धशिरसो रुजम्।
सूर्यावर्तं शंखकं च दंतघातं च तद्रुजम् ॥ १४० ॥
नक्तांध्यं पटलं शुक्रं चक्षुःपीडां व्यपोहति।

हरड़, बहेड़ा, आँवला, चिरायता, हल्दी, नीमकी छाल और गिलोय इन औषधियोंसे बने भये काढ़ेमें गूगुल मिलाकर पीनेसे मस्तकशूल, भौंका और कनपटीका शूल, कर्णशूल, आधाशीशी, सूर्यावर्त, सूर्योदयसे लेकर दोपहर तक बढ़नेवाला मस्तकशूल, दन्तघात और दन्तपीड़ा, दन्तशूल, रतौंधी, नेत्रपटलगत रोग, नेत्रकी फूली तथा अन्यान्य नेत्रसम्बन्धी पीड़ायें दूर हो जाती हैं॥१३९॥१४०॥

नेत्ररोगपर वासादि काढ़ा

वासाविश्वामृतादार्वीरक्तचन्दनचित्रकैः ॥ १४१ ॥
भूनिंबनिंबकटुकापटोलत्रिफलांबुदैः।
यवकालिंगकुटजैः क्वाथः सर्वाक्षिरोगहा ॥ १४२ ॥
वैस्वर्यं पीनसं श्वासं नाशयेदुरसः क्षतम्।

अडूसा, सोंठ, गिलोय, दारुहल्दी, लालचन्दन, चीतेकी छाल, चिरायता, नीमकी छाल, कुटकी, परवलके पत्ते, हड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा, जौ, इन्द्रजौ तथा कुडेकी छाल इन औषधियोंका काढ़ा बनाकर पीनेसे स्वरभंग, पीनस, श्वास तथा उरःक्षत रोग शान्त हो जाता है ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

दूसरा अमृतादि काढ़ा

अमृतात्रिफलाक्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ॥ १४३ ॥
सक्षौद्रः शीलितो नित्यं सर्वनेत्रव्यथां जयेत् ।

गुरुच और त्रिफला मिलाकर तैयार किया काढ़ा, शहद और पीपरिका चूर्ण मिलाकर पीनेसे सब प्रकारके नेत्ररोग दूर हो जाते हैं ॥ १४३ ॥

व्रणादि प्रक्षालन करनेका काढ़ा

अश्वत्थोदुंबरप्लक्षवटवेतसजं शृतम् ॥ १४४ ॥
व्रणशोथोपदंशानां नाशनं क्षालनात्स्मृतम् ।

पीपरि, गूलर, पाकड़, बरगद और बेंतकी छाल, इन औषधियोंके काढ़ेसे धोनेपर व्रण, शोथ तथा उपदंश (गर्मी) रोग शान्त हो जाता है ॥ १४४ ॥

प्रमथ्यादि कषायभेद

प्रमथ्या प्रोच्यते द्रव्यपलात्कल्कीकृताच्छृतात् ॥ १४५ ॥
तोयेऽष्टगुणिते तस्याः पानमाहुः पलद्वयम् ।

किसी एक औषधिको कूट-पीसकर, कल्क (गीली चटनी जैसी) करे, यदि वह औषधि सूखी हो तो भिगोकर कल्क बनावे । फिर उसमें औषधिकी अपेक्षा आठ-गुना पानी डालकर खूब औटावे । जब दो पल पानी बच जाय तब उतार ले । इसकी प्रमथ्या संज्ञा है । दो पल प्रमाणकी औषधि सेवन करनेका विधान है ॥ १४५ ॥

रक्तातिसारपर मुस्तादि प्रमथ्या

मुस्तकेंद्रयवैः सिद्धा प्रमथ्यापि पलोन्मिता ॥ १४६ ॥
सुशीता मधुसंयुक्ता रक्तातीसारनाशिनी ।

नागरमोथा और इन्द्रजौ, इन दोनों औषधियोंको कूट-पीसकर कल्क तैयार करे । फिर उसमें अठगुना जल मिलाकर दो पल जलके शेष रहने तक औटावे । फिर उसे उतार ले और ठंढा होजाने पर शहद मिलाकर पीवे तो रक्तातीसार रोग शान्त हो जाता है ॥ १४६ ॥

यवागूकी परिभाषा

साध्यं चतुष्पलं द्रव्यं चतुःषष्टिपले जले ॥ १४७ ॥
तत्क्वाथेनार्धशिष्टेन यवागूं साधयेद्घनाम् ।

चार पल औषधिको थोड़ा कुचकुच करके चौंसठ पल पानीके साथ आग-पर चढ़ा दे। जब आधा पानी शेष रहे तो उतार ले। फिर उसको छानकर चावल आदि जिस द्रव्यका विधान किया गया हो, वह मिलाकर फिर औटावे। जब गाढ़ी हो जाय तो उतार ले। इसीको लोग यवागू कहते हैं॥ १४७॥

संग्रहणीपर आम्रादि यवागू

आम्राम्रतकजंबूत्वक्कषाये विपचेद्बुधः॥ १४८॥
यवागूं शालिभिर्युक्तां तां भुक्त्वा ग्रहणीं जयेत्।

आम, आमड़ा और जामुन इन तीन वृक्षोंको चार पल छाल लेकर जौकूट करके चौंसठगुने पानीमें डालकर औटावे। जब आधा पानी शेष रहे तो इस जलको छान ले और उसमें चार पल चावल डालकर फिर औटावे। औटते-औटौते जब गाढ़ा हो जाय तब उतार ले और काममें लावे। इसे लोग आम्रादि यवागू कहते हैं। इसे खानेसे संग्रहणी रोग दूर हो जाता है॥ १४८॥

यूषविधान

कल्कद्रव्यपलं शुण्ठी पिप्पली चार्धकार्षिकी॥ १४९॥
वारिप्रस्थेन विपचेत्स द्रवो यूष उच्यते।

ऊपर बतलायी कल्ककी औषधि एक पल ले। फिर उसमें आधा कर्ष सोंठ और पीपल लेकर कल्क करे। उसमें एक सेर जल डालकर खूब अच्छी तरह पकावे। इसकी यूष संज्ञा है॥ १४९॥

सन्निपातादिकोंपर सप्तमुष्टिक यूष

कुलत्थयवकोलैश्च मुद्गैर्मूलकग्रन्थिकैः॥ १५०॥
शुण्ठीधान्यकयुक्तैश्च यूषः श्लेष्मानिलापहः।
सप्तमुष्टिक इत्येष सन्निपातज्वरं जयेत्॥ १५१॥
आमवातहरः कण्ठहृद्वक्त्राणां विशोधनः।

कुलथी, जौ, वेर, मूँग, छोटी मूली, सोंठ और धनियाँ, इन सात औषधियों-को एक-एक पल लेकर सोलहगुने जलमें औटावे। यह सप्तमुष्टिक यूष कहलाता है। इसके पीनेसे कफ, वायु तथा सन्निपातज ज्वर और आमवात ये रोग शान्त हो जाते और कंठ, हृदय तथा मुख शुद्ध हो जाता है॥ १५०॥ १५१॥

पानादिकी कल्पना

क्षुण्णं द्रव्यं पलं साध्यं चतुःषष्टिपलेऽम्बुनि ॥ १५२ ॥
अर्धशिष्टं च तद्देयं पाने भक्तादिसन्निधौ ।

एक पल औषधि जौकूट कर ले, फिर उसे चौंसठ पल जलमें औटावे । जब आधा जल शेष रहजाय तब उतार करके कपड़ेसें छान ले । इसी जलको भोजन करते समय या वैसे ही जब प्यास लगे तब थोड़ा-थोड़ा पीवे ॥ १५२ ॥

पिपासाज्वरपर उशीरादि पानक

उशीरपर्पटोदीच्यमुस्तनागरचन्दनैः ॥ १५३ ॥
जलं शृतं हिमं पेयं पिपासाज्वरनाशनम् ।

खस, पित्तपापड़ा, नेत्रबाला, नागरमोथा, सोंठ, चन्दन, इन औषधियोंको चार तोले एकत्रित करे और जौकूट करके ६४ तोले जलमें रखकर अर्धावशेष पर्यन्त औटावे । फिर उतारकर छान ले और शीतल होनेपर जिस ज्वरमें प्यास विशेष लगती हो, उसमें थोड़ा-थोड़ा पीनेको दे । इससे प्यास शान्त होगी और ज्वर भी दूर हो जायगा ॥ १५३ ॥

ज्वरादिकोंपर गरम जलकी विधि

अष्टमेनांशशेषेण चतुर्थेनार्धकेन वा ॥ १५४ ॥
अथवा क्वथनेनैव सिद्धमुष्णोदकं वदेत् ।

पानीको आगपर चढ़ाकर इतना औटावे कि उसका आधा, चौथाई तथा अष्टमांश जल शेष रहे अथवा खूब अच्छी तरह पकावे । इस जलकी उष्णोदक संज्ञा है ॥ १५४ ॥

रात्रिमें गरम जल पीनेकी विधि

श्लेष्मामवातमेदोघ्नं बस्तिशोधनदीपनम् ॥ १५५ ॥
कासश्वासज्वरहरं पीतमुष्णोदकं निशि ।

यदि रात्रिके समय गरम पानी पिया जाय तो कफ, आमवात, मेदोरोग, खाँसी, श्वास और ज्वररोग नष्ट हो जाता और पेट शुद्ध होकर अग्नि प्रदीप्त हो जाती है ॥ १५५ ॥

आमशूलपर दूधके पाककी विधि

क्षीरमष्टगुणं द्रव्यात्क्षीरान्नीरं चतुर्गुणम् ॥ १५६ ॥
क्षीरावशेषं तत्पीतं शूलमामोद्भवं जयेत् ।

आमवात-नाशनके लिए जो औषधियें बतलायी गयी हों, उनसे अठगुना अधिक दूध और दूधका चौगुना पानी मिलाकर खूब औटावे। जब केवल दूधमात्र शेष रह जाय तो उतारकर छान ले और पीवे तो आमशूल शान्त हो ॥ १५६ ॥

सर्वजीर्णज्वरोंपर पञ्चमूली क्षीरपाक

सर्वज्वराणां जीर्णानां क्षीरं भैषज्यमुत्तमम् ॥ १५७ ॥
श्वासात्कासाच्छिरःशूलात्पार्श्वशूलात्सपीनसात् ।
मुच्यते ज्वरितः पीत्वा पञ्चमूलीश्रृतं पयः ॥ १५८ ॥

शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, छोटी-बड़ी कटेरी और गोखरू इनको जौकूट करके अठगुने दूध और दूधसे चौगुने पानीमें औटावे। ठंढा होनेपर सेवन करे तो श्वास, कास, मस्तकशूल, पसलियोंका दर्द, पीनस तथा जीर्णज्वर, ये वाधायें दूर हो जाती हैं ॥ १५७ ॥ १५८ ॥

त्रिकण्टकादि क्षीरपाक

त्रिकण्टकबलाव्याघ्रीकुष्ठनागरसाधितम् ।
वर्चोमूत्रविबन्धघ्नं कफज्वरहरं पयः ॥ १५९ ॥

गोखरू, खरेटी, कटेरीका छिलका, कुष्ठ और सोंठ, इन औषधियोंको अठगुने दूध और दूधसे चौगुने पानीमें औटावे। जब केवल दूध बच जाय तब उतार ले। यह दुग्ध पान करनेसे मलमूत्र अच्छी तरह उतरता और कफज्वर शांत हो जाता है ॥ १५९ ॥

अन्नमय यवागू

अथान्नप्रक्रिययैव प्रोच्यते नातिविस्तरात् ।
यवागूः षड्गुणजले सिद्धा स्यात्कृशरा घना ॥ १६० ॥
तंदुलैर्माषमुद्गैश्च तिलैर्वा साधिता हिता ।
यवाग्राहिणी बल्या तर्पणी वातनाशिनी ॥ १६१ ॥

अब संक्षिप्तरूपसे यवागू, विलेपी और पेया इन भेदों युक्त अन्नप्रक्रियाका विधान बतलाते हैं। चावल, उड़द, मूँग अथवा तिल, इनमेंसे जिस चीजकी यवागू बनानी हो, वह वस्तु ले और उसकी अपेक्षा छगुना अधिक जल डालकर खूब औटावे। जब वह गाढ़ी हो जाय तब उतार ले। इसे लोग अन्नयवागू कहते

हैं। इसके दो नाम हैं, एक कृशरा और दूसरा घना। इसके सेवनसे मल आदि स्तम्भित होते, बलकी वृद्धि होती, शरीर पुष्ट होता और वायुका वेग शान्त हो जाया करता है॥ १६०॥ १६१॥

विलेपीके लक्षण और गुण

विलेपी च घना सिक्था सिद्धा नीरे चतुर्गुणे।
बृंहणी तर्पणी हृद्या मधुरा पित्तनाशिनी॥ १६२॥

जिस द्रव्यका विलेपी बनाना हो, उसकी अपेक्षा चौगुना अधिक पानी डालकर औटावे। जब वह लपसीके समान गाढ़ा और चटचटा हो जाय तब उतार ले। इसीकी विलेपी संज्ञा है। इसका सेवन करनेसे धातुकी वृद्धि होती, शरीर पुष्ट होता, हृदयको रुचता, खानेमें मीठा लगता और पित्तका शमन करता है॥ १६२॥

पेया तथा यूषके लक्षण

द्रवाधिका स्वल्पसिक्था चतुर्दशगुणे जले।
सिद्धा पेया बुधैर्ज्ञेया यूषः किंचिद्घनः स्मृतः॥ १६३॥
पेया लघुतरा ज्ञेया ग्राहिणी धातुपुष्टिदा।
यूषो बल्यस्ततः कंठ्यो लघूपायः कफापहः॥ १६४॥

जिस द्रव्यकी पेया बनानी हो, उससे चौदहगुने अधिक जलमें रखकर उसे कुछ लसीदार होने पर्यन्त औटावे। फिर उतार ले। इसीकी पेया संज्ञा है। इस पेयासे कुछ अधिक गाढ़ी वस्तुकी यूष संज्ञा है। पेया बहुत ही हल्की और मलादिकोंका स्तम्भन करने एवं धातुको पुष्ट करनेवाली है। यूष बलदायिनी, कंठका हित करनेवाली, हल्की तथा कफको दूर करनेवाली है॥ १६३॥ १६४॥

भात बनानेका प्रकार

जले चतुर्दशगुणे तन्दुलानां चतुःपलम्।
विपचेत्स्रावयेन्मंडं स भक्तो मधुरो लघुः॥ १६५॥

चार पल अच्छी तरह साफ-सुथरे चावलोंको चौदहगुने अधिक पानीमें डालकर पकावे। जब सीझ जाय तो माँड़ निकाल ले और काममें लावे। यह भात खानेमें स्वादिष्ट और हल्का होता है॥ १६५॥

शुद्ध मंड

नीरे चतुर्दशगुणे सिद्धो मंडस्त्वसिक्थकः ।
शुण्ठीसैंधवसंयुक्तः पाचनो दीपनः परः ॥ १६६ ॥

उसी तरह चौदहगुने पानीमें चावलोंको डालकर पकावे । जब यह समझ ले कि चावल सीझ गये होंगे तो माड़ निकाल ले । इस माडकी शुद्ध मण्ड संज्ञा है । यदि इसमें सेंधा नमक और सोंठ मिलाकर पिया जाय तो अन्न अच्छी तरह पचता और औदर्य अग्नि प्रज्ज्वलित होती है ॥ १६६ ॥

अष्टगुण मण्ड

धान्यत्रिकटुसिंधूत्थमुद्गतंदुलयोजितः ।
भृष्टश्च हिंगुतैलाभ्यां स मण्डोऽष्टगुणः स्मृतः ॥ १६७ ॥
दीपनः प्राणदो बस्तिशोधनो रक्तवर्धनः ।
ज्वरजित्सर्वदोषघ्नो मण्डोऽष्टगुण उच्यते ॥ १६८ ॥

धनियाँ, त्रिकटु (सोंठ, मिरच, पीपरि) सेंधा नमक, मूँग, चावल, हींग और तेल इन पदार्थोंको एकत्र करके पहले तेलमें हींग डाले और उसमें एक पल मूँग तथा दो पल चावल डालकर भूने । भुन जानेके बाद ऊपर बतायी औष-धियोंको चावलोंमें मिलाकर चौदहगुने अधिक जलमें औटावे । जब चांवल सीझ जाय तब उतारके छान ले । इसके पीनेसे अग्नि प्रदीप्त होता, प्राणोंमें बल आता, बस्तिमें शुद्धता आती और ज्वर तथा वातादि तीनों दोषोंका प्रकोप शान्त हो जाता है । यह अष्टगुण मण्ड कहाता है ॥ १६७ ॥ १६८ ॥

कफ-पित्तादि रोगोंपर वाट्यमण्ड

सुकण्डितैस्तथा भृष्टैर्वाट्यमण्डो यवैर्भवेत् ।
कफपित्तहरः कंठ्यो रक्तपित्तप्रसादनः ॥ १६९ ॥

अच्छी तरह कूटे और फटके हुए जौको भूने । उसके बाद उसे चौदहगुने अधिक जलमें चढ़ाकर सिझावे । सीझ जानेपर उस पानीको छानके सेवन करे । इसे वाट्य मण्ड कहते हैं । इसके पीनेसे कफ और पित्तका प्रकोप दूर होता, गलेको हित होता और रक्तपित्तका प्रकोप भी दूर हो जाता है ॥ १६९ ॥

कफ-पित्तज्वरादिकोंपर लाजा मण्ड

लाजैर्वा तण्डुलैर्भृष्टैर्लाजमण्डः प्रकीर्तितः ।
श्लेष्मपित्तहरो ग्राही पिपासाज्वरजिन्मतः ॥ १७० ॥

धानके भुने हुए लावे अथवा चावलोंको भूनकर चौदहगुने अधिक जलमें रखकर औटावे। फिर उसको पसाकर माँड निकाल ले। इसकी लाजमण्ड संज्ञा है। इसके पीनेसे कफ-पित्तका प्रकोप शान्त होता, संग्रहणी और अतीसार स्तम्भित होता और जिस ज्वरमें प्यास अधिक लगती है, वह ज्वर भी शान्त हो जाया करता है ॥ १७० ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां चिकित्सास्थाने क्वाथादिकल्पना नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥

अथ तृतीयोऽध्यायः।

फाण्टादिकी कल्पना

क्षुण्णे द्रव्यपले सम्यग्जलमुष्णं विनिक्षिपेत्।
मृत्पात्रे कुडवोन्मानं ततस्तु स्रावयेत्पटात् ॥ १ ॥
स स्याच्चूर्णद्रवः फांटस्तन्मानं द्विपलोन्मितम्।
मधुश्वेतागुडादींश्च क्वाथवत्तत्र निक्षिपेत् ॥ २ ॥

अब फांट और चूर्णद्रव बनानेकी विधि बतलाते है। एक पल ओषधि ले, उसे अच्छी तरह कूटकर एक कुडव जलमें डाल करके आगपर चढ़ा दे। जब वह अच्छी तरह पक जाय तो उसके पानीको कपड़ेसे छान ले। यह फांट और चूर्णद्रव कहलाता है। इसके पीनेकी मात्रा दो पल है। यदि इसमें शहद, मिश्री, खाँड़, गुड़ तथा अन्य कोई वस्तु डालनी हो तो काढ़ेमें जितने परिमाणकी वस्तु डालनेकी विधि बतलायी गयी है, उतना ही इसमें भी डाले ॥ १ ॥ २ ॥

वातपित्तज्वरपर मधूकादि फांट

मधूकपुष्पं मधुकं चंदनं सपरूषकम्।
मृणालं कमलं लोध्रं गम्भारीं नागकेशरम् ॥ ३ ॥
त्रिफलां सारिवां द्राक्षां लाजान्कोष्णे जले क्षिपेत्।
सितामधुयुतः पेयः फांटो वाऽसौ हिमोऽथवा ॥ ४ ॥
वातपित्तज्वरं दाहं तृष्णामूर्च्छारतिभ्रमान्।
रक्तपित्तं मदं हन्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ ५ ॥

महुआके फूल, मुलहठी, लाल-चन्दन, फालसा, कमलकी डण्डी, कमलके बीज, लोध, खंभारी, नागकेसर, त्रिफला, सरिवन, मुनक्का और धानके लावे, इन तेरह वस्तुओंको कूटकर एक पल ले। फिर चार पल पानी आगपर चढ़ा दे और खूब गरम करे। जब जल खौलने लगे तब ऊपर बतलायी कुटी हुई औषधियोंमें-से एक पल लेकर डाल दे। जब खूब औट जाय तब उस पानीको उतारकर छान ले। यह फांट खाँड और शहद मिलाकर पीना चाहिए। इसके पीनेसे वात-पित्त-ज्वर, दाह, तृष्णा, मूर्च्छा, मनकी व्याकुलता, भ्रम, रक्तपित्त तथा मदरोग दूर हो जाते हैं। यदि उक्त रीतिसे फांट न बना सके तो ऊपर बतलायी तेरहों औषधियोंको पानीमें भिगो दे और सवेरे उस पानीको छानकर सेवन करे। यह हिमविधि कहलाती है। जो गुण फांटमें है, वही इसमें भी है ॥३—५॥

पिपासादिकोंपर आम्रादि फांट

आम्रजम्बूकिसलयैर्वटशुङ्गप्ररोहकैः।
उसीरेण कृतः फांटः सक्षौद्रो ज्वरनाशनः ॥ ६ ॥
पिपासाच्छर्द्यतीसारान्मूर्च्छां जयति दुस्तराम्।

आम और जामुन इनके कोमल पत्ते और बरगदकी कलीके भीतरवाले मुलायम पत्ते और नेत्रवाला, इन औषधियोंको एकत्र करके ऊपर बतलायी रीतिके अनुसार फांट बनाकर पीनेसे ज्वर, तृष्णा, वमन, अतीसार एवं कृच्छ्रसाध्य मूर्च्छासे सम्बन्ध रखनेवाले रोग शान्त हो जाते हैं॥ ६ ॥

पित्त-तृष्णादिकोंपर मधूकादि फांट

मधूकपुष्पगम्भारीचन्दनोशीरधान्यकैः ॥ ७ ॥
द्राक्षया च कृतः फांटः पीतः शर्करया युतः।
तृष्णापित्तहरः प्रोक्तो दाहमूर्च्छाभ्रमाञ्जयेत् ॥ ८ ॥

महुआके फूल, गंभारी, चन्दन, खस, धनियाँ और दाख (मुनक्का) इन औषधियोंका फांट बनाकर पीनेसे तृष्णा, पित्त, दाह, मूर्छा और भ्रम ये रोग दूर हो जाया करते हैं॥ ७ ॥ ८ ॥

मन्थकल्पना

मन्थोऽपि फांटभेदः स्यात्तेन चात्रैव कथ्यते।

मंथ भी फांटका ही एक भेद है। इस लिए उसे भी यहां ही बतलाते हैं।

मन्थकी विधि

जले चतुष्पले शीते क्षुण्णं द्रव्यपलं पिबेत् ॥ ९ ॥
मृत्पात्रे मन्थयेत्सम्यक्तस्माच्च द्विपलं पिबेत् ।

एक पल प्रमाणकी औषधिको खूब अच्छी तरह कूटे । फिर चार पल ठण्ढे पानीको किसी मिट्टीके बर्तनमें डालकर वह औषधि भी उसीमें डाले और मथानी लेकर मथे । जब खूब फेन उठने लगे तब उसे कपड़ेसे छान ले । इसे मंथ कहते हैं । इसके सेवन करनेका प्रमाण दो पल है ॥ ९ ॥

सर्वमद्यविकारोंपर खर्जूरादि मन्थ

खर्जूरदाडिमद्राक्षातिंतिडीकाम्लिकामलः ॥ १० ॥
सपरूषैः कृतो मन्थः सर्वमद्यविकारनुत् ।

खजूर, अनारदाने, दाख, तिंतिडीक इमली, इमली, आँवला और फालसे, इन सातों औषधियोंको कूट-पीसकर एक पल ले । इसके बाद चार पल ठंढे जलको किसी एक मिट्टीकी मटकीमें डालकर मथानीसे अच्छी तरह मथे । जब झाग निकलने लगे तब पानी छान ले । इसके पीनेसे सब प्रकारके मद्यविकार, सुपारीका नशा, मतौने कोदौंका मद तथा ताडी आदि आसवोंका मद, ये बाधाएँ दूर हो जाती हैं ॥ १० ॥

वमनरोगपर मसूरादि मन्थ

क्षौद्रयुक्ता मसूराणां सक्तवो दाडिमांभसा ॥ ११ ॥
मथिता वारयंत्याशु छर्दिं दोषत्रयोद्भवाम् ।

खड़ी मसूरको भाड़में भुनाकर पिसवा ले । इसके अनन्तर पके अनारके दाने-के पानीमें मसूरका चूरन मिला दे और सेवन करे । इसके सेवनसे वातज, पित्तज तथा कफज, ये तीनों प्रकारके वमन शान्त हो जाते हैं ॥ ११ ॥

तृष्णादिकोंपर यवसक्तुका मन्थ

प्लावितैः शीतनीरेण सघृतैर्यवसक्तुभिः ॥ १२ ॥
नातिसान्द्रद्रवो मन्थस्तृष्णादाहास्रपित्तहा ।

खड़े जौको भुनाकर पिसवा ले । फिर उसे शीतल जलमें इस तरह मिलावे कि जिससे न विशेष गाढ़ा हो न पतला रहने पावे । फिर उसे मथे और घी मिला-कर पीने तो तृष्णा, दाह तथा रक्तपित्त, ये बाधाएँ दूर हो जाती हैं ॥ १२ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां चिकित्सास्थाने फांटादिकल्पना नाम तृतीयोऽध्यायः॥३॥

अथ चतुर्थोऽध्यायः।

हिमकल्पना

क्षुण्णं द्रव्यपलं सम्यक्षड्भिर्नीरपलैः प्लुतम्।
निःशोषितं हिमः स स्यात्तथा शीतकषायकः ॥ १ ॥
तन्मानं फाण्टवज्ज्ञेयं सर्वत्रैष विनिश्चयः।

एक पल औषधिको खूब अच्छी तरह कूटकर छ पल जल किसी मटकेमें भरके उसमें वह औषधि डालकर रात्रिमें भिगो दे। सवेरे वह पानी छानकर पी जाय। यह हिम अथवा शीतकाढ़ा कहलाता है। इसके पीनेका परिमाण फांट-के समान दो पलमात्र होता है ॥ १ ॥

रक्तपित्तपर आम्रादि हिम

आम्रं जम्बूं च ककुभं चूर्णीकृत्य जले क्षिपेत् ॥ २ ॥
हिमं तस्य पिबेत्प्रातः सक्षौद्रं रक्तपित्तजित्।

आम, जामुन और कोहकी छाल, इन तीन औषधियोंको एक पल प्रमाणसे लेकर चूर्ण कर ले। फिर किसी मिट्टीके बर्तनमें छ पल जल डालकर पूर्वकथित कुटी हुई औषधिके चूर्ण डालकर भिगो दे। रात भर भीगनेके बाद सवेरे वह पानी छान ले और शहद मिलाकर पीवे तो रक्तपित्त रोग दूर हो जाता है ॥ २ ॥

तृष्णादिकोंपर मरीचादि हिम

मरीचं मधुयष्टिं च काकोदुम्बरपल्लवैः।
नीलोत्पलं हिमस्तज्जस्तृष्णाच्छर्दिनिवारणः ॥ ३ ॥

काली मिर्च, मुलहठी, काकोदुम्बर (कठूमर) और नील कमलके पत्ते इन चार औषधियोंको एक पलके प्रमाणसे ले और सबको जौकूट करे। फिर किसी मिट्टीके बर्तनमें छ पल जल डाल और उस पानीमें पूर्वोक्त औषधियोंको डालकर भिगो दे। प्रातःकालके समय उस पानीको छानकर पी जाय तो तृष्णा तथा वमन रोग दूर हो जाता है ॥ ३ ॥

वात-पित्तज्वरपर नीलोत्पलादि हिम

नीलोत्पलं बलाद्राक्षामधूकं मधुकं तथा ॥ ४ ॥

उशीरपद्मकं चैव काश्मरी च परूषकम् ।
एतच्छीतकषायश्च वातपित्तज्वराञ्जयेत् ॥ ५ ॥
सप्रलापभ्रमच्छर्दिमोहतृष्णानिवारणः ।

नील कमल, खरेटीकी छाल, दाख, महुआ, मुलहठी, नेत्रबाला, पद्माख, खंभारी और फालसे, इन औषधियोंका हिम बनाकर पीवे तो वातपित्तज्वर, प्रलाप, भ्रम, वमन, मूर्च्छा और तृष्णा, ये रोग शान्त हो जाते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

जीर्णज्वरपर अमृतादि हिम

अमृताया हिमः पेयो जीर्णज्वरहरः स्मृतः ॥ ६ ॥

पूर्वकथित रीतिके अनुसार गिलोयका हिम बनाकर पीनेसे जीर्णज्वर दूर हो जाता है ॥ ६ ॥

रक्तपित्तज्वरपर वासाहिम

वासायाश्च हिमः कासरक्तपित्तज्वराञ्जयेत् ।

अडूसेका हिम बनाकर पीनेसे खाँसी और रक्तपित्त ज्वर दूर हो जाया करता है ।

अन्तर्दाहपर धान्यादि हिम

प्रातः सशर्करः पेयो हिमो धान्याकसंभवः ॥ ७ ॥
अन्तर्दाहं तथा तृष्णां जयेत्स्रोतोविशोधनः ।

रात्रिके समय पानीमें धनियाँ भिगो दे और सवेरे उसे खाँड़ मिलाकर पीवे तो शरीरके भीतरकी दाह और तृष्णारोग शान्त हो जाते एवं मल-मूत्र आदिके रोग भी दूर हो जाया करते हैं ॥ ७ ॥

रक्तपित्तादिकोंपर धान्याकादि हिम

धान्याकधात्रीवासानां द्राक्षापर्पटयोर्हिमः ॥ ८ ॥
रक्तपित्तज्वरं दाहं तृष्णां शोथं च नाशयेत् ।

धनियाँ, आँवला, अडूसा, दाख और पित्तपापड़ा, इन पाँच औषधियोंका हिम तैयार करके पीनेसे रक्तपित्तज्वर, दाह, तृष्णा और शोथ ये रोग दूर हो जाते हैं ॥ ८ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां चिकित्सास्थाने हिमकल्पना नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

———

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

कल्ककी कल्पना

द्रव्यमार्द्रं शिलापिष्टं शुष्कं वा सजलं भवेत् ।
प्रक्षेपावापकल्कास्ते तन्मानं कर्षसम्मितम् ॥ १ ॥
कल्के मधु घृतं तैलं देयं द्विगुणमात्रया ।
सितागुडौ समौ दद्याद् द्रवा देयाश्चतुर्गुणाः ॥ २ ॥

किसी भी गीली औषधिको चटनीकी तरह पीस ले । यदि वह सूखी हो तो जल मिलाकर पीसे । उसी पिसी औषधिकी कल्कसंज्ञा है । इसके सेवनका प्रमाण एक तोले होता है । प्रक्षेप और आवाप, ये दो उसके पर्यायवाचक नाम हैं । उस कल्कमें यदि शहद, घृत तथा तेल डालना हो तो कल्ककी अपेक्षा दुगुनी मात्रामें डालना चाहिये । खाँड़ तथा गुड़ डालनेका विधान हो तो कल्कके ही इतना डाले और यदि दूध, पानी या और कोई द्रव पदार्थ डालनेकी विधि बतलायी गयी हो तो कल्ककी अपेक्षा चौगुना डालना चाहिए ॥ १ ॥ २ ॥

पांडुरोगादिकोंपर वर्धमान पिप्पली

त्रिवृद्ध्या पंचवृद्ध्या वा सप्तवृद्ध्याथवा कणाः ।
पिबेत्पिष्ट्वा दशदिनं तास्तथैवापकर्षयेत् ॥ ३ ॥
एवं विंशद्दिनैः सिद्धं पिप्पलीवर्द्धमानकम् ।
अनेन पाण्डुवातास्रकासश्वासारुचिज्वराः ॥ ४ ॥
उदरार्शःक्षयश्लेष्मवाता नश्यंत्युरोग्रहाः ।

पहले रोज तीन पीपरि, दूसरे दिन छः, तीसरे रोज नौ पीपरि; इस क्रमसे अथवा पाँच या सात पीपरिसे प्रारम्भ करके प्रतिदिन उसी क्रमसे बढ़ाता जाय । तदनन्तर जिस क्रमसे बढ़ाया हो उसी क्रमसे घटावे । इस प्रकार तीस दिन इन पिप्पलियोंका कल्क करके चौगुने जल या दूधमें इस पीपरिके सेवन करनेसे पांडुरोग, वातरक्त, खाँसी, श्वास, अरुचि, ज्वर, उदररोग, बवासीर, क्षय, कफ, वायु तथा उरोग्रह रोग दूर हो जाते है । इस औषधिको लोग वर्धमान पिप्पली कहते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

व्रणादिकोंपर निम्बकल्क

लेपान्निम्बदलैः कल्को व्रणशोधनरोपणः ॥ ५ ॥
भक्षणाच्छर्दिकुष्ठानि पित्तश्लेष्मकृमीञ्जयेत् ।

नीमके पत्तोंको खूब बारीक पीसे और पीसकर कल्क बना ले । फिर किसी भी व्रणपर लेप कर दे अथवा टिकिया ही बाँध दे या गोली बनाकर खाय तो वह घाव विकारसे रहित होकर शीघ्र भर जाता और इसके खानेसे वमन, कुष्ठ, पित्त और श्लेष्माके प्रकोपसे सम्बन्ध रखनेवाले सब रोग एवं कृमिरोग दूर हो जाते हैं ॥ ५ ॥

गृध्रसीपर महानिम्ब-कल्क

महानिम्बजटाकल्को गृध्रसीनाशनः स्मृतः ॥ ६ ॥

यदि बकायनकी जड़को पानीके साथ पीसकर पीवे तो गृधसीरोग दूर हो जाता है ॥ ६ ॥

वायु और विषमज्वरपर रसोन-कल्क

शुद्धकल्को रसोनस्य तिलतैलेन मिश्रितः ।
वातरोगाञ्जयेत्तीव्रान्विषमज्वरनाशनः ॥ ७ ॥

यदि लहसुनका कल्क तैयार करके उसमें तिलका तेल मिलाकर पीवे तो भयानक वायुरोग और विषमज्वर दूर हो जाता है ॥ ७ ॥

वातरोगपर दूसरा रसोन-कल्क

पक्वकन्दरसोनस्य गुलिका निस्तुषीकृता ।
पाटयित्वा च मध्यस्थं दूरीकुर्यात्तदंकुरम् ॥ ८ ॥
तदुग्रगंधनाशाय रात्रौ तक्रे विनिक्षिपेत् ।
अपनीय च तन्मध्याच्छिलायां पेषयेत्ततः ॥ ९ ॥
तन्मध्ये पंचमांशेन चूर्णमेषां विनिक्षिपेत् ।
सौवर्चलं यमानी च भर्जितं हिंगु सैंधवम् ॥ १० ॥
कटुत्रिकं जीरकं च समभागानि चूर्णयेत् ।
एकीकृत्य ततः सर्वकल्कं कर्षप्रमाणतः ॥ ११ ॥
खादेदग्निबलापेक्षी ऋतुदोषाद्यपेक्षया ।
अनुपानं ततः कुर्यादेरंडश्रृतमन्वहम् ॥ १२ ॥

सर्वांगैकाङ्गजं वातमर्दितं चापतंत्रकम्।
अपस्मारमथोन्मादमूरुस्तम्भं च गृध्रसीम्॥ १३॥
उरःपृष्ठकटीपार्श्वकुक्षिपीडां कृमीञ्जयेत्।
अजीर्णमातपं रोषमतिनीरं पयो गुडम्॥ १४॥
रसोनमश्नन्पुरुषस्त्यजेदेतन्निरंतरम्।
मद्यं मांसं तथाम्लं च रसं सेवेत नित्यशः॥ १५॥

पके लहसुनकी गाँठोंके ऊपरका छिलका उतार दे। इसके बाद उसकी दुर्गन्धि दूर करनेके लिए रात्रिमें मट्ठेमें भिगो दे। सवेरे सिल और लोढ़ेसे बारीक पीस ले। फिर सोंचर नमक, अजमोदा, भुनी हींग, सेंधा नमक, सोंठ, काली मिर्च, पीपल और जीरा इन आठ औषधियोंका चूर्ण तैयार करके लहसुनका पंचमांश कल्क लेकर उसमें मिलावे। फिर रेंड़की जड़का काढ़ा तैयार-कर उस कल्कमें एक तोला काढ़ा डालकर पीवे। इसका सेवन करते समय इस बातपर विचार करना आवश्यक है कि वह कौन-सी ऋतु है और जो रोगी सेवन करना चाहता है उसमें कितनी शक्ति है। इस तरह इन दोनों बातोंको ध्यानमें रखकर यदि इस कल्कका सेवन किया जाय तो सर्वांगवात, एकांगवात, मुखको टेढ़ा करनेवाला अर्दित नामक वायु, अपतन्त्रक, मृगी, उन्माद, ऊरुस्तम्भ वायु, हृदय, पीठ, कमर और पसलियोंमें उठनेवाला शूल तथा कृमिरोग ये सब बाधाएँ दूर हो जाती हैं। इसका सेवन करनेवालेको चाहिये कि वह अजीर्णकारी पदार्थ, धूपमें रहना, क्रोध करना, अधिक जल पीना, दूध और गुड़ आदि पदार्थोंका परित्याग करदे और मद्य, मांस तथा खट्टे पदार्थ नित्य खाता रहे। क्योंकि ये चीजें इस औषधिके लिये हितकारी हैं॥ ८-१५॥

ऊरुस्तंभादिकोंपर पिप्पल्यादि कल्क

पिप्पली पिप्पलीमूलं भल्लातकफलानि च।
एतत्कल्कश्च सक्षौद्र ऊरुस्तंभनिवारणः॥ १६॥

पीपरि, पिपरामूल और भिलावेके फल, इन औषधियोंको पानीमें पीस तथा शहद मिलाकर सेवन करे तो ऊरुस्तम्भ नामक वायु शान्त होता है॥ १६॥

परिणामशूलपर विष्णुक्रान्ता कल्क

विष्णुक्रान्ताजटाकल्कः सिताक्षौद्रघृतैर्युतः।
परिणामभवं शूलं नाशयेत्सप्तभिर्दिनैः॥ १७॥

विष्णुक्रांता नामक औषधिकी जड़का कल्क तैयार करके खाँड़, मधु तथा घीके साथ केवल सात दिनतक सेवन करनेसे परिणामशूल नामक रोग शान्त हो जाता है ॥ १७ ॥

दूसरा शुण्ठीकल्क

शुण्ठीतिलगुडैः कल्कं दुग्धेन सह योजयेत् ।
परिणामभवं शूलमामवातं च नाशयेत् ॥ १८ ॥

सोंठ, तिल तथा इन दोनोंके बराबर ही गुड़ लेकर इन तीनों पदार्थोंका कल्क तैयार करे और चौगुने दूधमें सेवन करे तो परिणामशूल तथा आमवात ये रोग दूर हो जायँ ॥ १८ ॥

रक्तार्शपर अपामार्गकल्क

अपामार्गस्य बीजानां कल्कस्तंडुलवारिणा ।
पीतो रक्तार्शसां नाशं कुरुते नात्र संशयः ॥ १९ ॥

चिचिड़ेके बीजोंका कल्क तैयार करके चावलोंके धोवनके साथ पीनेसे खूनी बवासीर रोग शान्त हो जाता है ॥ १९ ॥

रक्तातिसारपर बदरीमूल-कल्क

बदरीमूलकल्केन तिलकल्कश्च योजितः ।
मधुक्षीरयुतः कुर्याद्रक्तातीसारनाशनम् ॥ २० ॥

झरबेरीकी जड़ और तिल, इन दो वस्तुओंका कल्क करके दोनोंको एकमें मिलाकर शहद, गौके दूध या बकरीके दूधमें पीवे तो रक्तातीसार रोग दूर हो जाता है ॥ २० ॥

रक्तक्षयादिकोंपर लाक्षा-कल्क

कूष्मांडकरसोपेतां लाक्षां कर्षद्वयं पिबेत् ।
रक्तक्षयमुरोघातं क्षयरोगं च नाशयेत् ॥ २१ ॥

बेरकी अथवा पीपलकी लाख दो तोले बारीक पीस ले और चूर्णकी अपेक्षा चौगुना पेठेका रस मिलाकर पीवे तो रक्तक्षय, उरोघात और क्षयरोग दूर हो जाता है ॥ २१ ॥

रक्तप्रदरपर तन्दुलीय कल्क

तन्दुलीयजटाकल्कः सक्षौद्रः सरसांजनः ।
तन्दुलोदकसम्पीतो रक्तप्रदरनाशनः ॥ २२ ॥

चौराईकी जड़का कल्क तैयार करके उसमें शहद और रसौत मिलाकर चावलोंके धोवनके साथ पीवे तो स्त्रियोंका रक्तप्रदर रोग दूर हो जाता है ॥ २२ ॥

अतिसारपर अंकोल-कल्क

अंकोलमूलकल्कश्च सक्षौद्रस्तंदुलाम्बुना ।
अतिसारहरः प्रोक्तस्तथा विषहरः स्मृतः ॥ २३ ॥

अंकोल (अकोहर) के वृक्षकी जड़को कूट-पीसकर कल्क तैयार करे । फिर उसे शहद और चावलोंके धोवनके साथ सेवन करे तो अतीसार रोग दूर होता और हर प्रकारके विषकी वाधाएँ भी दूर हो जाया करती हैं ॥ २३ ॥

विषोंपर कर्कोटिका-कल्क

वन्ध्याकर्कोटिकामूलं पाटलाया जटा तथा ।
घृतेन बिल्वमूलं वा द्विविधं नाशयेद्विषम् ॥ २४ ॥

बाँझ ककोड़ाकी जड़, पाटलाकी जटा और वेलकी जड़, इनमेंसे किसी एक औषधिकी जड़को कूट-पीसकर कल्क तैयार करे और उसे घीमें मिलाकर सेवन करे तो सब प्रकारकी विषवाधाएँ दूर हो जाती हैं ॥ २४ ॥

दीपन-पाचनपर अभयादि-कल्क

अभयः सैंधवकणा शुण्ठीकल्कस्त्रिदोषहा ।
पथ्या सैंधवशुण्ठीभिः कल्को दीपनपाचनः ॥ २५ ॥

जंगी हर्रे, सेंधा नमक, पीपरि और सोंठ, इन औषधियोंका चूर्ण पानीमें पीस-कर कल्क करके पीवे तो वात, पित्त तथा कफ इन तीनों दोषोंका प्रकोप शान्त हो । उसी तरह छोटी हर्रे, सेंधा नमक और सोंठ इन औषधियोंका कल्क तैयार करके पीवे तो अन्न पचे और अग्नि प्रदीप्त हो जाय ॥ २५ ॥

कृमिरोगपर त्रिवृतादि-कल्क

त्रिवृत्पलाशबीजानि पारसीययवानिका ।
कम्पिल्लकं विडंगं च गुडश्च समभागकः ॥ २६ ॥
तक्रेण कल्कमेतेषां पिवेत्कृमिगणापहम् ।

निशोथ, पलासके वीज, पारसी अजवायन, कवीला और बायविडंग इन औषधियोंका चूर्ण तैयारकर उसीके बराबर गुड़में सब पदार्थ मिला करके कल्क तैयार करे और उसे छाछके साथ पीवे तो सब प्रकारके कृमिरोग दूर हो जायँ ॥ २६ ॥

रक्तार्शपर नवनीत-कल्क

नवनीततिलैः कल्को जेता रक्तार्शसां स्मृतः ॥ २७ ॥
नवनीतसितानागकेशरैश्चापि तद्विधः ।

तिलोंकी बुकनी बनाकर मक्खनके साथ सेवन करे अथवा नागकेसरके चूर्णको मक्खन और मिश्रीमें मिलाकर खाय तो खूनी बवासीर रोग शान्त हो जाता है ॥ २७ ॥

संग्रहणीपर मसूरकल्क

पीतो मसूरयूषेण कल्कः शुण्ठीशलाटुजः ।
जयेत्संग्रहणीं तद्वत्तक्रेण बृहतीभवः ॥ २८ ॥

सोंठ और छोटे तथा कच्चे बेलके फल इन दोनोंका कल्क करके मसूरके यूषमें मिलाकर पीवे तो संग्रहणी रोग दूर होजाय । उसी तरह कटेरीके फलोंका कल्क तैयार करके छाछ मिलाकर पीवे तो संग्रहणीरोग दूर हो जाता है ॥ २८ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधर संहितायां चिकित्सास्थाने कल्ककल्पना नाम पंचमोऽध्यायः ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

चूर्णकी कल्पना

अत्यन्तशुष्कं यद्द्रव्यं सुपिष्टं वस्त्रगालितम् ।
तत्स्याच्चूर्णं रजःक्षोदस्तन्मात्रा कर्षसम्मिता ॥ १ ॥
चूर्णे गुडः समो देयः शर्करा द्विगुणा भवेत् ।
चूर्णेषु भर्जितं हिंगु देयं नोत्क्लेदकृद्भवेत् ॥ २ ॥
लिहेच्चूर्णं द्रवैः सर्वैर्घृताद्यैर्द्विगुणोन्मितैः ।
पिबेच्चतुर्गुणैरेवं चूर्णमालोडितं द्रवैः ॥ ३ ॥
चूर्णावलेहगुटिकाकल्कानामनुपानकम् ।
पित्तवातकफातंके त्रिद्व्येकपलमाहरेत् ॥ ४ ॥
यथा तैलं जले क्षिप्तं क्षणेनैव प्रसर्पति ।
अनुपानबलादंगे तथा सर्पति भेषजम् ॥ ५ ॥
द्रवेण यावता सम्यक्चूर्णं सर्वप्लुतं भवेत् ।
भावनायाः प्रमाणं तु चूर्णे प्रोक्तं भिषग्वरैः ॥ ६ ॥

अच्छी तरह सूखी हुई औषधियोंको कूट–पीसकर कपड़छान कर ले। इसीको चूर्ण कहते हैं। उसके दो पर्यायवाचक नाम और हैं–एक रज और दूसरा क्षोद। इसके भक्षणकी मात्रा एक कर्ष (तोला भर) है। यदि किसी चूर्णमें गुड़ डालनेका विधान हो तो चूर्णके बराबर डाले और हींग डालनी हो तो भूनकर डाले, कच्ची नहीं। इसके डालनेसे विकलता नहीं आने पाती। यदि शहद आदि चिकने पदार्थ डालने हों तो वे पदार्थ दुगुनी मात्रामें लेने चाहिये। दूध, गोमूत्र, पानी तथा कोई और पतली वस्तु डालनी हो तो चूर्णकी अपेक्षा चौगुनी मात्रा डालकर सेवन करे। चूर्ण, अवलेह, गुटिका तथा कल्क, इनके जो अनुपान कहे गये हैं वे पित्तरोगमें तीन पल, वातज रोगोंमें दो पल, श्लेष्मज रोगोंमें एक पल-की मात्राके अनुसार लेने चाहियें। अनुपानके बलसे औषधिका प्रभाव शीघ्र शरीर भरमें उसी तरह फैल जाता है जैसे पानीमें तेल फैलता है। यदि चूर्णमें नींबूका रस अथवा किसी और वनस्पतिके रसकी भावना देनी हो तो चूर्ण रसमें डूब जाय, उतना रस देना चाहिये। ये नियम सब चूर्णोंके लिए हैं ॥ १–६ ॥

सर्वज्वरोंपर आमलक्यादि चूर्ण

आमलं चित्रकः पथ्या पिप्पली सैन्धवं तथा।
चूर्णितोऽयं गणो ज्ञेयः सर्वज्वरविनाशनः ॥ ७ ॥
भेदी रुचिकरः श्लेष्मा जेता दीपनपाचनः।

आँवला, चीतेकी छाल, जंगी हरें, पीपरि तथा सेंधा नमक ये पाँच वस्तुयें एकत्रित करके चूर्ण बनाकर सेवन करे तो सब प्रकारके ज्वर दूर हो जाते हैं। इसको खानेसे दस्त साफ आती, रुचि बढ़ती, कफ दूर हो जाता, अग्नि प्रदीप्त होती और अन्न अच्छी तरह पचता है ॥ ७ ॥

ज्वरपर पिप्पलीचूर्ण

मधुना पिप्पलीचूर्णं लिहेत्कासज्वरापहम् ॥ ८ ॥
हिक्काश्वासहरं कण्ठ्यं प्लीहघ्नं बालकोचितम्।

एक मासे पीपरिके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटे तो खाँसी, ज्वर, हिचकी और प्यास, ये रोग दूर हो जायँ। यह रोग कण्ठके लिए हितकारी, प्लीहाका दूर करनेवाला और बालकोंके लिए उपयोगी है ॥ ८ ॥

प्रमेह आदिपर त्रिफलादि चूर्ण

एका हरीतकी योज्या द्वौ च योज्यौ बिभीतकौ ॥ ९ ॥
चत्वार्यामलकान्येव त्रिफलैषा प्रकीर्तिता ।
त्रिफला मेहशोथघ्नी नाशयेद्विषमज्वरान् ॥ १० ॥
दीपनी श्लेष्मपित्तघ्नी कुष्ठहंत्री रसायनी ।
सर्पिर्मधुभ्यां संयुक्ता सैव नेत्रामयाञ्जयेत् ॥ ११ ॥

एक हर्रा, दो बहेरा, चार आमला, इन औषधियोंके चूर्णको त्रिफलादि चूर्ण कहते हैं। इसका सेवन करनेसे प्रमेह, शोथ, विषमज्वर, कफ, पित्त और कुष्ठरोग दूर हो जाते और अग्नि प्रदीप्त हो जाता है। कोई-कोई इसे त्रिफला रसायन भी कहते हैं। घी और शहद विषम भाग लेकर एकत्र करे और उसमें त्रिफलाका चूर्ण मिलाकर सेवन करे तो नेत्रके समस्त विकार दूर हो जाते हैं ॥ ९–११ ॥

कफादिकोंपर त्र्यूषण चूर्ण

पिप्पली मरिचं शुण्ठी त्रिभिस्त्र्यूषणमुच्यते ।
दीपनं श्लेष्ममेदोघ्नं कुष्ठपीनसनाशनम् ॥ १२ ॥
जयेदरोचकं सामं मेहगुल्मगलामयान् ।

पीपरि, काली मिर्च और सोंठ, इन औषधियोंकी त्र्यूषण संज्ञा है। इनका चूर्ण बनाकर सेवन करनेसे मन्द अग्नि भी प्रदीप्त होती और कफ, मेद, कुष्ठ, पीनस, अरुचि, आमसम्बन्धी विकार, प्रमेह, वायुगोला तथा कंठरोग दूर हो जाते हैं ॥ १२ ॥

अरुच्यादिकोंपर पंचकोलचूर्ण

पिप्पलीचव्यविश्वाह्वपिप्पलीमूलचित्रकैः ॥ १३ ॥
पंचकोलमिति ख्यातं रुच्यं पाचनदीपनम् ।
आनाहप्लीहगुल्मघ्नं शूलश्लेष्मोदरापहम् ॥ १४ ॥

पीपरि, चव्य, सोंठ, पिपरामूल और चीतेकी छाल, इन पाँच औषधियोंकी पंचकोल संज्ञा है। इसका चूर्ण सेवन करनेसे अन्न भली भाँति पचता और मन्द अग्नि प्रदीप्त होता है। इससे अफरा, वायुगोला और कफोदर रोग भी दूर हो जाया करते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

त्रिगंध तथा चतुर्जातचूर्ण

त्रिगंधमेलात्वक्पत्रैश्चतुर्जातं सकेशरम् ।
त्रिगंधं सचतुर्जातं रूक्षोष्णं लघुपित्तकृत् ॥ १५ ॥
वर्ण्यं रुचिकरं तीक्ष्णं पित्तश्लेष्मामयाञ्जयेत् ।

इलायची, दालचीनी और तेजपात, इन तीन औषधियोंकी त्रिगंधसंज्ञा है। यदि इसमें केशर भी मिला दिया जाय तो इसकी चतुर्जात संज्ञा हो जाती है। इसका सेवन करनेसे शरीरका रूखापन और गरमी दूर होती है। यह पाककालमें हल्का, पित्तवर्द्धक, कान्तिदाता, रुचिकारी, तीक्ष्ण तथा कफ-पित्तज रोगोंको दूर करनेवाला है ॥ १५ ॥

बालकोंके ज्वरातिसारपर कृष्णादि चूर्ण

कृष्णारुणामुस्तकशृंगिकाणां तुल्येन चूर्णेन समाक्षिकेण ॥ १६ ॥
ज्वरातिसारः प्रशमं प्रयाति सश्वासकासः सवमिः शिशूनाम् ।

पीपरि, अतीस, नागरमोथा तथा काकड़ासिंगी, इन चार औषधियोंका चूर्ण शहद मिलाकर बच्चेको चटानेसे श्वास, खाँसी वमन और इन रोगोंके साथ रहनेवाला ज्वरातीसार रोग नष्ट हो जाता है ॥ १६ ॥

जीवनीयगण तथा उसके गुण

काकोली क्षीरकाकोली जीवकर्षभकौ तथा ॥ १७ ॥
मेदा चान्या महामेदा जीवन्ती मधुकं तथा ।
मुद्गपर्णी माषपर्णी जीवनीयो गणस्त्वयम् ॥ १८ ॥
जीवनीयो गणः स्वादुर्गर्भसंधातकृद्गुरुः ।
स्तन्यकृद्बृंहणो वृष्यः स्निग्धः शीतस्तृषापहः ॥ १९ ॥
रक्तपित्तं क्षयं शोषं ज्वरदाहानिलाञ्जयेत् ।

काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, जीवन्ती, मुलहठी, मुद्गपर्णी, माषपर्णीइन दस औषधियोंकी जीवनीयगणसंज्ञा है। जीवनीयगण मधुर, गर्भस्थापक, भारी, स्तनोंमें दूध उत्पन्न करनेवाला, शरीरका पुष्टिकर्ता, स्त्रीगमनमें आनंद देनेवाला, स्निग्ध तथा शीतल है। इसका सेवन करनेसे तृष्णा, रक्तपित्त, क्षत, शोष, ज्वर, दाह तथा वायुका विकार दूर हो जाता है ॥ १७–१९ ॥

अष्टवर्ग तथा उनके गुण

द्वे मेदे द्वे च काकोल्यौ जीवकर्षभकौ तथा ॥ २० ॥
ऋद्धिवृद्धी च तैः सर्वैरष्टवर्ग उदाहृतः ।
अष्टवर्गो बुधैः प्रोक्तो जीवनीयसमो गुणैः ॥ २१ ॥

मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, ऋद्धि और वृद्धि इन आठ औषधियोंका समूह अष्टवर्ग कहलाता है और ऊपर बतलाये जीवनीय गणके समान ही गुण इसमें भी रहते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥

लवणपंचकचूर्ण तथा गुण

सिंधुसौवर्चलं चैव विडं सामुद्रिकं गडम् ।
एकद्वित्रिचतुःपञ्चलवणानि क्रमाद्विदुः ॥ २२ ॥
तेषु मुख्यं सैंधवं स्यादनुक्ते तच्च योजयेत् ।
सैंधवाद्यं रोमकांतं ज्ञेयं लवणपंचकम् ॥ २३ ॥
मधुरं सृष्टविण्मूत्रं स्निग्धं सूक्ष्मं मलापहम् ।
वीर्योष्णं दीपनं तीक्ष्णं कफपित्तविवर्धनम् ॥ २४ ॥

सेंधा नमक, सोंचर नमक, कृत्रिम (बिड) नमक, सामुद्र नमक और साम्हर नमक, इन पाँचोमेंसे पहला एकलवण । पहला और दूसरा मिलकर द्विलवण । पहला दूसरा और तीसरा मिलाकर त्रिलवण । पहला दूसरा, तीसरा और चौथा मिलाकर चतुर्लवण । पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा और पाँचवाँ, इन पाँचोंको मिलानेसे पंचलवण तैयार होता है । इन पाँचोंमें सेंधा नमक प्रधान है । इस लिए यदि किसी जगह नमक डालनेका संकेत किया गया हो, किन्तु नामका निर्देश न हो तो यह सेंधा नमक ही डालना चाहिए । इसका गुण मधुर है । इसके सेवनसे मल-मूत्र अच्छी तरह उतरता है । यह स्निग्ध तथा सूक्ष्म है और मलोंको दूर करता है । इसका वीर्य (तासीर) गरम है । इससे यह अग्निको प्रदीप्त करता है । इसकी तासीरमें तीक्ष्णता भी है । अतएव यह कफ तथा पित्तको बढ़ाता है ॥ २२–२४ ॥

गुल्मादिकोंपर क्षारयोग

स्वर्जिकायावशूकश्च क्षारयुग्ममुदाहृतम् ।
ज्ञेयौ वह्निसमौ क्षारौ स्वर्जिकायावशूकजौ ॥ २५ ॥

क्षाराश्चान्येऽपि गुल्मार्शोग्रहणीरुक्छिदः सराः ।
पाचनाः कृमिपुंस्त्वघ्नाः शर्कराश्मरिनाशनाः ॥ २६ ॥

सज्जीखार और जवाखार ये दोनों क्षार अग्निके समान पाचनगुणसम्पन्न हैं। आक (मदार) इमली, ओंगा, थूहर, केला, अमिलतास और मोखा आदि वनस्पतियोंके क्षार वायुगोला, बवासीर और संग्रहणी रोगको दूर करते हैं साथ ही ये दस्तको साफ लानेवाले, कृमिविकार, वीर्यविकार तथा शर्करा और पथरी, इन रोगोंको दूर करते हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥

सर्वज्वरहर सुदर्शन चूर्ण

त्रिफला रजनीयुग्मं कण्टकारीयुगं शटी ।
त्रिकटुग्रंथिकं मूर्वा गुडूची धन्वयासकः ॥ २७ ॥
कटुकी पर्पटो मुस्तं त्रायमाणा च बालकम् ।
निम्बः पुष्करमूलं च मधुयष्टी च वत्सकम् ॥ २८ ॥
यवानीन्द्रयवो भार्ङ्गी शिग्रुबीजं सुराष्ट्रजा ।
वचा त्वक्पद्मकोशीरचंदनातिविषावलाः ॥ २९ ॥
शालिपर्णी पृष्ठपर्णी विडंगं तगरं तथा ।
चित्रको देवकाष्ठं च चव्यं पत्रं पटोलजम् ॥ ३० ॥
जीवकर्षभकौ चैव लवङ्गं वंशरोचना ।
पुंडरीकं च काकोली पत्रकं जातिपत्रकम् ॥ ३१ ॥
तालीसपत्रं च तथा समभागानि चूर्णयेत् ।
सर्वचूर्णस्य चाधांशं किरातं प्रक्षिपेत्सुधीः ॥ ३२ ॥
एतत्सुदर्शनं नाम चूर्णं दोषत्रयापहम् ।
ज्वराँश्च निखिलान्हन्यान्नात्र कार्या विचारणा ॥ ३३ ॥
पृथग्द्वंद्वागंतुजाश्च धातुस्थान्विषमज्वरान् ।
सन्निपातोद्भवाँश्चापि मानसानपि नाशयेत् ॥ ३४ ॥
शीतज्वरैकाहिकादीन्मोहं तंद्रां भ्रमं तृषाम् ।
श्वासं कासं च पांडुं च हृद्रोगं हन्ति कामलाम् ॥ ३५ ॥
त्रिकपृष्ठकटीजानुपार्श्वशूलनिवारणम् ।
शीताम्बुना पिबेद्धीमान्सर्वज्वरनिवृत्तये ॥ ३६ ॥

सुदर्शनं यथा चक्रं दानवानां विनाशनम् ।
तद्वज्ज्वराणां सर्वेषामिदं चूर्णं विनाशनम् ॥ ३७ ॥

हर्रा, बहेरा, आँवला, हल्दी, दारुहल्दी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, कचूर, सोंठ, मिर्च, पिपरामूल, मूर्वा, गुरुच, धमासा, कुटकी, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, त्रायमाणा, नेत्रबाला, नीमकी छाल, पोहकरमूल, मुलेठी, कुड़ेकी छाल, अजवायन, इन्द्रजौ, भारंगी, सहजनके बीज, फिटकिरी, बच, दालचीनी, पद्माख, चन्दन, अतीस, खरेटी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, वायविडंग, सोंठ, चीतेकी छाल, देवदारु, चव्य, पटोलपत्र, जीवक, ऋषभक, लौंग, वंशलोचन, सफेद कमल, काकोली, तेजपात, जावित्री और तालीसपत्र, इन औषधियोंको बराबर-बराबर लेकर एकत्र करे। फिर समस्त औषधियोंका आधा चिरायता मिलावे और सबको कूटकर चूर्ण बना ले। इसे लोग सुदर्शन चूर्ण कहते हैं। इसका सेवन करनेसे वात, पित्त, कफ, द्वन्द्व, सन्निपात, इनसे होनेवाले ज्वर, विषमज्वर, आगन्तुक ज्वर, धातुजज्वर, मानस ज्वर ऐकाहिक ज्वर, मोह, तन्द्रा, भ्रम, तृष्णा, श्वास, कास, पाण्डुरोग, हृदयरोग, कामला, त्रिक, पीठ, कमर, जानु और पसलियोंका दर्द ये सब क्लेश दूर हो जाते हैं। जैसे भगवान्का सुदर्शनचक्र दुष्ट दैत्योंका संहार करता है, उसी तरह यह सुदर्शन चूर्ण सब प्रकारके ज्वरोंका नाशक है ॥ २७–३७ ॥

श्वास-खाँसीपर त्रिफला-पिप्पलीचूर्ण

कासश्वासज्वरहरा त्रिफला पिप्पलीयुता ।
चूर्णिता मधुना लीढा भेदिनी चाग्निबोधिनी ॥ ३८ ॥

त्रिफला (हड़, बहेड़ा, आँवला) और पीपरि इन औषधियोंका चूर्ण बना ले और शहद मिलाकर चाटे तो दस्त साफ आवे, अग्नि प्रदीप्त हो और श्वास, खाँसी तथा ज्वररोग दूर हो जाय ॥ ३८ ॥

ज्वरादिकोंपर कट्फलादि चूर्ण

कट्फलं मुस्तकं तिक्ता शुण्ठी शृंगी च पौष्करम् ।
चूर्णमेषां च मधुना शृंगवेररसेन वा ॥ ३९ ॥
लिहेज्ज्वरहरं कंठ्यं कासश्वासारुचीर्जयेत् ।
वायुं छर्दिं तथा शूलं क्षयं चैव व्यपोहति ॥ ४० ॥

कायफल, नागरमोथा, कुटकी, सोंठ, काकड़ासिंगी और पोहकरमूल, ये छः औषधियाँ एकत्रित करके चूर्ण बना ले और शहद अथवा अदरखके रसमें सेवन करे तो ज्वरका नाश होता तथा खाँसी, श्वास, अरुचि, वादी, वमन, शूल और क्षयरोग भी दूर हो जाता है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

कफशूलादिकोंपर दूसरा कट्फलादि चूर्ण

कट्फलं पौष्करं शृंगी मुस्ता त्रिकटुकं शठी।
समस्तान्येकशो वापि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ४१ ॥
आर्द्रकस्वरसक्षौद्रैर्लिह्यात्कफविनाशनम्।
शूलानिलारुचिच्छर्दिकासश्वासक्षयापहम् ॥ ४२ ॥

कायफल, पोहकरमूल, काकड़ासिंगी, नागरमोथा, सोंठ, मिर्च, पीपल और कचूर, इन आठों औषधियोंको एकमें अथवा अलग २ कूटकर चूर्ण तैयार करे। फिर अदरखका रस मिलाकर इसका सेवन करे तो कफ शूल, वायु, अरुचि, वमन, कास, श्वास और क्षयरोग नष्ट हो जाता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

श्वास, कास तथा और कफादिकोंपर कट्फलादि चूर्ण

कट्फलं पौष्करं कृष्णा शृंगी च मधुना सह।
कासश्वासज्वरहरः श्रेष्ठो लेहः कफांतकृत् ॥ ४३ ॥

कायफल, पोहकरमूल, काकड़ासिंगी और पीपरि इन चार औषधियोंका चूर्ण बनाकर शहदके साथ चाटे तो श्वांस, कास तथा कफज्वर ये रोग दूर हो जाते हैं ॥ ४३ ॥

बालकोंके कास तथा ज्वरपर शृंग्यादि चूर्ण

शृंगी प्रतिविषा कृष्णा चूर्णिता मधुना लिहेत्।
शिशोः कासज्वरच्छर्दिशान्त्यै वा केवला विषा ॥ ४४ ॥

काकड़ासिंगी, अतीस और पीपरि इन तीनों औषधियोंका चूर्ण अथवा केवल अतीसका चूर्ण शहदके साथ चटावे तो बच्चेकी खाँसी, ज्वर तथा वमनरोग दूर हो जाते हैं ॥ ४४ ॥

बालकोंकी पाँच खाँसीपर यवक्षारादि चूर्ण

यवक्षारविषा शृंगी मागधी पौष्करोद्भवम्।
चूर्णं क्षौद्रयुतं लीढं पंच कासाञ्जयेच्छिशोः ॥ ४५ ॥

जवाखार, अतीस, काकड़ासिंगी, पीपरि, पोहकरमूल, इन पाँच औषधियोंको एकत्रित करके चूर्ण बना ले और शहद मिलाकर बच्चेको चटावे तो पाँच प्रकारकी खाँसी दूर हो जाती है ॥ ४५ ॥

आमातिसारपर शुण्ठ्यादि चूर्ण

शुण्ठीप्रतिविषा हिंगुमुस्ताकुटजचित्रकैः ।
चूर्णमुष्णाम्बुना पीतमामातीसारनाशनम् ॥ ४६ ॥

सोंठ, अतीस, हींग, नागरमोथा, इन्द्रजौ और चीतेकी छाल, इन छ औषधियोंका चूर्ण तैयार करके चौगुने गरम जलके साथ पीवे तो आमातीसार रोग दूर हो जाता है ॥ ४६ ॥

दूसरा हरीतक्यादि चूर्ण

हरीतकी प्रतिविषा सिन्धुसौवर्चलं वचा ।
हिंगु चेति कृतं चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ ४७ ॥
अमातिसारशमनं ग्राहि चाग्निप्रबोधनम् ।

जंगी हड़, अतीस, सेंधा नमक, सोंचर नमक, वच और भुनी हुई हींग, इन छ औषधियोंका चूर्ण एकत्रित करके गरम जलके साथ खाय तो आमातीसार रोग दूर हो जाता और मलका अवष्टंभ होता तथा औदर्य अग्नि प्रदीप्त हो जाती है ॥ ४७ ॥

सब अतिसारोंपर लघुगंगाधर चूर्ण

मुस्तमिंद्रयवं बिल्वं लोध्रं मोचरसं तथा ॥ ४८ ॥
धातकीं चूर्णयेत्तक्रगुडाभ्यां पोषयेत्सुधीः ।
सर्वातिसारशमनं निरुणद्धि प्रवाहिकाम् ॥ ४९ ॥
लघुगङ्गाधरं नाम चूर्णं संग्राहकं परम् ।

नागरमोथा, इन्द्रजौ, वेलगिरी, लोध, मोचरस और आँवला इन औषधियोंका चूर्ण तैयार करके मठ्ठे और दहीके साथ सेवन करे तो सब प्रकारके अतीसार तथा प्रवाहिका रोग शान्त हो जायँ। इसे लोग लघुगंगाधर चूर्ण कहते हैं। इसके सेवनसे मल भी बँध जाता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

सब अतिसारोंपर वृद्धगंगाधर चूर्ण

मुस्तारलूकशुण्ठीभिर्धातकीलोध्रबालकैः ॥ ५० ॥

विल्वमोचरसाभ्यां च पाठेन्द्रयववत्सकैः ।
आम्रबीजं प्रतिविषालज्जालुरिति चूर्णितम् ॥ ५१ ॥
क्षौद्रतन्दुलपानीयैः पीतैर्याति प्रवाहिका ।
सर्वातिसारग्रहणी प्रशमं याति वेगतः ॥ ५२ ॥
वृद्धगङ्गाधरं चूर्णं सरिद्वेगविबन्धकम् ।

नागरमोथा, टेंटू, सोंठ, धायके फूल, नेत्रबाला, वेलगिरी, मोचरस, पाढ़, इन्द्रजौ, कुडाकी छाल, आमकी गुठली, अतीस और लजालु, इन चौदह औषधियोंका चूर्ण करके चावलके धोवनमें शहद मिलाकर पीवे तो प्रवाहिका, सब प्रकारके अतीसार और संग्रहणी ये रोग शीघ्र दूर हो जाते हैं। इस चूर्णको लोग वृद्धगंगाधर चूर्ण कहते हैं। यह चूर्ण नदीके वेगकी तरह वहते हुए अतीसारको भी शान्त कर देता है ॥ ५० ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

अतिसारपर अजमोदादि चूर्ण

अजमोदामोचरसं सशृंगवेरं सधातकीकुसुमम् ॥ ५३ ॥
मथितेन युतं गंगामपि वाहिनीं रुन्ध्यात् ।

अजमोदा, मोचरस, अदरख और धायके फूल, इन चार औषधियोंका चूर्ण तैयार करके गौके मठेके साथ पीवे तो गंगाकी धाराके समान भी वहनेवाले दस्तोंके वेगको शान्त कर देता है ॥ ५३ ॥

संग्रहणीपर मरीच्यादि चूर्ण

तक्रेण यः पिबेन्नित्यं चूर्णं मरिचसम्भवम् ॥ ५४ ॥
चित्रसौवर्चलोपेतं ग्रहणी तस्य नश्यति ।

काली मिर्च, चीतेकी छाल और सोंचर नमक, इन तीन औषधियोंके चूर्णको यदि मठेके साथ पीवे तो संग्रहणी, उदर, प्लीहा, मन्दाग्नि तथा बवासीर ये रोग शान्त हो जाते हैं ॥ ५४ ॥

संग्रहणी आदिपर कपित्थाष्टक चूर्ण

उदरप्लीहमन्दाग्निगुल्मार्शोनाशनं भवेत् ॥ ५५ ॥
अष्टौ भागाः कपित्थस्य षड्भागा शर्करा मता ।
दाडिमं तिंतिडीकं च श्रीफलं धातकी तथा ॥ ५६ ॥

अजमोदा च पिप्पल्यः प्रत्येकं स्युस्त्रिभागिकाः ।
मरिचं जीरकं धान्यं ग्रन्थिकं बालकं तथा ॥ ५७ ॥
सौवर्चलं यवानी च चातुर्जातं सचित्रकम् ।
नागरं चैकभागाः स्युः प्रत्येकं सूक्ष्मचूर्णितम् ॥ ५८ ॥
कपित्थाष्टकसंज्ञं स्याच्चूर्णमेतद्गलामयान् ।
अतिसारं क्षयं गुल्मं ग्रहणीं च व्यपोहति ॥ ५९ ॥

कैथेका गूदा आठ तोला, मिश्री छ तोले, अनारदाना, इमली, बेलगिरी, धायके फूल, अजमोदा और पीपरि, इन छ औषधियोंको तीन-तीन तोले लेवे। फिर काली मिर्च, जीरा, धनियाँ, पिपरामूल, नेत्रबाला, साँभर नोन, अजवायन, दालचीनी, इलायचीके बीज, तमालपत्र, नागकेसर, चीतेकी छाल और सोंठ इन तेरह औषधियोंको एक-एक तोले लेवे। फिर सबको कूटकर बारीक चूर्ण करे। इस चूर्णको लोग कपित्थाष्टक चूर्ण कहते हैं। इसका सेवन करनेसे कंठके रोग, अतीसार, क्षय, वायुगोला और संग्रहणी, ये रोग दूर हो जाते हैं ॥ ५५–५६ ॥

संग्रहणीपर पिप्पल्यादि चूर्ण

पिप्पली बृहती व्याघ्री यवक्षारकलिंगकाः ।
चित्रकं सारिवा पाठा शटी लवणपञ्चकम् ॥ ६० ॥
ततश्चूर्णं पाययेद्दध्ना सुरयोष्णाम्बुनापि वा ।
मारुतग्रहणीदोषशमनं परमं हितम् ॥ ६१ ॥

पीपरि, कटेरी, बड़ी कटेरी, जवाखार, इन्द्रजौ, चीतेकी छाल, सरिवन, पाढ़, कपूरकचरी और पाँचों नमक, इन चौदह औषधियोंका चूर्ण तैयार करके दही, मद्य अथवा गरम जलके साथ पीनेसे वातज संग्रहणी रोग दूर हो जाता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

संग्रहण्यादिकोंपर दाडिमाष्टक चूर्ण

दाडिमी द्विपला ग्राह्या खण्डं चाष्टपलानि वा ।
त्रिगन्धस्य पलं चैकं त्रिकटु स्यात्पलत्रयम् ॥ ६२ ॥
एतदेकीकृतं सर्वं चूर्णं स्याद्दाडिमाष्टकम् ।
रुचिकृद्दीपनं कण्ठ्यं ग्राहि कासज्वरापहम् ॥ ६३ ॥

अनारदाना २ पल, मिश्री ८ पल, दालचीनी, इलायची और तमालपत्र इन तीनोंको मिलाकर एक पल लेवे। फिर सोंठ, काली मिर्च और पीपरि, इन तीनों औषधियोंको एक-एक पल ले और सबको कूट-पीसकर चूर्ण तैयार करे। इसे लोग दाडिमाष्टक चूर्ण कहते हैं। इसका सेवन करनेसे रुचि बढ़ती और अग्नि प्रदीप्त होता है। यह कण्ठके लिए हितकारी, मलको बाँधनेवाला, खाँसी तथा ज्वरको दूर करनेवाला है॥ ६२॥ ६३॥

अतिसारादिकोंपर वृद्धदाडिमाष्टक चूर्ण

दाडिमस्य पलान्यष्टौ शर्करायाः पलाष्टकम्।
पिप्पलीपिप्पलीमूलं यवानी मरिचं तथा॥ ६४॥
धान्यकं जीरकं शुंठी प्रत्येकं पलसंमितम्।
कर्षमात्रा तुगाक्षीरी त्वक्पत्रैलाश्च केशरम्॥ ६५॥
प्रत्येकं कोलमात्राः स्युस्तच्चूर्णं दाडिमाष्टकम्।
अतिसारं क्षयं गुल्मं ग्रहणीं च गलग्रहम्॥ ६६॥
मंदाग्निं पीनसं कासं चूर्णमेतद्व्यपोहति।

अनारदाना और मिश्री, इन दोनोंको आठ-आठ पल ले। और पिपरामूल, अजमोदा, काली मिर्च, धनियाँ, जीरा और सोंठ, इनको एक एक पल लेवे। फिर वंशलोचन एक तोला लेकर दालचीनी, तमालपत्र, इलायची और नागकेसर, इनको आठ मासे लेवे। तदनन्तर सबको कूट-पीसकर चूर्ण करे। इस चूर्णको लोग वृद्धदाडिमाष्टक चूर्ण कहते हैं। इसका सेवन करनेसे अतिसार, क्षय, गुल्म, संग्रहणी, कंठरोग, मन्दाग्नि, पीनस तथा खाँसी, ये रोग शान्त हो जाते हैं॥ ६४–६६॥

अरुचि आदि रोगोंपर तालीसादि चूर्ण

तालीसं मरिचं शुण्ठी पिप्पली वंशरोचना॥ ६७॥
एकद्वित्रिचतुःपंचकर्षैर्भागान्प्रकल्पयेत्।
एलात्वचोस्तु कर्षार्धं प्रत्येकं भागमावहेत्॥ ६८॥
मृतं वंगं मृतं ताम्रं समभागानि कारयेत्।
द्वात्रिंशत्कर्षतुलिता प्रदेया शर्करा बुधैः॥ ६९॥

तालीसाद्यमिदं चूर्णं रोचनं पाचनं स्मृतम् ।
कासश्वासज्वरहरं छर्द्यतीसारनाशनम् ।। ७० ।।
शोषाध्मानहरं प्लीहग्रहणीपांडुरोगजित् ।

तालीसपत्र एक तोले, सोंठ तीन तोले, पीपरि चार तोले, वंशलोचन पाँच तोले, इलायचीके दाने और दालचीनी छ छ मासे, वंगभस्म और ताम्रभस्म इन दोनों छ-छ मासे तथा मिश्री बत्तीस तोले लेकर चूर्ण बनावे और मिश्रीके साथ सेवन करे तो रुचि बढ़े, पाचन शक्ति तीव्र हो साथ ही खाँसी, श्वास, ज्वर, वमन, अतीसार, शोष, अफरा, प्लीहा, संग्रहणी तथा पांडु, ये रोग नष्ट हो जायँ ।। ६७–७० ।।

हृद्रोगादिपर लवंगादि चूर्ण

लवंगं शुद्धकर्पूरमेलात्वङ्नागकेशरम् ।। ७१ ।।
जातीफलमुशीरं च नागरं कृष्णजीरकम् ।
कृष्णागुरुस्तुगाक्षीरी मांसी नीलोत्पलं कणा ।। ७२ ।।
चंदनं तगरं बालं कंकोलं चेति चूर्णयेत् ।
समभागानि सर्वाणि सर्वेभ्योऽर्धा सिता भवेत् ।। ७३ ।।
लवंगाद्यमिदं चूर्णं राजार्हं वह्निदीपनम् ।
रोचनं तर्पणं वृष्यं त्रिदोषघ्नं बलप्रदम् ।। ७४ ।।
हृद्रोगं कण्ठरोगं च कासं हिक्कां च पीनसम् ।
यक्ष्माणं तमकं श्वासमतीसारमुरःक्षतम् ।। ७५ ।।
प्रमेहारुचिगुल्मादीन्ग्रहणीमपि नाशयेत् ।

लौंग, भीमसेनी कपूर, इलायची, दालचीनी, नागकेसर, जायफल, खस, सोंठ, काला जीरा, काली अगर, वंशलोचन, जटामासी, नील कमल, पीपरि, सफेद चन्दन, तगर, नेत्रबाला और कंकोल इन अठारह औषधियोंको समान भाग लेकर चूर्ण करे और चूर्णकी आधी मिश्री मिलावे । इस चूर्णको लोग लवंगादि चूर्ण कहते हैं । यह चूर्ण राजाओंके खाने योग्य माना गया है । इसका सेवन करनेसे अग्नि प्रदीप्त होता, रुचि बढ़ती, शरीर पुष्ट होता, स्त्रीगमनके लिए ताकत आती, वात, पित्त और कफका प्रकोप शान्त होता, बल बढ़ता, हृदयरोग, कण्ठरोग, खाँसी, हिचकी, पीनस, क्षय, तमकश्वास, अतिसार, अरुचि, प्रमेह, वायुगोला तथा संग्रहणी ये रोग भी दूर हो जाते हैं ।। ७१–७५ ।।

संग्रहणी आदिपर जातीफलादि चूर्ण

जातीफललवंगैलापत्रत्वङ्नागकेशरम् ॥ ७६ ॥
तालीसपिप्पली पथ्या स्थूलजीरकचित्रकैः ॥ ७७ ॥
शुण्ठीविडंगमरिचान्समभागान्विचूर्णयेत् ।
यावंत्येतानि सर्वाणि कुर्याद्भंगां च तावतीम् ॥ ७८ ॥
सर्वचूर्णसमा देया शर्करा च भिषग्वरैः ।
कर्षमात्रं ततः खादेन्मधुना प्लावितं सुधीः ॥ ७९ ॥
अस्य प्रभावाद्ग्रहणीकासश्वासारुचिक्षयाः ।
वातश्लेष्मप्रतिश्यायाः प्रशमं यांति वेगतः ॥ ८० ॥

जायफल, लौंग, इलायची, तमालपत्र, दालचीनी, नागकेसर, कपूर, सफेद चन्दन, काले तिल, वंशलोचन, तगर, आँवले, तालीसपत्र, हड़, काला जीरा, चीतेकी छाल, सोंठ, वायविडंग और काली मिर्च, इन बीस औषधियोंको बराबर-बराबर ले और सब औषधियोंके बराबर ही भाँग और समस्त चूर्णके बराबर सफेद मिश्री मिलावे। फिर सबको एकत्र करके शहदके साथ नित्य एक तोला सेवन करे तो संग्रहणी, खाँसी, श्वास, अरुचि, क्षय, वात और कफके विकार तथा पीनस रोग शीघ्र दूर हो जाते हैं ॥ ७६–८० ॥

अरुचि आदिपर महाखांडव चूर्ण

मरिचं नागपुष्पाणि तालीसं लवणानि च ।
प्रत्येकमेकभागाः स्युः पिप्पलीमूलचित्रकैः ॥ ८१ ॥
त्वक्कणा तिंतिडीकं च जीरकं च द्विभागकम् ।
धान्याम्लवेतसौ विश्वं भद्रैलावदराणि च ॥ ८२ ॥
अजमोदा जलधरः प्रत्येकं स्युस्त्रिभागिकाः ।
सर्वौषधचतुर्थांशं दाडिमस्य फलं भवेत् ॥ ८३ ॥
द्रव्येभ्यो निखिलेभ्यश्च सिता देयाऽर्धमात्रया ।
महाखाण्डवसंज्ञं स्याच्चूर्णमेतत्सुरोचनम् ॥ ८४ ॥
अग्निदीप्तिकरं हृद्यं कासातीसारनाशनम् ।
हृद्रोगकण्ठजठरमुखरोगप्रणाशनम् ॥ ८५ ॥

विषूचिका तथाध्मानमर्शोगुल्मकृमीनपि ।
छर्दिं पञ्चविधां श्वासं चूर्णमेतद्व्यपोहति ॥ ८६ ॥

कालीमिर्च, नागकेसर,तालीसपत्र, सैंधव नमक,सोंचरनमक, विडनमक, सामुद्र नमक और रेहका नमक ये औषधियें एक-एक तोले लेवे। पिपरामूल, चित्रक, दालचीनी, पीपल, इमलीकी छाल और जीरा, ये औषधियें दो–दो तोले लेवे। धनियाँ, अमलवेत, सोंठ, बड़ी इलायचीके दाने, छोटी बेर, अजमोद और नागरमोथा, ये सात औषधियें तीन-तीन तोले लेवे। फिर सब औषधियोंकी चौथाईके बराबर भाग अनारदाना ले और सबका चूर्ण करके चूर्णसे आधी सफेद मिश्री मिलावे तथा सबको एकत्र करके चूर्ण बनाकर सेवन करे तो रुचि बढ़ती और अग्नि प्रदीप्त होता है। साथ ही यह हृदयके लिए भी हितकर है और इससे खाँसी, अतीसार, हृद्रोग, कंठरोग, उदररोग, मुखरोग, विषूचिका, अफरा, बवासीर, वायुगोला, कृमिरोग, पाँच प्रकारका छर्दिरोग और श्वास रोग दूर हो जाता है ॥ ८१–८६ ॥

उदररोगपर नारायण चूर्ण

चित्रकं त्रिफलाव्योषं जीरकं हपुषा वचा ।
यवानी पिप्पलीमूलं शतपुष्पाऽजगंधिका ॥ ८७ ॥
अजमोदा शटी धान्यं विडंगं स्थूलजीरकम् ।
हेमाह्वपौष्करं मूलं क्षारौ लवणपंचकम् ॥ ८८ ॥
कुष्ठं चेति समांशानि विशाला स्याद्द्विभागिका ।
त्रिवृत्त्रिभागा विज्ञेया दंत्या भागत्रयं भवेत् ॥ ८९ ॥
चतुर्भागा शातला स्यात्सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत् ।
पाचनस्नेहनाद्यैश्च स्निग्धकोष्ठस्य रोगिणः ॥ ९० ॥
देयाच्चूर्णं विरेकाय सर्वरोगप्रणाशनम् ।
हृद्रोगपांडुरोगे च कासे श्वासे भगन्दरे ॥ ९१ ॥
मन्देऽग्नौ च ज्वरे कुष्ठे ग्रहण्यां च गलग्रहे ।
दद्याद्धूक्तानुपानेन तथाऽध्माने सुरादिभिः ॥ ९२ ॥
गुल्मे बदरनीरेण विड्भेदे दधिमस्तुना ।
उष्णांबुभिरजीर्णे च वृक्षाम्लैः परिकर्तिषु ॥ ९३ ॥

उष्ट्रीदुग्धेनोदरेषु तथा तक्रेण वा गवाम्।
प्रसन्नया वातरोगे दाडिमांभोभिरर्शसि ॥ ९४ ॥
द्विविधे च विषे दद्याद् घृतेन विषनाशनम्।
चूर्णं नारायणं नाम दुष्टरोगगणापहम् ॥ ९५ ॥

चीतेकी छाल, त्रिफला, सोंठ, मिर्च, पीपरि, जीरा, हाऊबेर, वच, अजवायन, पिपरामूल, सौंफ, वर्वरी (वनतुलसी), अजमोदा, कचूर, धनियाँ, वायविडंग, मँगरैला, पोहकरमूल, सज्जीखार, जवाखार, सेंधानमक, सोंचरनमक, विडनमक, सामुद्रनमक, कचियानमक और कूठ, इन सब औषधियोंको एक–एक तोलेके प्रमाणसे एकत्रित करे। फिर इन्द्रायनकी जड़ दो तोले, निसोथ तीन तोले, दन्तीकी जड़ तीन तोले और पीली थूहर चार तोले, इन सब औसधियोंको कूट-पीस करके चूर्ण बना ले। पाचनके अभावसे जिस मनुष्यका कोठा कब्ज हो गया हो, उसे दस्त लानेके वास्ते यह चूर्ण देना चाहिए। इससे सब प्रकारके रोग शान्त हो जायँगे। हृदयरोग, पाण्डुरोग, खाँसी, श्वास, भगन्दर, मन्दाग्नि, ज्वर, कोढ़ तथा संग्रहणी, इन व्याधियोंमें उक्त औषधि निम्नलिखित मद्य आदि अनुपानके साथ दे। जैसे—पेट फूलनेपर मद्यके साथ, वायु गोलेके रोगमें बेरके काढ़ेके साथ, मल बँध जानेपर दहीके तोड़के साथ, अजीर्ण होनेपर गरम पानीके साथ, यदि गुदामें कतरने जैसी पीड़ा होती हो तो तिंतिडी इमलीके काढ़ेके साथ, उदररोगमें उँटनीके दूधके साथ अथवा गैयाके मट्ठेके साथ, वातसे सम्बन्ध रखनेवाले रोगोंमें प्रसन्ना मदिराके साथ, बवासीरमें अनारदानेके जलके साथ और जंगम तथा स्थावर विषबाधामें घृतके साथ देना चाहिए। इसे लोग नारायण चूर्ण कहते हैं। इसका सेवन करनेसे सब प्रकारके दुष्ट रोग शान्त हो जाते हैं ॥ ८७–९५ ॥

अजीर्ण उदरादि रोगोंपर हपुषादि चूर्ण

हपुषा त्रिफला चैव त्रायमाणा च पिप्पली।
हेमक्षीरी त्रिवृच्चैव शातला कटुका वचा ॥ ९६ ॥
नालिनी सैंधवं कृष्णलवणं चेति चूर्णयेत्।
उष्णोदकेन मूत्रेण दाडिमत्रिफलारसैः ॥ ९७ ॥
तथा मांसरसेनापि यथायोग्यं पिबेन्नरः।
अजीर्णप्लीहगुल्मेषु शोफार्शोविषमाग्निषु ॥ ९८ ॥
हलीमकामलापांडुकुष्ठाध्मानोदरेष्वपि।

हाऊवेर, त्रिफला, त्रायमाणा, पीपरि, चोक, निसोथ, पीली थूहर, कुटकी, वच, नीली, सेंधानमक और कालानमक, ये औषधियें बराबर-बराबर ले और कूट-पीसकर चूर्ण कर ले। फिर उसे गरम पानी, गोमूत्र, अनारदानेके रस, त्रिफलाके रस, त्रिफलाके काढ़े अथवा हरिण आदिके मांसरसके साथ देवे। किन्तु इस बातका विचार करना परमावश्यक है कि रोगीकी शक्ति और योग्यता कैसी है। इसे हपुषादि चूर्ण कहते हैं। इसका सेवन करनेसे अजीर्ण, प्लीहा, गोला, सूजन, बवासीर, मंदाग्नि, हलीमक, कामला, पाण्डुरोग, कुष्ठ, अफरा और उदररोग, ये सब वाधायें दूर हो जाती हैं॥ ९६–९८॥

शूल आदिपर पंचसम चूर्ण

शुण्ठी हरीतकी कृष्णा त्रिवृत्सौवर्चलं तथा॥ ९९॥
समभागानि सर्वाणि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्।
ज्ञेयं पंचसमं चूर्णमेतच्छूलहरं परम्॥ १००॥
आध्मानजठरार्शोघ्नमामवातहरं स्मृतम्।

सोंठ, हर्रे, पीपरि, निसोथ और सोंचर नमक, इन पाँचों औषधियोंको समान भाग लेकर चूर्ण बनावे। इसकी पंचसम चूर्ण संज्ञा है। इसका सेवन करनेसे शूलरोग, आध्मान, मंदाग्नि, बवासीर और आमवात, ये वाधायें शान्त हो जाती हैं॥ ९९॥ १००॥

अफरा आदिपर पिप्पल्यादि चूर्ण

कर्षमात्रा भवेत्कृष्णा त्रिवृता स्यात्पलोन्मिता॥ १०१॥
खण्डात्पलं च विज्ञेयं चूर्णमेकत्र कारयेत्।
कर्षोन्मितं लिहेदेतत्क्षौद्रेणाध्माननाशनम्॥ १०२॥
गाढविट्कोदरकफान्पित्तं शूलं च नाशयेत्।

पीपरि एक तोला, निसोथ चार तोले और मिश्री चार तोले इन औषधियों-का चूर्ण तैयार करके शहदके साथ सेवन करे तो बँधा मल पतला हो जाता और उदररोग, कफ, पित्त तथा शूलरोग शान्त हो जाया करता है॥ १०१॥ १०२॥

यकृत्प्लीहादिकोंपर लवणत्रयादि चूर्ण

लवणत्रितयं क्षारौ शतपुष्पाद्वयं वचा॥ १०३॥
अजमोदाऽजगंधा च हपुषा जीरकद्वयम्।
मरिचं पिप्पलीमूलं पिप्पली गजपिप्पली॥ १०४॥

हिंगुश्च हिंगुपत्री च शटी पाठोपकुंचिका।
शुण्ठी चित्रकचव्यानि विडंगं चाम्लवेतसम् ॥ १०५ ॥
दाडिमं तिंतिडीकं च त्रिवृद्दंती शतावरी।
इन्द्रवारुणिका भार्ङ्गी देवदारु यवानिका ॥ १०६ ॥
कुस्तम्बुरुस्तुम्बुरूणि पौष्करं बदराणि च।
शिवा चेति समांशानि चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥ १०७ ॥
भावयेदार्द्रकरसैर्बीजपूररसैस्तथा।
तत्पिवेत्सर्पिषा जीर्णमद्येनोष्णोदकेन वा ॥ १०८ ॥
कोलाम्भसा वा तक्रेण दुग्धेनोष्ट्रेण मस्तुना।
यकृत्प्लीहकटीशूलगुदकुक्षिहृदामयान् ॥ १०९ ॥
अर्शोविष्टंभमन्दाग्निगुल्माष्ठीलोदराणि च।
हिक्काध्मानश्वासकासाञ्जयेदेतान्न संशयः ॥ ११० ॥
एतैरेवौषधैः सम्यग्घृतं वा साधयेद्भिषक्।

तीनों नमक अर्थात् सेंधा नमक, सोंचर नमक और विडनमक, सज्जीखार, जवाखार, सौंफ, मँगरैला, वच, अजमोद, ववँरी (वनतुलसी) हाऊवेर, सफेद-जीरा, काला जीरा, काली मिर्च, पिपरामूल, पीपल, गजपीपल, भुनी हुई हींग, हिंगुपत्र, कचूर, पाढ़, छोटी इलायची, सोंठ, चव्यकी छाल, वायबिडंग, अमलवेंत, अनारदाना, तिन्तडीक, दन्ती, शतावर, इन्द्रायणकी जड़, देवदारु, अजवायन, धनियाँ, चिरफल, पोहकरमूल, बेर और छोटी हर्र, इन औषधियों-को बराबर लेकर चूर्ण तैयार करे। फिर उसे अदरखका रस तथा बिजौरेके रसकी भावना देकर सुखा ले। इसके लिए घी, पुरानी शराब, गरम जल, बेरका काढ़ा, गैयाकी छाँछ, उँटनीका दूध और दहीका पानी, ये अनुपान निश्चित हैं। इनमेंसे जिस रोगीके लिए जो अनुपान उचित जान पड़े, उसीके साथ औषधि देनी चाहिए। इसे लोग लवणत्रितयादि चूर्ण कहते हैं। इसका सेवन करनेसे कलेजेका रोग, प्लीहा, कमरका दर्द, गुदाके रोग, कोखका शूल, हृदयरोग, बवासीर, मलका अवरोध, मन्दाग्नि, गोला, अष्ठीला, उदररोग, हिचकी, अफरा, श्वास और खाँसी, ये व्याधियें दूर हो जाती हैं। अथवा इस चूर्णमें जितनी औषधियाँ गिनायी गयी हैं, उनका काढ़ा करके घी मिलाकर साधन करे, जब

हाऊवेर, त्रिफला, त्रायमाणा, पीपरि,चोक,निसोथ, पीली थूहर, कुटकी, वच, नीली, सेंधानमक और कालानमक, ये औषधियें बराबर-बराबर ले और कूट-पीसकर चूर्ण कर ले। फिर उसे गरम पानी, गोमूत्र, अनारदानेके रस, त्रिफलाके रस, त्रिफलाके काढ़े अथवा हरिण आदिके मांसरसके साथ देवे। किन्तु इस बातका विचार करना परमावश्यक है कि रोगीकी शक्ति और योग्यता कैसी है। इसे हपुषादि चूर्ण कहते हैं। इसका सेवन करनेसे अजीर्ण, प्लीहा, गोला, सूजन, बवासीर, मंदाग्नि, हलीमक, कामला, पाण्डुरोग, कुष्ठ, अफरा और उदररोग, ये सब बाधायें दूर हो जाती हैं ॥ ९६-९८ ॥

शूल आदिपर पंचसम चूर्ण

शुण्ठी हरीतकी कृष्णा त्रिवृत्सौवर्चलं तथा ॥ ९९ ॥
समभागानि सर्वाणि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्।
ज्ञेयं पंचसमं चूर्णमेतच्छूलहरं परम् ॥ १०० ॥
आध्मानजठरार्शोघ्नमामवातहरं स्मृतम्।

सोंठ, हरैं, पीपरि, निसोथ और सोंचर नमक, इन पाँचों औषधियोंको समान भाग लेकर चूर्ण बनावे। इसकी पंचसम चूर्ण संज्ञा है। इसका सेवन करनेसे शूलरोग, आध्मान, मंदाग्नि, बवासीर और आमवात, ये बाधायें शान्त हो जाती हैं ॥ ९९ ॥ १०० ॥

अफरा आदिपर पिप्पल्यादि चूर्ण

कर्षमात्रा भवेत्कृष्णा त्रिवृता स्यात्पलोन्मिता ॥ १०१ ॥
खण्डात्पलं च विज्ञेयं चूर्णमेकत्र कारयेत्।
कर्षोन्मितं लिहेदेतत्क्षौद्रेणाध्माननाशनम् ॥ १०२ ॥
गाढविट्कोदरकफान्पित्तं शूलं च नाशयेत्।

पीपरि एक तोला, निसोथ चार तोले और मिश्री चार तोले इन औषधियों-का चूर्ण तैयार करके शहदके साथ सेवन करे तो बँधा मल पतला हो जाता और उदररोग, कफ, पित्त तथा शूलरोग शान्त हो जाया करता है ॥ १०१ ॥ १०२ ॥

यकृत्प्लीहादिकोंपर लवणत्रयादि चूर्ण

लवणत्रितयं क्षारौ शतपुष्पाद्वयं वचा ॥ १०३ ॥
अजमोदाऽजगंधा च हपुषा जीरकद्वयम्।
मरिचं पिप्पलीमूलं पिप्पली गजपिप्पली ॥ १०४ ॥

हिंगुश्च हिंगुपत्री च शटी पाठोपकुंचिका।
शुण्ठी चित्रकचव्यानि विडंगं चाम्लवेतसम् ॥ १०५ ॥
दाडिमं तिंतिडीकं च त्रिवृद्दंती शतावरी।
इन्द्रवारुणिका भार्ङ्गी देवदारु यवानिका ॥ १०६ ॥
कुस्तम्बुरुस्तुम्बुरूणि पौष्करं बदराणि च।
शिवा चेति समांशानि चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥ १०७ ॥
भावयेदार्द्रकरसैर्बीजपूररसैस्तथा।
तत्पिवेत्सर्पिषा जीर्णमद्येनोष्णोदकेन वा ॥ १०८ ॥
कोलाम्भसा वा तक्रेण दुग्धेनोष्ट्रेण मस्तुना।
यकृत्प्लीहकटीशूलगुदकुक्षिहृदामयान् ॥ १०९ ॥
अर्शोविष्टंभमन्दाग्निगुल्माष्ठीलोदराणि च।
हिक्काध्मानश्वासकासाञ्जयेदेतान्न संशयः ॥ ११० ॥
एतैरेवौषधैः सम्यग्घृतं वा साधयेद्भिषक्।

तीनों नमक अर्थात् सेंधा नमक, सोंचर नमक और विडनमक, सज्जीखार, जवाखार, सौंफ, मँगरैला, वच, अजमोद, वर्वरी (वनतुलसी) हाऊवेर, सफेद-जीरा, काला जीरा, काली मिर्च, पिपरामूल, पीपल, गजपीपल, भुनी हुई हींग, हिंगुपत्र, कचूर, पाढ़, छोटी इलायची, सौंठ, चव्यकी छाल, वायविडंग, अमलवेंत, अनारदाना, तिन्तडीक, दन्ती, शतावर, इन्द्रायणकी जड़, देवदारु, अजवायन, धनियाँ, चिरफल, पोहकरमूल, वेर और छोटी हर्र, इन औषधियों-को बराबर लेकर चूर्ण तैयार करे। फिर उसे अदरखका रस तथा बिजौरेके रसकी भावना देकर सुखा ले। इसके लिए घी, पुरानी शराब, गरम जल, बेरका काढ़ा, गैयाकी छाँछ, उँटनीका दूध और दहीका पानी, ये अनुपान निश्चित हैं। इनमेंसे जिस रोगीके लिए जो अनुपान उचित जान पड़े, उसीके साथ औषधि देनी चाहिए। इसे लोग लवणत्रितयादि चूर्ण कहते हैं। इसका सेवन करनेसे कलेजेका रोग, प्लीहा, कमरका दर्द, गुदाके रोग, कोखका शूल, हृदयरोग, बवासीर, मलका अवरोध, मन्दाग्नि, गोला, अष्ठीला, उदररोग, हिचकी, अफरा, श्वास और खाँसी, ये व्याधियें दूर हो जाती हैं। अथवा इस चूर्णमें जितनी औषधियाँ गिनायी गयी हैं, उनका काढ़ा करके घी मिलाकर साधन करे, जब

सिद्ध हो जाय तो उतारकर रख ले। इसका भी सेवन करनेसे ऊपर बतलाये सब रोग शान्त हो जाते हैं ॥ १०३–११० ॥

शूलादिकोंपर तुम्बुर्वादि चूर्ण

तुम्बुरूणि त्रिलवणं यवानी पुष्कराह्वयम् ॥ १११ ॥
यवक्षाराभयाहिंगुविडंगानि समानि च।
त्रिवृत्त्रिभागा विज्ञेया सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ११२ ॥
पिबेदुष्णेन तोयेन यवक्राथेन वा पिबेत्।
जयेत्सर्वाणि शूलानि गुल्माध्मानोदराणि च ॥ ११३ ॥

धनियाँ या चिरफल, तीनों नमक (सेंधा नमक, सोंचर नमक, विड नमक) अजमोद, पोहकरमूल, जवाखार, हड़, भूनी भयी हींग और बायबिडंग इन औषधियोंको समान भाग ले और कूट-पीसकर बारीक चूर्ण बनाकर गरम जल अथवा जौके काढ़ेके साथ सेवन करे तो सब प्रकारके शूल, गोला, अफरा और उदररोग शान्त हो जाते हैं ॥ १११–११३ ॥

गुल्मादिकोंपर चित्रकादि चूर्ण

चित्रको नागरं हिंगु पिप्पली पिप्पलीजटा।
चव्याजमोदामरिचं प्रत्येकं कर्षसम्मितम् ॥ ११४ ॥
स्वर्जिका च यवक्षारः सिंधुसौवर्चलं विडम्।
सामुद्रकं रोमकं च कोलमात्राणि कारयेत् ॥ ११५ ॥
एकीकृत्याखिलं चूर्णं भावयेन्मातुलुंगजैः।
रसैर्दाडिमजैर्वापि शोषयेदातपेन च ॥ ११६ ॥
एतच्चूर्णं जयेद्गुल्मं ग्रहणीमामजां रुजम्।
अग्निं च कुरुते दीप्तं रुचिकृत्कफनाशनम् ॥ ११७ ॥

चीतेकी छाल, सोंठ, भुनी हींग, पीपरि, पीपरामूल, चव्य, अजमोद, काली मिर्च, इन आठ औषधियोंको दो तोलेके प्रमाणसे लेवे। सज्जीखार, जवाखार, सेंधानमक, सोंचर नमक, विड नमक, समुद्र नमक और रेहका नमक, इन सात क्षारोंको आठ मासेके प्रमाणसे एकत्र करे। फिर सब औषधियोंका चूर्ण तैयार करके बिजौरेके रसमें एक भावना दे अथवा अनारदानेके रसका पुट देवे और घाममें सुखा ले। इसका सेवन करनेसे वायुगोला, संग्रहणी और आम रोग दूर

होते, अग्नि प्रदीप्त होता, खाने-पीनेकी रुचि बढ़ती और कफबाधा दूर हो जाती है। इसे लोग चित्रकादि चूर्ण कहते हैं॥ ११४–११७॥

मन्दाग्नि आदि रोगोंपर बडवानल चूर्ण

सैंधवं पिप्पलीमूलं पिप्पलीचव्यचित्रकम्।
शुण्ठी हरीतकी चेति क्रमवृद्धया विचूर्णयेत्॥ ११८॥
बडवानलनामैतच्चूर्णं स्यादग्निदीपनम्।

सेंधा नमक, पिपरामूल, पीपर, चव्य, चीतेकी छाल, सोंठ, जंगीहड़, इन औषधियोंको क्रमवृद्धिके अनुसार (अर्थात् सेंधा नमक एक भाग, पिपरा मूल उसका दुगुना, पीपर पिपरा मूलसे भी तिगुना, इस क्रमसे बढाता हुआ) लेवे और उसको कूट-पीसकर चूर्ण तैयार करे। इस चूर्णकी बडवानल संज्ञा है। इसका सेवन करनेसे मन्द औदर्य अग्नि भी प्रदीप्त हो जाता है॥ ११८॥

आमवातपर अजमोदादि चूर्ण

अजमोदाविडंगाह्वं सैंधवं देवदारु च॥ ११६॥
चित्रकं पिप्पलीमूलं शतपुष्पा च पिप्पली।
मरिचं चेति कर्षांशं प्रत्येकं कारयेद्बुधः॥ १२०॥
कर्षास्तु पंच पथ्याया दश स्युर्वृद्धदारुकात्।
नागराच्च दशैव स्युः सर्वाण्येकत्र कारयेत्॥ १२१॥
पिबेत्कोष्णजलेनैव चूर्णं श्वयथुनाशनम्।
आमवातरुजं हन्ति सन्धिपीडां च गृध्रसीम्॥ १२२॥
कटिपृष्ठगुदस्थां च जंघयोश्च रुजं जयेत्।
तूनीप्रतूनीविश्वाचीकफवातामयाञ्जयेत्।
समेन वा गुडेनास्य वटकान्कारयेत्सुधीः॥ १२३॥

अजमोदा, वायविडंग, सेंधा नमक, देवदारु, चित्रक, पिपरामूल, सौंफ, पीपरि और मिर्च, इन औषधियोंको एक-एक तोला प्रमाणसे लेवे। इनके अतिरिक्त जंगीहड़ दो तोले, विधारा दस तोले, इन सब औषधियोंको कूट-पीसकर चूर्ण बना ले और गरम जलके साथ सेवन करे तो सूजन, आमवात, संधियोंकी पीड़ा, गृध्रसी वायु, कमर, पीठ, गुदा, जंघा और पिंडरियोंकी पीड़ा, तूनी, प्रतूनी तथा विश्वाची वायु

और कफ-वातविकार ये सब रोग दूर हो जाते हैं। इसके सिवाय यदि इच्छा हो तो चूर्णका समभाग गुड़ मिलाकर गोलियाँ बना ले॥ ११९–१२३॥

श्वासादिपर शुण्ठ्यादि चूर्ण

शुण्ठीसौवर्चलं हिंगु दाडिमं चाम्लवेतसम्।
चूर्णमुष्णाम्बुना पेयं श्वासहृद्रोगशांतये॥ १२४॥

सोंठ, सोंचर नमक, भुनी हुई हींग, अनारदाना और अमिलवेत, इनका चूर्ण बना करके यदि गरम जलके साथ सेवन करे तो श्वास और हृदयरोग शांत हो जाता है॥ १२४॥

शूलादिकोंपर हिंग्वादि चूर्ण

हिंगूग्रगंधाविडविश्वकृष्णाकुष्ठाभयाचित्रकयावशूकम्।
पिबेत्ससौवर्चलपुष्कराह्वं हिमांभसा शूलहृदामयघ्नम्॥ १२५॥

हींग, वच, विडनमक, सोंठ, पीपल, कूठ, हरड़, चीतेकी छाल, जवाखार, सोंचर नमक और पोहकरमूल, इन ग्यारह औषधियोंका चूर्ण तैयार करके शीतल जलके साथ सेवन करे तो शूल और हृदयरोग शान्त हो जाता है॥ १२५॥

शूलादिकोंपर हिंग्वादि चूर्ण

हिंगु पाठाऽभया धान्यं दाडिमं चित्रकं शटी।
अजमोदा त्रिकटुकं हपुषा चाम्लवेतसम्॥ १२६॥
अजगन्धा तिंतिडीकं जीरकं पौष्करं वचा।
चव्यं क्षारद्वयं पञ्च लवणानीति चूर्णयेत्॥ १२७॥
प्राग्भोजनस्य मध्ये वा चूर्णमेतत्प्रयोजयेत्।
पिबेद्वा जीर्णमद्येन तक्रेणोष्णोदकेन वा॥ १२८॥
गुल्मे वातकफोद्भूतं विड्ग्रहेऽष्ठीलिकासु च।
हृद्बस्तिपार्श्वशूलेषु शूले च गुदयोनिजे॥ १२९॥
मूत्रकृच्छ्रे तथानाहे पांडुरोगेऽरुचौ तथा।
हिक्कायां यकृति प्लीह्नि श्वासे कासे गलग्रहे॥ १३०॥
ग्रहण्यर्शोविकारेषु चूर्णमेतत्प्रशस्यते।
भावितं मातुलुंगस्य बहुशः स्वरसेन वा॥ १३१॥
कुर्याच्च गुटिकाः पथ्या वातश्लेष्मामयापहाः।

भुनी हींग, पाढ़, जंगी हड़, धनियाँ, अनारदाना, चीतेकी छाल, कचूर, अजमोदा, सोंठ, मिर्च, पीपरि, हाऊवेर, अमलवेत, वनतुलसी, तिंतिडीक (इमली) जीरा, पोहकरमूल, चव्य, सज्जीखार, जवाखार, पाँचों प्रकारके नमक (सेंधा नमक, सोंचर नमक, विड नमक, वाँगड नमक और समुद्रका नमक) इन सब औषधियोंको कूट-पीसकर चूर्ण तैयार करे और भोजनके आदि मध्य या अन्तमें बहुत दिनके पुराने मद्य, गौकी छाछ तथा गरम जलके साथ सेवन करे तो वात-कफके प्रकोपसे जायमान वायुगोलेका रोग,हृद्रोग, आष्ठीला नामक वात रोग,हृदय, कुक्षि, गुदा और योनिका शूल, मूत्रकृच्छ्र, मलबद्धता, पाण्डुरोग, अरुचि, हिचकी, यकृद्रोग, तिल्लीका रोग, श्वास, खाँसी, कंठरोग, संग्रहणी और बवासीर ये समस्त रोग शान्त हो जाते हैं। यदि इस चूर्णको त्रिजौरेके रसमें सात पुट देकर गोली बनाके सेवन करे तो वात तथा कफसे होनेवाले सब रोग नष्ट हो जाते हैं। इसे लोग हिंग्वादि चूर्ण कहते हैं ॥ १२६-१३१ ॥

अरुचि आदिपर यवानीखाण्डव चूर्ण

यवानी दाडिमं शुण्ठी तिंतिडाकाम्लवेतसौ ॥ १३२ ॥
बदराम्लं च कुर्वीत चतुःशाणमितानि च।
सार्द्धद्विशाणं मरिचं पिप्पली दशशाणिका ॥ १३३ ॥
त्वक्सौवर्चलधान्याकं जीरकं द्विद्विशाणिकम्।
चतुःषष्टमितैः शाणैः शर्करामत्र योजयेत् ॥ १३४ ॥
चूर्णितं सर्वमेकत्र यवानीखांडवाभिधम्।
चूर्णं जयेत्पाण्डुरोगं हृद्रोगं ग्रहणीज्वरम् ॥ १३५ ॥
छर्दिशोषातिसारांश्च प्लीहानाहविबन्धताम्।
अरुचिं शूलमन्दाग्नी अर्शोजिह्वागलामयान् ॥ १३६ ॥

अजमोदा, अनारदाना, सोंठ, इमली, अमलबेंत और खट्टी बेर, ये औषधियाँ चार-चार शाण लेवे। फिर कालो मिर्च ढाई शाण, पीपरि दस शाण, दालचीनी, सोंचर नमक, धनियाँ और जीरा, इनको दो-दो शाण और मिश्री चौंसठ शाण लेवे। फिर सब औषधियोंको कूटकर चूर्ण बनावै। इसका सेवन करनेसे पाण्डु, हृद्रोग, संग्रहणी, ज्वर, वमन, शोष, अतिसार, तिल्ली, मलबद्धता, अरुचि,

शूल, मन्दाग्नि, बवासीर और जीभके रोग दूर हो जाते हैं । इस चूर्णको यवानीखांडव चूर्ण कहते हैं ॥ १३२—१३६ ॥

अरुचि आदि रोगोंपर तालीसादि चूर्ण

तालीसं मरिचं शुण्ठी पिप्पली वंशरोचना ।
एकद्वित्रिचतुःपञ्चकर्षैर्भागान्प्रकल्पयेत् ॥ १३७ ॥
एलात्वचोस्तु कर्षार्धं प्रत्येकं भागमावहेत् ।
द्वात्रिंशत्कर्षतुलिता प्रदेया शर्करा बुधैः ॥ १३८ ॥
तालीसाद्यमिदं चूर्णं रोचनं पाचनं स्मृतम् ।
कासश्वासज्वरहरं छर्द्यतीसारनाशनम् ॥ १३९ ॥
शोषाध्मानहरं प्लीहग्रहणीपाण्डुरोगजित् ।
पक्त्वा वा शर्कराचूर्णं क्षिपेत्स्याद्गुटिका ततः ॥ १४० ॥

तालीसपत्र एक तोला, काली मिर्च दो तोला, सोंठ तीन तोला, वंशलोचन चार तोला, छोटी इलायची और दालचीनी छ–छ माशे तथा मिश्री बत्तीस तोले लेवे और सबको कूट-पीस कर चूर्ण बना ले । इसका सेवन करनेसे भोजनमें रुचि होती, अन्न अच्छी तरह पचता और खाँसी, श्वास, ज्वर, वमन, अतीसार, शोष, अफरा, तिल्ली, संग्रहणी तथा पाण्डुरोग दूर हो जाते हैं । यदि इच्छा हो तो शक्करकी चाशनी तैयार करे और उसमें यह चूर्ण डालकर गोलियें बना ले ॥ १३७-१४० ॥

खाँसी तथा क्षयपित्तादिकोंपर सितोपलादि चूर्ण

सितोपला षोडश स्यादष्टौ स्याद्वंशरोचना ।
पिप्पली स्याच्चतुःकर्षा स्यादेला च द्विकर्षिकी ॥ १४१ ॥
एकः कर्षस्त्वचः कार्यश्चूर्णयेत्सर्वमेकतः ।
सितोपलादिकं चूर्णं मधुसर्पिर्युतं लिहेत् ॥ १४२ ॥
श्वासकासक्षयहरं हस्तपादांगदाहजित् ।
मन्दाग्निं शून्यजिह्वत्वं पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ १४३ ॥

मिश्री सोलह तोले, वंशलोचन आठ तोले, पीपरि चार तोले, छोटी इलायचीके दाने दो तोले, इन समस्त औषधियोंको एकत्र करके कूट-पीसकर चूर्ण तैयार करे । शहद और घीके साथ इसका सेवन करनेसे श्वास, खाँसी, क्षय, हाथ-पैरकी

जलन, मन्दाग्नि, जिह्वाकी शून्यता, पसलीका शूल, अरुचि, ज्वर और ऊर्ध्वगत रक्तपित्त रोग शान्त हो जाता है। इसे लोग सितोपलादि चूर्ण कहते हैं ॥ १४१–१४३ ॥

संग्रहणी-गुल्मादिकोंपर लवणभास्कर चूर्ण

सामुद्रलवणं कार्यमष्टकर्षमितं बुधैः ॥ १४४ ॥
पञ्चसौवर्चलं ग्राह्यं विडं सैन्धवधान्यके।
पिप्पली पिप्पलीमूलं कृष्णजीरकपत्रकम् ॥ १४५ ॥
नागकेसरतालीसमम्लवेतसकं तथा।
द्विकर्षमात्राण्येतानि प्रत्येकं कारयेद्बुधः ॥ १४६ ॥
मरिचं जीरकं विश्वमेकैकं कर्षमात्रकम्।
दाडिमं स्याच्चतुःकर्षं त्वगेला चार्धकार्षिकी ॥ १४७ ॥
बीजपूररसेनैव भावितं सप्तवारकम्।
एतच्चूर्णीकृतं सर्वं लवणं भास्कराभिधम्।
शाणप्रमाणं देयं तु मस्तुतक्रसुरासवैः ॥ १४८ ॥
वातश्लेष्मभवं गुल्मं प्लीहानमुदरं क्षयम्।
अर्शांसि ग्रहणीं कुष्ठं विबन्धं च भगन्दरम् ॥ १४९ ॥
शोफं शूलं श्वासकासमामदोषं च हृद्रुजम्।
मन्दाग्निं नाशयेदेतद्दीपनं पाचनं परम् ॥ १५० ॥
सर्वलोकहितार्थाय भास्करेणोदितं पुरा।

सामुद्र नमक आठ तोले, सोंचर नमक पाँच तोले, विड नमक, सेंधा नमक, धनियाँ, पीपरि, पिपरामूल, काला जीरा, तेजपात, नागकेशर, तालीसपत्र और अमलवेंत, इन दस औषधियोंको दो-दो तोलेके परिमाणसे लेवे। काली मिर्च, जीरा और सोंठ, इन तीन औषधियोंको एक एक तोले, अनारदाना चार तोले, दालचीनी और इलायची छ-छ माशे ले। इन सबको कूट-पीसकर चूर्ण बनावे। दहीके तोड़, छाछ अथवा मद्यके साथ ४ मासे इसका सेवन करनेसे वात-कफसे जायमान वायु गोला, प्लीहा, उदररोग, क्षय, बवासीर, संग्रहणी, कोढ़, मलबद्धता, भगन्दर, सूजन, शूल, श्वास, खाँसी, आमवात, हृद्रोग और मन्दाग्नि, ये सब रोग दूर हो जाते हैं। साथ ही इसमें उद्दीपन और पाचनकी

भी शक्ति है। संसारके कल्याणार्थं सूर्यभगवान्‌ने अपने मुखसे यह चूर्ण बतलाया था। इसी लिये लोग इसको लवणभास्कर चूर्ण कहते हैं ॥१४४-१५०॥

वमनपर एलादि चूर्ण

एलाप्रियंगुमुस्तानि लोकमज्जा च पिप्पली ॥ १५१ ॥
श्रीचन्दनं तथा लाजा लवङ्गं नागकेसरम्।
एतच्चूर्णीकृतं सर्वं सिताक्षौद्रयुतं लिहेत् ॥ १५२ ॥
वातपित्तकफोद्भूतां छर्दिं हन्त्यतिवेगतः।

छोटी इलायचीके बीज, फूले प्रियंगु, नागरमोथा, बेरकी गुठली, पीपरि, सफेद चन्दन, धानका लावा, लौंग और नागकेसर, इन नौ औषधियोंको कूट-पीसकर चूर्ण बना ले और शहद तथा मिश्रीके साथ खाय तो वात-पित्तके प्रकोपसे जायमान वमन रोग बड़ी जल्दी अच्छा हो जाता है॥ १५१–१५२ ॥

कुष्ठादिकोंपर पञ्चनिम्ब चूर्ण

मूलं पत्रं फलं पुष्पं त्वचं निम्बात्समाहरेत् ॥ १५३ ॥
सूक्ष्मचूर्णमिदं कुर्यात्पलैः पञ्चदशोन्मितैः।
लोहभस्महरीतक्यो चक्रमर्दकचित्रकौ ॥ १५४ ॥
भल्लातकविडंगानि शर्करामलकं निशा।
पिप्पलीमरिचं शुण्ठी बाकुची कृतमालकः ॥ १५५ ॥
गोक्षुरश्च पलोन्मानमेकैकं कारयेद्बुधः।
सर्वमेकीकृतं चूर्णं भृंगराजेन भावयेत् ॥ १५६ ॥
अष्टभागावशिष्टेन खदिरासनवारिणा।
भावयित्वा च संशुष्कं कर्षमात्रं ततः क्षिपेत् ॥ १५७ ॥
खदिरासनतोयेन सर्पिषा पयसाथवा।
मांसेन सर्वकुष्ठानि विनिहन्ति रसायनम् ॥ १५८ ॥
पञ्चनिम्बमिदं चूर्णंसर्वरोगप्रणाशनम्।

नीमकी जड़, पत्ते, फल, फूल और छाल पन्द्रह पलके परिणामसे ले और कूट-पीसकर चूर्ण बनावे। फिर उसमें लोहेकी भस्म, जंगी हड़, चकवनके बीज, चीतेकी छाल, भिलावा, वायविडंग, मिश्री, आँवला, हल्दी, पीपरि, काली मिर्च, सोंठ, बकुची, अमिलतासका गूदा और गोखरू, इन पन्द्रह औषधियोंको एक-

एक पलके परिमाणसे एकत्रित करके चूर्ण बनावे। तदनन्तर पीछे बतलाये हुए नीमका चूर्ण और इन पन्द्रह औषधियोंका चूर्ण एकमें मिलाकर भाँगरेके रसको भावना दे। इसके बाद खैरकी छालका काढ़ा करके उसका एक पुट दे और विजयसारकी छालका काढ़ा तैयारकर उसका भी एक पुट देकर सुखा ले। आवश्यकता पड़नेपर खैरकी छालके काढ़ेके साथ अथवा विजयसारके काढ़े और घी तथा गौके दूधके साथ पीवे तो एक महीनेमें सब प्रकारके कुष्ठरोग दूर हो जाते हैं। इसे लोग पंचनिम्ब चूर्ण कहते हैं। यह एक प्रकारका रसायन है ॥ १५३–१५८ ॥

वाजीकरणपर शतावरी चूर्ण

शतावरी गोक्षुरश्च बीजं च कपिकच्छुजम् ॥ १५९ ॥
गांगेरुकी चातिबला बीजमिक्षुरसोद्भवम् ।
चूर्णितं सर्वमेकत्र गोदुग्धेन पिबेन्निशि ॥ १६० ॥
न तृप्तिं याति नारीभिर्नरश्चूर्णप्रभावतः ।

शतावर, गोखरू, केवाँचके बीज, गंगेरनकी छाल और तालमखाना, इन छ औषधियोंका चूर्ण बनाकर रात्रिके समय गौके दूधके साथ सेवन करे तो इस चूर्णके प्रभावसे बार-बार मैथुन करनेपर भी स्त्रीसंभोगकी इच्छा पूर्ण नहीं होने आती ॥ १५९ ॥ १६० ॥

वाजीकरणपर अश्वगंधादि चूर्ण

अश्वगन्धा दशपला तन्मात्रो वृद्धदारकः ॥ १६१ ॥
कर्षैकं पयसा पीत्वा नारीभिर्नैव तृप्यति ।
अगत्वा प्रमदां भूयो बली पलितवर्जितः ॥ १६२ ॥

असगन्ध दस पल, विधारा ग्यारह पल, इन दोनों वस्तुओंका चूर्ण तैयार करके रात्रिको घीके बर्तनमें रख दे। सवेरे दो तोले चूर्ण गौके दूधके साथ सेवन करे तो बहुतेरी स्त्रियोंके साथ सम्भोग करनेपर भी तृप्ति नहीं होती। यदि कोई मनुष्य कुछ दिनोंके लिए स्त्रीप्रसंगका परित्याग करके इस चूर्णका सेवन करे तो शरीरमें झुर्रियाँ पड़ना या बाल सफेद होना, ये रोग दूर हो जाते और बूढ़े मनुष्यको भी जवानीके सुख मिलने लगते हैं ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

धातुवृद्धिपर मुसली चूर्ण

मुसलीकन्दचूर्णं तु गडूचीसत्त्वसंयुतम् ॥ १६३ ॥
सक्षीरो गोक्षुराभ्यां च शाल्मलीशर्करामलैः ।
आलोड्य घृतदुग्धेन दापयेत्कामवर्धनम् ॥ १६४ ॥

सफेद मूसली, गिलोयका सत्त्व, केवाँचके बीज, गोखरू, सेमरकी मूसली, मिश्री और आँवले, इन सात औषधियोंका चूर्ण बनाकर गौके दूधमें घी मिला करके उसके साथ यह चूर्ण खाय तो धातुकी वृद्धि होती और कामशक्ति भी तीव्र हो जाती है ॥ १६३ ॥ १६४ ॥

पांडुरोगादिकोंपर नवायस चूर्ण

चित्रकं त्रिफला मुस्तं विडङ्गं त्र्यूषणानि च ।
समभागानि सर्वाणि नवभागो हतायसः ॥ १६५ ॥
एतदेकीकृतं चूर्णं मधुसर्पिर्युतं लिहेत् ।
गोमूत्रमथवा तक्रमनुपाने प्रशस्यते ॥ १६६ ॥
पांडुरोगं जयत्युग्रं त्रिदोषं च भगन्दरम् ।
शोथकुष्ठोदरार्शांसि मन्दाग्निमरुचिं कृमीन् ॥ १६७ ॥

चीतेकी छाल, हरड़, बहेड़ा, आमला, नागरमोथा, वायविडंग, सोंठ, काली मिर्च और पीपरि, ये नौ औषधियाँ बराबर-बराबर लेकर चूर्ण बनावे और चूर्णके ही बराबर उसमें लोहभस्म मिलावे। फिर इसे शहद और घीके संग, गोमूत्रके साथ अथवा गौकी छाछके साथ खाय तो भयंकर पाण्डुरोग, त्रिदोष, भगन्दर, शोष, कुष्ठ, उदररोग, बवासीर, मन्दाग्नि, अरुचि तथा कृमिरोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १६५–१६७ ॥

स्तम्भनपर आकारकरभादि चूर्ण

अकारकरभः शुंठी कंकोलं कुंकुमं कणा ।
जातीफलं लवङ्गं च चन्दनं चेति कार्षिकान् ॥ १६८ ॥
चर्णानि मानतः कुर्यादहिफेनं पलोन्मितम् ।
सर्वमेकीकृतं सूक्ष्मं माषैकं मधुना लिहेत् ॥ १६९ ॥
शुक्रस्तंभकरं चूर्णं पुंसामानंदकारकम् ।
नारीणां प्रीतिजननं सेवेत निशि कामुकः ॥ १७० ॥

अकरकरा, सोंठ, कंकोल, केसर, पीपरि, जायफल, लौंग और सफेद चन्दन ये सब औषधियाँ एक एक तोले और अफीम चार तोले लेवे। इन सबको एकत्रित करके चूर्ण बनावे और रात्रिके समय एक मासेके लगभग चूर्ण शहदके साथ सेवन करे तो धातुका स्तंभन हो, पुरुषको सुख मिले और स्त्रीको भी आनन्द प्राप्त हो ॥ १६८ ॥ १६९ ॥ १७० ॥

दन्तमंजन

वकुलत्वग्भवं चूर्णं घर्षयेद्दंतपंक्तिषु।
वज्रादपि दृढीभूता दन्ताः स्युश्चपला ध्रुवम् ॥ १७१ ॥

यदि मौलसिरीके चूर्णका प्रतिदिन मंजन करे तो दाँत वज्र सरीखे मजबूत हो जाते हैं। इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं है॥ १७१ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने
चूर्णकल्पनानाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः।

वटककल्पना

वटिकाश्चाथ कथ्यंते तन्नाम गुटिका वटी।
मोदको वटिका पिंडी गुडो वर्तिस्तथोच्यते ॥ १ ॥
लेहवत्साध्यते वह्नौ गुडो वा शर्कराथवा।
गुग्गुलं वा क्षिपेत्तत्र चूर्णं तन्निर्मिता वटी ॥ २ ॥
प्रकुर्याद्वह्निसिद्धेन क्वचिद्गुग्गुलुना वटी।
द्रवेण मधुना वापि गुटिकां कारयेद्बुधः ॥ ३ ॥
सिता चतुर्गुणा देया वटीषु द्विगुणो गुडः।
चूर्णाच्चूर्णसमः कार्यो गुग्गुलुर्मधु तत्समम् ॥ ४ ॥
द्रवं च द्विगुणं देयं मोदकेषु भिषग्वरैः।
कर्षप्रमाणा तन्मात्रा बलं दृष्ट्वा प्रयुज्यताम् ॥ ५ ॥

अब वटिकाओंका प्रकरण चलता है। जिसमें, वटक, गुटिका, वटी, मोदक, वटिका, पिंडी, गुड और वर्ति, ये आठ नाम वटिका (गोली)के हैं। इसके बनानेका

पहला प्रकार इस तरह है कि गुड़ खाँड़ अथवा गुगूलका पाक करके उसमें चूर्ण मिलाकर गोली बनायी जाती है। दूसरे यदि विना पाक किये ही गोली बनानी हो तो गूगुलको शोधकर पीस डाले और उसमें चूर्ण मिलाकर घीसे गोली बना ले। तीसरे—जल, दूध तथा शहद आदि तरल पदार्थोंमें चूर्ण डाल और खरल करके भी गोली वनायी जा सकती है। यदि उक्त रितिसे खाँड़, मिश्री आदि डालकर गोली बनानी हो तो चूर्णसे चौगुनी मिश्री मिलाकर गोली बनावे। यदि गुड़ मिलाकर गोली बनानेकी इच्छा हो तो चूर्णसे दुगुना गुड़ डालकर गोली वनानी चाहिए। यदि कभी गूगुल तथा शहद ये दोनों मिलाकर गोली बनानेकी इच्छा हो तो इन दोनोंको चूर्णके बराबर परिमाणमें लेकर बनानी चाहिए। उसी तरह यदि पानी, दूध आदि द्रव पदार्थके संयोगसे गोली बनानी हो तो चूर्णसे दुगुना पानी अथवा दूध डालकर गोली बनावे। इन वटिकाओंके चूर्णके सेवनकी मात्रा एक वर्ष है। इसके अतिरिक्त एक बात यह भी है कि वैद्य रोगीको देखकर उसकी प्रवृत्तिके अनुसार मात्राकी व्यवस्था करे॥ १—५॥

बवासीरपर बाहुशाल गुड

इंद्रवारुणिकामुस्तं शुण्ठी दन्ती हरीतकी।
त्रिवृच्छटी विडंगानि गोक्षुरश्चित्रकस्तथा॥ ६॥
तेजोह्वा च द्विकर्षाणि पृथग्द्रव्याणि कारयेत्।
सूरणस्य पलान्यष्टौ वृद्धदारु चतुष्पलम्॥ ७॥
चतुः पलं स्याद्भल्लातः क्वाथयेत्सर्वमेकतः।
जलद्रोणे चतुर्थांशं गृह्णीयात्क्वाथमुत्तमम्॥ ८॥
क्वाथ्यद्रव्यत्रिगुणितं गुडं क्षिप्त्वा पुनः पचेत्।
सम्यक्पक्वं च विज्ञाय चूर्णमेतत्प्रदापयेत्॥ ९॥
चित्रकस्त्रिवृता दन्ती तेजोह्वा पलिकाः पृथक्।
पृथक्त्रिपलिकाः कार्या व्योषैला मरिचत्वचः॥ १०॥
निक्षिपेन्मधुशीते च तस्मिन्प्रस्थप्रमाणतः।
एवं सिद्धो भवेच्छ्रीमान्बाहुशालगुडः शुभः॥ ११॥
जयेदर्शांसि सर्वाणि गुल्मं वातोदरं तथा।
आमवातं प्रतिश्यायं ग्रहणीक्षयपीनसान्॥ १२॥
हलीमकं पाण्डुरोगं प्रमेहं च रसायनम्।

इद्रायनकी जड़, नागरमोथा, सोंठ, दन्ती, जंगी हरड़, निसोथ, कचूर, वायविडंग, गोखरू, चीतेकी छाल और तेजबल, दो तोले प्रमाणसे इन ग्यारह औषधियोंको लेकर जमीकन्द आठ पल, विधारा सोलह पल और भिलावा चार पल लेवे। इन सब औषधियोंको एकत्रित करके कूट पीस ले और दो द्रोण जल डालकर उसे अग्निपर चढ़ा दे और मन्द आँचसे चतुर्थांश जल शेष रहने तक पकावे। इसके बाद उसमें सब औषधियोंका चूर्ण डाले। चीतेकी छाल, निशोथ, दन्ती और तेजबल, ये चार औषधियें एक-एक पल लेकर सोंठ, मिर्च, पीपल, आँवले और दालचीनी ये पाँच औषधि तीन पल लेवे। फिर सबका चूर्ण करके उस पाकमें मिलावे। इसको बाहुशाल गुड कहते हैं। इसका सेवन करनेसे सब प्रकारके बवासीर, गुल्म, वातोदर, वादीसे अंगोंका जकड़ना, आमवात, जुकाम, संग्रहणी, क्षय, पीनस, हलीमक, पाण्डुरोग और प्रमेहरोग दूर हो जाते हैं॥ ६–१२॥

खाँसीपर मरिचादि गुटिका

मरिचं कर्षमात्रं स्यात्पिप्पली कर्षसम्मिता॥ १३॥
अर्धकर्षो यवक्षारः कर्षयुग्मं च दाडिमम्।
एतच्चूर्णीकृतं युंज्यादष्टकर्षगुडेन हि॥ १४॥
शाणप्रमाणां गुटिकां कृत्वा वक्त्रे विधारयेत्।
अस्याः प्रभावात्सर्वेपि कासा यांत्येव संक्षयम्॥ १५॥

काली मिर्च और पीपरि एक कर्ष (एक तोला) जवाखार आधा तोला, अनारकी छाल दो तोले, इन औषधियोंका चूर्ण बना करके आठ तोले गुड़ मिलाकर चार-चार मासेकी गोली बनावे। इस गोलीको मुखमें रखकर चूसनेसे सब प्रकारकी खाँसी दूर हो जाती है॥ १३–१५॥

ऊर्ध्ववातपर व्योषादि गुटिका

व्याघ्री जीरकधात्रीणां चूर्णं मधुयुतं लिहेत्।
ऊर्ध्ववातमहाश्वासतमकैर्मुच्यते क्षणात्॥ १६॥

कटेरी, जीरा और आँवले, इन औषधियोंका चूर्ण बना करके शहदके साथ चाटनेसे ऊर्ध्ववायु, महाश्वास तथा तमकश्वास तुरन्त दूर हो जाते हैं॥१६॥

श्वास-खाँसीपर गुडादि गुटिका

गुडशुण्ठी शिवामुस्तैर्गुटिकां धारयेन्मुखे ।
श्वासकासेषु सर्वेषु केवलं वा बिभीतकम् ॥ १७ ॥

सोंठ, जंगी हरड़ और नागरमोथा, इन औषधियोंको कूट-पीसकर इससे दूना गुड़ मिलाकर गोली बना ले। इसकी गोलियाँ मुखमें रखकर रस चूसनेसे सब प्रकारका श्वास और खाँसी दूर हो जाती है। केवल बहेड़ेके छिलकेको भी मुखमें रखकर चूसनेसे श्वास-खाँसी दूर होती है ॥ १७ ॥

मुखशोषादिपर आमलक्यादि गुटिका

आमलं कमलं कुष्ठं लाजाश्च वटरोहकम् ।
एतच्चूर्णस्य मधुना गुटिकां धारयेन्मुखे ॥ १८ ॥
तृष्णां प्रवृद्धां हंत्येषा मुखशोषं च दारुणम् ।

आमला, कमल, कूट, धानका लावा और बरगदकी जटाके अंकुर इन पाँच औषधियोंको शहद मिलाकर गोली बना ले। इस गोलीको मुखमें रखकर चूसनेसे अधिक प्यास तथा दारुण शोष रोग दूर हो जाता है ॥ १८ ॥

सन्निपातादिकोंपर संजीवनी गुटिका

विडंगं नागरं कृष्णा पथ्यामलबिभीतकम् ॥ १९ ॥
वचा गुडूची भल्लातं सविषं चात्र योजयेत् ।
एतानि समभागानि गोमूत्रेणैव पेषयेत् ॥ २० ॥
गुञ्जाभा गुटिका कार्य्या दद्यादार्द्रकजै रसैः ।
एकामजीर्णगुल्मेषु द्वे विषूच्यां च दापयेत् ॥ २१ ॥
तिस्रश्च सर्पदष्टे तु चतस्रः सन्निपातके ।
वटी संजीवनी नाम्ना संजीवयति मानवम् ॥ २२ ॥

वायविडंग, सोंठ, पीपरि, जंगी हड़, आँवला, बहेड़ा, वच, गिलोय, भिलावा, वत्सनाभविष (शोधा हुआ) इन औषधियोंको बराबर-बराबर ले करके गोमूत्रमें पीसकर एक-एक रत्तीकी गोली बनावे। इसे निम्नलिखित नियमके अनुसार अदरखके रसमें रोगीको देवे। नियम यह है कि अजीर्ण और वायुगोले-के रोगमें एक गोली, विषूचिका (हैजेमें) दो गोली, सर्प काटनेपर तीन गोली और सन्निपातमें चार गोली देनी चाहिए। यह गुटिका मृतप्राय मनुष्यको भी

जीवनदान देनेकी सामर्थ्य रखती है। इसी लिए लोग इसे संजीवनी गोली कहते हैं ॥ १९—२२ ॥

पीनसपर व्योषादि गुटिका

व्योषाम्लवेतसं चव्यं तालीसं चित्रकं तथा।
जीरकं तिंतिडीकं च प्रत्येकं कर्षभागिकम् ॥ २३ ॥
त्रिसुगंधं त्रिशाणं स्याद्गुडः स्यात्कर्षविंशतिः।
व्योषादिगुटिका सामपीनसश्वासकासजित् ॥ २४ ॥
रुचिस्वरकरा ख्याता प्रतिश्यायप्रणाशिनी।

सोंठ, काली मिर्च, पीपरि, अमलवेत, चव्य, तालीसपत्र, चित्रक, जीरा, इमलीकी छाल, इन औषधियोंको एक-एक तोलेके परिमाणसे ले और दालचीनी, इलायचीके दाने तथा पत्रज ये तीन औषधियें तीन-तीन शाण लेवे। फिर सबको कूट-पीसकर २०तोले गुड़ डालकर गोली बना ले। इसे लोग व्योषादि गुटिका कहते हैं। इसका सेवन करनेसे आमपीनस, श्वास और खाँसी, ये रोग शान्त हो जाते, रुचि बढ़ती, आवाज साफ हो जाती, और प्रतिश्याय (जुकाम) दूर हो जाता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

आमादिकोंपर गुडवटिकाचतुष्टय

आमेषु सगुडां शुण्ठीमजीर्णे गुडपिप्पलीम् ॥ २५ ॥
कृच्छ्रे जीरगुडं दद्यादर्शःसु च गुडाभयाम्।

आमरोगके उपस्थित होनेपर सोंठके चूर्णमें गुड़ मिला करके गोली बनाकर सेवन करे तो आँव शान्त हो जाय। यदि गुड़ और पीपरिका चूर्ण एकत्र करके गोली बनावे और उसका सेवन करे तो अजीर्ण रोग दूर हो जाय। गुड़ तथा जीरेको कूट-पीसकर गोली बनावे और सेवन करे तो मूत्रकृच्छ्र रोग दूर हो जाय। छोटी हड़के चूर्णमें गुड़ मिलाकर गोली बनावे और उसका सेवन करे तो बवासीर रोग दूर हो जाता है ॥ २५ ॥

बवासीरपर वृद्धदारक मोदक

वृद्धदारकभल्लातशुण्ठीचूर्णेन योजितः ॥ २६ ॥
मोदकः सगुडो हन्यात्षड्विधार्शकृतां रुजम्।

विधारा, भिलावा और सोंठ, इन औषधियोंको कूट-पीसकर चूर्ण करे और चूर्णसे दूना गुड़ मिलाकर गोली बनावे। इसके खानेसे छः प्रकारके बवासीर दूर होते हैं ॥ २६ ॥

बवासीरपर सूरणवटक

शुष्कसूरणचूर्णस्य भागान्द्वात्रिंशदाहरेत् ॥ २७ ॥
भागान्षोडश चित्रस्य शुण्ठ्या भागचतुष्टयम् ।
द्वौ भागौ मरिचस्यापि सर्वाण्येकत्र कारयेत् ॥ २८ ॥
गुडेन पिंडिकां कुर्यादर्शसां नाशिनीं पराम् ।

सूखे जमीकन्दको कूट-पीसकर बत्तीस तोले तैयार करे। फिर चीतेकी छाल सोलह तोले, सोंठ चार तोले, काली मिर्च दो तोले लेवे और सबको कूट-पीसकर चूर्ण करे और चूर्णके ही बराबर गुड़ मिलाकर गोली बना ले। इस गोलीका सेवन करनेसे छः प्रकारका बवासीर रोग दूर हो जाता है। इसे लोग सूरणवटक कहते हैं ॥ २७ ॥ २८ ॥

बवासीरपर बृहत्सूरणवटक

सूरणो वृद्धदारश्च भागैः षोडशभिः पृथक् ॥ २९ ॥
मुसलीचित्रकौ ज्ञेयावष्टभागमितौ पृथक् ।
शिवाबिभीतकौ धात्री विडंगं नागरं कणा ॥ ३० ॥
भल्लातः पिप्पलीमूलं तालीसं च पृथक्पृथक् ।
चतुर्भागप्रमाणानि त्वगेलामरिचं तदा ॥ ३१ ॥
द्विभागमात्राणि पृथक्ततस्त्वेकत्र चूर्णयेत् ।
द्विगुणेन गुडेनाथ वटकान्धारयेद् बुधः ॥ ३२ ॥
प्रबलाग्निकरा ह्येता तथार्शोनाशनाः पराः ।
ग्रहणीं वातकफजां श्वासं कासं क्षयामयम् ॥ ३३ ॥
प्लीहानं श्लीपदं शोफं हिक्कां मेहं भगन्दरम् ।
निहन्युः पलितं वृष्यास्तथा मेध्या रसायनाः ॥ ३४ ॥

जमीकन्द और विधारा सोलह-सोलह तोले, मुसली आठ तोले, चीतेकी छाल आठ तोले, हड़, बहेड़ा, आमला, वायविडंग, सोंठ, पीपल, भिलावे, पिपरामूल और तालीसपत्र, ये नौ औषधियें चार-चार तोलेके परिमाणसे लेवे। फिर दाल-

चीनी, इलायची और काली मिर्च ये औषधियें दो-दो तोले एकत्र करे और कूटपीसकर चूर्ण तैयार करे । तदनन्तर उससे दूना गुड़ मिलाकर गोली बना ले । इसे लोग बृहत्सूरण वटक कहते हैं । इसका सेवन करनेसे मन्द अग्नि प्रदीप्त होता और बवासीर, वात-कफज संग्रहणी, श्वास, कास, क्षय, उदरमें होनेवाला प्लीहा, श्लीपद, सूजन, हिचकी, प्रमेह, भगंदर तथा पलित रोग दूर हो जाते हैं । इसके सेवनसे स्त्रीप्रसंगकी विशेष इच्छा होती और वृद्धावस्था दूर हो जाती है ॥ २९—३४ ॥

कामलादिकोंपर मंडूरवटक

त्रिफलं त्र्यूषणं चव्यं पिप्पलीमूलचित्रकौ ।
दारुमाक्षिकधातुस्त्वग्दार्वी मुस्तं विडंगकम् ॥ ३५ ॥
प्रत्येकं कर्षमात्राणि सर्वद्विगुणितं तथा ।
मंडूरं चूर्णयेत्सर्वं गोमूत्रेऽष्टगुणे क्षिपेत् ॥ ३६ ॥
पक्त्वा च वटकान्कृत्वा दद्यात्तक्रानुपानतः ।
कामलापांडुमेहार्शः शोथकुष्ठकफायमान् ॥ ३७ ॥
ऊरुस्तंभमजीर्णं च प्लीहानं नाशयन्ति च ।

त्रिफला, त्र्यूषण (सोंठ, मिर्च, पीपल) चव्य पिपरामूल, चीतेकी छाल, देवदारु, सुवर्णमाक्षिककी भस्म, दालचीनी, दारुहल्दी, वायविडंग, इन सब औषधियोंको तोले-तोले भर लेकर चूर्ण करे और मंडूर डाल तथा औटाकर गाढ़ा कर ले । जब गोली बाँधने लायक हो जाय तब गोली बना ले । इसे लोग मंडूरवटक कहते हैं । इसका सेवन करनेसे कामला (जिससे नेत्र पीले पड़ जाते हैं) रोग दूर हो जाता है । इसके अतिरिक्त पाण्डुरोग, प्रमेह, बवासीर, सूजन, कोढ़, कफसे जायमान रोग, ऊरुस्तम्भवायु, अजीर्ण और प्लीहा रोग भी दूर होते हैं ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

धातुज्वरादिकोंपर पिप्पलीमोदक

क्षौद्राद्द्विगुणितं सर्पिर्घृताद्द्विगुणपिप्पली ॥ ३८ ॥
सिता द्विगुणिता तस्याः क्षीरं देयं चतुर्गुणम् ।
चातुर्जातं क्षौद्रतुल्यं पक्त्वा कुर्याच्च मोदकान् ॥ ३९ ॥

धातुस्थांश्च ज्वरान्सर्वान् श्वासं कासं च पांडुताम् ।
धातुक्षयं वह्निमांद्यं पिप्पलीमोदको जयेत् ॥ ४० ॥

जितनी शहद ले उसका दूना घी, घीका दूना पीपरि, पीपरिका दूना मिश्री और मिश्रीका चौगुना दूध ले। फिर शहदके बराबर दालचीनी, तमालपत्र, इलायचीके बीज तथा नागकेसरका चूर्ण ले । इसके बाद इन सबोंको पकाकर लड्डू बनावे । इसे पिप्पलीमोदक कहते हैं । इसका सेवन करनेसे धातुगत ज्वर श्वाँस, खाँसी, पाण्डुरोग, धातुक्षय तथा मंदाग्नि, ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥

प्रमेहादिकोंपर चन्द्रप्रभा गुटिका

चन्द्रप्रभा वचा मुस्तं भूनिम्बामृतदारुकम् ।
हरिद्रातिविषा दार्वी पिप्पलीमूलचित्रकौ ॥ ४१ ॥
धान्यकं त्रिफलं चव्यं विडङ्गं गजपिप्पली ।
व्योषं माक्षिकधातुश्च द्वौ क्षारौ लवणत्रयम् ॥ ४२ ॥
एतानि शाणमात्राणि प्रत्येकं कारयेद् बुधः ।
त्रिवृद्दन्ती पत्रकं च त्वगेला वंशरोचना ॥ ४३ ॥
प्रत्येकं कर्षमात्रं च कुर्यादेतानि बुद्धिमान् ।
द्विकर्षहतलोहं स्याच्चतुःकर्षा सिता भवेत् ॥४४॥
शिलाजत्वष्टकर्षं स्यादष्टौ कर्षास्तु गुग्गुलोः ।
एभिरेकत्र संक्षुण्णैः कर्तव्या गुटिका शुभा ॥ ४५ ॥
चन्द्रप्रभेति विख्याता सर्वरोगप्रणाशिनी ।
प्रमेहान्विंशतिं कृच्छ्रं मूत्राघातं तथाश्मरीम् ॥ ४६ ॥
विबंधानाहशूलानि मेहनग्रन्थिमर्बुदम् ।
अण्डवृद्धिं तथा पांडुं कामलां च हलीमकम् ॥ ४७ ॥
अन्त्रवृद्धिं कटीशूलं कासं श्वासं विचर्चिकाम् ।
कुष्ठान्यर्शांसि कण्डूं च प्लीहोदरभगन्दरे ॥ ४८ ॥
दन्तरोगं नेत्ररोगं स्त्रीणामार्तवजां रुजम् ।
पुंसां शुक्रगतान्दोषान्मन्दाग्निमरुचिं तथा ॥ ४९ ॥
वायुं पित्तं कफं हन्याद्बल्या वृष्या रसायनी ।
चन्द्रप्रभायां कर्षस्तु चतुःशाणो विधीयते ॥ ५० ॥

कचूर, वच, नागरमोथा, चिरायता, गिलोय, देवदारु, हल्दी, अतीस, दारुहल्दी, पिपरामूल, चीतेकी छाल, धनियाँ, त्रिफला, चव्य, वायविडंग, गजपीपल, सोंठ, कालीमिर्च, पीपरि, माक्षिक भस्म, सज्जीखार, जवाखार, सेंधा नमक, सोंचर नमक और विडनमक, ये औषधियाँ एक-एक शाण (चार-चार तोले) प्रमाणसे एकत्र करे। निसोथ, दन्ती, तमालपत्र, दालचीनी, इलायचीके दाने और वंशलोचन, ये औषधियें सोलह-सोलह मासे मिलाकर सबका चूर्ण करे। फिर लौहभस्म दो तोले, मिश्री चार तोले और शिलाजीत आठ तोले ले और ऊपरवाली औषधियोंके चूर्णमें डालकर अच्छी तरह मिला करके चार-चार शाणकी गोली बनावे। कुछ विद्वानोंकी राय है कि इस रसायनके विषयमें कहा हुआ कर्ष शब्द चार शाणका बोधक है। इस गुटिकाको लोग चन्द्रप्रभा कहते हैं। इसका सेवन करनेसे सब प्रकारके रोग जैसे–बीस तरहके प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, पथरी, मलका बँधना, पेटका फूलना, शूल, प्रमेहपिडका, अण्डवृद्धि, पाण्डुरोग, कामला, हलीमक, अन्त्रवृद्धि, कमरकी पीड़ा, श्वास, खाँसी, विचर्चिका, कोढ़, बवासीर, खुजली, प्लीहोदर, भगन्दर, दाँतके रोग, नेत्रके रोग, स्त्रियोंके रजोधर्मसे सम्बन्ध रखनेवाले रोग, पुरुषोंके वीर्यसम्बन्धी रोग, मन्दाग्नि, अरुचि, वातपित्त तथा कफका प्रकोप आदि रोग दूर हो जाते हैं। यह वटी बलदायिनी तथा स्त्रीगमनकी इच्छाको जाग्रत करनेवाली रसायन है॥ ४१—५०॥

गुल्मादि रोगोंपर कांकायन गुटिका

यवानी जीरकं धान्यं मरीचं गिरिकर्णिका ।
अजमोदोपकुञ्च्यौ च चतुःशाणा पृथक्पृथक् ॥ ५१ ॥
हिंगु षट्शाणिकं कार्यं क्षारौ लवणपञ्चकम् ।
त्रिवृच्चाष्टमितैः शाणैः प्रत्येकं कल्पयेत्सुधीः ॥ ५२ ॥
दन्ती शठी पौष्करं च विडङ्गं दाडिमं शिवा ।
चित्राम्लवेतसः शुण्ठी शाणैः षोडशभिः पृथक् ॥ ५३ ॥
बीजपूररसेनैषां गुटिकाः कारयेद्बुधः ।
घृतेन पयसा मद्यैरम्लैरुष्णोदकेन वा ॥ ५४ ॥
पिबेत्कांकयनप्रोक्तां गुटिकां गुल्मनाशिनीम् ।
मद्येन वातिकं गुल्मं गोक्षीरेण च पैत्तिकम् ॥ ५५ ॥

मूत्रेण कफगुल्मं च दशमूलैस्त्रिदोषजम् ।
उष्ट्रीदुग्धेन नारीणां रक्तगुल्मं निवारयेत् ॥ ५६ ॥
हृद्रोगं ग्रहणीं शूलं कृमीनर्शांसि नाशयेत् ।

अजवायन, जीरा, धनियाँ, काली मिर्च, गिरिकर्णिका (विष्णुक्रान्ता), अजमोदा और उपकुञ्ची अर्थात् कलौंजी, ये औषधियें चार शाणके प्रमाणसे लेवे । भूनी हींग छ शाण लेनी चाहिए । जवाखार, सज्जीखार, सेंधा नमक, विड नमक, संचर नमक, समुद्र नमक, बाँगर नमक तथा निसोथ ये औषधियाँ आठ-आठ शाण लेवे । दन्ती, कचूर, पोहकरमूल, वायविडंग, अनारकी छाल, जंगी हरड़, चीतेकी छाल, अमलबेंत और सोंठ, ये औषधियें वायु सोलह-सोलह शाण-के प्रमाणसे लेवे । फिर सबको कूट-पीसकर चूर्णको बिजौरेके रसमें खल करके गोली बनावे । इसे लोग कांकायनगुटिका कहते हैं । जिस मनुष्यको वायु गोलेका रोग हो गया हो, उसे घी, गौका दूध, खटाई, शराब अथवा गरम पानीकेसाथ यह गोली देवे तो रोग दूर हो जाय । यदि मदिराके साथ इस गोलीका सेवन करे तो वातज गोला, गौके दुधके साथ ले तो पित्तज गोला, गोमूत्रके साथ ले तो कफज गुल्म और दशमूल काढ़ेके साथ सेवन करे तो त्रिदोषज गुल्मरोग दूर हो जाता है । ऊँटनीके दूधमें इसका सेवन करे तो स्त्रियोंका रक्तगुल्म भी दूर हो जाता है । इनके अतिरिक्त यदि उचित अनुपानके साथ सेवन किया जाय तो हृदयरोग, संग्रहणी, शूल, कृमि तथा बवासीर रोग भी दूर हो जाते हैं॥५१–५६॥

वातादि रोगोंपर योगराज गूगुल

नागरं पिप्पली चव्यं पिप्पलीमूलचित्रकौ ॥ ५७ ॥
रेणुकेन्द्रजवा पाठा विडङ्गं गजपिप्पली ॥ ५८ ॥
कटुकातिविषा भार्ङ्गी वचा मूर्वेति भागतः ।
प्रत्येकं शाणिकानि स्युर्द्रव्याणीमानि विंशतिः ॥ ५९ ॥
द्रव्येभ्यः सकलेभ्यश्च त्रिफला द्विगुणा भवेत् ।
एभिश्चूर्णीकृतैः सर्वैः समो देयस्तु गुग्गुलुः ॥ ६० ॥
वंगं रौप्यं च नागं च लोहसारं तथाभ्रकम् ।
मंडूरं रससिन्दूरं प्रत्येकं पलसम्मितम् ॥ ६१ ॥

गुडपाकसमं कृत्वा इमं दद्याद्यथोचितम् ।
एकपिंडं ततः कृत्वा धारयेद्घृतभाजने ॥ ६२ ॥
गुटिकाः शाणमात्रास्तु कृत्वा ग्राह्या यथोचिताः ।
गुग्गुलुर्योगराजोऽयं त्रिदोषघ्नो रसायनम् ॥ ६३ ॥
मैथुनाहारपानानां त्यागो नैवात्र विद्यते ।
सर्वान्वातामयान्कुष्ठानर्शांसि ग्रहणीगदम् ॥ ६४ ॥
प्रमेहं वातरक्तं च नाभिशूलं भगन्दरम् ।
उदावर्तं क्षयं गुल्ममपस्मारमुरोग्रहम् ॥ ६५ ॥
मन्दाग्निश्वासकासाँश्च नाशयेदरुचिं तथा ।
रेतोदोषहरः पुंसां रजोदोषहरः स्त्रियाम् ॥ ६६ ॥
पुंसामपत्यजनको बंध्यानां गर्भदस्तथा ।
रास्नादिक्वाथसंयुक्तो विविधं हन्ति मारुतम् ॥ ६७ ॥
काकोल्यादिशृतात्पित्तं कफमारग्वधादिना ।
दार्वीशृतेन मेहांश्च गोमूत्रेणैव पाण्डुताम् ॥ ६८ ॥
मेदोवृद्धिं च मधुना कुष्ठे निम्बशृतेन वा ।
छिन्ना क्वाथेन वातास्रं शोथं शूलं कणाशृतात् ॥ ६९ ॥
पाटलाक्वाथसहितो विषं मूषकजं जयेत् ।
त्रिफलाक्वाथसहितो नेत्रार्तिं हन्ति दारुणाम् ॥ ७० ॥
पुनर्नवादेः क्वाथेन हन्यात्सर्वोदराण्यपि ।

सोंठ, पीपर, चव्य, पिपरामूल, चीतेकी छाल, भुनी हींग, अजमोदा, सरसों, जीरा, काला जीरा, रेणुका. इन्द्रजौ, पाढ़, वायविडंग, गजपीपल, कुटकी, अतीस, भारंगी, वच और मूर्वा, ये बीस औषधियें एक-एक शाणके प्रमाणसे ले। इन औषधियोंसे दूना त्रिफला ले। तत्पश्चात् सब औषधियोंको कूट-पीसकर चूर्ण करे और इस चूर्णके ही बराबर शुद्ध गूगुल लेकर खरलमें डाल करके खूब बारीक करे और गुड़के पाककी तरह पतला पाक करके उसमें सब चूर्ण मिला दे। तदनन्तर वंगभस्म, रौप्यभस्म, सीसाभस्म, लौहभस्म, अभ्रक, मंडूर और रस-सिन्दूर इन सातों चीजोंकी भस्म चार-चार तोले लेकर उस गूगुलमें मिला दे। इसके बाद समस्त औषधिका एक पिण्ड बनाकर उसमेंसे निकाल-निकालकर चार-

चार मासेकी एक-एक गोलियें बना ले और घीसे चिकने बरतनमें भरकर रख दे। इसे लोग योगराज गूगुल कहते हैं। इसका सेवन करनेसे त्रिदोष दूर होता और यह रसायन भी है। इसका सेवन करते समय स्त्रीप्रसंग और मद्यपान निषिद्ध नहीं है। बिना पथ्यके भी यह औषधि अपना गुण दिखाती ही है। इससे सब प्रकारके वातज रोग, कुष्ठ, क्षयरोग, गुल्मरोग, मृगी, उरोग्रह, मन्दाग्नि, खाँसी, श्वास और अरुचिरोग नष्ट हो जाते हैं। यह योगराज गूगुल खानेसे पुरुषोंके धातुसम्बन्धी विकार तथा स्त्रियोंके रजसम्बन्धी रोग दूर हो जाते हैं। इसका सेवन करनेवाला पुरुष नपुंसक होता हुआ भी पुत्र उत्पन्न करता और स्त्री बाँझ होती हुई भी इसका सेवन करनेसे पुत्रवती होती है। रास्नादि क्वाथके साथ इसका सेवन करनेसे विविध प्रकारके वातज रोग दूर होते। काकोल्यादि क्वाथके साथ सेवन करनेसे पित्तज रोग, आरग्वधादि क्वाथके साथ सेवन करनेसे कफज रोग, दारुहल्दीके काढ़ेमें सेवन करनेसे प्रमेह रोग, गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे पाण्डुरोग, शहदके साथ सेवन करनेसे स्थौल्यरोग (बादीसे शरीर मोटा होनेका रोग) नीमकी छालके काढ़ेके साथ सेवन करनेसे कुष्ठरोग, गिलोयके काढ़ेके साथ सेवन करनेसे वातरक्त रोग, पीपलके काढ़ेके साथ सेवन करनेसे शूल और सूजन, पाँढलके काढ़ेके साथ सेवन करनेसे चूहेका विष, त्रिफलाके काढ़ेके साथ सेवन करनेसे नेत्ररोग और पुनर्नवादि क्वाथके साथ इस योगराज गूगलका सेवन करनेसे सब प्रकारके उदररोग दूर हो जाते हैं ॥ ५७–७० ॥

वातरक्तादिकोंपर कैशोर गूगुल

त्रिफलायास्त्रयः प्रस्थाः प्रस्थैका चामृता भवेत् ॥ ७१ ॥
संकुट्य लौहपात्रेषु सार्धद्रोणाम्बुना पचेत् ।
जलमर्धशृतं ज्ञात्वा गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम् ॥ ७२ ॥
क्वाथे क्षिपेत्तु शुद्धं च गुग्गुलुं प्रस्थसम्मितम् ।
पुनः पचेदयःपात्रे दर्व्या संघट्टयेन्मुहुः ॥ ७३ ॥
सांद्रीभूतं च तं ज्ञात्वा गुडपाकसमाकृतिम् ।
चूर्णीकृत्य ततस्तत्र द्रव्याणीमानि निक्षिपेत् ॥ ७४ ॥
त्रिफलार्द्धपला ज्ञेया गुडूची पलिका मता ।
षडस्रं त्र्यूषणं प्रोक्तं विडङ्गानां पलार्धकम् ॥ ७५ ॥

दन्ती कर्षमिता कार्या त्रिवृत्कर्षमिता स्मृता।
ततः पिण्डीकृतं सर्वं घृतपात्रे विनिक्षिपेत् ॥ ७६ ॥
गुटिका शाणिका कार्या युंज्याद्दोषाद्यपेक्षया।
अनुपाने भिषग्दद्यात्कोष्णनीरं पयोऽथवा ॥ ७७ ॥
मञ्जिष्ठादिशृतं वापि युक्तियुक्तमतः परम्।
जयेत्सर्वाणि कुष्ठानि वातरक्तं त्रिदोषजम् ॥ ७८ ॥
सर्वव्रणांश्च गुल्मांश्च प्रमेहपिडिकास्तथा।
प्रमेहोदरमन्दाग्निकासश्वयथुपाण्डुजान् ॥ ७९ ॥
हन्ति सर्वामयान्नित्यमुपयुक्तो रसायनम्।
कैशोरकाभिधानोऽयं गुग्गुलुः कांतिकारकः ॥ ८० ॥
वासादिना नेत्रगदान्गुल्मादीन्वरुणादिना।
क्वाथेन खदिरस्यापि व्रणकुष्ठानि नाशयेत् ॥ ८१ ॥
अम्लं तीक्ष्णमजीर्णं च व्यवायं श्रममातपम्।
मद्यं रोषं त्यजेत्सम्यग्गुणार्थी पुरसेवकः ॥ ८२ ॥

त्रिफला और गिलोयको एक-एक प्रस्थके परिमाणसे लेवे। फिर इनको कुछ कूटकर डेढ़ द्रोण पानीके साथ लोहेकी कढ़ाईमें रखकर आधा पानी शेष रहने पर्यन्त औटावे। फिर उतारकर छान ले। थोड़ी देर बाद इसमें एक प्रस्थ शुद्ध गूगुल अच्छी तरह कूटकर डाल दे। तदनन्तर इस गुगूलयुक्त काढ़ेको लोहेकी कढ़ाईमें डालकर अग्निपर चढ़ावे। उसके पकते समय बराबर कलछीसे चलाना जाय। उसे तब तक आग पर चढ़ाये रहे जब तक कि वह गुड़के पाकके समान गाढ़ा न हो जाय। गाढ़ा हो जानेपर आगे लिखी औषधियोंका चूर्ण डाले। जैसे–हड़, बहेड़ा, आँवला तथा गिलोय, ये औषधियाँ आधे-आधे पल, सोंठ काली मिर्च और पीपरि, ये औषधियाँ दो-दो अक्ष, वायविडंग आधा पल, दन्ती एक कर्ष, निसोथ एक कर्ष, इन सब औषधियोंका चूर्ण करके उस गूगुलके पाकमें मिलाकर कूटे। जब अच्छी तरह मिल जाय, तब एक-एक शाणकी गोली बना ले और घीके चिकने बासनमें रख दे। इसे लोग कैशोर-गूगुल कहते हैं। गरम जल, दूध अथवा मंजिष्ठादि क्वाथके साथ इसके सेवन करनेका विधान है। यदि रोगीकी शक्ति और रोगका तारतम्य देखकर उचित

अनुपानके साथ इसका सेवन कराया जाय तो सब प्रकारके कुष्ठ, त्रिदोषसे उत्पन्न वातरक्त, सब तरहके व्रण, गुल्म, प्रमेह, उदररोग, मन्दाग्नि, खाँसी, श्वास और पाण्डुरोग दूर हो जाते हैं। वासकादि क्वाथके साथ सेवन करनेसे गुल्मादि रोग एवं खदिरादि क्वाथके साथ इस कैशोर गूगुलका सेवन करनेसे व्रण और कुष्ठरोग दूर हो जाते हैं। इसका सेवन करते समय खटाई, तीते पदार्थ, अधिक भोजन, मैथुन, अधिक परिश्रम, घाम, मद्यपान तथा क्रोध करना, इन बातोंको छोड़ देना चाहिए। जो रोगी अपथ्यका परित्याग करके पथ्यके साथ इस गूगुलका सेवन करता है, उसीको इसके सेवन करनेका लाभ होता है। नहीं तो लाभके स्थानमें हानि ही उठानी पड़ती है ॥ ७१-८२ ॥

भगन्दर आदिपर त्रिफला गूगुल

त्रिपलं त्रिफलाचूर्णं कृष्णाचूर्णं पलोन्मितम्।
गुग्गुलुः पञ्चपलिकः क्षोदयेत्सर्वमेकतः ॥ ८३ ॥
ततस्तु गुटिकां कृत्वा प्रयुंज्याद्वह्न्यपेक्षया।
भगन्दरं गुल्मशोथावर्शांसि च विनाशयेत् ॥ ८४ ॥

तीन पल त्रिफलाका चूर्ण तथा एक पल पीपरिका चूर्ण ले और उसमें पाँच शुद्ध किया हुआ गूगुल डालकर सबको बारीक कूट-पीसकर गोली बनावे। यदि रोगीके औदर्य अग्निका बलाबल देखकर इसे दिया जाय तो भगन्दर, गुल्म, शोथ और बवासीर, ये रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ८३ ॥ ८४ ॥

प्रमेहादि रोगोंपर गोक्षुरादि गूगुल

अष्टाविंशतिसंख्यानि पलान्यानीय गोक्षुरात्।
विपचेत्षड्गुणे नीरे क्वाथो ग्राह्योऽर्धशोषितः ॥ ८५ ॥
ततः पुनः पचेत्तत्र पुरसप्तपलं क्षिपेत्।
गुडपाकसमाकारं ज्ञात्वा तत्र विनिक्षिपेत् ॥ ८६ ॥
त्रिकटु त्रिफला मुस्तं चूर्णितं पलसप्तकम्।
ततः पिंडीकृतं चास्य गुटिकामुपयोजयेत् ॥ ८७ ॥
हन्यात्प्रमेहं कृच्छ्रं च प्रदरं मूत्रघातकम्।
वातास्रं वातरोगांश्च शुक्रदोषं तथाश्मरीम् ॥ ८८ ॥

गोखरू अट्ठाइस पल यानी एक सौ बारह तोले लेकर जौकूट करके छगुने पानीमें चढ़ा दे और आधा पानी शेष रहने पर्यन्त औटावे। औट जानेपर सात पल शुद्ध गूगुल अच्छी तरह कूट-पीसकर उस काढ़ेमें मिला दे । तदनन्तर गुड़के पाककी तरह उस काढ़ेका पाक करे। गाढ़ा हो जानेपर सोंठ, काली मिर्च, पीपरि, हरड़, बहेड़ा, आँवला और नागरमोथा एक-एक पलके परिमाणसे मिलावे। तत्पश्चात् सबका चूर्ण करके उस पाककी चाशनीमें मिलाकर उसकी गोली बनावे। इसे गोक्षुरादि गूगुल कहते हैं। इसका सेवन करनेसे प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, स्त्रियोंका प्रदररोग, वातज रोग, धातुज विकार तथा पथरी, ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं॥ ८५–८८॥

प्रमेहपर चन्द्रकला गुटिका

एला सकर्पूरसिता सधात्री जातीफलं गोक्षुरशाल्मलीत्वक्।
सूतेंद्रवंगायसभस्मसर्वमेतत्समानं परिभावयेच्च॥ ८६॥

गुडूचिका शाल्मलिका कषायैर्निष्कार्धमात्रा मधुना ततश्च।
वद्धा गुटी चन्द्रकलेति नाम्ना मेहेषु सर्वेषु च योजनीया॥ ६०॥

इलायचीके दाने, शुद्ध कपूर, मिश्री, जायफल, गोखरू, काँटेदार सेमरकी छाल, रससिन्दूर, वङ्गभस्म और लोहभस्म, ये औषधियें समान भागसे ले और गिलोय तथा सेमरके रसकी भावना देकर दो दो मासेकी गोलियाँ बना ले। यदि इसको शहदमें मिलाकर खाय तो सब प्रकारके प्रमेहरोग दूर हो जाते हैं॥ ८९॥ ९०॥

कुष्ठादिकोंपर त्रिफलादि मोदक

त्रिफलाऽष्टपला कार्या भल्लातानां चतुःपलम्।
बाकुची पंचपलिका विडंगानां चतुःपलम्॥ ६१॥
हतलोहं त्रिवृच्चैव गुग्गुलुश्च शिलाजतु।
एकैकं पलमात्रं स्यात्पलार्धं पौष्करं भवेत्॥ ६२॥
चित्रकस्य पलार्धं स्यात्त्रिशाणं मरिचं भवेत्।
नागरं पिप्पली मुस्ता त्वगेलापत्रकुंकुमम्॥ ६३॥
शाणोन्मितं स्यादेकैकं चूर्णयेत्सर्वमेकतः।
ततस्तत्प्रक्षिपेच्चूर्णं पक्वखण्डे च तत्समे॥ ६४॥

मोदकान्पलिकान्कृत्वा प्रयुंजीत यथोचितम् ।
हन्युः सर्वाणि कुष्ठानि त्रिदोषप्रभवामयान् ॥ ९५ ॥
भगन्दरप्लीहगुल्माक्षिजिह्वातालुगलामयान् ।
शिरोऽक्षिभ्रूगतान्रोगान्मन्यापृष्ठगतानपि ॥ ९६ ॥
प्राग्भोजनस्य देयं स्यादधःकायस्थिते गदे ।
भेषजं भक्तमध्ये च रोगे जठरसंस्थिते ॥ ९७ ॥
भोजनस्योपरि ग्राह्यमूर्ध्वजत्रुगदेषु च ।

आठ पल त्रिफला, चार पल भिलावा, पाँच पल बावची, चार पल वायविडंग और लोहभस्म, निसोथ, गूगुल, शीलाजीत, ये औषधियें एक-एक पलके प्रमाणसे लेनी चाहिये। पोहकरमूल आधा पल, चीतेकी छाल आधा पल, काली मिर्च दो शाण सोंठ, पीपल, नागरमोथा, दालचीनी, इलायची, तमालपत्र तथा नागकेसर, ये औषधियें एक-एक शाणके प्रमाणसे लेवे। इन सबको कूट-पीसकर चूर्ण करे और इसके बराबर मिश्री डालकर पाक करे। उसमें यह चूर्ण डालकर सबको अच्छी तरह मिला करके एक-एक पलका मोदक बनावे। इसका सेवन करनेसे सब तरहके कुष्ठरोग, त्रिदोषसे उत्पन्न भगंदर, नेत्रोंके रोग, प्लीहा, गुल्मरोग, जीभ, तालु, गला, शिर, नेत्र, भौंके रोग, गर्दन तथा पीठके रोग दूर हो जाते हैं। कमरसे लेकर यदि निचले हिस्सोंमें कोई रोग हो तो प्रातःकालके समय इसका सेवन करे। पेटमें कोई रोग हो तो भोजनके समय ग्रासके साथ इसका सेवन करे और छातीसे लेकर ऊपर माथे पर्यन्त यदि कोई रोग हो तो भोजनके बाद इस त्रिफलादि मोदकका सेवन करना चाहिए॥ ९१–९७॥

गंडमालादिकोंपर कांचनार गूगुल

कांचनारत्वचो ग्राह्यं पलानां दशकं बुधैः ॥ ९८ ॥
त्रिफला षट्पला कार्या त्रिकटु स्यात्पलत्रयम् ।
पलैकं वरुणं कुर्यादेलात्वक्पत्रकं तथा ॥ ९९ ॥
एकैकं कर्षमात्रं स्यात्सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत् ।
यावच्चूर्णमिदं सर्वं तावन्मात्रस्तु गुग्गुलः ॥ १०० ॥
संकुट्य सर्वमेकत्र पिंडं कृत्वा च धारयेत् ।
गटिकाः शाणिकाः कार्याः प्रातर्ग्राह्या यथोचिताः ॥ १०१ ॥

गण्डमालां जयत्युग्रामपचीमर्बुदानि च।
ग्रन्थीन्व्रणांश्च गुल्मांश्च कुष्ठानि च भगन्दरम् ॥ १०२ ॥
प्रदेयश्चानुपानार्थं क्काथो मुण्डतिकाभवः।
क्काथः खदिरसारस्य पथ्याक्काथोष्णकं जलम् ॥ १०३ ॥

कचनारकी छाल दस पल, आँवला, हड़, बहेड़ा, ये तीन औषधियें दो दो पलके प्रमाणसे एकत्रित करे। सोंठ, मिर्च, पीपल, ये तीन औषधियाँ एक-एक पलके प्रमाणसे लेवे। वरना एक पल तथा इलायची, दालचीनी, तमालपत्र, ये तीन औषधियें एक-एक कर्ष ले। फिर सबको कूट-पीसकर चूर्ण करे। इस चूर्णके बराबर शुद्ध गूगुल पीसकर उस चूर्णमें मिला देवे। तत्पश्चात् उसे कूटकर एक गोला बनावे और इसके बाद एक-एक शाणकी गोलियें बना ले। यदि प्रातःकालके समय मुण्डी, खैरसार, हरड़के काढ़े अथवा गरम जलके साथ एक गोलीका सेवन करे तो दारुण गण्डमाला, अपची, अर्बुद, गाँठ, व्रण, गुल्म, कोढ़ तथा भगन्दर ये सब रोग दूर हो जाते हैं ॥ ९८—१०३ ॥

धातुपुष्टिपर माषादि मोदक

निस्तुषं माषचूर्णं स्यात्तथा गोधूमसंभवम्।
निस्तुषं यवचूर्णं च शालि तंडुलजं तथा ॥ १०४ ॥
सूक्ष्मं च पिप्पलीचूर्णं पलिकान्युपकल्पयेत्।
एतदेकीकृतं सर्वं भर्जयेद्गोघृतेन च ॥ १०५ ॥
अर्धमात्रेण सर्वेभ्यस्ततः खण्डं समं क्षिपेत्।
जलं च द्विगुणं दत्त्वा पाचयेच्च शनैः शनैः ॥ १०६ ॥
ततः पक्वं समुद्धृत्य वृत्तान्कुर्वीत मोदकान्।
भुक्त्वा सायं पलैकं च पिबेत्क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ १०७ ॥
वर्जनीयं विशेषेण क्षाराम्लौ द्वौ रसावपि।
कृत्वैवं रमयेन्नारीर्वह्वीर्न क्षीयते नरः ॥ १०८ ॥

बिना छालकी उड़दका आँटा, गेहूँका आटा, बिना छिलकेके जौका आँटा, चावलका आँटा और पीपरिका चूर्ण, ये सब वस्तुयें एक-एक पलके प्रमाणसे एकत्रित करके इनका आधा शुद्ध गौका घी कड़ाहीमें डालकर धीमी आँचसे भूने। फिर सबके बराबर खाँड़ और उससे दूना जल डालकर चासनी तैयार करे

इसके बाद उसमें ऊपर बतलाये हुए आँटे डालकर चार-चार तोलेके लड्डू बाँध ले। रात्रिके समय इसे खाकर पावभर दूध पी लिया करे तो बारबार भोग करनेपर भी पुरुषका बल क्षीण नहीं होता ॥ १०४–१०८ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने
वटककल्पना नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अथ अष्टमोऽध्यायः ।

अवलेहोंकी कल्पना

क्वाथादीनां पुनः पाकाद्घनत्वं सा रसक्रिया ।
सोऽवलेहश्च लेहः स्यात्तन्मात्रा स्यात्पलोन्मिता ॥ १ ॥
सिता चतुर्गुणा कार्या चूर्णाच्च द्विगुणो गुडः ।
द्रवं चतुर्गुणं दद्यादिति सर्वत्र निश्चयः ॥ २ ॥
सुपक्वे तन्तुमत्त्वं स्यादवलेहोऽप्सु मज्जति ।
खरत्वं पीडिते मुद्रागंधवर्णरसोद्भवः ॥ ३ ॥
दुग्धमिक्षुरसं यूषं पंचमूलकषायजम् ।
वासाक्वाथं यथायोग्यमनुपानं प्रशस्यते ॥ ४ ॥

पीछे बतलाये काढ़े आदिको फिरसे पकाकर गाढ़ा करनेकी जो रसक्रिया की जाती है, उसे लोग अवलेह अथवा लेह कहते हैं। उसकी मात्रा दो पल अर्थात् चार तोलेकी होती है। चीनी डालनी हो तो चूर्णसे चौगुनी और गुड़ डालना हो तो दुगुना डालना चाहिये। दूध, गोमूत्र तथा पानी आदि तरल पदार्थ डालने हों तो चूर्णसे चौगुना डालना चाहिये। यह नियम सब अवलेहोंके लिए है। जो अवलेह अच्छी तरह पक जाता, उसमें तार बँध जाते हैं और पानीमें डालनेसे वह डूब जाता है। परिपक्व अवलेह अँगुलियोंसे दबानेपर दबता नहीं, वह कड़ा तथा चिकना होता और उसमें अपूर्व गंध वर्ण और स्वाद होता है। यदि ये लक्षण विद्यमान हों तो अवलेहको परिपक्व समझे अन्यथा कच्चा। दूध, ऊँखका रस, पञ्चमूल काढ़ेका यूष और अडूसेका काढ़ा, ये अवलेहके अनुपान

हैं । वैद्यको चाहिए कि रोगीकी योग्यता विचार करके इनमेंसे जो अनुपान ठीक समझे, रोगीको दे ॥ १-४ ॥

हिचकी श्वास तथा कासके ऊपर कंटकारी अवलेह

कंटकारीतुलां नीरद्रोणे पक्त्वा कषायकम् ।
पादशेषं गृहीत्वा च तस्मिंश्चूर्णानि दापयेत् ॥ ५ ॥
पृथक्पलानि चैतानि गुडूचीचव्यचित्रकाः ।
मुस्तं कर्कटशृंगी च त्र्यूषणं धन्वयासकः ॥ ६ ॥
भार्ङ्गी रास्ना शटी चैव शर्करा पलविंशतिः ।
प्रत्येकं च पलान्यष्टौ प्रदद्याद्घृततैलयोः ॥ ७ ॥
पक्त्वा लेहत्वमानीय शीते मधुपलाष्टकम् ।
चतुःपलं तु गोक्षीर्याः पिप्पलीनां चतुष्पलम् ॥ ८ ॥
क्षिप्त्वा निदध्यात्सुदृढे मृन्मये भाजने शुभे ।
लेहोऽयं हन्ति हिक्कार्तिश्वासकासानशेषतः ॥ ९ ॥

चार सौ तोले भटकटैया लेवे । उसे थोड़ा कूटकर उसमें एक द्रोण अर्थात् दस सौ चौबीस तोले पानी डालकर चौथाई जल शेष रहने पर्यन्त औटावे । पक जाने-पर उसे छान ले । इसके बाद उसमें इन औषधियोंका चूर्ण मिलावे । जैसे— गिलोय, चूक, चीता, नागरमोथा, काकड़ासिंगी, सोंठ, मिर्च, पीपल, जवासा, भारंगी, रास्ना, कचूर, ये बारह औषधियें चार-चार तोले लेकर इनका चूर्ण करे और उस काढ़ेमें इसे भी मिलाकर खाँड अस्सी तोले, घृत तथा तेल बत्तीस तोले डाले । ये सब औषधियाँ डाल करके औटावे और अवलेह करे । फिर उसे शीतल करके उसमें शहद बत्तीस तोले, वंशलोचन और पीपरिका चूर्ण सोलह तोले मिलाकर मजबूत मिट्टीके बर्तनमें रख ले नित्य इस अवलेहका सेवन करनेसे हिचकीकी पीड़ा, श्वास और कास, ये रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ५-९ ॥

क्षयादिकोंपर च्यवनप्राशावलेह

पाटलारणिकाश्मर्यबिल्वारलुकगोक्षुराः ।
पर्ण्यौ बृहत्यः पिप्पल्यः शृंगीद्राक्षामृताभयाः ॥ १० ॥
बला भूम्यामली वासा ऋद्धिर्जीवंतिका शटी ।
जीवकर्षभकौ मुस्तं पौष्करं काकनासिका ॥ ११ ॥

मुद्गपर्णी माषपर्णी विदारी च पुनर्नवा ।
काकोल्यौ कमलं मेदे सूक्ष्मैलागुरुचन्दनम् ॥ १२ ॥
एकैकं पलसम्मानं स्थूलचूर्णितमौषधम् ।
एकीकृत्य बृहत्पात्रे पंचामलशतानि च ॥ १३ ॥
पचेद्द्रोणजले क्षिप्त्वा ग्राह्यमष्टांशशेषितम् ।
ततस्तु तान्यामलानि निष्कुलीकृत्य वाससा ॥ १४ ॥
दृढहस्तेन संमर्द्य क्षिप्त्वा तत्र ततो घृतम् ।
पलसप्तमितं तानि किंचिद् भृष्ट्वाल्पवह्निना ॥ १५ ॥
ततस्तत्र क्षिपेत्क्वाथं खंडं चार्धतुलोन्मितम् ।
लेहवत्साधयित्वा च चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ १६ ॥
पिप्पली द्विपला ज्ञेया तुगाक्षीरी चतुष्पला ।
प्रत्येकं च त्रिशाणाः स्युस्त्वगेलापत्रकेशराः ॥ १७ ॥
ततस्त्वेकीकृते तस्मिन्क्षिपेत्क्षौद्रं च षट्पलम् ।
इत्येतच्च्यवनप्रोक्तं च्यवनप्राशसंज्ञकम् ॥ १८ ॥
लेहं वह्निबलं दृष्ट्वा खादेत्क्षीणो रसायनम् ।
बालवृद्धक्षतक्षीणा नारी क्षीणाश्च शोषिणः ॥ १९ ॥
हृद्रोगिणः स्वरक्षीणा ये नरास्तेषु युज्यते ।
कासं श्वासं पिपासां च वातास्रमुरसो ग्रहम् ॥ २० ॥
वातं पित्तं शुक्रदोषं मूत्रदोषं च नाशयेत् ।
मेधां स्मृतिं स्त्रीषु हर्षं कान्तिं वर्णं प्रसन्नताम् ॥ २१ ॥
अस्य प्रयोगादाप्नोति नरोऽजीर्णविवर्जितः ।

पाटला (सिरस), अरनी, खंभारी, वेलकी छाल, स्योनाक, पाठा, गोखरू, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, दोनों कटेरी, पीपरि, काकड़ासिंगी, दाख, गिलोय, हरड़, बरियारा, भूमिआँवला, अडूसा, ऋद्धि, जीवन्तिका, कचूर, जीवक, ऋषभक, नागरमोथा, पोहकरमूल, कौआठोंटी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, विदारीकन्द, पुनर्नवा, काकोली, क्षीरकाकोली, कमल, मेदा, महामेदा, छोटी लायची, अगर और चन्दन, इन औषधियोंको चार-चार तोलेके परिमाणसे एकत्रित करके कूटे । इसके बाद बड़े-बड़े पाँच सौ आँवले लेकर दस सौ चौबीस तोले पानीमें डालकर पकावे । पानी जलते

जलते जब अष्टमांस शेष रह जाय तब आँवलोंको निकाल ले। इसके बाद उन निकाले हुए आँवलोंको किसी कलईदार बर्तनके मुखपर बँधे हुए कपड़ेपर रखकर जोर जोरसे मले। तत्पश्चात् उस आँवलेके गूदेमें अट्ठाईस तोले घी डालकर धीमी आँचपर भूने। उसके भुन जानेपर वह क्वाथ यानी अष्टमांश अवशिष्ट जल तथा अर्धतुला खाँड़ डालकर आगपर चढ़ा दे। और जब तक वह गाढ़ा न हो जाय, तब तक पकावे। जब वह लेईकी तरह हो जाय तब उसमें ये औषधियाँ डालनी चाहिएँ। जैसे—पीपरि आठ तोले, वंशलोचन सोलह तोले, दालचीनी, इलायची तथा तेजपात ये औषधियें नौ-नौ मासे परिमाणसे ले और कूट-पीसकर उसमें डाले। तदनन्तर उस सिद्ध अवलेहमें चौबीस तोले शहद मिलावे। इसे लोग च्यवनप्राश अवलेह कहते हैं। इसे च्यवनऋषिने स्वयं कहा है। लोगोंको उचित है कि अग्निका बलाबल देखकर इस रसायनरूप अवलेहका सेवन करें। यह अवलेह बालक, वृद्ध, क्षतक्षीण, नपुंसक, शोषरोगी, हृद्रोगी तथा स्वरक्षीण रोग-वालोंके लिए विशेष हितकारी है। इसका सेवन करनेसे श्वास, कास, पिपासा, वातरक्त, उरोग्रह, वातपित्त, वीर्यके दोष तथा मूत्रके दोष, ये रोग शान्त हो जाते हैं। इसका सेवन करनेवालेकी बुद्धि और स्मरणशक्ति तीव्र होती, स्त्रीप्रसंगकी इच्छा जाग्रत होती, शरीरकी कान्ति बढ़ती, वर्ण सुन्दर होता, अन्तःकरण प्रसन्न रहता और अजीर्ण रोग दूर भाग जाता है॥ १०—२१॥

रक्तपित्तादिकोंपर कूष्माण्डावलेह

निष्कुलीकृतकूष्माण्डखण्डान्पलशतं पचेत्॥ २२॥
निक्षिप्य द्वितुलं नीरमर्धशिष्टं च गृह्यते।
तानि कूष्माण्डखण्डानि पीडयेद् दृढवाससा॥ २३॥
आतपे शोषयेत्किंचिच्छूलाग्रैर्बहुशो व्यधेत्।
क्षिप्त्वा ताम्रकटाहे च दद्यादष्टपलं घृतम्॥ २४॥
तेन किंचिद्भर्जयित्वा पूर्वोक्तं च जलं क्षिपेत्।
खंडं पलशतं दत्त्वा सर्वमेकत्र पाचयेत्॥ २५॥
सुपक्वे पिप्पलीशुण्ठीजीराणां द्विपलं पृथक्।
पृथक्पलार्धं धान्याकं पत्रैलामरिचत्वचम्॥ २६॥
चूर्णीकृत्य क्षिपेत्तत्र घृतार्धं क्षौद्रमावपेत्।

खादेदग्निबलं दृष्ट्वा रक्तपित्ती क्षयी ज्वरी ॥ २७ ॥
शोषतृष्णाभ्रमश्छर्दिकासश्वासक्षतातुरः ।
कूष्मांडकावलेहोऽयं बालवृद्धेषु युज्यते ॥ २८ ॥
उरःसंधानकृद्वृष्यो बृंहणो बलकृन्मतः ।

अच्छी तरह पके भये सफेद कुम्हड़ेके ऊपरका छिलका दूर करके भीतरके बीजोंको निकालकर छोटे-छोटे टुकड़े करके सौ पल ले। उसमें दो तुला जल डालकर आगपर चढ़ा दे। जब आधा जल बाकी बच रहे तब उतार ले और उस जलको कपड़ेसे छानकर अलग रख दे। इसके बाद उन पेठेके टुकड़ोंको किसी कपड़ेमें रखकर उनका जल निचोड़ ले। तदनन्तर उस गूदेमें थोड़ा-सा बाफ देकर बाँसके बने सूजोंसे खूब छेदे। पीछे एक ताँबेके पात्रमें आठ पल घी डालकर आगपर चढ़ावे और उसमें उन पेठोंको भूने। भुन जानेपर इन पेठोंको पहले निचुड़े भये पेठेके जलमें डाल दे और उसमें सौ पल मिश्री डालकर पकावे। पक जानेके बाद ये औषधियाँ उसमें डाले। पीपरि सोंठ जीरा ये तीनों दो दो पल, धनियाँ, तेजपात, इलायचीके दाने, काली मिर्च और दालचीनी ये औषधियें आधा-आधा पल लेवे। फिर सबको कूट-पीसकर उस पाकमें मिला दे। ऊपरसे चार पल शहद डाल दे। इसको कूष्माण्डावलेह संज्ञा है। रोगीको चाहिए कि अपना बलाबल देखकर इस अवलेहका सेवन करे। इसका सेवन करनेसे रक्तपित्त, क्षय, ज्वर, शोष, तृष्णा, नेत्रोंके सामने अँधेरा छा जाना, वमन, खाँसी, श्वास और उरःक्षय ये रोग दूर हो जाते हैं। यह अवलेह विशेषकर बालक और वृद्धोंका हितकारी है। यह छातीमें आनेवाले अन्नरसका साधक है। इससे स्त्रीप्रसंगकी लालसा बढ़ती, धातुकी वृद्धि होती और शारीरिक बल बढ़ता है ॥ २२-२८ ॥

बवासीरपर कूष्माण्डखंड लेह

युक्त्या कूष्माण्डखण्डस्य सूरणं विपचेत्सुधीः ॥ २६ ॥
अर्शसां मूढवातानां मन्दाग्नीनां च युज्यते ।

उपर्युक्त कूष्माण्ड अवलेहकी ही विधिसे सूरनका भी अवलेह बनावे। केवल पेठेके स्थानपर सूरन लेवे। इसका सेवन करनेसे बवासीर, मूढ़वात तथा मन्दाग्नि रोग दूर हो जाता है ॥ २९ ॥

क्षयादिकोंपर अगस्त्यहरीतकी अवलेह

हरीतकीशतं भद्रं यवानामाढकं तथा ॥ ३० ॥
पलानि दशमूलस्य विंशतिश्च नियोजयेत् ।
चित्रकः पिप्पलीमूलमपामार्गः शटी तथा ॥ ३१ ॥
कपिकच्छूः शंखपुष्पी भार्ङ्गी च गजपिप्पली ।
बला पुष्करमूलं च पृथग्द्विपलमात्रया ॥ ३२ ॥
पचेत्पंचाढके नीरे यवैः स्विन्नैः शृतं नयेत् ।
तच्चाभयाशतं दद्यात्क्वाथे तस्मिन्विचक्षणः ॥ ३३ ॥
सर्पिस्तैलाष्टपलकं क्षिपेद्गुडतुलां तथा ।
पक्त्वा लेहत्वमानीय सिद्धशीते पृथक्पृथक् ॥ ३४ ॥
क्षौद्रं च पिप्पलीचूर्णं दद्यात्कुडवमात्रया ।
हरीतकीद्वयं खादेत्तेन लेहेन नित्यशः ॥ ३५ ॥
क्षयं कासं ज्वरं श्वासं हिक्कार्शोऽरुचिपीनसान् ।
ग्रहणीं नाशयत्येष बलीपलितनाशनः ॥ ३६ ॥
बलवर्णकरः पुंसामवलेहो रसायनम् ।
विदितोऽगस्त्यमुनिना सर्वरोगप्रणाशनः ॥ ३७ ॥

एक आढ़क जौको खूब अच्छी तरह कूटकर चौगुने जलके साथ औटावे । पकते-पकते जब चतुर्थांश जल शेष रहे तो उतारकर छान ले । उन जवोंको अलग फेंक दे । इसके बाद चित्रक, पिपरामूल, ओंगा, कचूर, कौंचके बीज, शंखपुष्पी, भारंगी, गजपीपल, खरेंटीकी जड़ तथा पोहकरमूल, इन औषधियोंको दो दो पलके प्रमाणसे लेवे । फिर इन सबको जौकूट करके इसमें पाँच आढक जल मिलाकर आगपर चढ़ा दे । तत्पश्चात् सौ बड़ी-बड़ी हड़ डाले । इसके बाद घी और तिलका तेल आठ-आठ पलके प्रमाणसे ले करके एक तुला गुड़के साथ डालकर पकावे । जब पककर गाढ़ा हो जाय तब उतार ले । शीतल हो जानेपर उसमें एक–एक कुडव (पाव-पाव भर) पीपरिका चूर्ण और शहद मिला दे । इसे लोग अगस्त्यहरीतकी कहते हैं । इसे अगस्त्यजी ने स्वयं कहा है । यदि अवलेहके साथ-साथ दो हरीतकी रोज सेवन किया जाय तो खाँसी, ज्वर, हिचकी, बवासीर, अरुचि, पीनस रोग एवं संग्रहणी ये रोग दूर हो जाते

हैं। इसके खानेसे शरीरकी चमडीमें पड़ी हुई सिकुड़न दूर हो जाती, सफेद बाल काले हो जाते और बल तथा वर्णकी वृद्धि होती है। यह अवलेह भी रसायन है। इससे सब रोग दूर हो जाते हैं ॥ ३०-३७ ॥

अर्शादिकोंपर कुटजावलेह

कुटजत्वक्तुलां द्रोणे जलस्य विपचेत्सुधीः।
कषायं पादशेषं च गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम् ॥ ३८ ॥
त्रिंशत्पलं गुडस्यात्र दत्त्वा च विपचेत्पुनः।
सांद्रत्वमागतं ज्ञात्वा चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ ३९ ॥
रसांजनं मोचरसं त्रिकटु त्रिफलां तथा।
लज्जालुं चित्रकं पाठां बिल्वमिंद्रयवं वचाम् ॥ ४० ॥
भल्लातकं प्रतिविषां विडंगानि च बालकम्।
प्रत्येकं पलसम्मानं घृतस्य कुडवं तथा ॥ ४१ ॥
सिद्धशीते ततो दद्यान्मधुनः कुडवं तथा।
जयेदेषोऽवलेहस्तु सर्वाण्यर्शांसि वेगतः ॥ ४२ ॥
दुर्नामप्रभवान्रोगानतीसारमरोचकम्।
ग्रहणीं पाण्डुरोगं च रक्तपित्तं च कामलाम् ॥ ४३ ॥
अम्लपित्तं तथा शोषं कार्श्यं चैव प्रवाहिकाम्।
अनुपाने प्रयोक्तव्यमाजं तक्रं पयो दधि ॥ ४४ ॥
घृतं जलं वा जीर्णे च पथ्यभोजी भवेन्नरः।

कोरैयाकी छाल ४०० सौ तोले लेकर जौकूट करके एक द्रोण जलमें डालकर काढ़ा तैयार करे। जब एक चौथाई जल शेष रहे तब उतारे और कपड़ेसे छान ले। तदनन्तर इसमें तीस पल गुड़ डालकर फिर आगपर चढ़ा दे। जब वह गाढ़ा हो चले तो उसमें ये औषधियें डाले-रसौत, मोचरस, सोंठ, मिर्च, पीपरि, हड़, बहेड़ा, आँवला, लजालू, चीतेकी छाल, पाढ़, कच्चा बेल, इन्द्रजौ, वच, मेलावा, अतीस, वायविडंग, नेत्रबाला, ये अठारह औषधियाँ एक-एक पल लेवे। फिर सबका चूर्ण बनाकर पाकमें मिलावे। इसके बाद उसमें घी एक कुडव (पावभर) डाले। जब वह शीतल हो जाय तब एक कुडव शहद भी डाल दे। बकरीके दूध, छाछ, दही या घीके साथ इसका सेवन

करनेका विधान है। इस अवलेहके पच जानेपर बढ़िया भोजन करना चाहिये। ऐसा करनेसे सब प्रकारके बवासीर तथा उसके कारण होनेवाला भगंदर आदि रोग, अतिसार, अरुचि, संग्रहणी, पांडुरोग, रक्तपित्त, कामला, अम्लपित्त, शोथ तथा प्रवाहिका ये सब रोग दूर हो जाते हैं ॥ ३८-४४ ॥

अतिसार आदि रोगोंपर दूसरा कुटजावलेह ।

कुटजत्वक्तुलामार्द्रां द्रोणनीरे विपाचयेत् ॥ ४५ ॥
पादशेषं शृतं नीत्वा चूर्णान्येतानि दापयेत् ।
लज्जालुर्धातकी बिल्वं पाठा मोचरसस्तथा ॥ ४६ ॥
मुस्तं प्रतिविषा चैव प्रत्येकं स्यात्पलं पलम् ।
ततस्तु विपचेद्भूयो यावद्दर्वीप्रलेपनम् ॥ ४७ ॥
जलेन च्छागदुग्धेन पीतो मण्डेन वा जयेत् ।
सर्वातिसारान्घोरांस्तु नानावर्णान्सवेदनान् ॥ ४८ ॥
असृग्दरं समस्तं च सर्वार्शांसि प्रवाहिकाम् ॥ ४९ ॥

एक तुला अर्थात् ४०० तोले कुडाकी छालको जौकुटकर एक द्रोण जलके साथ आगपर चढ़ाकर काढ़ा करे। जब एक चौथाई जल शेष रहे तब उतारकर उस जलको कपड़ेसे छान ले और उसमें आगे लिखी औषधियें डाले। जैसे-लजालू, धायके फूल, कोमल बेलगिरी, पाढ़, मोचरस, नागरमोथा और अतीस एक-एक पल इन सब औषधियोंका चूर्ण तैयारकर उस काढ़ेमें मिला दे। तदनन्तर उस काढ़ेको लोहेकी कड़ाहीमें डालकर फिर औटावे। जब वह इतना गाढ़ा हो जाय कि कलछीमें लिपटने लगे तो उतार ले। जल, बकरीका दूध अथवा मांड़के साथ इसके सेवन करनेका विधान है। इसके खानेसे कठिन पीड़ायुक्त या नीले-पीले रंगका भयंकर अतीसार भी दूर हो जाता है। इनके अतिरिक्त स्त्रियोंके समस्त रोग, सब प्रकारके बवासीर तथा प्रवाहिका रोग भी नष्ट हो जाते हैं ॥ ४५-४९ ॥

इति श्रीदामोदरसूनुशार्ङ्गधरेण विरचितायां शार्ङ्गधरसंहितायां चिकित्सास्थाने अवलेहकल्पना नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

———

अथ नवमोऽध्यायः।

घृततैल आदि स्नेहोंका साधनप्रकार

कल्काच्चतुर्गुणीकृत्य घृतं वा तैलमेव वा।
चतुर्गुणे द्रवे साध्यं तस्य मात्रा पलोन्मिता ॥ १ ॥
निक्षिप्य क्वाथयेत्तोयं क्वाथ्यद्रव्याच्चतुर्गुणम्।
पादशिष्टं गृहीत्वा च स्नेहं तेनैव साधयेत् ॥ २ ॥
चतुर्गुणं मृदुद्रव्ये कठिनेऽष्टगुणं जलम्।
तथा च मध्यमे द्रव्ये दद्यादष्टगुणं पयः ॥ ३ ॥
अत्यन्तकठिने द्रव्ये नीरं षोडशिकं मतम्।
कर्षादितः पलं यावत्क्षिपेत्षोडशिकं जलम् ॥ ४ ॥
तदूर्ध्वं कुडवं यावत्क्षिपेदष्टगुणं पयः।
प्रस्थादितः क्षिपेन्नीरं खारी यावच्चतुर्गुणम् ॥ ५ ॥
अम्बुक्वाथरसैर्यत्र पृथक्स्नेहस्य साधनम्।
कल्कस्यांशं तत्र दद्याच्चतुर्थं षष्ठमष्टमम् ॥ ६ ॥
दुग्धे दधिरसे तक्रे कल्को देयोऽष्टमांशकः।
कल्कस्य सम्यक्पाकार्थं तोयमत्र चतुर्गुणम् ॥ ७ ॥
द्रव्याणि यत्र स्नेहेषु पञ्चादीनि भवन्ति हि।
तत्र स्नेहसमान्याहुर्यथापूर्वं चतुर्गुणम् ॥ ८ ॥
द्रव्येण केवलेनैव स्नेहपाको भवेद्यदि।
तत्राम्बुपिष्टः कल्कः स्याज्जलं चात्र चतुर्गुणम् ॥ ९ ॥
क्वाथेन केवलेनैव पाको यत्रेरितः क्वचित्।
क्वाथ्यद्रव्यस्य कल्कोऽपि तत्र स्नेहे प्रयुज्यते ॥ १० ॥
कल्कहीनस्तु यः स्नेहः स साध्यः केवले द्रवे।
पुष्पकल्कस्तु यः स्नेहस्तत्र तोयं चतुर्गुणम् ॥ ११ ॥
स्नेहे स्नेहाष्टमांशश्च पुष्पकल्कः प्रयुज्यते।
वर्तिवत्स्नेहकल्कः स्याद्यदांगुल्या विमर्दितः ॥ १२ ॥
शब्दहीनाग्निनिक्षिप्तः स्नेहः सिद्धो भवेत्तदा।
यदा फेनोद्भवस्तैलफेनशांतिश्च सर्पिषि ॥ १३ ॥

गन्धवर्णरसोत्पत्तिः स्नेहसिद्धिस्तदा भवेत् ।
स्नेहपाकस्त्रिधा प्रोक्तो मृदुर्मध्यः खरस्तथा ॥ १४ ॥
ईषत्सरसकल्कस्तु स्नेहपाको मृदुर्भवेत् ।
मध्यपाकस्य सिद्धिश्च कल्के नीरे सकोमले ॥ १५ ॥
ईषत्कठिनकल्कश्च स्नेहपाको भवेत्खरः ।
तदूर्ध्वं दग्धपाकः स्याद्दाहकृन्निष्प्रयोजनः ॥ १६ ॥
आमपाकश्च निर्वीर्यो वह्निमांद्यकरो गुरुः ।
नस्यार्थे स्यान्मृदुः पाको मध्यमः सर्वकर्मसु ॥ १७ ॥
अभ्यङ्गार्थे खरः प्रोक्तो युंज्यादेवं यथोचितम् ।
घृततैलगुडादींश्च साधयेन्नैकवासरे ॥ १८ ॥
प्रकुर्वन्त्युषिता ह्येते विशेषाद् गुणसञ्चयम् ।

पीछे बतलाये हुए कल्क औषधिकी अपेक्षा चौगुना घी अथवा तेल और इससे भी चौगुना दूध तथा गोमूत्र आदि ले । यह सब एकत्रित करके आगपर चढ़ा दे । जब इन सब तरल पदार्थोंमेंसे दूध तथा गोमूत्र आदि जल जाय और घृत तथा तेलमात्र शेष रहे तब उतार ले । इस तेल और घीके भक्षण करनेकी मात्रा केवल एक पल है । इसके बनानेका प्रकार यह है कि काढ़ेकी औषधियोंमें चौगुना जल डालकर खूब औटावे । जब चौथाई जल बाकी रह जाय, तब उतार ले और उसमें घी तथा तेल डालकर फिर औटावे । जब जल जल जाय, केवल घी तथा तेलमात्र अवशिष्ट रहे तब उसे सिद्ध समझे । यदि नरम औषधि जैसे गुडुच आदि हों तो उनमें चौगुना पानी और अमलतास तथा दशमूल आदि मध्यम औषधियोंमें अठगुना जल मिलाना चाहिए और उससे भी कठोर पद्मा-खादि औषधियोंमें सोलहगुना जल मिलाना उचित है । जिसमें औषधियोंका परिमाण एक कर्षसे लेकर पल पर्यन्त हो और उनका काढ़ा बनाना हो तो सोलहगुना जल, पलसे लेकर कुडव पर्यन्त जिन औषधियोंका मान हो तो अठगुना पानी और प्रस्थसे लेकर खारी पर्यन्त परिमाणवाली औषधियोंमें चौगुना जल डालना उचित है । यदि केवल जलमें स्नेह सिद्ध करना हो तो स्नेहका चतुर्थांश कल्क डाले । काढ़ेमें पकाकर तैयार करना हो तो उसमें स्नेहका षष्ठांश कल्क डाले । यदि दूध, दही अथवा धतूरे आदिके रसमें स्नेह सिद्ध

करनेकी अभिलाषा हो तो उसमें स्नेहका अष्टमांश कल्क मिलाना चाहिए। कल्कको अच्छी तरह पकानेके लिए स्नेहकी अपेक्षा चौगुना अधिक जल डाले। स्नेह, दूध तथा गोमूत्र आदि पाँच द्रव पदार्थोंसे अधिक द्रव पदार्थ डालनें हों तो वे दूध-गोमूत्र आदि स्नेहके समान भाग लेने चाहिये। उस स्नेहमें यदि पाँचसे कम द्रव पदार्थ हो तो स्नेहसे चौगुना अधिक लेना चाहिए। यदि केवल औषधिसे स्नेहका पाक सिद्ध करना हो तो पानीमें पीसकर उस औषधिको कल्कमें मिलाना चाहिए। उसमें चौगुना पानी डालनेका विधान है। जहाँ केवल क्वाथसे स्नेहपाककी विधि बतलायी गयी हो, वहाँ क्वाथके योग्य द्रव-का कल्क भी उस स्नेहमें डालना चाहिए। जहाँपर कल्कसे हीन स्नेह सिद्ध करनेका विधान हो वहाँ केवल दूध आदि पतली वस्तुयें ही डालकर पकावे। जब वह द्रव वस्तु जल जाय और स्नेहमात्र शेष रहे तो आग परसे उतार ले। यदि फूलोंके कल्कमें स्नेहपाक करना हो तो उसमें चौगुना जल डाले। ऐसा स्नेह तैयार करते समय उसमें स्नेहकी अपेक्षा अष्टमांश कल्क डालना चाहिए।

अब स्नेह सिद्ध हो जानेके लक्षण बतलाते हैं—स्नेहमें पड़े हुए द्रव्यके कल्क-को थोड़ा-सा निकालकर उँगलियोंसे मसले। मसलते २ जब वह बत्तीकी तरह हो जाय तब उसको आगमें डाल दे। आगमें पड़नेपर यदि उसमें चटचट शब्द न हो तो यह समझ ले कि अब स्नेह सिद्ध हो गया। तेलमें झाग उठने लगे और घीमें जब झाग बैठ जाय और उसमें गंध, वर्ण तथा रस उत्पन्न हो जाय तब यह समझे कि अब स्नेह सिद्ध हो गया। स्नेहपाक तीन तरहके होते हैं। जैसे—मृदु, मध्य तथा खर। जो स्नेहपाक सरस कल्कयुक्त हो उसे मृदु स्नेह-पाक कहते है। जिसमें पानीकी मात्रा न हो और कोमल कल्कका स्नेहपाक हो अर्थात् पके हुए स्नेहमें जो कल्क है, उसमें कोमलता और जलका अंश बिल्कुल न रह जाय तो उसे मध्यम स्नेहपाक कहते हैं। कुछ कड़े कल्कका स्नेहपाक खर कहलाता है। जिसमें कल्क तो जल ही गया हो साथ ही कुछ तेल तथा घी भी जल जाय, उसे दग्धस्नेहपाक कहते हैं। यह स्नेहपाक दाहकारी होता है। इसका सेवन करनेसे कोई लाभ नहीं। कच्चे पाकका स्नेह वीर्यरहित होता, उसमें अग्नि यानी औदर्य अग्नि मन्द पड़ जाता और भारी भी होता है। हाँ, नस्य लेनेके लिए मृदुपाक ठीक होता है, किन्तु और कामोंके लिए मध्यम पाक अच्छा

होता है। शरीरमें मालिश करनेके लिए खरपाक ठीक होता है। इन सब बातों-पर भलीभाँति विचारकर ही कोई प्रयोग करना चाहिए। जिस स्नेहपाकमें गुड़ आदि डालनेका विधान हो, उसे एक ही दिनमें न पकावे बल्कि उसमें डालनेके लिए जिन औषधियोंका चुनाव किया गया हो उन्हें मिलाकर रात्रिको भिगो दे और सवेरे स्नेह तैयार करे। यह स्नेह उत्तम गुणसम्पन्न होता है॥१–१८॥

अथ घृतकल्पना।

प्लीहादिकोंपर क्षीरघृत

पिप्पली पिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः॥ १६॥
ससैंधवैश्च पलिकैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
क्षीरं चतुर्गुणं दत्त्वा तत्सिद्धं प्लीहनाशनम्॥ २०॥
विषमज्वरं मंदाग्निहरं रुचिकरं परम्।

पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चीता, सोंठ, सेंधानमक, ये औषधियें चार-चार तोले लेकर इनका कल्क तैयार करे। उसमें चौंसठ तोले गायका घृत और उससे चौगुना दूध मिलाकर पकावे। जब केवल घी शेष रह जाय तब उसे सिद्ध समझे। इस घृतका सेवन करनेसे तिल्ली, विषमज्वर तथा मन्दाग्नि, ये रोग दूर हो जाते और रुचिकी वृद्धि होती है॥ १६॥ २०॥

अतिसार तथा संग्रहणीपर चांगेरीघृत

पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली॥ २१॥
श्वदंष्ट्रा नागरं धान्यं पाठा विल्वं यवानिका।
द्रव्यैश्च पलिकैरेतैश्चतुःषष्टिपलं घृतम्॥ २२॥
घृताच्चतुर्गुणं दद्याच्चांगेरीस्वरसं बुधः।
तथा चतुर्गुणं दत्त्वा दधिसर्पिर्विपाचयेत्॥ २३॥
शनैः शनैर्विपक्वं च चांगेरीघृतमुत्तमम्।
तद्घृतं कफवातघ्नं ग्रहण्यर्शोविकारनुत्॥ २४॥
हंत्यानाहं गुदभ्रंशं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम्।

पीपरि, पीपरामूल, चीतेकी छाल, गजपीपल, गोखरू, सोंठ, धनियाँ, पाठा, बेलगिरी, अजवायन, ये औषधियें चार-चार तोले प्रमाणसे लेकर कल्क करे। फिर चौंसठ तोले घी और घीका चौगुना चांगेरीका रस तथा घीसे चौगुना दही डालकर

मन्द २ अग्निसे पकावे। जब केवल घी शेष रह जाय तब उसे सिद्ध समझे। इसे लोग चांगेरी घृत कहते हैं। इसका सेवन करनेसे कफ, वात, संग्रहणी, बवासीर, अफरा, काँचका निकलना, मूत्रकृच्छ्र तथा प्रवाहिका, ये रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २१-२४ ॥

अतिसार आदिपर मसूरादि घृत

मसूराणां पलशतं नीरद्रोणं विपाचयेत् ॥ २५ ॥
पादशेषं शृतं नीत्वा दत्त्वा बिल्वपलाष्टकम्।
घृतप्रस्थं पचेत्तेन सर्वातीसारनाशनम् ॥ २६ ॥
ग्रहणीं भिन्नविट्कं च नाशयेच्च प्रवाहिकाम्।

सौ तोले मसूर लेकर दस सौ चौबीस तोले पानीमें पकावे। जब चतुर्थांश जल शेष रहे तब उसे उतारकर छान ले। इसके बाद उसमें बत्तीस तोले बेलगिरी, गिलोय तथा चौंसठ तोले घी मिलाकर पकावे। जक पककर घीमात्र शेष रह जाय, तब अग्निपरसे उतार कर छान ले। इस घृतका सेवन करनेसे सब प्रकारके अतीसार, संग्रहणी, फटा भया मल आना और प्रवाहिका रोग शान्त हो जाता है ॥ २५ ॥ २६ ॥

रक्तपित्तादिकोंपर कामदेव घृत

अश्वगंधातुलैका स्यात्तदर्धो गोक्षुरः स्मृतः ॥ २७ ॥
बालामृता शालिपर्णी विदारी च शतावरी।
पुनर्नवाश्वत्थशुंठी काश्मर्यास्तु फलान्यपि ॥ २८ ॥
पद्मबीजं माषबीजं दद्याद्दशपलं पृथक्।
चतुर्द्रोणांभसा पक्त्वा पादशेषं शृतं नयेत् ॥ २९ ॥
जीवनीयगणः कुष्ठं पद्मकं रक्तचंदनम्।
पत्रकं पिप्पली द्राक्षा कपिकच्छुफलं तथा ॥ ३० ॥
नीलोत्पलं नागपुष्पं सारिवे द्वे बले तथा।
पृथक्कर्षसमा भागाः शर्करायाः पलद्वयम् ॥ ३१ ॥
रसश्च पौण्ड्रकेक्षूणामाढकैकं समाहरेत्।
घृतस्य चाढकं दत्त्वा पाचयेन्मृदुनाऽग्निना ॥ ३२ ॥

घृतमेतन्निहंत्याशु रक्तपित्तमुरःक्षतम् ।
हलीमकं पांडुरोगं वर्णभेदं स्वरक्षयम् ॥ ३३ ॥
वातरक्तं मूत्रकृच्छ्रं पार्श्वशूलं च कामलाम् ।
शुक्रक्षयमुरोदाहं कार्श्यमोजःक्षयन्तथा ॥ ३४ ॥
स्त्रीणां चैवाप्रजातानां गर्भदं शुक्रदं नृणाम् ।
कामदेवघृतं नाम हृद्यं बल्यं रसायनम् ॥ ३५ ॥

असगन्ध चार सौ तोले, गोखरू दो सौ तोले, खरेंटी, गिलोय, शालपर्णी, विदारीकन्द, शतावर, साँठी (कचूर) पिपरामूल, खंभारी, सोंठ, कमलके बीज और उड़द इन औषधियोंको चालीस-चालीस तोलेके प्रमाणसे ले । फिर सबको एक द्रोण जलमें पकावे । जब एक चौथाई जल बाकी बच रहे तो काढ़ेको लेकर पीछे बतलाई हुई जीवनीयगणकी औषधियों तथा कूठ, पद्माख, लालचन्दन, तेज-पात, पीपरि, दाख, कौंचके बीज, नीलकमल, नागकेशर, दोनों सारिवा, खरेंटी, तथा नागबला, ये औषधियें एक-एक तोले प्रमाणसे लेवे और कल्क बनाकर उस काढ़ेमें डाले । इनके सिवाय आठ तोले चीनी, दो सौ छप्पन तोले पौंडेका रस और २५६ तोले घृत, इन सब वस्तुओंको एकमें करके मन्द अग्निसे पकावे। जब सब चीजें जल जायँ और घृतमात्र शेष रहे तब उसे उतार कर छान ले। इस घृतका सेवन करनेसे रक्तपित्त, उरःक्षत, हलीमक, पांडुरोग, वर्णभेद, स्वरक्षय, वातरक्त, मूत्रकृच्छ्र, पार्श्वशूल, कामला, शुक्रक्षय, कार्श्य और बलक्षय, ये रोग नष्ट हो जाते हैं। इसके प्रभावसे बन्ध्या भी गर्भ धारण करती और पुरुषके वीर्यकी वृद्धि होती है। यह घृत बड़ा सुन्दर रसायन है। इससे बल बढ़ता और बुढ़ापा हट जाता है ॥ २७—३५ ॥

वातरक्त आदिपर पानीयकल्याण घृत

त्रिफला द्वे निशे कौन्ती सारिवे द्वे प्रियंगुका ।
शालिपर्णी पृष्ठपर्णी देवदार्व्येलवालुकम् ।
नतं विशाला दन्ती च दाडिमं नागकेशरम् ॥ ३६ ॥
नीलोत्पलैलामञ्जिष्ठा विडंगं कुष्ठपद्मकम् ।
जातीपुष्पं चन्दनं च तालीसं बृहती तथा ।
एतैः कर्षसमैः कल्कैर्जलं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ ३७ ॥

घृतं प्रस्थं पचेद्धीमानपस्मारे ज्वरे क्षये ।
उन्मादं वातरक्तं च कासे मन्दानले तथा ॥ ३८ ॥
प्रतिश्याये कटीशूलं तृतीयकचतुर्थके ।
मूत्रकृच्छ्रे विसर्पे च कण्डूपांड्वामये तथा ॥ ३९ ॥
विषद्वये प्रमेहेषु सर्वथैवोपयुज्यते ।
वंध्यानां पुत्रदं भूतयक्षरक्षोहरं स्मृतम् ॥ ४० ॥

त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, रेणुकबीज, दोनों सारिवा, मालकाँगनी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, देवदारु, एलुआ, तगर, इन्द्रायण, दन्ती, अनारकी छाल, नागकेसर, नील कमल, इलायची, मंजीठ, वायविडंग, कूठ, पद्माख, चमेलीके फूल, चन्दन, तालीसपत्र, बड़ी कटेरी, इन सब औषधियोंको एक-एक तोले प्रमाणसे एकत्रित करके ६४ तोले घीके संग पानीमें पकावे । जब और और वस्तुयें जल जायँ, केवल घृतमात्र शेष रह जाय तब सिद्ध समझे और आँचसे उतारकर वस्त्रसे छान ले । इसे लोग पानीय-कल्याण घृत कहते हैं । इसका सेवन करनेसे मृगीरोग, ज्वर, क्षय, उन्माद, वात-रक्त, खाँसी, मन्दाग्नि, प्रतिश्याय, कटिशूल, तृतीयज्वर, चतुर्थकज्वर, मूत्रकृच्छ्र, विसर्परोग, खुजली, पांडु, स्थावर विष, जंगम विष और सब प्रकारके प्रमेह रोग शान्त हो जाते, वन्ध्या स्त्री भी पुत्र लाभ करती, भूत, यक्ष तथा राक्षस ये सब दूर भाग जाते हैं । ३६—४० ॥

वातरक्त तथा कुष्ठादिकोंपर अमृता घृत ।

अमृताक्वाथकल्काभ्यां सक्षीरं विपचेद् घृतम् ।
वातरक्तं जयत्याशु कुष्ठं जयति दुस्तरम् ॥ ४१ ॥

गिलोयके काढ़े और कल्कमें घीसे चौगुना दूध मिलाकर उसमें घीको डाल-कर पकावे । इसका सेवन करनेसे वातरक्त तथा उग्र कुष्ठ रोग शान्त हो जाता है ॥ ४१ ॥

वातरक्त आदिपर महातिक्त घृत

सप्तच्छदः प्रतिविषा शम्याकः कटुरोहिणी ।
पाठा मुस्तमुशीरं च त्रिफला पर्पटस्तथा ॥ ४२ ॥
पटोलनिंबमंजिष्ठाः पिप्पली पद्मकं शटी ।
चन्दनं धन्वयासश्च विशाले द्वे निशे तथा ॥ ४३ ॥

गुडूची सारिवे द्वे च मूर्वा वासा शतावरी ।
त्रायन्तींद्रयवा यष्टी भूनिम्बश्चाक्षभागिकाः ॥ ४४ ॥
घृतं चतुर्गुणं दद्याघृतादामलकीरसः ।
द्विगुणः सर्पिषश्चात्र जलमष्टगुणं भवेत् ॥ ४५ ॥
तत्सिद्धं पाययेत्सर्पिर्वातरक्तेषु सर्वथा ।
कुष्ठानि रक्तपित्तं च रक्तार्शांसि च पांडुताम ॥ ४६ ॥
हृद्रोगगुल्मवीसर्पप्रदरान्गंडमालिकाम् ।
क्षुद्ररोगाञ्ज्वरांश्चैव महातिक्तमिदं जयेत् ॥ ४७ ॥

सप्तच्छद (सतवन), अतीस, अमलतास, पाठा, नागरमोथा, नेत्रबाला, हड़, बहेड़ा, आँवला, पित्तपापड़ा, परवल, नीमकी छाल, मंजीठ, पद्माख, कचूर, चन्दन, धमासा, इन्द्रायण, हल्दी, दारुहल्दी, गिलोय, दोनों सारिवा, मूर्वा, बाँसा, शतवारी,त्रायमाणा,इन्द्रजौ,मुलहठी, चिरायता, ये सब एक-एक तोले लेकर सबका कल्क तैयार करे । तदनन्तर उससे चौगुना घी और घीसे दुगुना आँवलेका रस तथा अठगुना पानी मिलाकर सिद्ध करे । वातरक्त नामक रोगमें यह घृत विशेष लाभदायक है । इसके सेवनसे कुष्ठ, रक्तज बवासीर, पाण्डुरोग, हृद्रोग, गुल्म, विसर्प, प्रदर, गंडमाला, क्षुद्ररोग और सब तरहके ज्वर ये सभी रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ४२-४७ ॥

कुष्ठ आदिपर कासीसाद्य घृत

कासीसं द्वे निशे मुस्तं हरितालं मनःशिलाम् ।
कंपिल्लकं गंधकं च विडंगं गुग्गुलं तथा ॥ ४८ ॥
सिक्थकं मरिचं कुष्ठं तुत्थकं गौरसर्षपान् ।
रसांजनं च सिंदूरं श्रीवासं रक्तचन्दनम् ॥ ४६ ॥
अरिमेदं निंबपत्रं करंजं सारिवां वचाम् ।
मंजिष्ठां मधुकं मांसीं सिरीषं लोध्रपद्मकम् ॥ ५० ॥
हरीतकीं प्रपुन्नाटं चूर्णमेत्कार्षिकान्पृथक् ।
ततश्च चूर्णमालोड्य त्रिंशत्पलमिते घृते ॥ ५१ ॥
स्थापयेत्ताम्रपात्रे च घर्मे सप्त दिनानि च ।
अस्याभ्यंगेन कुष्ठानि दद्रुपामाविचर्चिकाः ॥ ५२ ॥

शूकदोषा विसर्पाश्च विस्फोटा वातरक्तजाः ।
शिरःस्फोटोपदंशाश्च नाडीदुष्टव्रणानि च ॥ ५३ ॥
शोथो भगंदरश्चैव लूताः शाम्यंति देहिनाम् ।
शोधनं रोपणं चैव सुवर्णकरणं घृतम् ॥ ५४ ॥

हीरा कसीस, हल्दी, दारुहल्दी, नागरमोथा, हरताल, मैनसिल, कबीला, गन्धक, वायविडंग, गूगुल, मोम, कालीमिर्च, कूठ, सफेद सरसों, रसांजन, सिन्दूर, गंधा विरोजा, लालचन्दन, खैरकी छाल, नीमके पत्ते, कंजेके बीज, सारिवा, वच, मंजीठ, मुलहठी, जटामासी, सिरसकी छाल, लोध, पद्माख, जंगीहड़ तथा पुनर्नवाके बीज, इन औषधियोंको एक-एक कर्षके प्रमाणसे लेवे । फिर सबका चूर्ण करके उसमें तीस पल घी डालकर किसी तांबेके बर्तनमें रख दे और सात दिनों तक बराबर धूपमें रखकर सुखावे । इसे लोग कासीसादि घृत कहते हैं । इसके लगानेसे सब प्रकारके कुष्ट, दाह, खाज, विचर्चिका (वेवाय), लिंगका शूकरोग, विसर्प, विस्फोटक, मस्तकके फोड़े, उपदंश (गर्मी), नाडीव्रण (नासूर) सूजन, भगन्दर और लूता, ये सारे रोग दूर हो जाते हैं । इसके लगानेसे व्रण आदिका शोधन होता, घाव भर जाता और घावके ऊपरके चमड़ेका रंग पहलेके समान ज्योंका त्यों हो जाता है ॥ ४८—५४ ॥

व्रणपर जात्यादि घृत

जातिनिंबपटोलाश्च द्वे निशे कटुकी तथा ।
मंजिष्ठा मधुकं सिक्थं करंजोशीरसारिवाः ॥ ५५ ॥
तुत्थं च विपचेत्सम्यक्कल्कैरेभिर्घृतं बुधः ।
अस्य लेपात्प्ररोहंति सूक्ष्मनाडीव्रणा अपि ॥ ५६ ॥
मर्माश्रिताः क्लेदिनश्च गंभीराः सरुजो व्रणाः ।

चमेलीके पत्ते, नीमके पत्ते, पटोलपत्र, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, मंजीठ, मुलहठी, मोम, कंजा, खस, सारिवा और तूतिया, ये औषधियें एक-एक कर्षके परिमाणसे एकत्रित करे । फिर इन सबका कल्क करे । उस कल्कको चौगुने घीमें मिलाकर दिन भर धूपमें रक्खा रहने दे । इसके बाद उस घीको आगपर चढ़ाकर पाकसिद्धि करे । यदि इस घीको नासूरके घाव, मर्मस्थलके घाव, पीव बहानेवाले गीले घाव तथा अतिशय वेदनावाले घावोंमें लगावे तो वे शीघ्र भर जाते हैं ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

जलोदरादिपर बिंदुघृत

चित्रकः शंखिनी पथ्या कंपिल्लस्त्रिवृतायुगम् ॥ ५७ ॥
वृद्धदारश्च शम्याको दन्ती दन्तीफलं तथा ।
कोशातकी देवदाली नालिनी गिरिकर्णिका ॥ ५८ ॥
सातला पिप्पलीमूलं विडंगं कटुकी तथा ।
हेमक्षीरी च विपचेत्कल्कैरेतैः पिचून्मितैः ॥ ५९ ॥
घृतप्रस्थं स्नुहीक्षीरे षट्पलं तु पलद्वये ।
अर्कक्षीरस्य मतिमाँस्तत्सिद्धं गुल्मकुष्ठनुत् ॥ ६० ॥
हन्ति शूलमुदावर्तं शोथाध्मानं भगन्दरम् ।
शमयत्युदराण्यष्टौ निपीतं बिंदुसंख्यया ॥ ६१ ॥
गोदुग्धेनोष्ट्रदुग्धेन कुलित्थेन शृतेन वा ।
उष्णोदकेन वा पीत्वा बिन्दुवेगैर्विरिच्यते ॥ ६२ ॥
एतद्बिंदुघृतं नाम नाभिलेपाद्विरेचयेत् ।

चीतेकी छाल, शंखपुष्पी, हरड, कबीला, सफेद तथा काली निसोथ, विधारा, अमलतासका गूदा, दन्तीकी जड़, जमालगोटा, कड़ुई तरोई, बंदाल, नलिनी, विष्णुक्रान्ता, पीले रंगका थूहर, पिपरामूल, वायविडंग, कुटकी और चूक इन उन्नीस औषधियोंको एक-एक कर्षके परिमाणसे लेवे । इसके बाद उन सबोंका कल्क तैयार करके उसमें एक प्रस्थ घी मिलाकर छ पल थूहरका दूध और दो पल आक (मदारका) दूध मिलावे । फिर उसमें चौगुना जल डालकर आगपर चढ़ा दे । जब और चीजें जल जायँ केवल घी शेष रहे तो उतार ले । इस प्रकार सिद्ध हो जानेके बाद छान ले और किसी पात्रमें भरकर रख दे । इसे बिन्दुघृत कहते हैं । इसका सेवन करनेसे वायुगोला, कोढ़, शूल, उदावर्त, सूजन, अफरा, भगन्दर और आठ प्रकारके उदररोग ये सब नष्ट हो जाते हैं । गौका दूध, उँटनीका दूध, कुलथीका काढ़ा अथवा गरम जल, इन अनुपानोंमेंसे जिस रोगीके लिए रोगकी तारतम्यताके अनुसार जो अनुपान उचित समझ पड़े, देवे । इस घृतकी जितनी बूँदें पी जातीं उतने ही दस्त आते हैं । नाभिपर इस घृतका लेप करनेसे भी दस्त आते हैं ॥ ५७-६२ ॥

नेत्ररोगोंपर त्रिफला घृत

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं वा सारसोद्भवम् ॥ ६३ ॥
भृङ्गराजरसप्रस्थं प्रस्थमाजं पयः स्मृतम् ।
दत्त्वा तत्र घृतप्रस्थं कल्कः कर्षमितैः पृथक् ॥ ६४ ॥
त्रिफला पिप्पली द्राक्षा चन्दनं सैंधवं बला ।
काकोली क्षीरकाकोली मेदामरिचनागरम् ॥ ६५ ॥
शर्करा पुण्डरीकं च कमलं च पुनर्नवा ।
निशायुग्मं च मधुकं सर्वैरेभिर्विपाचयेत् ॥ ६६ ॥
नक्तांध्यं नकुलांध्यं च कण्डूं पिल्लं तथैव च ।
नेत्रस्रावं च पटलं तिमिरं चाजकं जयेत् ॥ ६७ ॥
अन्येऽपि प्रशमं यांति नेत्ररोगाः सुदारुणाः ।
त्रैफलं घृतमेतद्धि पानं नस्यादिषूचितम् ॥ ६८ ॥

त्रिफलाका स्वरस तीन प्रस्थ लेवे। यदि किसी कारण वश स्वरस न मिलसके तो त्रिफलाको आठगुने जलमें डालकर आगपर चढ़ा दे। जब चतुर्थांश काढ़ा शेष रहे तब उतार ले। इसे भी स्वरस ही कहते हैं। यह भी एक ही प्रस्थ लेवे। अडूसेका स्वरस एक प्रस्थ, बकरीका दूध एक प्रस्थ, ये सब स्वरस और दुग्ध एकत्रित करके एक प्रस्थ घी डाले। फिर निम्नलिखित औषधियोंका कल्क तैयार करके डालना पड़ेगा। जैसे—हड़, बहेड़ा, आँवला, पीपरि, दाख, सफेद चन्दन, संधानमक, गंगेरन, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, काली मिर्च, सोंठ, खाँड़, सफेद कमल, साधारण कमल, पुनर्नवा, हल्दी, दारुहल्दी और मुलहठी, इन सब औषधियोंको एक-एक कर्षके परिमाणसे लेवे और उनका कल्क तैयार करके एक प्रस्थ घीमें मिलाकर मन्द-मन्द अग्निपर घीको सिद्ध करे। जब तैयार हो जाय तब उतारके छान ले। इसको त्रिफला घृत कहते हैं। इसका सेवन करनेसे रतौंधी, नेउलेकी तरह आँखोंका चमकना, आँखकी खुजली, पिल्लरोग, आँखोंसे जल गिरना, नेत्रमें तिमिररोग होना, यह और मोतियाविन्दु तथा अजक रोग, ये सब नष्ट हो जाते हैं नाकमें इस घृतके डालनेसे भी लाभ होता है ॥ ६३–६८ ॥

व्रणादिकोंपर गौर्याद्य घृत

द्वे हरिद्रे स्थिरे मूर्वा सारिवा चन्दनद्वयैः ।
मधुपर्णी च मधुकं पद्मकेसरपद्मकैः ॥ ६९ ॥

उत्पलोशीरमेदाभिस्त्रिफला पञ्चवल्कलैः ।
कल्कैः कर्षमितैरेतैर्घृतप्रस्थे विपाचयेत् ॥ ७० ॥
विसर्पलूताविस्फोटविषकीटव्रणापहम् ।
गौर्याद्यमिति विख्यातं सर्पिर्विषहरं परम् ॥ ७१ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, शालपर्णी, मूर्वा, सारिवा, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, माषपर्णी, मुलहठी, कमलके भीतरकी केसर, पद्माख, कमल, खस, मेदा, हरड़, बहेड़ा, आँवला, वड़की छाल, पीपरकी छाल, पाकड़की छाल और वेंत, इन औषधियोंको एक-एक पलके प्रमाणसे लेवे और सबका कल्क करके इसका चौगुना जल मिलावे। तत्पश्चात् इसमें एक प्रस्थ घी डालकर घृतमात्र शेष रहने पर्यन्त पकावे। जब सिद्ध हो जाय तो उतारकर छान ले। इसे लोग गौर्यादि घृत कहते हैं। इसका सेवन करनेसे विसर्प, लूता, विस्फोटक, विषदोष, क्षुद्रकुष्ठ तथा व्रण, ये सब रोग दूर होते हैं ॥ ६९-७१ ॥

शिरोरोगादिकोंपर मयूरघृत

बलामधुकरास्नाभिर्दशमूलफलत्रिकैः ।
पृथग्द्विपलिकैरेभिर्द्रोणनीरेण पाचयेत् ॥ ७२ ॥
मयूरं पक्षपित्तांत्रयकृत्पादास्यवर्जितम् ।
पादशेषं शृतं नीत्वा क्षीरं दत्त्वा च तत्समम् ॥ ७३ ॥
घृतप्रस्थं पचेत्सम्यग्जीवनीयैः पिचून्मितैः ।
तत्सिद्धं शिरसः पीडां मन्याग्रीवाग्रहं तथा ॥ ७४ ॥
अर्दितं कर्णनासाक्षिजिह्वागलरुजो जयेत् ।
पाने नस्ये तथाभ्यंगे कर्णपूरेषु युज्यते ॥ ७५ ॥
हेमन्तकालशिशिरवसन्तेषु च शस्यते ।

गंगेरनकी छाल, मुलहठी, रास्ना, दशमूलकी जड़ तथा त्रिफला, इन औषधियोंको दो-दो तोले प्रमाणसे एकत्रित करे और जौकूट करके एक द्रोण जलमें डाल दे। इसके अनन्तर एक मोर मारे। उसके पंख, कलेजेका पित्त तथा अँतड़ी ...हिने तरफका कलेजा दूर करके उसका शुद्ध मांस ले। काढ़ेके समान भाग दूध, एक प्रस्थ घी और जीवनीयगणमें गिनायी हुई औषधियोंका कल्क तैयार करके उसमें डालकर आगपर चढ़ा दे। जब सब वस्तुयें जल जायँ और घृतमात्र

शेष रह जाय तो उसे उतारकर छान ले। फिर समय पड़नेपर इसे रोगकी तारम्यताके अनुसार पीने, नाकमें डालने, देहमें लगाने तथा कानमें डालनेके काममें लाना चाहिए। हेमन्त तथा शिशिर ऋतु और वसन्तकालमें इसका सेवन करनेसे दारुण मस्तकपीड़ा भी दूर हो जाता है। साथ ही गर्दन और गलाका अकड़ना, अर्दित वायुके कारण मुख टेढ़ा हो जाना, कर्णशूल, नाक, नेत्र, जीभ और गलेकी पीड़ा ये व्याधियें भी दूर हो जाती हैं ॥ ७२–७५ ॥

वन्ध्यारोगपर फल घृत

त्रिफला मधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी ॥ ७६ ॥
विडङ्गं पिप्पली मुस्ता विशाला कट्फलं वचा।
द्वे मेदे द्वे च काकोल्यौ सारिवे द्वे प्रियंगुका ॥ ७७ ॥
शतपुष्पा हिंगु रास्ना चंदनं रक्तचन्दनम्।
जातीपुष्पं तुगाक्षीरी कमलं शर्करा तथा ॥ ७८ ॥
अजमोदा च दन्ती च कल्कैरेतैश्च कार्षिकैः।
जीववत्सैकवर्णाया घृतप्रस्थं च गोः क्षिपेत् ॥ ७९ ॥
चतुर्गुणेन पयसा पचेदारण्यगोमयैः।
सुतिथौ पुष्यनक्षत्रे मृद्भाण्डे ताम्रजे तथा ॥ ८० ॥
ततः पिवेच्छुभदिने नारी वा पुरुषोऽथवा।
एतत्सर्पिर्नरः पीत्वा स्त्रीषु नित्यं वृषायते ॥ ८१ ॥
पुत्रानुत्पादयेद्धीमान्वंध्याऽपि लभते सुतम्।
अनायुषं या जनयेद्या च सूता पुनः स्थिता ॥ ८२ ॥
पुत्रं प्राप्नोति सा नारी बुद्धिमंतं शतायुषम्।
एतत्फलघृतं नाम भारद्वाजेन भाषितम् ॥ ८३ ॥
अनुक्तं लक्ष्मणामूलं क्षिपेत्तत्र चिकित्सकः।

त्रिफला, मुलहठी, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, वायविडंग, पीपल, नागरमोथा, इन्द्रायणकी जड़, कायफल, वच, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, सफेद सारिवा, काली सारिवा, फूल प्रियंगु, सौंफ, भुनी हींग, रास्ना, सफेद चन्दन, लालचन्दन, जावित्री, वंशलोचन, कमल, खाँड़, अजमोदा और दन्ती, ये औषधियाँ एक-एक कर्ष प्रमाण लेकर एकत्रित करे। फिर सबका कल्क तैयार करके

बछड़ेवाली एक वर्णकी गैयाका एक प्रस्थ घी लेकर उसमें वह कल्क मिला दे। इसके बाद कल्कका उत्तम पाक सिद्ध करनेके लिए घीसे चौगुना गौका दूध डाल देवे। तत्पश्चात् इन सब वस्तुओंको एक ताँबेके वर्तनमें भरकर किसी शुभ दिन-तिथिको उसे उपलोंकी धीमी आँचपर चढ़ा दे, जब सब चीजें जल जायँ और घृतमात्र शेष रहे तब उतार कर छान ले। इस घृतकी फलघृत संज्ञा है। शुभ मुहूर्तमें यह घृत यदि पुरुष सेवन करे तो उसकी कामचेष्टा बढ़े और स्त्री खावे तो सुन्दर पुत्र उत्पन्न करती है। जिस स्त्रीके बच्चे मर जाया करते हों, वह यदि इसका सेवन करे तो उसके बच्चे चिरंजीवी और बुद्धिमान् होते हैं। मूलमें लक्ष्मणाका नाम नहीं आया है, किन्तु वैद्यको उचित है कि यह औषधि भी इसमें मिला दे॥ ७६—८३॥

विषमज्वरादिकोंपर पंचतिक्त घृत

वृषनिम्बामृताव्याघ्रीपाटलानां शृतेन च॥ ८४॥
कल्केन पक्वं सर्पिस्तु निहन्याद्विषमज्वरान्।
पाण्डुं कुष्ठं विसर्पं च कृमीनर्शांसि नाशयेत्॥ ८५॥

अडूसा, नीमके पत्ते, गिलोय, कटेरी तथा परवलके पत्ते, इन औषधियोंका काढ़ा तैयार करके उसमें उससे चौगुना घी मिलावे। इसके बाद उसे भट्ठीपर चढ़ाकर मन्द-मन्द आँचसे पकावे। सिद्ध हो जानेपर छानकर रख दे। इसका सेवन करनेसे विषमज्वर, पाण्डुरोग, कुष्ठरोग, विसर्परोग, कृमिरोग तथा अर्शरोग (बवासीर) ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं॥ ८४॥ ८५॥

योनिरोगपर लघुफल घृत

सहचरे द्वे त्रिफलां गुडूचीं सपुनर्नवाम्।
शुकनासां हरिद्रे द्वे रास्नां मेदां शतावरीम्॥ ८६॥
कल्कीकृत्य घृतप्रस्थं पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे।
तत्सिद्धं पाययेन्नारीं योनिशूलनिपीडिताम्॥ ८७॥
पीडिता चालिता या च निःसृता विवृता च या।
पित्तयोनिश्च विभ्रांता षंढयोनिश्च या स्मृता॥ ८८॥
प्रपद्यंते हि ताः स्थानं गर्भं गृह्णन्ति चासकृत्।
एतत्फलघृतं नाम योनिदोषहरं परम्॥ ८९॥

पियाबासा, काले फूलका पियाबासा, हड़, बहेड़ा, आँवला, गिलोय, पुनर्नवा, टेंटू, हल्दी, दारुहल्दी, रास्ना, मेदा और इसके न मिलनेपर मुलहठी एवं शतावर, इन औषधियोंका कल्क तैयार करके एक प्रस्थ घी और घीसे चौगुना दूध एकत्रित करके उसमें यह कल्क डाल दे। इसके बाद आगपर चढ़ाकर मन्द-मन्द आँचसे पकावे। जब सब चीजें जल जायँ और केवल घृतमात्र शेष रहे तो उसे उतारकर छान ले। यह घृत उस स्त्रीको देना चाहिए कि जिसकी योनिमें शूल उठ रहा हो, मैथुन करानेपर दर्द होने लगता हो, मासिकधर्म होना बन्द हो गया हो और जिस योनिमें मैथुन करनेसे गर्भ न टिकता हो। इसका सेवन करनेसे सब प्रकारके योनिसम्बन्धी रोग दूर हो जाते, योनि ठिकाने आ जाती और गर्भ धारण होता है। इसे लोग लघुफल नामक घृत कहते हैं। योनिके सब प्रकारके विकार दूर करनेमें यह सर्वश्रेष्ठ औषधि है॥ ८६–८९॥

अथ तैलकल्पना।

लाक्षादि तैल

लाक्षाढकं क्वाथयित्वा जलस्य चतुराढकैः।
चतुर्थांशं शृतं नीत्वा तैलप्रस्थं विनिक्षिपेत्॥ ९०॥
मस्त्वाढकं च गोदध्नस्तत्रैव विनियोजयेत्।
शतपुष्पामश्वगन्धां हरिद्रां देवदारु च॥ ९१॥
कटुकीं रेणुकां मूर्वां कुष्ठं च मधुयष्टिकाम्।
चन्दनं मुस्तकं रास्नां पृथक्कर्षप्रमाणतः॥ ९२॥
चूर्णयेत्तत्र निक्षिप्य साधयेन्मृदुवह्निना।
अस्याभ्यंगात्प्रशाम्यन्ति सर्वेऽपि विषमज्वराः॥ ९३॥
कासश्वासप्रतिश्यायत्रिकपृष्ठग्रहास्तथा।
वातं पित्तमपस्मारमुन्मादं यक्षराक्षसान्॥ ९४॥
कण्डूं शूलं च दौर्गन्ध्यं गात्राणां स्फुरणं जयेत्।
पुष्टगर्भा भवेदस्य गर्भिण्यभ्यंगतो भृशम्॥ ९५॥

एक आढक लाखको चार आढक पानीमें औटावे। जब एक चौथाई जल शेष रह जाय तो उसे उतार ले और उसमें एक प्रस्थ तेल और एक आढक

दहीका पानी मिलावे । इसके बाद सौंफ, असगन्ध, हरिद्रा, देवदारु, कुटकी, रेणुकाका बीज, मूर्वा, कूठ, मुलहठी, सफेदचन्दन, नागरमोथा और रास्ना, इन औषधियोंको एक-एक कर्षके प्रमाणसे एकत्रित करके चूर्ण करे और उसमें डाल दे । फिर आगपर चढ़ाकर धीमी आँचसे पकावे । सिद्ध होनेपर उतार ले । इसको लगानेसे सब प्रकारके विषमज्वर शान्त हो जाते हैं । साथही कास,श्वास, प्रतिश्याय,त्रिक, तथा पृष्ठमें दर्द, वायुका प्रकोप, पित्तका प्रकोप, उन्माद, क्षय, राक्षसादिकी पीड़ा, खुजली, शरीरसे दुर्गंध आना, शूल तथा अंगस्फुरण, ये सब रोग दूर हो जाते हैं । यदि गर्भवती स्त्री शरीरमें इसका मालिश करे तो उसका गर्भ परिपुष्ट होता है ॥ ९०–९५ ॥

सर्वज्वरपर अंगार तैल

मूर्वा द्राक्षा हरिद्रे द्वे मंजिष्ठा सेन्द्रवारुणी ।
बृहती सैंधवं कुष्ठं रास्ना मांसी शतावरी ॥ ९६ ॥
आरनालाढके तत्र तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
तैलमंगारकं नाम सर्वज्वरविमोक्षणम् ॥ ९७ ॥

मूर्वा, लाख, हल्दी, दारुहल्दी, मंजीठ, इन्द्रायणकी जड़, कटेरी, सेंधानमक, कूठ, रास्ना, जटामासी एवं शतावर इन औषधियोंको एक-एक कर्षके प्रमाणसे एकत्रित करके सबका चूर्ण करे । इसके बाद चार सेर कांजी एवं एक प्रस्थ तिलके तेलमें यह चूर्ण डाल दे और आगपर चढ़ाकर धीमी आँचसे औटावे । जब केवल तेलमात्र शेष रह जाय तो उतार लें । इसे लोग अंगारतैल कहते हैं । इसकी मालिश करनेसे सब प्रकारके ज्वर दूर हो जाते हैं ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

सर्ववातपर नारायण तैल

अश्वगन्धा बला बिल्वं पाटलां बृहतीद्वयम् ।
श्वदंष्ट्रातिबले निम्बस्योनाकं च पुनर्नवाम् ॥ ९८ ॥
प्रसारिणीमग्निमन्थं कुर्यादशपलं पृथक् ।
चतुर्द्रोणे जले पक्त्वा पादशेषं शृतं नयेत् ॥ ९९ ॥
तैलाढकेन संयोज्य शतावार्या रसाढकम् ।
क्षिपेत्तत्र च गोक्षीरं तैलात्तस्माच्चतुर्गुणम् ॥ १०० ॥

शनैर्विपाचयेदेभिः कल्कैर्द्विपलिकैः पृथक् ।
कुष्ठैलाचन्दनं मूर्वा वचा मांसी ससैंधवैः ॥ १०१ ॥
अश्वगन्धा बला रास्ना शतपुष्पेंद्रदारुभिः ।
पर्णीचतुष्टयेनैव तगरेण च साधयेत् ॥ १०२ ॥
तत्तैलं नावनेऽभ्यङ्गे पाने बस्तौ च योजयेत् ।
पक्षाघातं हनुस्तम्भं मन्यास्तम्भं कटिग्रहम् ॥ १०३ ॥
खल्लत्वं बधिरत्वं च गतिभङ्गं गलग्रहम् ।
गात्रशोषेंद्रियध्वंसावसृक्शुक्रज्वरक्षयान् ॥ १०४ ॥
अण्डवृद्धिं कुरंडं च दन्तरोगं शिरोग्रहम् ।
पार्श्वशूलं च पांगुल्यं बुद्धिहानिं च गृध्रसीम् ॥ १०५ ॥
अन्यांश्च विषमान्वाताञ्जयेत्सर्वाङ्गसंश्रयान् ।
अस्य प्रभावाद्वन्ध्यापि नारी पुत्रं प्रसूयते ॥ १०६ ॥
मर्त्यो गजो वा तुरगस्तैलाभ्यङ्गात्सुखी भवेत् ।
यथा नारायणो देवो दुष्टदैत्यविनाशनः ॥ १०७ ॥
तथैव वातरोगाणां नाशनं तैलमुत्तमम् ।

असगन्ध, गंगेरन, वेलगिरी, पाढ़,कटेरी, बड़ी छोटी कटेरी,गोखरू, अतिबला, नीमकी छाल, टेंटू, पुनर्नवा, प्रसारणी तथा अरनी, इन औषधियोंको दस पलके प्रमाणसे एकत्रित करे। इसके बाद इन्हें जौकूट करके चार द्रोण पानीमें डालकर औटावे। जब एक चौथाई जल शेष रहे तो उतारकर छान ले। तत्पश्चात् एक आढक तिल्लीका तेल, एक आढक शतावरका रस और चार आढक गौका दूध उस तेलमें मिलावे। फिर कूठ, इलायची, सफेद चन्दन, मूर्वा, वच, जटामासी, सेंधानमक, असगन्ध, गंगेरनकी छाल, रास्ना, सौंफ, देवदारु, शालपर्णी, पृश्नपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी ले और इन औषधियोंका कल्क तैयार करके उसमें डाल दे। यह सब ठीक हो जानेके बाद उसे आँचपर चढ़ादे और मन्द-मन्द अग्निसे पकावे। जब सब वस्तुयें जल जायं और तैलमात्र शेष रह जाय तब उतार ले। इसे लोग नारायणतैल कहते हैं। इसके मालिश करने, नाकमें डालने, पीने तथा बस्तिकर्म करनेसे अर्धांग वायु, गलग्रह, कमरकी वायु, हाथ-पैर आदिको सुखानेवाला वायु, हनुस्तंभ, मन्यास्तम्भ, कटिग्रह, खल्लीवायु, चक्षुरादिका नाश करनेवाला वायु,

रुधिरविकार, धातुक्षय, अन्त्रवृद्धि, कुरण्ड, दन्तरोग, मस्तकका वायु, पार्श्वशूल, बुद्धिभ्रंश तथा कमरसे लेकर पैर तकमें होनेवाली गृध्रसी वायु, ये सब वातविकार दूर हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त इससे विषम वायुके विकार, सर्वांगवात तथा अर्धांगवात रोग भी दूर होते हैं। इसके प्रभावसे वन्ध्या स्त्रीके भी पुत्र होता है। यह तेल यदि मनुष्य लगाता तो उसे आनन्द मिलता और हाथी-घोड़े आदि पशुओंके भी लगानेसे लाभ होता है। इसके विषयमें यहाँ तक कहा गया है कि जिस तरह विष्णुभगवान् दैत्योंका नाश करते हैं, उसी प्रकार यह सब प्रकारके वातविकारको दूर करनेमें समर्थ है ॥ ९८–१०७ ॥

कम्पवायुपर वारुण्यादि तैल

वारुण्या ह्यौत्तरं मूलं कुट्टितं तु पलत्रयम् ॥ १०८ ॥
पलद्वादशकं तैलं क्षणं वह्नौ विपाचितम् ।
निष्कत्रयं भक्तयुतं सेवेतास्माद्विनश्यति ॥ १०९ ॥
हस्तकम्पः शिरःकम्पः कम्पो मन्याशिराभवः ।

उत्तर दिशामें उत्पन्न वारुणीकी जड़ तीन पल लेकर उसे जौकुट कर ले। फिर उसका कल्क करके तिलके तेलमें उस कल्कको मिलाकर औटावे। जब और चीजें जल जायँ केवल तेलमात्र शेष रहे तो उतारकर छान ले। रोगी यदि अपने बलाबलके अनुसार भातके साथ तोले भर इसे खाय तो हाथोंका काँपना, सिरका काँपना, गर्दनका हिलना आदि वायुसम्बन्धी रोग दूर हो जाते हैं ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

वातादिकोंपर बलातैल

बलामूलकषायेण दशमूलशृतेन च ॥ ११० ॥
कुलत्थयवकोलानां क्वाथेन पयसा तथा ।
अष्टाष्टभागयुक्तेन भागमेकं च तैलकम् ॥ १११ ॥
गणेन जीवनीयेन शतावर्येन्द्रवारुणी ।
मंजिष्ठा कुष्ठशैलेयतगरागरुसैंधवैः ॥ ११२ ॥
वचापुनर्नवा मांसी सारिवाद्वयपत्रकैः ।
शतपुष्पाश्वगंधाभ्यामेलया च विपाचयेत् ॥ ११३ ॥
गर्भार्थिनीनां नारीणां पुंसां च क्षीणरेतसाम् ।
व्यायामक्षीणगात्राणां सूतिकानां च युज्यते ॥ ११४ ॥

राजयोग्यमिदं तैलं सुखिनां च विशेषतः ।
बलातैलमिति ख्यातं सर्ववातामयापहम् ॥ ११५ ॥

आठ प्रस्थ खरेटीकी जड़में बत्तीस प्रस्थ जल डालकर आँचपर चढ़ा दे और तबतक औटावे जब तक केवल एक चौथाई जल शेष रहे। इस प्रकार औटानेके बाद उसे छानकर रख ले। इसके अनन्तर दसमूलके काढ़ेकी दस औषधियों-को आठ प्रस्थके प्रमाणसे ले। फिर उसमें बत्तीस प्रस्थ जल डालकर इसका भी काढ़ा करे। जब एक चौथाई शेष रहे तो उतार ले। तत्पश्चात् कुलथी, जौ और बेरके भीतरका बीज, इन औषधियोंको आठ-आठ प्रस्थके प्रमाणसे लेकर बत्तीस प्रस्थ जलमें चढ़ाकर चतुर्थांश शेष पर्यन्त काढ़ा करे। तत्पश्चात् आठ प्रस्थ गौ-का दूध तथा एक प्रस्थ तेल डाले। इसके बाद पूर्वोक्त जीवनीय गणकी औष-धियाँ, शतावर, देवदारु, मंजीठ, कूठ, (शैलेय) तगर, अगर, सेंधा नमक, वच, पुनर्नवा, जटामासी, दोनों प्रकारकी सारिवा, पत्रज, सौंफ, असगन्ध तथा इलायची, इन सब वस्तुओंको डालकर उसे आगपर चढ़ा दे। जब सब चीजें जल जायँ और केवल तेल भर शेष रहे तो उतारकर छान ले। इसे बलातैल कहते हैं। यह तेल उन स्त्रियोंके लिए कि जिन्हें गर्भाधानकी इच्छा हो, और ऐसे पुरुषोंके लिए कि जिनका धातु क्षीण हो गया हो, विशेष लाभकारी है। ज्यादा रास्ता चलनेके कारण थके हुए प्राणियों और प्रसूता स्त्रीको भी इसका सेवन लाभदायक है। यह तैल राजाओं तथा आरामसे रहनेवालोंके लिए बड़े कामकी चीज़ है। इससे सब प्रकारके वातज रोग दूर हो जाते हैं ॥११०--११५॥

वात-कफजन्य विकार तथा वादीपर प्रसारिणी तैल

प्रसारिणीपलशतं जलद्रोणेन पाचयेत् ।
पादशिष्टः शृतो ग्राह्यस्तैलं दधि च तत्समम् ॥ ११६ ॥
काञ्जिकं च समं तैलात्क्षीरं तैलाच्चतुर्गुणम् ।
तैलात्तथाष्टमांशेन सर्वकल्कांश्च योजयेत् ॥ ११७ ॥
मधुकं पिप्पलीमूलं चित्रकः सैंधवं वचा ।
प्रसारिणी देवदारु रास्ना च गजपिप्पली ॥ ११८ ॥
भल्लातः शतपुष्पा च मांसी चैभिर्विपाचयेत् ।
एतत्तैलं वरं पक्वं वातश्लेष्मामयाञ्जयेत् ॥ ११९ ॥

कौब्जं खंजत्वपगुत्वे गृध्रसीमर्दितं तथा ।
हनुपृष्ठशिरोग्रीवाकटिस्तंभं च नाशयेत् ॥ १२० ॥
अन्यांश्च विषमान्वातान्सर्वानाशु व्यपोहति ।

सौ पल प्रसारणी नामकी औषधिको एक द्रोण जलमें डालकर काढ़ा करे। जब केवल एक चौथाई जल शेष रह जाय तो उतारकर छान ले। काढ़ेके बराबर ही इसमें तेल, दही और कांजी भी मिला देना चाहिए। इसके बाद तेलसे चौगुना गौका दूध डाले और मुलहठी, पिपरामूल, चित्रक, सेंधा नमक, वचा, प्रसारणी, देवदारु, रास्ना, गजपीपल, भिलावा, सौंफ तथा जटामासी, इन औषधियोंको तेलका अष्टमांश लेकर कल्क करके तेलमें मिला दे। इसके बाद इसे आगपर चढ़ावे। जब सब वस्तुयें जल जायँ और खाली तेल बच रहे तो उतारकर छान ले। इसे लोग प्रसारणी तैल कहते हैं। इसकी मालिश करनेसे वातज विकार दूर हो जाते हैं। इसके साथ ही पंगुवायु, गृध्रसीवायु, हनु, पृष्ठ, सिर, गर्दन तथा कमरको जकड़नेवाला वायु, ये सब विकार दूर हो जाते हैं। इससे और भी बहुतसे वायुसम्बन्धी विकार नष्ट होते हैं ॥ ११६–१२० ॥

ग्रीवास्तम्भादिकोंपर माषादि तैल

माषा यवातसी क्षुद्रा मर्कटी च कुरंटकः ॥ १२१ ॥
गोकंटष्टुण्टुकश्चैषां कुर्यात्सप्तपलं पृथक् ।
चतुर्गुणाम्बुना पक्त्वा पादशेषं शृतं नयेत् ॥ १२२ ॥
कार्पासास्थीनि बदरं शरबीजं कुलत्थकम् ।
पृथक्चतुर्दशपलं चतुर्द्रोणजले पचेत् ॥ १२३ ॥
प्रस्थैकं छागमांसस्य चतुःषष्टिपले जले ।
निक्षिप्य पाचयेद्धीमान्पादशेषं रसं नयेत् ॥ १२४ ॥
तैलप्रस्थे ततः क्वाथान्सर्वानेतान्विनिक्षिपेत् ।
कल्कैरेभिश्च विपचेदमृताकुष्ठनागरैः ॥ १२५ ॥
रास्नापुनर्नवैरंडैः पिप्पल्या शतपुष्पया ।
बलाप्रसारिणीभ्यां च मांस्या कटुकया तथा ॥ १२६ ॥
पृथगर्धपलैरेतैः साधयेन्मृदुवह्निना ।
हन्यात्तैलमिदं शीघ्रं ग्रीवास्तंभापबाहुकौ ॥ १२७ ॥

अर्धांगशोषमाक्षेपमूरुस्तंभापतानकौ ।
शाखाकम्पं शिरःकम्पं विश्वाचीमर्दितं तथा ॥ १२८ ॥
माषादिकमिदं तैलं सर्ववातविकारनुत् ।

उड़द, जौ, अलसी, कटेरी, कौंचके बीज, पियाबासा, गोखरू और टेंटू, ये आठ औषधियें सात पलके प्रमाणसे एकत्रित करे । फिर सबको जौकूट करके इन औषधियोंसे चौगुना पानी डालकर आगपर चढ़ा दे । जब केवल चतुर्थांश भर जल शेष रहे तो उतारकर छान ले । इसके बाद कपासके बीज (बिनौले), बेरकी गुठली, सनके बीज और कुलथी, ये औषधियें चौदह पलके प्रमाणसे एकत्रित करे । इनमें भी औषधियोंसे चौगुना जल डालकर एक चौथाई जल शेष रहने पर्यन्त औटावे । फिर उसे छानकर रख ले । तत्पश्चात् १ प्रस्थ बकरेके मांसको चौंसठ पल जलमें रखकर आग पर चढ़ा दे । उसका भी जब एक चौथाई जल शेष रह जाय तो उतारकर छान ले । इसके बाद एक प्रस्थ तिलके तेलमें पीछेवाले सब काढ़े डाल दे और निम्नलिखित औषधियोंका कल्क करके उसमें डाले । जैसे—गिलोय, कूठ, सोंठ, रास्ना, पुनर्नवा, रेंड़की जड़, पीपरि, सौंफ, खरेंटीकी छाल, प्रसारणी, जटामासी और कुटकी, आधे पलके प्रमाणसे इन औषधियोंका कल्क करके उसमें डालना चाहिए । यह सब चीजें तेलमें डालनेके बाद आगपर चढा दे और धीमी-धीमी आँचसे पकावे । जब और वस्तुयें जल जायँ केवल तेलमात्र शेष रहे तो उतारकर छान ले । यह माषादि तैल कहलाता है । ऊरुस्तम्भ, अपतानक, हाथ-पैर आदिका काँपना, शिरःकम्प, विश्वाची तथा अर्दित वायु, इन सब रोगोंको यह माषादि तैल नष्ट कर देता है ॥ १२१–१२८ ॥

शूलादि तथा वाय्वादिकोंपर शतावरी तैल

शतावरी बलायुग्मं पर्ण्यौ गंधर्वहस्तकः ॥ १२९ ॥
अश्वगंधा श्वदंष्ट्रा च बिल्वः काशः कुरण्टकः ।
एषां सार्धपलान्भागान्कल्पयेच्च विपाचयेत् ॥ १३० ॥
चतुर्गुणेन नीरेण पादशेषं शृतं नयेत् ।
नियोज्य तैलप्रस्थे च क्षीरप्रस्थं विनिक्षिपेत् ॥ १३१ ॥

शतावरीरसप्रस्थं जलप्रस्थं च योजयेत्।
शतावरी देवदारु मांसी तगरचन्दनम् ॥ १३२ ॥
शतपुष्पा बला कुष्ठमेला शैलेयमुत्पलम्।
ऋद्धिर्मेदा च मधुकं काकोली जीवकस्तथा ॥ १३३ ॥
एषां कर्षः समैः कल्कैस्तैलं गोमयवह्निना।
पचेत्तेनैव तैलेन स्त्रीषु नित्यं वृषायते ॥ १३४ ॥
नारी च लभते पुत्रं योनिशूलं च नश्यति।
अङ्गशूलं शिरःशूलं कामलां पांडुतां गरम् ॥ १३५ ॥
गृध्रसीं प्लीहशोषांश्च मेहान्दंडापतानकम्।
सदाहं वातरक्तं च वातपित्तगदार्दितम् ॥ १३६ ॥
असृग्दरं तथाध्मानं रक्तपित्तं च नश्यति।
शतावरीतैलमिदं कृष्णात्रेयेण भाषितम् ॥ १३७ ॥
'नारायण्यै स्वाहा' इत्युक्त्वा
उत्तराभिमुखो भूत्वा खनेत्खदिरशंकुना।
सर्वव्याधिनाशिन्यै स्वाहा। इति उत्पाटनमन्त्रः।
कुमारजीविन्यै स्वाहा। इति पाचनमन्त्रः।

शतावर, खरेटीकी जड़, गंगेरन, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, रेंड़की जड़, असगन्ध, गोखरू, बेलकी जड़, काँसकी जड़, पियाबाँसा, इन सब औषधियोंको डेढ़-डेढ़ पल-के प्रमाणसे एकत्रित करके चौगुने जलके साथ आँचपर चढ़ा दे। जब एक चौथाई जल शेष रहे तो उतार ले। इसके बाद एक प्रस्थ तिलके तेलमें एक प्रस्थ गौका दूध, एक प्रस्थ शतावरका रस तथा एक ही प्रस्थ जल डाले। तदनन्तर शतावर, देवदारु, जटामांसी, तगर, सफेद चन्दन, सौंफ, खरेंटीकी जड़, कूठ, इलायची, शैलेय (पत्थरका फूल) कमल, ऋद्धि (वाराहीकन्द), मेदा (मेदेके अभावमें मुलहठी), मुलहठी, काकोली, जीवक और जीवकके न मिलनेपर विदारीकन्द, इन औषधियोंको एक-एक कर्षके प्रमाणसे एकत्र करके सबका कल्क करे और उसको तेलमें डालकर गौके अरनेके कंडेपर चढ़ाकर मन्द-मन्द अग्निपर पकावे। जब सब चीजें जल जायँ, केवल तेलमात्र अवशिष्ट रहे तो उतारके छान ले। इसको शतावरी तेल कहते हैं। इसके बनानेकी विधि कृष्णा-

त्रेयने बतायी है। इसका सेवन करनेसे पुरुष बड़े आनन्दके साथ स्त्रियोंसे रति करता है। स्त्रियाँ यदि इसका मालिश करें तो उन्हें पुत्रकी प्राप्ति हो और योनि-शूल, अङ्गशूल, मस्तकशूल, कामला, पाण्डुरोग, विषबाधा, गृध्रसीरोग, तिल्ली, शोष, प्रमेह, दण्डापतानक, वायु, दाह समेत वातरक्त नामक रोग, वातपित्तज्वर, स्त्रियोंका प्रदर रोग, पेटका फूलना तथा रक्तपित्त, ये समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं। प्रसंगवश यहाँपर वनसे शतावर नामकी औषधि लानेकी विधि बतलाते हैं। वनमें पहुँचकर "ॐ नारायण्यै स्वाहा" यह मंत्र कहकर भालेकी तरह बनी हुई खैरकी लकड़ीसे उसको खोदे। फिर "सर्वव्याधिनाशिन्यै स्वाहा" ऐसा कहता हुआ उसे उखाड़े और "कुमारजीविन्यै स्वाहा" ऐसा कहकर प्रणाम करता हुआ इसे पकावे ॥ १२९–१३७ ॥

बवासीरपर कासीसादि तैल

कासीसं लांगली कुष्ठं शुण्ठी कृष्णा च सैंधवम् ॥ १३८ ॥
मनःशिलाश्वमारश्च विडङ्गचित्रकौ वृषः।
दन्ती कोशातकीबीजं हेमाह्वा हरितालकम् ॥ १३९ ॥
कल्कैः कर्षमितै रेतैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत्।
सुधार्कपयसी दद्यात्पृथग्द्विपलसम्मिते ॥ १४० ॥
चतुर्गुणं गवां मूत्रं दत्त्वा सम्यक्प्रसाधयेत्।
कथितं खरनादेन तैलमर्शोविनाशनम् ॥ १४१ ॥
क्षारवत्पातयत्येतदर्शांस्यभ्यंगतो भृशम्।
वलीर्न दूषयत्येतत्क्षारकर्मकरं स्मृतम् ॥ १४२ ॥

कसीस, कलियारी, कूठ, सोंठ, पीपरि, सेंधानमक, मैनसिल, सफेद कनेर, वायविडंग, चीतेकी छाल, अडूसा, दन्ती, कड़ुई तरोईके बीज, चूक तथा हड़ताल इन औषधियोंको एक-एक कर्षके प्रमाणसे एकत्रित करके कल्क करे और एक प्रस्थ तिलके तेलमें मिला देवे। थूहर और आक (मदार) का दूध एक-एक पल, तेलका चौगुना गोमूत्र, इन दोनों वस्तुओंको भी तेलमें डालकर आगपर चढ़ा दे। जब सारी वस्तुयें जल जायँ, केवल तेल भर शेष रहे तब उतारकर छान ले। इस तेलको बनानेका प्रकार खरनाद ऋषिने कहा है। इसके लगानेसे बवासीर विनष्ट हो जाता है। क्षार लगानेमें जो क्रियायें की जाती हैं, उसी तरह उसे भी लगाना चाहिए। इसके लगानेपर गुदाके भीतरी मस्से भी बिना किसी उपद्रवके

दूर हो जाते हैं । विशेषता यह है कि क्षार लगानेसे गुदाकी वलियोंके बिगड़नेका भय रहता है, किन्तु इससे वे भी नहीं बिगड़ सकतीं ॥ १३८–१४२ ॥

वातरक्तपर पिण्डतैल

मञ्जिष्ठासारिवासर्जयष्टीसिक्थैः पलोन्मितैः ।
पिण्डाख्यं साधयेत्तैलमेरंडं वातरक्तनुत् ॥ १४३ ॥

मंजीठ, सारिवा, वासा (राल), मुलहठी तथा मोम, इन औषधियोंको एक-एक पलके प्रमाणसे एकत्रित करके इन औषधियोंकी अपेक्षा चौगुना रेंड़ीका तेल लेकर उसमें मिलावे और आँचपर चढ़ा दे । पीछेसे मोम डाल दे । जब सब चीजें जल जायँ और तेलमात्र अवशिष्ट रहे तो उतारकर छान ले । वातरक्त नामक रोगवाले रोगी यदि इसको लगावें तो उनका वातरक्त रोग दूर होता है ॥ १४३ ॥

खुजली और फोड़ा आदिपर अर्कतैल

अर्कपत्ररसे पक्वं हरिद्राकल्कसंयुतम् ।
नाशयेत्सार्षपं तैलं पामां कच्छूं विचर्चिकाम् ॥ १४४ ॥

हल्दीका कल्क तैयार करके चौगुने सरसोंके तेलमें मिलाकर आगपर चढ़ा दे । ऊपरसे तेलकी अपेक्षा चौगुना आक (मदार) का रस डाल दे । जब सब चीजें जल जायँ और तेल भर बाकी रहे तो उतारकर छान ले । इस तेलको शरीरमें लगानेसे दाद, खाज, कच्छू तथा जिस रोगसे फूट-फूटकर शरीरमें दरारें पड़ जाती हैं, वे और विचर्चिका रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १४४ ॥

कुष्ठादिकोंपर मरिचादि तैल

मरिचं हरितालं च त्रिवृतं रक्तचन्दनम् ॥ १४५ ॥
मुस्तं मनःशिला मांसी द्वे निशे देवदारु च ।
विशाला करवीरं च कुष्ठमर्कपयस्तथा ॥ १४६ ॥
तथैव गोमयरसं कुर्यात्कर्षमितान्पृथक् ।
विषं चार्धपलं देयं प्रस्थं च कटुतैलकम् ॥ १४७ ॥
गोमूत्रं द्विगुणं दद्याज्जलं च द्विगुणं भवेत् ।
मरिचाद्यमिदं तैलं सिध्मकुष्ठहरं परम् ॥ १४८ ॥
जयेत्कुष्ठानि सर्वाणि पुण्डरीकं विचर्चिकाम् ।
पामां सिध्मानि रक्तं च कण्डूं कच्छूं प्रणाशयेत् ॥ १४९ ॥

काली मिर्च, हरताल, निसोथ, लालचन्दन, नागरमोथा, मैनसिल, जटामासी, हल्दी, दारुहल्दी, देवदारु, इन्द्रायनकी जड़, कनेरकी जड़, कूठ, मदारका दूध तथा गोबरका रस इन वस्तुओं एक-एक कर्षके प्रमाणसे एकत्र करके शोधे भये वत्सनाभ (बछनाग) विषको आधा पल उन्हीं औषधियोंमें डालकर सबका कल्क कर डाले। इसके बाद उस कल्कको एक प्रस्थ सरसोंके तेलमें डाल करके तेलसे दूने पानीके साथ आगपर चढ़ा दे। जब केवल तेलमात्र अवशिष्ट बचे तो उतारकर छान ले। इस तेलके लगानेसे सब प्रकारके कुंष्ठ, पुण्डरीक कुष्ठ, विचर्चिका, खुजली, चित्रकुष्ठ, कंडू, रक्तकुष्ठ एवं फोड़ा-फुंसी, ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १४५-१४९ ॥

अरुंषिका (खौरा) पर त्रिफला तैल

त्रिफलारिष्टभूनिम्बं द्वे निशे रक्तचन्दनम् ।
एतैः सिद्धमरूंषीणां तैलमभ्यंजने हितम् ॥ १५० ॥

त्रिफला, नीमकी छाल, हल्दी, दारुहल्दी तथा लालचन्दन, इन औषधियोंका कल्क तैयारकर चौगुने तेलमें डाल करके चौगुने जलके साथ आगपर चढ़ा दे। जब तेलमात्र अवशिष्ट रहे तो उतारकर छान ले। इस प्रकार तैयार किया हुआ तेल उस प्राणीके लिए विशेष हितकारी है कि जिसके शरीरमें बहुत अधिक घाव हों या माथेमें खौरा आदि रोग हो गया हो ॥ १५० ॥

पलित रोगपर निम्बबीज तैल

भावयेन्निम्बबीजानानि भृङ्गराजरसेन हि ।
तथासनस्य तोयेन तत्तैलं हन्ति नस्यतः ॥ १५१ ॥
अकालपलितं सद्यः पुंसां दुग्धान्नभोजिनाम् ।

नीमके बीजमें भाँगरेके रसका अथवा विजयसालकी छालका पुट देवे। तदनन्तर नीमके बीजोंका कल्क करके चौगुने तिलके तेलमें डाले। ऊपरसे चौगुना जल डालकर आगपर चढ़ा दे। जब तेलमात्र शेष रहे तो उतारकर छान ले। इस तेलका नस्य लेनेसे जिस प्राणीके सिर, मूँछ और दाढ़ीके बाल गिर गये हों, वे फिर उग आते हैं ॥ १५१ ॥

गंजारोगपर मधुयष्टी तैल

यष्टीमधुकक्षीराभ्यां नवधात्रीफलैः शृतम् ॥ १५२ ॥
तैलं नस्यकृतं कुर्यात्केशान्श्मश्रूणि सर्वशः ।

मुलहठी और नवीन आँवले, इन दोनों चीजोंका कल्क तैयार करके चौगुने तिलके तेलमें डाल दे। इसके बाद तेलसे चौगुना गौका दूध और तेलसे चौगुना ही जल डालकर आगपर चढ़ा दे। जब तेलमात्र शेष रहे तो उतारकर छानले। इस तेलका नस्य लेनेसे जिसके मस्तक, मूँछ तथा दाढ़ीके बाल उड़ गये हों, फिर उग आते हैं ॥ १५२ ॥

इन्द्रलुप्तपर करंजादि तैल

करंजश्चित्रको जातीकरवीरश्च पाचितम् ॥ १५३ ॥
तैलमेभिर्द्रुतं हन्यादभ्यंगादिंद्रलुकम्।

कंजेकी छाल, चीतेकी छाल, चमेलीकी पत्ती और कनेरकी जड़, इन औषधियोंका कल्क तैयार करके चौगुने तिलके तेलमें वह कल्क मिलाकर चौगुने जलके साथ आगपर चढ़ा दे। जब सब चीजें जल जायँ और तेलमात्र शेष रहे तो उतारकर छान ले। इस तेलके लगानेसे इन्द्रलुप्त (मूँछोंके बाल जिस रोगसे गिर जाते हैं) दूर हो जाता और बाल शीघ्र जम जाते हैं ॥ १५३ ॥

पलित-दारुण आदि रोगोंपर नीलिकादि तैल

नीलिका केतकीकन्दं भृंगराजः कुरंटकः ॥ १५४ ॥
तथार्जुनस्य पुष्पाणि बीजकात्कुसुमान्यपि।
कृष्णास्तिलाश्च तगरं समूलं कमलं तथा ॥ १५५ ॥
अयोरजः प्रियंगुश्च दाडिमत्वग्गुडूचिका।
त्रिफला पद्मपंकश्च कल्कैरेभिः पृथक्पृथक् ॥ १५६ ॥
कर्षमात्रं पचेत्तैलं त्रिफलाक्वाथसंयुतम्।
भृंगराजरसेनैव सिद्धं केशस्थिरीकृतम् ॥ १५७ ॥
अकालपलितं हन्ति दारुणं चोपजिह्वकम्।

नीलके पत्ते, केतकीकी कन्द, भृंगराज (भाँगरा), पियाबासा, अर्जुन नामक वृक्षके फूल, विजयसालके फूल, काले तिल, कन्दसमेत कमल, लोहचूर्ण, फूल प्रियंगु, अनारकी छाल, गिलोय, त्रिफला, कमलका बीज, इन औषधियोंको एक-एक कर्षके प्रमाणसे एकत्रित करके कल्क तैयार करे। फिर उसको कल्ककी अपेक्षा चौगुने तेलमें डालकर भाँगरेके रस तथा त्रिफलाके काढ़ेके साथ आगपर चढ़ा दे। जब सिद्ध हो जाय तो उतारकर छान ले। इस तेलके लगानेसे गिरे हुए बाल भी

जमकर दृढ़ हो जाते हैं। साथ ही सफेद बाल काले हो जाते और अतिशय दारुण उपजिह्व नामक मस्तक रोग भी दूर हो जाता है ॥ १५४–१५७ ॥

पलितादि रोगोंपर भृङ्गराज तैल

भृङ्गराजरसेनैव लोहकिट्टं फलत्रिकम् ॥ १५८ ॥
सारिवां च पचेत्कल्कैस्तैलं दारुणनाशनम्।
अकालपलितं कण्डूमिंद्रलुप्तं च नाशयेत् ॥ १५९ ॥

लोहका कीट, त्रिफला और सारिवा, इन वस्तुओंका कल्क करके चौगुने तेलमें डालकर ऊपरसे भाँगरेका रस डाल दे। जब तेलमात्र शेष रहे तो उतारकर छान ले। इस तेलके लगानेसे दारुण मस्तकरोग, अकालमें बालोंका पक जाना, मस्तक, दाढ़ी, मूँछोंके बाल गिर जाना आदि समस्त मस्तकके रोग दूर हो जाते हैं ॥ १५८ ॥ १५९ ॥

मुख-दन्तादि रोगोंपर अरिमेदादि तैल

इरिमेदत्वचं चुण्णां पचेच्छतपलोन्मिताम्।
जलं द्रोणे ततः काथे गृह्णीयात्पादशेषितम् ॥ १६० ॥
तैलस्यार्धाढकं दत्त्वा कल्कैः कर्षमितैः पचेत्।
अरिमेदलवंगाभ्यां गैरिकागरुपद्मकैः ॥ १६१ ॥
मंजिष्ठालोध्रमधुकैर्लाक्षान्यग्रोधमुस्तकैः।
त्वग्जातिफलकर्पूरकंकोलखदिरैस्तथा ॥ १६२ ॥
पतंगधातकीपुष्पसूक्ष्मैलानागकेशरैः।
कट्फलेन च संसिद्धं तैलं मुखरुजं जयेत् ॥ १६३ ॥
प्रदुष्टमांसं पलितं शीर्णदन्तं च सौषिरम्।
शीतादं दन्तहर्षं च विद्रधिं कृमिदन्तकम् ॥ १६४ ॥

काले खैरकी छालको सौ पलके प्रमाणसे लेकर जौकूट कर डाले और उसे एक द्रोण जलमें डालकर आगपर चढ़ा दे। जब एक चौथाई जल शेष रहे तो उतारकर छान ले। तत्पश्चात् उसमें एक आढक तिलका तेल डालकर काले खैरकी छाल, लौंग, गेरू, अगर, पद्माख, मंजीठ, लोध, मुलेठी, लाख, नागरमोथा, बड़की छाल, दालचीनी, जायफल, कपूर, कंकोल, सफेद खैरकी छाल, पतंग, धायके फूल, छोटी इलायची, नागकेसर और कायफल, इन औषधियोंको एक-एक

कर्षके प्रमाणसे एकत्रकर कल्क करे और उसी तेलमें डालकर आगपर चढ़ा दे। जब तेलमात्र बाकी बचे तो उतारकर छान ले। यह औषधि उस समय काममें लाना चाहिए जब मुखमें किसी प्रकारकी पीड़ा हो, दाँतोंके मांस सड़ जायँ, दाँत हलने लगें, दाँतकी संधियोंमें पीड़ा होने लग जाय, दाँत सूज करके रक्तवर्णके हो जायँ, दाँतोंमें दन्तविद्रधि या श्यावदन्त रोग हो गया हो, दाँतोंमें कीड़े लग गये हों, दाँतोंमें काले-काले छिद्र हो गये हों, हमेशा लार टपकती रहे, दाँत फूट-फूट करके गिरने लगें और दाँतोंसे दुर्गन्धि आने लगे, इन रोगोंपर और जीभ, तालु तथा होंठके रोगोंपर इस तेलका सेवन करना चाहिए ॥ १६०—१६४ ॥

नाडीव्रणादिकोंपर जात्यादि तैल

जातीनिम्बपटोलाना नक्तमालस्य पल्लवाः ॥ १६५ ॥
सिक्थं समधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी।
मंजिष्ठा पद्मकं लोध्रमभया नीलमुत्पलम् ॥ १६६ ॥
तुत्थकं सारिवाबीजं नक्तमालस्य दापयेत्।
एतानि समभागानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् ॥ १६७ ॥
नाडीव्रणे समुत्पन्ने स्फोटके कच्छुरोगिषु।
सद्यः शस्त्रप्रहारेषु दग्धे विद्धेषु चैव हि ॥ १६८ ॥
नखदन्तक्षते देहे व्रणे दुष्टे प्रशस्यते।

चमेली, नीम, परवल तथा कंजेकी कोमल-कोमल पत्ती,मोम, मुलहठी, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, मंजीठ, पद्माख, लोध, हरड़, नीले कमल, तूतिया, सारिवा, कंजेके बीज, इन औषधियोंको एक-एक तोलेके प्रमाणसे एकत्रित करके चूर्ण करे और एक प्रस्थ तिल्लीके तेलमें डालकर अच्छी तरह पकावे। इस तेलका मालिश करनेसे नासूर, फोड़ा, जखम, शस्त्रप्रहारसे जायमान घाव, दग्धव्रण तथा नख और दन्तप्रहार आदिके कारण उत्पन्न घाव अच्छे हो जाते हैं ॥१६५—१६८॥

कर्णशूलपर हिंग्वादि तैल

हिंगुतुंबुरुशुंठीभिः कटुतैलं विपाचयेत् ॥ १६९ ॥
तस्य पूरणमात्रेण कर्णशूलं प्रणश्यति।

हींग, धनियाँ, सोंठ, इन तीन चीजोंका कल्क तैयार करके कल्ककी अपेक्षा चौगुने सरसोंके तेलमें मिलाकर चौगुने जलके साथ पकावे। जब केवल तेल

भर रह जाय तो उतारकर छान ले। इस तेलको कानमें डालनेसे कर्णशूल नामक रोग दूर हो जाता है ॥ १६९ ॥

बधिरतापर बिल्वादि तैल

बालबिल्वानि गोमूत्रे पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् ॥ १७० ॥
साजक्षीरं च नीरं च बाधिर्यं हंति पूरणात्।

कच्चे बेलके गूदेको गोमूत्रमें मिलाकर कल्क करे। इसके बाद कल्ककी अपेक्षा चौगुने तेलमें वह कल्क डाल करके तेलकी अपेक्षा चौगुने बकरीके दूधके साथ आगपर चढ़ा दे। पीछेसे चौगुना जल भी छोड़ दे और सिद्ध हो जानेपर उतारकर छान ले। इस तेलको कानमें डालनेसे कानोंका बहरापन दूर हो जाता है ॥ १७० ॥

कर्णस्रावादिकोंपर क्षारतैल

बालमूलकशुंठीनां क्षारः क्षारयुतं तथा ॥ १७१ ॥
लवणानि च पंचैव हिंगुशिग्रुमहौषधम्।
देवदारु वचा कुष्ठं शतपुष्पारसांजनम् ॥ १७२ ॥
ग्रंथिकं भद्रमुस्तं च कल्कैः कर्षमितैः पृथक्।
तैलप्रस्थं च विपचेत्कदलीबीजपूरयोः ॥ १७३ ॥
रसाभ्यां मधुशुक्तेन चातुर्गुण्यमितेन च।
पूयस्रावं कर्णनादं शूलं बधिरतां कृमीन् ॥ १७४ ॥
अन्यांश्च कर्णजान्रोगान्मुखरोगांश्च नाशयेत्।

कोमल मूलियोंका खार, सोंठ, सज्जीखार, सेंधा नमक, सोंचर नमक, सामुद्र नमक, विडनमक, बाँगडका खार, हींग, सहजनकी छाल, सोंठ, देवदारु, सौंफ, वच, रसौत, पिपरामूल और नागरमोथा, इन औषधियोंको एक-एक कर्षके प्रमाणसे एकत्र करके सबका कल्क तैयार करे। इसके बाद उस कल्ककी अपेक्षा चौगुने तिलके तेलमें वह कल्क मिलाकर केलेके कन्दका रस, बिजौरेके रस और मधुशुक्तके साथ आगपर चढ़ा दे। जब तेलमात्र शेष रह जाय तो उतारकर छान ले। इसको कानमें डालनेसे कानसे पीबका बहना, कर्णनाद, कर्णशूल तथा बहरापन दूर हो जाता है। इनके सिवाय और-और प्रकारके कर्ण-रोग तथा मुखरोग भी दूर हो जाते हैं ॥ १७१–१७४ ॥

पीनसरोगपर पाठादि तैल

पाठा द्वे च निशे मूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः ॥ १७५ ॥
दंत्या च तैलं संसिद्धं नस्यं स्याद्दुष्टपीनसे ।

पाढ़की जड़, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वा, पीपरि, चमेलीकी पत्ती, दन्तीकी जड़ ये औषधियें लेकर कल्क करे । इसके बाद कल्ककी अपेक्षा चौगुने तिलतेलमें उस कल्कको मिलाकर चौगुने जलके साथ आगपर चढ़ा दे और धीमी-धीमी आँचसे पकावे । जब केवल तेलमात्र शेष रह जाय तो उतारकर छान ले । इस तेलका नस्य लेनेसे दारुण पीनस रोग भी शान्त हो जाता है ॥ १७५ ॥

पूय और पीनसरोगपर व्याघ्री तैल

व्याघ्रीदंतीवचाशिग्रुतुलसीव्योषसैंधवैः ॥ १७६ ॥
कल्कैश्च पाचितं तैलं पूतिनासागदापहम् ।

कटेरी, दन्तीकी जड़, बच, सहजनकी छाल, तुलसीकी पत्तियाँ, सोंठ, काली मिर्च, पीपरि और सेंधा नमक, इन औषधियोंको बराबर-बराबर लेकर कल्क करे । फिर कल्ककी अपेक्षा चौगुने तिलके तेलमें वह कल्क मिलावे । पीछे उसमें तेलसे चौगुना जल डाल दे और आगपर चढ़ाकर मन्द-मन्द आँचसे पकावे । जब तेलमात्र अवशिष्ट रह जाय, तब उतारकर छान ले । इस तेलका नस्य लेनेसे पीनस रोग तथा नाकसे पीब बहनेका रोग दूर हो जाता है ॥ १७६ ॥

छींक आनेपर कुष्ठतैल

कुष्ठं बिल्वकणा शुण्ठी द्राक्षा कल्ककषायवत् ॥ १७७ ॥
साधितं तैलमाज्यं वा नस्यात्क्षवथुनाशनम् ।

कूठ, कोमल बेलफल, पीपरि, सोंठ और दाख ये पाँच औषधियें लेकर कल्क करे । फिर उसे चौगुने तिलतेल या घीमें डालकर चौगुने पानीके साथ आगपर चढ़ा दे । जब केवल तेल या घी मात्र शेष रह जाय तो उतारकर छान ले । जिस मनुष्यको छींक विशेष आती हो, वह यदि इसकी नस्य ले तो ज्यादा छींकोंका आना बन्द हो जाता है ॥ १७७ ॥

नासार्शपर गृहधूमादि तैल

गृहधूमकणादारुक्षारनक्ताह्वसैंधवैः ॥ १७८ ॥
सिद्धं शिखरिबीजैश्च तैलं नासार्शसां हितम् ।

घरका धुआँ, पीपरि, देवदारु, जवाखार, कंजेकी छाल, सैंधा नमक और चिचिड़ाके बीज, इन वस्तुओंको समान भागसे लेकर कल्क करे। फिर कल्ककी अपेक्षा चौगुने तिलतेलमें उस कल्कको डालकर चौगुने जलके साथ आगपर चढ़ा दे। जब तेल भर बाकी रह जाय तो उतारकर छान ले। जिस मनुष्यकी नाकके भीतर मस्सा हो गया हो, उसे यदि इसकी नस्य देवे तो मस्सा आपसे आप टूटके गिर जाता है। इस रोगको लोग नासार्श यानी नाककी बवासीर कहते हैं॥ १७८॥

सर्वकुष्ठोंपर वज्रीतैल

वज्रीक्षीरं रविक्षीरं द्रवं धत्तूरचित्रकम्॥ १७९॥
महिषीविड्भवं द्रावं सर्वांशं तिलतैलकम्।
पचेत्तैलावशेषं च गोमूत्रेऽथ चतुर्गुणे॥ १८०॥
तैलावशेषं पक्त्वा च तत्तैलं प्रस्थमात्रकम्।
गंधकाग्निशिलातालं विडंगातिविषाविषम्॥ १८१॥
तिक्तकोशातकीकुष्ठं वचा मांसी कटुत्रयम्।
पीतदारु च यष्ट्याह्वं सर्जिकाक्षारजीरकम्॥ १८२॥
देवदारु च कर्षांशं चूर्णं तैले विनिक्षिपेत्।
वज्रतैलमिति ख्यातमभ्यंगात्सर्वकुष्ठनुत्॥ १८३॥

थूहरके दूध, धतूरका रस, चीतेका रस और भैंसके गोबरका रस, इन वस्तुओंको समान भागसे एकत्रित करके जितने परिमाणकी वे सब वस्तुयें हों, उतना तिल या सरसोंका तेल लेकर आँचपर चढ़ादे। जब सब चीजें जल जायँ केवल तेलमात्र अवशिष्ट रहे तो उसमें चौगुना गोमूत्र डालकर फिर पकावे। जब गोमूत्र जल जाय और तेलमात्र बाकी बचे तो उतारकर छान ले। तत्पश्चात् गन्धक, चीतेकी छाल, मैनसिल, हड़ताल, वायविडंग, अतीस, शुद्ध किया हुआ सिंगिया नामक विष, कड़ुई तरोई, बच, जटामांसी, सोंठ, काली मिर्च, पीपरि, दारुहल्दी, मुलहठी, सज्जीखार, जीरा और देवदारु, इन औषधियोंको एकत्रित करके खूब बारीक चूर्ण करे और उक्त तैलमें मिलाकर मालिश करे तो सब प्रकारके कुष्ठ रोग दूर हो जाते हैं॥ १७९-१८३॥

लोमशातनपर करवीरादि तैल

करवीरं शिफां दंतीं त्रिवृत्कोशातकीफलम्।
रंभाक्षारोदके तैलं प्रशस्तं लोमशातनम्॥ १८४॥

कनेरकी जड़, दन्तीकी जड़, निसोथ, कडुई तरोई, इन वस्तुओंका कल्क तैयार करके उसमें उससे चौगुना तिलका तेल मिलावे। इसके बाद केलेके कन्दकी राख करके उसमेंसे क्षार निकाल ले और क्षारको तथा चौगुने जलको डालकर पकावे। जब सब चीजें जल जायँ केवल तेलमात्र शेष बचे तो उतारकर छान ले। जिस जगहके बाल गिर गये हों, उस स्थानपर यदि इसका मालिश किया जाय तो बाल फिर उग आते हैं॥ १८४॥

इति श्रीशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने
तैलकल्पना नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

अथ दशमोऽध्यायः।

आसव और अरिष्टके भेद तथा लक्षण

द्रवेषु चिरकालस्थं द्रव्यं यत्संधितं भवेत्।
आसवारिष्टभेदैस्तत्प्रोच्यते भेषजोचितम्॥ १॥
यदपक्वौषधांबुभ्यां सिद्धं मद्यं स आसवः।
अरिष्टः क्वाथसिद्धः स्यात्तयोर्मानं पलोन्मितम्॥ २॥
अनुक्तमानारिष्टेषु द्रवद्रोणे तुलागुडम्।
क्षौद्रं क्षिपेद्गुडादर्धं प्रक्षेपं दशमांशकम्॥ ३॥
ज्ञेयः शीतरसः सीधुरपक्वमधुरद्रवैः।
सिद्धः पक्वरसः सीधुः संपक्वमधुरद्रवैः॥ ४॥
परिपक्वान्नसंधानसमुत्पन्नां सुरां जगुः।
सुरामंडः प्रसन्ना स्यात्ततः कादंबरी घना॥ ५॥
तदधो जगलो ज्ञेयो मेदको जगलाद्घनः।
पुक्कसो हृतसारः स्यात्सुराबीजं च किण्वकम्॥ ६॥

यत्तालखर्जूररसैः संधिता सा हि वारुणी ।
कंदमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च ॥ ७ ॥
यत्र द्रवेऽभिषूयंते तच्छुक्तमभिधीयते ।
विनष्टमम्लतां यातं मद्यं वा मधुरद्रवः ॥ ८ ॥
विनष्टः संधितो यस्तु तच्चुक्रमभिधीयते ।
गुडांवुना सतैलेन कंदमूलफलैस्तथा ॥ ९ ॥
संधितं चाम्लतां यातं गुडशुक्तं तदुच्यते ।
एवमेवेक्षुशुक्तं स्यान्मृद्वीकासंभवं तथा ॥ १० ॥
तुषांबु संधितं ज्ञेयमामैर्विदलितैर्यवैः ।
यवैस्तु निस्तुषैः पक्वैः सौवीरं संधितं भवेत् ॥ ११ ॥
कुल्माषधान्यमंडादिसंधितं कांजिकं विदुः ।
शंडाकी संधिता ज्ञेया मूलकैः सर्षपादिभिः ॥ १२ ॥

जो वस्तुयें किसी तरल पदार्थ यानी जल आदिमें ज्यादा दिनों तक भिगोई जातीं और उनसे एक प्रकारका रस निकाला जाता, वह आसव, अरिष्ट आदि नामसे विख्यात होकर बहुत उत्तम द्रव्य तैयार होता और चिकित्साके काममें लाया जाता है। अब उसके भेदों अर्थात् अरिष्ट-आसव आदिकी व्याख्या करते हैं। यदि जल और औषधिको बिना पकाये ही पूर्वकथित रीतिके अनुसार सिद्ध किया जाय तो उसे आसव कहते हैं। वैसा न करके काढ़ा तैयार कर और उसमें औषधियाँ डालकर पूर्वोक्त रीतिसे तैयार की हुई वस्तुको लोग अरिष्ट कहते हैं। उसके सेवनकी मात्रा एक पल है। जिन अरिष्टोंके साधनके विषयमें जल अथवा औषधियोंके डालनेकी कोई तौल नहीं निर्धारित की गयी है। उनमें जल आदि द्रव पदार्थ एक द्रोण, गुड़ एक तुला यानी सौ पल और शहद गुड़का आधा डालना चाहिये। यदि औषधियोंका चूर्ण डालना हो तो गुड़का दशमांश डालना उचित है। बिना पकाये किसी मीठे और तरल पदार्थसे जो वस्तु तैयार की जाती, उसको लोग शीतरस नामक सीधु कहते हैं। यदि किसी मीठे रसको पकाकर कोई आसव तैयार किया जाता वो उसे लोग पक्वरस सीधु कहने लगते हैं। चावल-जौ इत्यादि अन्नोंको पकाकर यंत्रके द्वारा जो आसव निकाला जाता, उसे लोग सुरा कहते हैं। उस सुराके घनभागको कादम्बरी कहते हैं।

मुराके निचले पदार्थकी जगल संज्ञा है। जगलके घन पदार्थको लोग मेदक कहते हैं और मेदकसे भी जो सार वस्तु निकलती, उसे लोग पुक्कस कहते हैं। मुराके बीजको लोग किण्वक कहते हैं। ताल तथा खजूरके रसके आसवको वारुणी कहते हैं। कन्द, मूल तथा फल आदिको उबालकर तेल आदि स्निग्ध पदार्थों-के योगसे जल या सिरकेके रूपमें जो चीज़ तैयार होती, उसे लोग शुक्त कहते हैं। बिना खटाई आये या बिना खट्टे किये हुए मीठे पदार्थोंको किसी पात्रमें भरकर उसका मुख बन्द करके महीना या पन्द्रह दिन रखकरके जो चीज तैयार की जाती, उसे लोग चुक्र कहते हैं। यदि गुड़के रसमें थोड़ा तेल मिलाकर उसमें कन्द, मूल, फल आदि भरके महीना-पन्द्रह रोजके लिए रख दे और वह खट्टा हो जाय तो उसे लोग गुड़शुक्त कहते हैं। इसी प्रकार ईख और अंगूरके रससे तैयार वस्तुको इक्षुशुक्त और द्राक्षाशुक्त कहते हैं। कच्चे जवोंको भून और पानीके साथ किसी पात्रमें रख तथा मुख बन्द करके कुछ दिनों रखकर जो वस्तु तैयार की जाती, उसको लोग तुषाम्बु कहते हैं। यदि जौके ऊपरवाले छिलके को उतारकर उसे आगपर चढ़ाकर पकावे, फिर पानीके साथ किसी बर्तनमें-भरकर पात्रका मुख बन्द करके कुछ दिन रखकर तैयार करे तो उसे लोग सौवीर कहते हैं। कुलथी अथवा चावलमें पानी डालकर उसे आगपर चढ़ा दे और उसका मांड निकालकर उसमें सोंठ, राई, जीरा, हींग, सेंधा नमक तथा हल्दी आदि पदार्थ डालकर पात्रका मुख बन्द करके कुछ दिनों रखकर जो वस्तु तैयार की जाती, उसे लोग कांजी कहते हैं। यदि मूलीके छोटे-छोटे टुकड़े पका-कर उसमें पानी, हल्दी, हींग, राई, सेंधा नमक, जीरा, सोंठ आदि डालकर पात्रका मुख बंद करके तीन-चार रोजके लिए रख दे तो इसको शण्डाकी कहते हैं। यही अरिष्टादि कल्पनाकी योजनायें हैं ॥ १–१२ ॥

रक्त-पितादिकोंपर उसीरासव

उसीरं बालकं पद्मं काश्मरीं नीलमुत्पलम् ।
प्रियंगु पद्मकं लोध्रं मंजिष्ठां धन्वयासकम् ॥ १३ ॥
पाठां किराततिक्तं च न्यग्रोधोदुंबरं शटीम् ।
पर्पटं पुंडरीकं च पटोलं कांचनारकम् ॥ १४ ॥

जम्बूशाल्मलिनिर्यासं प्रत्येकं पलसम्मितम् ।
भागान्सुचूर्णितान्कृत्वा द्राक्षायाः पलविंशतिम् ॥ १५ ॥
धातकीं षोडशपलां जलद्रोणद्वये क्षिपेत् ।
शर्करायास्तुलां पक्त्वा क्षौद्रस्यैकतुलां तथा ॥ १६ ॥
मांसं च स्थापयेद्भांडे मांसीमरिचधूपिते ।
उशीरासव इत्येष रक्तपित्तनिवारणः ॥ १७ ॥
पांडुकुष्ठप्रमेहार्शः कृमिशोथहरस्तथा ।

खस, नेत्रबाला, लाल कमल, खंभारी, नील कमल, प्रियंगु, पद्माख, लोध, मंजीठ, धमासा, पाढ़, चिरायता, कुटकी, बड़की छाल, कचूर, पित्तपापड़ा, सफेद कमल, पटोलपत्र, कचनारकी छाल, जामुनकी छाल और सेमरकी गोंद, इन औषधियोंको एक-एक पलके प्रमाणसे लेकर दाख बीस पल और धायके फूल सोलह पल, इन सबको कूट-पीसकर चूर्ण बनावे। फिर दो द्रोण जलमें भिगोकर उसमें एक तुला खाँड डाले। साथ ही एक तुला शहद भी डालकर उस पात्रमें जटामांसी तथा काली मिर्चकी धूनी देकर उक्त वस्तुओंको डालकर उस पात्रका मुख बन्द कर दे और एक महीने तक उसी तरह रहने दे। इसके बाद उसकी मुद्रा खोलकर उसके रसको छान ले। इसे लोग उसीरासव कहते हैं। इसके पीनेसे रक्तपित्त, पाण्डुरोग, कुष्ठ, प्रमेह, बवासीर, कृमिरोग तथा सूजन, ये सब रोग दूर हो जाते हैं॥ १३–१७ ॥

क्षयादिकोंपर कुमार्यासव

सुपक्वरससंशुद्धं कुमार्याः पत्रमाहरेत् ॥ १८ ॥
यत्नेन रसमादाय पात्रे पाषाणमृन्मये ।
द्रोणे गुडतुलां दत्त्वा घृतभाण्डे निधापयेत् ॥ १९ ॥
माक्षिकं पक्वलोहं च तस्मिन्नर्धतुलां क्षिपेत् ।
कटुत्रिकं लवंगं च चातुर्जातकमेव च ॥ २० ॥
चित्रकं पिप्पलीमूलं विडंगं गजपिप्पली ।
चव्यकं हपुषा धान्यं क्रमुकं कटुरोहिणी ॥ २१ ॥
मुस्ता फलत्रिकं रास्ना देवदारु निशाद्वयम् ।
मूर्वा मधुरसा दन्ती मूलं पुष्करसम्भवम् ॥ २२ ॥

बला चातिबला चैव कपिकच्छुस्त्रिकण्टकम्।
शतपुष्पां हिंगुपत्रीं ह्याकल्लकमुटिंगणम् ॥ २३ ॥
पुनर्नवाद्वयं लोध्रं धातुमाक्षिकमेव च।
एषां चार्धपलं दत्त्वा धातक्यास्तु पलाष्टकम् ॥ २४ ॥
पलं चार्धपलं चैव पलद्वयमुदाहृतम्।
वपुर्वयःप्रमाणेन बलवर्णाग्निदीपनम् ॥ २५ ॥
बृंहणं रोचनं वृष्यं पक्तिशूलनिवारणम्।
अष्टावुदरजान्रोगान्क्षयमुग्रं च नाशयेत् ॥ २६ ॥
विंशतिं मेहजान्रोगानुदावर्तमपस्मृतिम्।
मूत्रकृच्छ्रमपस्मारं शुक्रदोषं तथाश्मरीम् ॥ २७ ॥
कृमिजं रक्तपित्तं च नाशयेत्तु न संशयः।

अच्छी तरह पके घीकुवारके पत्तेका रस एक द्रोण, पुराना गुड़ सौ पल, शहद तथा लोहेका चूर्ण आधे-आधे तोले, सोंठ, काली मिर्च, पीपरि, लौंग, दालचीनी, पत्रज, इलायचीके दाने, नागकेसर, चित्रक, पिपरामूल, वायविडंग, गजपीपल, चव्य, ह्रीवेर, धनियाँ, सुपारी, कुटकी, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा, आँवला, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वा, प्रसारणी, दन्ती, पोहकरमूल, खरेटी, नागबला, कौंचके बीज, गोखरू, सौंफ, हिंगुपत्री, अकरकरा, उटंगनके बीज, दोनों पुनर्नवा, लोध और माक्षिककी भस्म, ये औषधियें तथा धायके फूल आठ-आठ पल, इन वस्तुओंको एकत्रित करके घीके चिकने बर्तनमें भरकर महीना-पन्द्रह दिन रखा रहने दे तो कुमार्यासव तैयार हो जाता है। बलाबल देखकर योग्यताके अनुसार इसका एक पल या आधा पल रोगीको दे तो उसका बल, वर्ण तथा अग्नि बढ़ता और शरीर पुष्ट होता हुआ परिणामशूल, सब प्रकारके उदररोग, क्षय, प्रमेह, उदावर्त, अपस्मार, मूत्रकृच्छ्र, शुक्रदोष, पथरी, कृमिरोग तथा पित्तरोग, ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १८–२७ ॥

क्षयादि रोगोंपर पिप्पल्यासव

पिप्पली मरिचं चव्यं हरिद्रा चित्रको घनः ॥ २८ ॥
विडङ्गं क्रमुको लोध्रः पाठा धात्र्येलबालुकम्।
उशीरं चन्दनं कुष्ठं लवंगं तगरं तथा ॥ २९ ॥

मांसी त्वगेलापत्रं च प्रियङ्गु नागकेशरम् ।
एषामर्धपलान्भागान्सूक्ष्मचूर्णीकृताञ्छुभान् ॥ ३० ॥
जलद्रोणद्वये क्षिप्त्वा दद्याद्गुडतुलात्रयम् ।
पलानि दश धातक्या द्राक्षा षष्टिपला भवेत् ॥ ३१ ॥
एतान्येकत्र संयोज्य मृद्भाण्डे च विनिक्षिपेत् ।
ज्ञात्वा गतरसं सर्वं पाययेदग्न्यपेक्षया ॥ ३२ ॥
क्षयं गुल्मोदरं कार्श्यं ग्रहणीं पाण्डुतां तथा ।
अर्शांसि नाशयेच्छीघ्रं पिप्पल्याद्यासवस्त्वयम् ॥ ३३ ॥

पीपरि, काली मिर्च, चव्य, हल्दी, चीतेकी छाल, नागरमोथा, वायविडंग, सुपारी, लोध, पाढ़, आँवला, इलायची, खस, सफेद चन्दन, कूठ, लौंग, तगर, जटामांसी, दालचीनी, इलायचीके दाने, पत्रज, फूलप्रियंगु और नागकेसर, इन औषधियोंको आधे-आधे पलके प्रमाणसे एकत्रित करके सबका बारीक चूर्ण करे और एक द्रोण जलमें डालकर उसमें तीन तुला गुड़ डाले। साथ ही उसमें धायके फूल दस पल और दाख साठ पल इन दोनों चीजोंको भी महीन चूर्ण करके डाल दे। तत्पश्चात् उस पात्रका मुख बन्द करके एक महीनेके लगभग ज्योंका त्यों रक्खा रहने दे। जब समझ ले कि अब उसका उत्तम रस तैयार हो गया होगा तो उसके मुखको खोलकर रस निकाल ले। इसे लोग पिप्पल्यासव कहते हैं। यदि रोगी अपने जठरानलका बलाबल देखकर इसे पिये तो क्षय, गोला, उदर, शरीरकी कृशता, संग्रहणी, पण्डुरोग तथा बवासीर, ये सब रोग दूर हो जाते हैं ॥ २८-३३ ॥

पाण्डुरोगादिकोंपर लोहासव

लोहचूर्णं त्रिकटुकं त्रिफलां च यवानिकाम् ।
विडङ्गं मुस्तकं चित्रं चतुःसंख्यापलं पृथक् ॥ ३४ ॥
धातकीकुसुमानां तु प्रक्षिपेत्पलविंशतिम् ।
चूर्णीकृत्य ततः क्षौद्रं चतुःषष्टिपलं क्षिपेत् ॥ ३५ ॥
दद्याद्गुडतुलां तत्र जलद्रोणद्वयं तथा ।
घृतभाण्डे विनिक्षिप्य निदध्यान्मासमात्रकम् ॥ ३६ ॥

लोहासवममुं मर्त्यः पिबेदग्निकरं परम् ।
पाण्डुश्वयथुगुल्मानि जठराण्यर्शसां रुजम् ॥ ३७ ॥
कुष्ठं प्लीहामयं कण्डूं कासं श्वासं भगन्दरम् ।
अरोचकं च ग्रहणीं हृद्रोगं च विनाशयेत् ॥ ३८ ॥

लोहेका चूर्ण, त्रिकटु (सोंठ, काली मिर्च, पीपरि) हड़, बहेड़ा, आँवला, अजमोदा, वायविडंग, नागरमोथा और चीतेकी छाल, इन सब औषधियोंको चार-चार पलके प्रमाणसे एकत्रित करके ऊपर गिनायी औषधियोंके चूर्ण, धायके फूल तथा चौंसठ पल शहद और एक तुला गुड़ इन सब चीजों तथा पूर्वोक्त चूर्णौषधियोंको किसी घीके चिकने बर्तनमें भरे और उसका मुख बन्द करके एक महीने तक ज्योंका त्यों रक्खा रहने दे । इसके बाद पात्रका मुख खोलकर उस रसको निकाल ले । इस आसवकी लोहासव संज्ञा है । इसका सेवन करनेसे गोला, बवासीर, कोढ़, प्लीहा, खुजली, खाँसी, श्वास, भगंदर, अरुचि, सग्रहणी तथा हृदयरोग, ये सब बाधायें दूर हो जाती हैं ॥३४-३८ ॥

ग्रहण्यादि रोगोंपर मृद्वीकासव

मृद्वीकायाः पलशतं चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ।
द्रोणशेषे सुशीते च पूते तस्मिन्प्रदापयेत् ॥ ३६ ॥
तुले द्वे क्षौद्रखंडाभ्यां धातक्याः प्रस्थमेव च ।
कक्कोलकं लवंगं च फलं जात्यास्तथैव च ॥ ४० ॥
पलांशकं च मरिचं त्वगेलापत्रकेसराः ।
पिप्पली चित्रकं चव्यं पिप्पलीमूलरेणुके ॥ ४१ ॥
घृतभांडे विनिक्षिप्य चन्दनागरुधूपिते ।
कर्पूरवासितो ह्येष ग्रहण्यां दीपनः परः ॥ ४२ ॥
अर्शसां नाशने श्रेष्ठ उदावर्तस्य गुल्मनुत् ।
जठरे कृमिकुष्ठानि व्रणानि विविधानि च ।
अक्षिरोगशिरोरोगगलरोगांश्च नाशयेत् ॥ ४३ ॥

सौ पल प्रमाण मुनक्केको लेकर चार द्रोण जलमें पकावे । जब एक चौथाई जल शेष रहे तो उतारकर छान ले । तदनन्तर सौ पल खाँड़ और शहद, धायके फूल एक प्रस्थ, कंकोल, लौंग, जायफल, काली मिर्च, दालचीनी,

इलायचीके बीज, तेजपात, नागकेसर, पीपरि, चीतेकी छाल, चव्य, पिपरामूल, और रेणुका ये औषधियें एक-एक पलके प्रमाणसे एकत्रित करे। इसके बाद सबको कूट-पीसकर चूर्ण करे और चन्दनकी धूनी दिये हुए घीके चिकने बासनमें रखकर उसका मुख बन्द कर दे। कुछ दिनोंतक ज्योंका त्यों रखा रहनेके बाद जब यह समझे कि आसव ठीक हो गया होगा तो उसका मुख खोलकर छान ले। यदि शुद्ध कपूरकी धूनी देकर यह आसव तैयार करे तो संग्रहणीवाले रोगीका जठरानल प्रदीप्त होता है। साथ ही बवासीर, उदावर्त, गोला, उदररोग, कृमिरोग, कोढ़, व्रण, नेत्ररोग एवं शिरोरोग तथा कण्ठके रोग दूर हो जाते हैं॥ ३६–४३॥

प्रमेहादिकोंपर लोध्रासव

लोध्रं शटीपुष्करमूलमेला मूर्वा विडंगं त्रिफला यवानी।
चव्यं प्रियङ्गु क्रमुकं विशालां किराततिक्तं कटुरोहिणीं च॥ ४४॥
भार्ङ्गीं नतं चित्रकपिप्पलीनां मूलं च कुष्ठातिविषां च पाठाम्।
कलिङ्गकं केसरमिन्द्रसाह्वानंतासिपत्रं मरिचप्लवं च॥ ४५॥
द्रोणेऽम्भसः कर्षसमांश्च पक्त्वा पूते चतुर्भागजलावशेषे।
रसार्धभागं मधुनः प्रदाय पक्षं निधेयो घृतभाजनस्थः॥ ४६॥
लोध्रासवोऽयं कफपित्तमेहान्क्षिप्रं निहन्याद्द्विपलप्रयोगात्।
पांड्वामयार्शांस्यरुचिं ग्रहण्या दोषं बलासं विविधं च कुष्ठम्॥ ४७॥

लोध, कचूर, पोहकरमूल, इलायची, मूर्वा, वायविडंग, त्रिफला, अजवायन, चव्य, फूल प्रियंगु, सुपारी, इन्द्रायन, चिरायता, कुटकी, भारंगी, तगर, चीतेकी छाल, पिपरामूल, कूठ, अतीस, पाढ, इन्द्रजौ, नागकेसर, कोहकी छाल, धमासा, ईख, कालीमिर्च और क्षुद्रमोथा, इन औषधियोंको एक-एक तोलेके प्रमाणसे एकत्रित करके चूर्ण करे। फिर एक द्रोण जलमें उन औषधियोंको डालकर पकावे। जब एक चौथाई जल शेष रहे तो छान ले। फिर काढ़ेका अर्धांश शहद मिलावे। इसके अनन्तर घीके चिकने बर्तनमें उसको भरकर मुख बन्द करके महीना-पन्द्रह दिनके लिए रख दे तो लोध्रासव तैयार हो जाता है। रोगीका बलाबल देखकर यदि दो पल तक यह औषधि देवे तो कफ तथा पित्तके विकार, प्रमेह, पाण्डुरोग, बवासीर, अरुचि, संग्रहणी तथा अनेक प्रकारके कुष्ठरोग दूर हो जाते हैं॥४४-४७॥

सर्वज्वरोंपर कुटजारिष्ट

तुलां कुटजमूलस्य मृद्वीकार्धतुलां तथा ॥ ४८ ॥
मधुकं पुष्पकाश्मर्यौ भागान्दशपलोन्मितान्।
चतुर्द्रोणेऽम्भसः पक्त्वा क्वाथे द्रोणावशेषिते ॥ ४९ ॥
धातक्या विंशतिपलं गुडस्य च तुलां क्षिपेत्।
मासमात्रं स्थितो भाण्डे कुटजारिष्टसंज्ञितः ॥ ५० ॥
ज्वरान्प्रशमयेत्सर्वान्कुर्यात्तीक्ष्णं धनञ्जयम्।

कुडेकी जड़ एक तुला, दाख आधी तुला एवं महुएके फूल तथा खंभारीकी जड़ दस पलके प्रमाणसे एकत्रित करे। इन औषधियोंको जौकूट करके चार द्रोण जलमें डालकर पकावे। जब एक द्रोण जल अवशिष्ट बचे तो उतारकर छान ले। इसके बाद उसमें बीस पल धायके फूलका चूर्ण और एक तुला गुड़ डालकर एक चिकने बर्तनमें बन्द करके एक महीने तक ज्योंका त्यों रक्खा रहने दे। इसके बाद पात्रका मुख खोलकर रस निकाल ले। इसकी कुटजारिष्ट संज्ञा है। इस अरिष्टके पीनेसे सब प्रकारके ज्वर दूर हो जाते और अग्नि प्रदीप्त होता है ॥ ४८–५० ॥

विद्रधि आदिपर विडंगारिष्ट

विडङ्गं ग्रन्थिकं रास्ना कुटजत्वक्फलानि च ॥ ५१ ॥
पाठैलवालुकं धात्री भागान्पञ्चपलान्पृथक्।
अष्टद्रोणेऽम्भसः पक्त्वा कुर्याद्द्रोणावशेषितम् ॥ ५२ ॥
पूते शीते क्षिपेत्तत्र क्षौद्रं पलशतत्रयम्।
धातकीं विंशतिपलां त्रिजातं द्विपलं तथा ॥ ५३ ॥
प्रियंगुकांचनाराणां सलोध्राणां पलं पलम्।
व्योषस्य च पलान्यष्टौ चूर्णीकृत्य प्रदापयेत् ॥ ५४ ॥
घृतभाण्डे विनिक्षिप्य मासमेकं विधारयेत्।
ततः पिबेद्यथार्हं तु जयेद्विद्रधिमूर्जितम् ॥ ५५ ॥
ऊरुस्तम्भाश्मरीमेहान्प्रत्यष्ठीलाभगन्दरान्।
गण्डमालां हनुस्तंभं विडंगारिष्टसंज्ञितः ॥ ५६ ॥

वायविडंग, पिपरामूल, रास्ना, कुडेकी छाल, इन्द्रजौ, पाढ़, इलायची और आमले ये औषधियें पाँच-पाँच पलके प्रमाणसे एकत्रितकर जौकूट करे और

आठ द्रोण जलमें डालकर आगपर पकावे। जब केवल एक द्रोण जल शेष रहे तो उतारकर छान ले। जब वह ठंढा हो जाय तो तीन सौ पल शहद, बीस पल धायके फूल, दालचीनी, छोटी इलायचीके दाने तथा पत्रज, इन औषधियोंको आठ पलके प्रमाणसे लेवे। इसके बाद उन सब औषधियोंका चूर्ण करके उस काढ़ेमें मिलावे और किसी चिकने बर्तनमें भरकर उसका मुख बन्द करके एक महीनेके लिए रख दे। समय आनेपर खोलकर निकाल ले। इसको लोग विडंगारिष्ट कहते हैं। इसके पीनेसे विद्रधि, ऊरुस्तम्भ, पथरी, प्रमेह, प्रत्यष्ठीला, वातज रोग, गण्ड-माला तथा हनुस्तम्भ, ये सब रोग दूर हो जाते हैं॥ ५१—५६॥

प्रमेहादिकोंपर देवदार्वरिष्ट

तुलार्धं देवदारु स्याद्वासा च पलविंशतिः।
मञ्जिष्ठेन्द्रयवा दन्तीं तगरं रजनीद्वयम्॥ ५७॥
रास्नाक्रमिघ्नमुस्तं च शिरीषं खदिरार्जुनौ।
भागान्दश पलान्दद्याद्यवान्या वत्सकस्य च॥ ५८॥
चन्दनस्य गुडूच्याश्च रोहिण्याश्चित्रकस्य च।
भागानष्ट पलानेतानष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत्॥ ५९॥
द्रोणशेषे कषाये च पूते शीते प्रदापयेत्।
धातक्याः षोडशपलं माक्षिकस्य तुलात्रयम्॥ ६०॥
व्योषस्य द्विपलं दद्यात्त्रिजातस्य चतुष्पलम्।
चतुष्पलं प्रियंगोश्च द्विपलं नागकेशरम्॥ ६१॥
सर्वाण्येतानि संचूर्ण्य घृतभांडे निधापयेत्।
मासादूर्ध्वं पिबेदेनं प्रमेहं हन्ति दुर्जयम्॥ ६२॥
वातरोगान्ग्रहण्यर्शोमूत्रकृच्छ्राणि नाशयेत्।
देवदार्वादिकोऽरिष्टो दद्रुकुष्ठविनाशनः॥ ६३॥

देवदारु आधा तुला यानी पचास पल, अडूसा पचीस पल और मंजीठ, इन्द्रजौ, दन्ती, तगर, हल्दी, दारुहल्दी, रास्ना, वायविडंग, नागरमोथा, सिरस, खैरकी छाल और कोहकी छाल, ये औषधियें दस-दस तोले और अजमोदा कुडेकी छाल, सफेद चन्दन, गिलोय कुटकी और चीतेकी छाल, इन औषधियों-को आठ-आठ पलके प्रमाणसे एकत्र करे। तदनन्तर सबको कूट-पीसकर उसमें

आठ द्रोण जल डालकर पकावे । जब केवल एक द्रोण जल शेष रहे तो उतारकर छान ले । उसके शीतल होनेपर ये औषधियें डाले । जैसे–धायके फूल पन्द्रह पल, शहद तीन तुला, सोंठ–मिर्च–पीपरि इन तीनोंको दो पल, दालचीनी, इलायचीके बीज तथा पत्रज चार पल और फूल प्रियंगु तथा नागकेसर दो-दो पल एकत्र करे । इसके बाद सबका चूर्ण करके उस काढ़ेमें डाल दे । तत्पश्चात् सब मिलाकर किसी चिकनें बर्तनमें भरकर रख दे । जब एक महीना बीत जाय तो खोलकर रस निकाल ले । इसकी दार्वरिष्ट संज्ञा है । इसका सेवन करनेसे दुःसाध्य प्रमेह, वातज रोग, संग्रहणी, बवासीर, मूत्रकृच्छ्र, दाद तथा कोढ़के रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ५७–६३ ॥

कुष्ठादिकोंपर खदिरारिष्ट

खदिरस्य तुलार्धं तु देवदारु च तत्समम् ।
बाकुची द्वादशपला दार्वी स्यात्पलविंशतिः ॥ ६४ ॥
त्रिफला विंशतिपला ह्यष्टद्रोणेंऽभसः पचेत् ।
कषाये द्रोणशेषे च पूतशीते विनिक्षिपेत् ॥ ६५ ॥
तुलाद्वयं माक्षिकस्य पलैका शर्करा मता ।
धातक्या विंशतिपलं कक्कोलं नागकेशरम् ॥ ६६ ॥
जातीफलं लवङ्गैलात्वपक्पत्राणि पृथक्पृथक् ।
पलोन्मितानि कृष्णाया दद्यात्पलचतुष्टयम् ॥ ६७ ॥
घृतभाण्डे विनिक्षिप्य मासादूर्ध्वं पिवेत्ततः ।
महाकुष्ठानि हृद्रोगं पाण्डुरोगार्बुदे तथा ॥ ६८ ॥
गुल्मं ग्रन्थिं कृमीञ्छ्वासं कासं प्लीहोदरं तथा ।
एष वै खदिरारिष्टः सर्वकुष्ठनिवारणः ॥ ६९ ॥

खैर और देवदारु आधा तुला (५० पल), बाकुची बारह पल, दारुहल्दी बीस पल, हरड़, बहेड़ा और आँवला, इन तीनोंको मिलाकर बीस पलके प्रमाणसे एकत्र करे । फिर इन सबोंका जौकूट करके आठ द्रोण जलमें डालकर पकावे, जब केवल एक द्रोण जल अवशिष्ट रहे तो उतारकर छान ले । शीतल हो जानेके बाद उसमें दो सौ पल शहद डाले । इसके बाद खाँड़ सौ पल, धायके फूल बीस पल, कंकोल, नागकेशर, जायफल, लौंग, इलायची, दालचीनी, तेजपात, ये औष-

धियें एक-एक पल, पीपरि चार पल, यह सब एकत्रितकर चूर्ण करके उस काढ़े-में मिलावे। फिर सबको घीके चिकने बर्तनमें भरकर मुख बन्द करके रख दे। एक महीनेके बाद निकालके पीवे तो असाध्य कुष्ठरोग, हृदयरोग, पाण्डुरोग, अर्बुदरोग, गोला, ग्रन्थि, कृमिरोग, श्वाँस, खाँसी, प्लीहा रोग, ये सब बाधायें दूर हो जाती हैं ॥ ६४–६९ ॥

क्षयादिकोंपर बब्बूलारिष्ट

तुलाद्वयं च बबुल्याश्चतुर्द्रोणे जले पचेत् ।
द्रोणशेषे रसे शीते गुडस्य त्रितुलां क्षिपेत् ॥ ७० ॥
धातकीं षोडशपलां कृष्णां च द्विपलां तथा ।
जातीफलानि कंकोलमेला त्वक्पत्रकेशरम् ॥ ७१ ॥
लवंगं मरिचं चैव पलिकान्युपकल्पयेत् ।
मासं भाण्डे स्थितस्त्वेष बब्बूलारिष्टको जयेत् ॥ ७२ ॥
क्षयं कुष्ठमतीसारं प्रमेहश्वासकासनुत् ।

दो तुला बबूलकी छालको जौकूट करके चार द्रोण पानीमें डालकर काढ़ा करे। जब केवल एक द्रोण जल शेष रहे तो उतारकर छान ले और शीतल हो जानेपर उसमें तीन तुला गुड़, सोलह पल धायके फूल, दो पल पीपरि और जायफल, कंकोल, इलायचीके दाने, दालचीनी, पत्रज, नागकेसर, लौंग, काली मिर्च इन औषधियोंको एक-एक पलके प्रमाणसे लेकर चूर्ण करे और उस चूर्ण-को काढ़ेमें डालकर सब वस्तुयें घीके चिकने बर्तनमें भरकर उसका मुख बन्द करके एक महीनेके लिए रख दे। समय पूरा हो जानेपर मुख खोलकर रस निकाल ले। यह बब्बूलारिष्ट कहलाता है। इसको पीनेसे क्षय, कुष्ठ, अतीसार, प्रमेह, खाँसी और श्वास ये समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ७०—७२ ॥

उरःक्षतादिकोंपर द्राक्षारिष्ट

द्राक्षा तुलार्धं द्विद्रोणे जलस्य विपचेत्सुधीः ॥ ७३ ॥
पादशेषे कषाये च पूते शीतं विनिक्षिपेत् ।
गुडस्य द्वितुलां तत्र त्वगेलापत्रकेशरम् ॥ ७४ ॥
प्रियंगुर्मरिचं कृष्णा विडङ्गं चेति चूर्णयेत् ।
पृथक्पलोन्मितैर्भागैस्ततो भाण्डे निधापयेत् ॥ ७५ ॥

स्थापयित्वा ततो मासं ततो जातरसं पिबेत्।
उरःक्षतं क्षयं हन्ति कासश्वासगलामयान्॥ ७६॥
द्राक्षारिष्टाह्वयः प्रोक्तो बलकृन्मलशोधनः।

आधा तुला मुनक्का दो द्रोण जलमें पकावें। जब एक चौथाई जल शेष रहे तो उतारकर छान ले। जब वह शीतल हो जाय तो उसमें दो तुला गुड़ डाले और दालचीनी, इलायचीके दाने, पत्रज, नागकेसर, फूल प्रियंगु, कालीमिर्चें, पीपरि तथा वायविडंग, इन औषधियोंको एक-एक पलके प्रमाणसे लेकर चूर्ण करके उस काढ़ेमें मिला दे। इसके बाद उन सबको एक चिकने पात्रमें भरकर मुख बन्द करके रख दे। महीनेभर बाद मुँह खोलकर रस निकाले। इसे लोग द्राक्षारिष्ट कहते हैं। इसका सेवन करनेसे उरःक्षत, क्षय, खाँसी, श्वास तथा कंठरोग, ये सब रोग नष्ट हो जाते हैं। साथ ही यह बल बढ़ाता और मलको भी साफ करता है॥ ७३-७६॥

अर्शादि रोगोंपर रोहितारिष्ट

रोहीतकतुलामेकां चतुर्द्रोणे जले पचेत्॥ ७७॥
पादशेषे रसे शीते पूते पलशतद्वयम्।
दद्याद्गुडस्य धातक्याः पलषोडशिका मता॥ ७८॥
पंचकोलं त्रिजातं च त्रिफलां च विनिक्षिपेत्।
चूर्णयित्वा पलांशेन ततो भाण्डे निधापयेत्॥ ७९॥
मासादूर्ध्वं च पिबतां गुदजा यान्ति संक्षयम्।
ग्रहणीं पाण्डुहृद्रोगप्लीहगुल्मोदराणि च।
कुष्ठशोफारुचिहरो रोहितारिष्टसंज्ञकः॥ ८०॥

एक तुला रोहिडाको जौकूट करके चार द्रोण जलमें डालके काढ़ा करे। जब केवल एक द्रोण जल शेष रहे तो उतारकर छान लें। जब शीतल हो जाय तब उसमें दो सौ पल गुड़ डाले। तत्पश्चात् धायके फूल सोलह पल, पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चीतेकी छाल, सोंठ, दालचीनी, इलायचीके बीज, पत्रज, हरड़, बहेड़ा और आँवला ये औषधियाँ एक-एक पलके प्रमाणसे एकत्रित करके सबका चूर्ण करे और पूर्वकथित काढ़ेमें डालकर किसी चिकने बर्तनमें भरकर और उसका मुख बन्द करके एक महीनेके लिए रख दे। इसके बाद बर्तनका मुख खोलकर रस निकाल

ले। इसकी रोहिताष्टक संज्ञा है। इसका सेवन करनेसे बवासीर, संग्रहणी, पाण्डु-रोग, हृदयरोग, प्लीहा, गोला, उदररोग, कुष्ठ, सूजन और अरुचि, ये सब बाधाएँ दूर हो जाती हैं॥ ७७–८०॥

क्षयप्रमेहादिकोंपर दशमूलारिष्ट

पर्ण्यौ बृहत्यौ गोकण्टो बिल्वोऽग्निमन्थकोऽरलुः।
पाटला काश्मरी चेति दशमूलमिहोच्यते॥ ८१॥
दशमूलानि कुर्वीत भागैः पंचपलैः पृथक्।
पञ्चविंशत्पलं कुर्याच्चित्रकं पौष्करं तथा॥ ८२॥
कुर्याद्विंशत्पलं लोध्रं गुडूची तत्समा भवेत्।
पलैः षोडशभिर्धात्री रविसंख्यैर्दुरालभा॥ ८३॥
खदिरो बीजसारश्च पथ्या चेति पृथक्पलैः।
अष्टभिर्गुणितं कुष्ठं मंजिष्ठा देवदारु च॥ ८४॥
विडंगं मधुकं भार्ङ्गी कपित्थोऽक्षः पुनर्नवा।
चव्यं मांसी प्रियंगुश्च सारिवा कृष्णजीरकः॥ ८५॥
त्रिवृता रेणुका रास्ना पिप्पली क्रमुकः शटी।
हरिद्रा शतपुष्पा च पद्मकं नागकेशरम्॥ ८६॥
मुस्तमिन्द्रयवः शृंगी जीवकर्षभकौ तथा।
मेदा चान्या महामेदा काकोल्यौ ऋद्धिवृद्धिके॥ ८७॥
कुर्यात्पृथग्द्विपलिकान्पचेदष्टगुणे जले।
चतुर्थांशं शृतं नीत्वा मृद्भाण्डे सन्निधापयेत्॥ ८८॥
चतुःषष्टिपलां द्राक्षां पचेन्नीरे चतुर्गुणे।
त्रिपादशेषं शीतं च पूर्वक्वाथे शृतं क्षिपेत्॥ ८९॥
द्वात्रिंशत्पलिकं क्षौद्रं दद्याद् गुडचतुःशतम्।
त्रिंशत्पलानि धातक्याः कंकोलं जलचन्दनम्॥ ९०॥
जातीफलं लवंगं च त्वगेलापत्रकेशरम्।
पिप्पली चेति संचूर्ण्य भागैर्द्विपलिकैः पृथक्॥ ९१॥
शाणमात्रां च कस्तूरीं सर्वमेकत्र निःक्षिपेत्।
भूमौ निखातयेद्भाण्डं ततो जातरसं पिबेत्॥ ९२॥

कतकस्य फलं क्षिप्त्वा रसं निर्मलतां नयेत् ।
ग्रहणीमरुचिं श्वासं कासं गुल्मं भगन्दरम् ॥ ६३ ॥
वातव्याधिं क्षयं छर्दिं पाण्डुरोगं च कामलाम् ।
कुष्ठान्यर्शांसि मेहांश्च मन्दाग्निमुदराणि च ॥ ६४ ॥
शर्करामश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं धातुक्षयं जयेत् ।
कृशानां पुष्टिजननो वंध्यानां गर्भदः परः ।
अरिष्टो दशमूलाख्यस्तेजःशुक्रबलप्रदः ॥ ६५ ॥

शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, दोनों प्रकारकी बृहती, गोखरू, बेल, अरनी, अरलु, पाटला, काश्मरी, इन दस औषधियोंकी दशमूल संज्ञा है। सो उस दशमूलकी प्रत्येक औषधियोंको आधे पलके प्रमाणसे एकत्रित करके चीतेकी छाल पचीस पल, पोहकर मूल पचीस पल, लोध बीस पल, आँवले सोलह पल, धमासा बारह पल, खैरकी छाल आठ पल, विजयसार आठ पल, हड़ आठ पल, कूठ, मंजीठ, देवदारु, वायबिडंग, मुलहठी, भारंगी, कैथ, बहेड़ा, पुनर्नवा, चव्य, जटामासी, प्रियंगु, सारिवा, काल जीरा, निसोथ, रेणुकाबीज, रास्ना, पीपरि, सुपारी, कचूर, हल्दी, सौंफ, पद्माख, नागकेसर, नागरमोथा, इन्द्रजौ, काकड़ा-सिंगी, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली तथा क्षीरकाकोली और ऋद्धि–वृद्धि इन सब औषधियोंको दो-दो पलके हिसाबसे एकत्र करे। तदनन्तर उन सबको जौकुट करके उन औषधियोंकी अपेक्षा अठगुने पानीमें डालकर काढ़ा तैयार करे। चौथाई जल शेष रहनेपर उतार ले और इसे किसी चिकने पात्रमें भरकर रख दे। इसके बाद चौंसठ पल मुनक्केमें मुनक्केकी अपेक्षा चौगुना जल डालकर आगपर चढ़ा दे। जब तीन हिस्सा पानी शेष रहे तो उतारकर कपड़ेसे छान ले। इसके बाद इस काढ़ेको भी उसी पहलेवाले काढ़ेमें मिला दे। इस प्रकार दोनों काढ़ोंको एकत्र करके उसमें बत्तीस पल शहद, चार सौ पल गुड़, तीस पल धायके फूल, इन वस्तुओंको डाल दे। कंकोल, नेत्रबाला, सफेद चन्दन, जायफल, लौंग, दालचीनी, इलायचीके दाने, तेजपात, नागकेसर तथा पीपरि, इन वस्तुओंको दो-दो पलके हिसाबसे लेकर चूर्ण करे और ये वस्तुयें तथा एक शाण कस्तूरीको उक्त काढ़ेमें डालकर उसका मुख बन्द करके एक महीने या एक पक्षके लिए उस पात्रको जमीनमें गाड़ दे। जब यह

समझ ले कि उन औषधियोंका उत्तम रस तैयार हो गया होगा तब बाहर करके उसका मुख खोले। इस समय इसमें थोड़ा-सा निर्मलीका चूर्ण डाल दे। तो वह रस और भी स्वच्छ हो जायगा। इस रीतिसे तैयार किये हुए रसको लोग दशमूलारिष्ट कहते हैं। इसका सेवन करनेसे संग्रहणी, अरुचि, श्वास, खाँसी, गोला, भगन्दर, वातज रोग, क्षय, वमन, पाण्डु, कामला कुष्ठ, बवासीर, प्रमेह, मन्दाग्नि, उदररोग, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र तथा धातुक्षय, ये सब रोग दूर हो जाते हैं। यह अरिष्ट सेवन करनेसे दुर्बल मनुष्यको बली बनाता, बंध्या स्त्रियोंको गर्भ धारण करनेकी योग्यता सम्पादन करता और प्रत्येक प्राणीको तेज, बल तथा वीर्य प्रदान करता है ॥ ८१–९५ ॥ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरविरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने आसवारिष्टकल्पना नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः।

स्वर्णादि धातुओंकी संख्या और उनका शोधन

स्वर्णतारं ताम्रमारं नागवङ्गौ च तीक्ष्णकम्।
धातवः सप्त विज्ञेयास्ततस्ताञ्छोधयेद्बुधः ॥ १ ॥
स्वर्णताराऽरताम्राणां पत्राण्यग्नौ प्रतापयेत्।
निषिंचेत्तप्ततप्तानि तैले तक्रे च कांजिके ॥ २ ॥
गोमूत्रे च कुलित्थानां कषाये च त्रिधा त्रिधा।
एवं स्वर्णादिलोहानां विशुद्धिः सम्प्रजायते ॥ ३ ॥
नागवंगौ प्रतप्तौ च गलितौ तौ निषेचयेत्।
त्रिधा त्रिधा विशुद्धिः स्याद्रविदुग्धेन च त्रिधा ॥ ४ ॥

सुवर्ण, चाँदी, तामा, जस्ता, सीसा, राँगा और लोहा, ये ही सात धातु हैं। वैद्यको चाहिए कि पहले इनका शोधन कर ले तब काममें लावे। शोधन करनेकी यह रीति है कि सोना, चाँदी, जस्ता और तामा, इनको खूब पतले टुकड़ोंका पत्तर करके बार-बार अग्निमें तपा-तपा कर तेल, छाँछ, काँजी, गोमूत्र तथा कुलथीके काढ़ोंमें बुझावे। सुवर्णादि सातों धातुओंको शुद्ध करनेका यही नियम है। किन्तु

सीसा और राँगा, ये दो धातु बहुत मुलायम धातु हैं यानी आगपर चढ़ानेके थोड़ी देर बाद ही गल जाते हैं । अतएव इनकी शुद्धिके लिए कुछ खास नियम है । जैसे–सीसे और राँगेको आगपर चढ़ा दे जब वह गल जाय तो तेलमें उलट दे । ऐसे तीन बार गला-गलाकर तेलमें डाले । फिर तीनोंको तीन ही बार गला-गला और मदारके दूधमें डाल-डालकर बुझावे तो ये शुद्ध हो जाते हैं ॥ १—४ ॥

सुवर्ण भस्म करनेकी विधि

स्वर्णाच्च द्विगुणं सूतमम्लेन सह मर्दयेत् ।
तद्गोलके समं गन्धं निदध्यादधरोत्तरम् ॥ ५ ॥
गोलकं च ततो रुन्ध्याच्छरावदृढसंपुटे ।
त्रिंशद्वनोपलैर्दद्यात्पुटान्येवं चतुर्दश ॥ ६ ॥
निरुत्थं जायते भस्म गन्धो देयः पुनः पुनः ।

खूब बारीक चूर्ण किये हुए सुवर्णको शुद्ध किये हुए पारेके द्विगुण भागके साथ खलमें डालकर नीबूके रसमें खरल करे । जब सब पारा सुवर्णके चूर्णपर चढ़ जाय और उसका गोला बँध जाय तब गोलेके ही समान मात्राकी शुद्ध आँवलासार गन्धक खलमें डालकर अत्यन्त बारीक चूर्ण करे । इसके बाद मट्टीके दो कसोरे ले । एकमें आधे कसोरे तक नीचे गन्धकका चूर्ण भरकर उसके ऊपर उस सुवर्णमिश्रित पारेके गोलेको रखकर ऊपरसे भी गन्धककी बुकनी डालकर दूसरे कसोरेसे बन्द कर दे । ऊपर सात कपड़मिट्टी करके तीस जंगली (बिनुये) उपलोंको लेकर आधे उस सम्पुटके नीचे और आधे ऊपर रक्खे यानी बीचमें रखकर आग लगा दे । जब उपले जलकर अपने आप बुझ जायँ तो उस सम्पुटको निकालकर पहलेकी तरह फिर पारेमें खरल करे । खरल करनेके बाद फिर आँच दे । इस तरह बराबर पाँच आँच देनेसे सुवर्ण बिल्कुल भस्म हो जाता है । ऐसा होनेपर चाहे कितना ही घी-सुहागे आदि डाले । फिर भी वह जीवित नहीं हो सकता ॥ ५ ॥ ६ ॥

सुवर्णमारणकी दूसरी विधि

कांचने गालिते नागं षोडशांशेन निक्षिपेत् ॥ ७ ॥
चूर्णयित्वा तथाम्लेन घृष्ट्वा कृत्वा च गोलकम् ।
गोलकेन समं गन्धं दत्त्वा चैवाधरोत्तरम् ॥ ८ ॥

शरावसम्पुटे धृत्वा पुटे त्रिंशद्वनोपलैः।
एवं सप्तपुटैर्हेम निरुत्थं भस्म जायते ॥ ६ ॥

सुवर्णको अग्निपर रखकर गलावे। फिर उसमें सुवर्णका षोडशांश सीसा गलाकर ढाल दे। इसके अनन्तर उस सोनेको रेतीसे रेतकर चूर्ण करे और नीबू-के रसमें घोंटकर गोला बना ले। फिर उस गोलेके बराबर शुद्ध गंधक डालकर फिर-से खरल करके गोला बनावे। तत्पश्चात् मिट्टीके दो कसोरे लेकर एक कसोरेमें आधा गंधकका चूर्ण भरकर उस गोलेको रख दे। ऊपरसे भी गंधकका चूर्ण भरकर दूसरे कसोरेसे ढाँक दे। उसपर सात कपड़मिट्टी करके तीस अरने उपलोंके बीचमें वह संपुट रखकर फूँक दे। इस तरह सात बार खरल करके फूँके। इस प्रकार सात आँच देनेसे सुवर्णकी बढ़िया भस्म तैयार होती है। इसी रीतिसे तैयार भस्मका सुवर्ण फिर किसी तरह जीवित नहीं होता ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥

सुवर्ण भस्म करनेकी तीसरी विधि

कांचनाररसैर्घृष्ट्वा समसूतकगन्धयोः।
कज्जली हेमपत्राणि लेपयेत्सममात्रया ॥ १० ॥
कांचनारत्वचः कल्कं मूषायुग्मं प्रकल्पयेत्।
धृत्वा तत्सम्पुटे गोलं मृन्मूषासम्पुटे च तत् ॥ ११ ॥
निधाय सन्धिरोधं च कृत्वा संशोष्य गोमयैः।
वह्निं खरतरं कुर्यादेवं दद्यात्पुटत्रयम् ॥ १२ ॥
निरुत्थं जायते भस्म सर्वकार्येषु योजयेत्।
कांचनारप्रकारेण लांगली हन्ति कांचनम् ॥ १३ ॥
ज्वालामुखी यथा हन्यात्तथा हन्ति मनःशिला।

गंधक तथा पारा इन दोनों चीजोंको बराबर-बराबर लेकर खरलमें डाले और खूब खरल करके कजली तैयार करे। जितनी कजली हो उसीके समान भागवाले सुवर्णके पत्रोंमें वह कजली पोत दे। इसके बाद कचनारकी छालको पीसकर उसके दो मूसे बनावे। तत्पश्चात् एक मूसेमें वह सुवर्णपत्र रखकर दूसरे-से ढाँक दे। ऊपरसे कपड़मिट्टी कर दे। ऐसा करके उसे धूपमें सुखा ले और अरने उपलोंके बीचमें रखकर फूँक दे। इस तरह तीन बार अग्निपुट देनेसे सुवर्णकी उत्तम और निरुत्थ भस्म तैयार होती है। यह प्रत्येक रोगपर काम देती

है। इसी तरह कलियारीके रसमें पारे तथा गंधकका खरल करके कजली तैयार करे। उसे सुवर्णके पत्रोंपर पोतकर कलियारीके मूसेमें भरकर फूँक दे तो भी सुवर्ण-की उत्तम भस्म तैयार होती है। कुछ लोग ज्वालामुखीके रसकी कजलीको लीपकर दो कसोरोंके सम्पुटमें रखकर फूँकते और सुवर्णभस्म तैयार करते हैं। उसी तरह मैनसिलकी कजलीको सुवर्णपत्रपर लेप करके मूसेमें रखते और फूँककर सुवर्ण-भस्म तैयार करते हैं॥ १०–१३॥

सुवर्णभस्म करनेकी अन्य विधियां

शिलासिंदूरयोश्चूर्णं समयोरर्कदुग्धकैः॥ १४॥
सप्तैव भावना दद्याच्छोषयेच्च पुनः पुनः।
ततस्तु गलिते हेम्नि कल्कोऽयं दीयते समः॥ १५॥
पुनर्धमेदतितरां यथा कल्को विलीयते।
एवं वेलात्रयं दद्यात्कल्कं हेममृतिर्भवेत्॥ १६॥

मैनसिल तथा सिन्दूर, इन दोनों वस्तुओंको बराबर-बराबर लेकर चूर्ण करे और उसे मदारके दूधमें खल करके धूपमें सुखा ले। इस तरह उसको सात पुट दे। तत्पश्चात् सुवर्णको गलाकर उसमें वही (सिन्दूर और मैनसिलका) चूर्ण डाले। जब तक यह चूर्ण सुवर्णमें बिल्कुल मिल न जाय अर्थात् अलग न दिखाई दे, तब तक धौंकनीसे बराबर धौंकता जाय। इस तरह केवल तीन पुट देनेसे सुवर्णकी उत्तम भस्म तैयार हो जाती है॥ १४–१६॥

सुवर्णभस्मका प्रकारान्तर

पारावतमलैर्लिम्पेदथवा कुक्कुटोद्भवैः।
हेमपत्राणि तेषां च प्रदद्यादधरोत्तरम्॥ १७॥
गन्धचूर्णं समं दत्त्वा शरावयुगसम्पुटे।
प्रदद्यात्कुक्कुटपुटं पंचभिर्गोमयोपलैः॥ १८॥
एवं नवपुटान्दद्याद्दशमं च महापुटम्।
त्रिंशद्वनोपलैर्देयं जायते हेमभस्मकम्॥ १९॥
सुवर्णं च भवेत्स्वादु तिक्तं स्निग्धं हिमं गुरु।
बुद्धिविद्यास्मृतिकरं विषहारि रसायनम्॥ २०॥

इसकी भस्म तैयार करनेका एक प्रकार यह भी है कि सुवर्णके पत्रोंपर कबूतर तथा मुर्गेकी बीटका लेप कर दे। इसके बाद गन्धकका चूर्ण लेकर एक कसोरेमें आधे तक बिछावे। उसके ऊपर सुवर्णके पत्र रखकर ऊपरसे फिर गंधकका चूर्ण भरकर दूसरे कसोरेसे ढाँक दे। इसके बाद उसपर कपड़मिट्टी करके सुखा ले और गैयाके गोबरसे बने हुए पाँच उपलोंके बीचमें रखकर फूँक दे। इस तरह साधारण नौ पुट देनेके बाद दसवीं बार तीस उपलोंका महापुट दे तो सुवर्णकी भस्म तैयार हो जाती है। यह स्वादिष्ट, कड़वी, स्निग्ध, ठंढी और भरी है। इसका सेवन करनेसे बुद्धिमें विलक्षणता आती, भूली हुई विद्या याद आ जाती और शरीरकी विषबाधा दूर हो जाती है। यह रसायन है ॥ १७-२० ॥

रौप्य (चाँदी) की भस्म

भागैकं तालकं मर्द्य याममम्लेन केनचित्।
तेन भागत्रयं तारपत्राणि परिलेपयेत् ॥ २१ ॥
धृत्वा मूषापुटे रुद्ध्वा पुटे त्रिंशद्वनोपलैः।
समुद्धृत्य पुनस्तालं दत्त्वा रुद्ध्वा पुटे पचेत् ॥ २२ ॥
एवं चतुर्दशपुटैस्तारं भस्म प्रजायते।

एक भाग हड़तालको पहर भर नींबूके रस या कि किसी भी खटाईमें खरल करे। तत्पश्चात् हड़तालसे तिगुनी चाँदीके पत्र लेकर उसपर इस हड़तालका लेप कर दे। फिर उसे एक कसोरेमें रखकर दूसरे कसोरेसे ढाँके और कपड़मिट्टी करके सुखा ले। तदनन्तर उसे तीस आरने उपलोंके बीचमें रखकर फूँके। इसी तरह चौदह बार पुट देनेसे चाँदीकी उत्तम भस्म तैयार हो जाती है ॥२१॥२२॥

चाँदीकी भस्म तैयार करनेकी दूसरी विधि

स्नुहीक्षीरेण संपिष्टं माक्षिकं तेन लेपयेत् ॥ २३ ॥
तालकस्य प्रकारेण तारपत्राणि बुद्धिमान्।
पुटेच्चतुर्दशपुटैस्तारं भस्म प्रजायते ॥ २४ ॥

अथवा थूहरके दूधमें एक भाग माक्षिकके चूर्णका खरल करे। इसके बाद माक्षिककी अपेक्षा तिगुने चाँदीके पत्रोंको लेकर उनपर उस चूर्णका लेप कर दे। फिर कसोरोंके संपुटमें उसे रखकर कपड़मिट्टी करे और धूपमें सुखा ले। फिर

आरने उपलोंमें रखकर फूँके। इस तरह चौदह बार फूँकनेसे चाँदीकी उत्तम भस्म तैयार हो जाती है ॥ २३ ॥ २४ ॥

ताम्र-भस्मविधि

सूक्ष्माणि ताम्रपत्राणि कृत्वा खल्वे विनिक्षिपेत् ॥ २५ ॥
पादांशं सूतकं दत्त्वा याममम्लेन मर्दयेत्।
तत उद्धृत्य पत्राणि लेपयेद्द्विगुणेन च ॥ २६ ॥
गन्धकेनाम्लघृष्टेन तस्य कुर्याच्च गोलकम्।
ततः पिष्ट्वा च मीनाक्षीं चांगेरीं वा पुनर्नवाम् ॥ २७ ॥
तत्कल्केन बहिर्गोलं लेपयेदंगुलोन्मितम्।
धृत्वा तद्गोलकं भाण्डे शरावेण च रोधयेत् ॥ २८ ॥
वालुकाभिः प्रपूर्याथ विभूतिलवणाम्बुभिः।
दत्त्वा भाण्डमुखे मुद्रां ततश्चुल्ल्यां विपाचयेत् ॥ २९ ॥
क्रमवृद्ध्याग्निना सम्यग्यावद्यामचतुष्टयम्।
स्वांगशीतलमुद्धृत्य मर्दयेत्सूरणद्रवैः ॥ ३० ॥
दिनैकं गोलकं कुर्यादर्धं गन्धेन लेपयेत्।
सघृतेन ततो मूषापुटे गजपुटे पचेत् ॥ ३१ ॥
स्वांगशीतं समुद्धृत्य मृतं ताम्रं शुभं भवेत्।
वान्तिं भ्रान्तिं क्लमं मूर्च्छां न करोति कदाचन ॥ ३२ ॥

तामेके बिल्कुल महीन-महीन टुकड़े करके तीन दिन तक नीबूके रस या किसी और खटाईमें डालकर उसका संस्वेदन करे। इसके बाद उन पत्रोंको तामेकी अपेक्षा चतुर्थांश पारेके साथ खरलमें डाल करके नीबूके रसमें पहर भर घोंटकर निकाल ले। फिर तामेके टुकड़ोंकी अपेक्षा दूनी गंधक नीबूके रसमें खरल करे। फिर उसे ताँबेके पत्रोंपर लेप करके एक गोला तैयार करे। इसके बाद मीनाक्षी (कुटकी) अथवा चांगेरी या पुनर्नवाको पीसकर उस गोलेके चारों ओर एक अंगुल मोटा लेप कर दे। फिर उसे किसी बर्तनमें रखकर ऊपर कसोरेसे ढाँक दे और उसके ऊपरसे बालू भर दे। इसके बाद राख तथा नमकको जलमें घोलकर उसीसे उस पात्रके मुखपर मुद्रा कर दे और चूल्हेपर चढ़ाकर क्रमशः पहले धीमी, फिर उससे कुछ तेज, फिर उससे भी तेज आँच बराबर चार प्रहर तक

देता रहे। फिर उतार ले और जब वह शीतल हो जाय तो बाहर निकालकर सूरनके रससे दिनभर खरल करे। इसके बाद उसका गोला बनाकर उसकी आधी गंधक घीमें पीसकर उस गोलेके चारों ओर लेप करे। फिर एक कसोरेमें उस गोलेको रखकर दूसरे कसोरेसे ढाँकदे और कपड़मिट्टी करके आरने उपलोंमें गजपुटके क्रमसे रखकर फूँक दे! जब आँच ठंढी हो जावे तब उस संपुटको बाहर निकाले और उसमेंसे सम्हालकर भस्म निकाल ले। यह ताम्रभस्म बड़ी उत्तम गुणवाली वस्तु है। इसका सेवन करनेसे वमन, भ्रान्ति, आलस्य तथा मूर्छा कभी भी पास नहीं आती ॥ २५-३२ ॥

जस्ते तथा पीतलकी भस्म

अर्कक्षीरेण संपिष्टो गन्धकस्तेन लेपयेत्।
समेनारस्य पत्राणि शुद्धान्यम्लद्रवैर्मुहुः ॥ ३३ ॥
ततो मूषापुटे धृत्वा पुटेद्गजपुटेन च।
एवं पुटद्वयेनैव भस्मारं भवति ध्रुवम् ॥ ३४ ॥
आरवत्कांस्यमप्येव भस्मतां याति निश्चितम्।
अर्कक्षीरं वटक्षीरं निर्गुण्डीक्षीरिकां तथा ॥ ३५ ॥
ताम्ररीतिध्वनिवधे समगन्धकयोगतः।

अब जस्ते, पीतल तथा तामाकी भस्म तैयार करनेकी विधि बतलाते हैं। जस्ते अथवा पीतलके पतले पत्र करके उसे सात बार अग्निमें तपा-तपाकर नीबूके रसमें बुझावे। इससे वह शुद्ध हो जायगा। इसके बाद उन पत्रोंके बराबर हिस्सेकी गंधकको मदारके दूधमें खरल करके उन पत्रोंपर लेप कर दे। फिर उन पत्रोंको मट्टीके मूसेमें रखकर दूसरे मूसेसे ढाँक दे और उसका मुख बन्द करके उसके ऊपरसे कपड़मिट्टी कर दे। तदनन्तर उसे विनुए उपलोंके गजपुटमें रखकर फूँक दे। इस रीतिसे केवल दो पुट देनेसे उस जस्ते या पीतलकी उत्तम भस्म तैयार हो जायगी। काँसेकी भस्मको भी तैयार करनेमें यही उपाय लागू होता है। इसके अतिरिक्त तामा और पीतल आदिकी भस्म तैयार करनेके और भी उपाय हैं। जैसे—तामा, पीतल अथवा काँसा, इनमेंसे जिस किसीकी भस्म तैयार करनी हो उसके बराबर गंधक लेकर मदार, बरगद या गौके दूध अथवा निर्गुण्डीके रसमें

खरल करके उन पत्रोंपर अलग-अलग लेप करके आरने उपलोंमें रखकर दो बार फूँकनेसे धातुओंकी उत्तम भस्म तैयार हो जाती है ॥ ३३—३५ ॥

सीसेकी भस्म

ताम्बूलीरससंपिष्टशिलालेपात्पुनः पुनः ॥ ३६ ॥
द्वात्रिंशद्भिः पुटैर्नागो निरुत्थो याति भस्मताम् ।

नागरवेलके पत्तोंका रस निचोड़कर मैनसिल पीसे और उसके ही समान भागके सीसेके पत्रोंपर उसका लेप करे । फिर एक मिट्टीके कसोरेमें उक्त सीसेके पत्रोंको रखे और दूसरे कसोरेसे ढाँककर ऊपरसे कपड़मिट्टी करके धूपमें सुखा ले । इसके बाद एक गड्ढा खोदकर जंगली उपले भरकर गजपुटकी विधिसे फूँके । इस तरह बत्तीस आँच देनेपर सीसेकी निरुत्थ भस्म तैयार हो जाती है । इसे कोई नागभस्म और कोई कोई नागेश्वर भस्म कहते हैं ॥ ३६ ॥

सीसेके मारणका दूसरा प्रकार

अश्वत्थचिञ्चात्वक्चूर्णं चतुर्थांशेन निक्षिपेत् ॥ ३७ ॥
मृत्पात्रे द्राविते नागे लोहदर्व्या प्रचालयेत् ।
यामैकेन भवेद्भस्म तत्तुल्यां च मनःशिलाम् ॥ ३८ ॥
कांजिकेन द्वयं पिष्ट्वा पचेद्दृढपुटेन च ।
स्वांगशीतं पुनः पिष्ट्वा शिलया कांजिकेन च ॥ ३९ ॥
पुनः पुटेच्छरावाभ्यामेवं षष्टिपुटैर्मृतिः ।

एक मिट्टीके बर्तनको चूल्हेपर चढ़ा दे और उसमें सीसा रखकर गलावे। जब वह गलकर रसकी तरह हो जाय तो सीसेकी चौथाईके बराबर पीपल अथवा इमलीकी छालका चूर्ण लेकर थोड़ा-थोड़ा बुरकता हुआ लोहेकी कलछीसे चलाता रहे । इस तरह एक प्रहर पर्यन्त करनेसे सीसेकी भस्म तैयार हो जायगी । तदनन्तर उस भस्मके बराबर मैनसिल लेकर उस भस्म तथा मैनसिल, इन दोनों-का खरल करे । इसके बाद एक मिट्टीके कसोरेमें वह भस्म भरदे और दूसरे कसोरेसे ढाँककर कपड़मिट्टी करके एक गड्ढा खोदकर उसमें बनैले उपले भरे । बीचमें वह शरावसम्पुट रखकर ऊपरसे भी उपले भर दे । इस प्रकार गजपुटकी विधिके अनुसार आँच देवे । जब वह शीतल हो जाय तो बाहर निकालकर

उसके दो बराबर मैनसिल मिलाकर काँजीमें खरल करके एक कसोरेमें रखे और ऊपरसे कपड़मिट्टी करके बनैले उपलोंमें फूँक दे। इस रीतिसे साठ पुट और देनेपर शीशेकी उत्तम भस्म तैयार हो जायगी ॥ ३७–३९ ॥

वंग (राँगा) भस्म करनेका प्रकार

मृत्पात्रे द्राविते वंगे चिञ्चाश्वत्थत्वचो रजः ॥ ४० ॥
क्षिप्त्वा तेन चतुर्थांशमयोदर्व्या प्रचालयेत्।
ततो द्वियाममात्रेण वंगभस्म प्रजायते ॥ ४१ ॥
अथ भस्मसमं तालं क्षिप्त्वाम्लेन प्रमर्दयेत्।
ततो गजपुटे पक्त्वा पुनरम्लेन मर्दयेत् ॥ ४२ ॥
तालेन दशमांशेन याममेकं ततः पुटेत्।
एवं दश पुटैः पक्वो वंगस्तु म्रियते ध्रुवम् ॥ ४३ ॥

एक मिट्टीके पात्रको चूल्हेपर चढ़ा दे और उसमें राँगा रखकर गलावे। जब वह पानीकी तरह पतला हो जाय तो उसमें इमली अथवा पीपलकी छालका चूर्ण थोड़ा-थोड़ा डालता हुआ कलछीसे चलाता जाय। दो पहर तक ऐसा करनेसे राँगेकी भस्म तैयार हो जायगी। इसके बाद भस्मके बराबर हरताल ले और दोनों वस्तुओंको नीबूके रसमें खरलकर एक कसोरेमें सम्पुट करके ऊपरसे कपड़मिट्टी कर गड्ढा खोदे और बनैले उपलोंके गजपुटमें रखकर फूँक दे। जब वह शीतल हो जाय तो बाहर निकालकर भस्मका दशमांश हरताल नीबूके रसमें खरल करके कसोरेके सम्पुटमें रखकर पूर्वोक्त विधिके अनुसार बनैले उपलोंके गजपुटमें फूँक दे। इस तरह दस आँच देनेसे राँगेकी उत्तम भस्म तैयार होती है। इसको लोग वंगभस्म कहते हैं। यदि इस राँगेमें ही पहले पारा मिलावे और उस राँगे-का पत्र करके भस्म तैयार करे तो उसे लोग वंगेश्वर भस्म कहते हैं ॥४०–४३॥

लौह भस्म करनेका प्रकार

शुद्धं लौहभवं चूर्णं पातालगरुडीरसैः।
मर्दयित्वा पुटेद्वह्नौ दद्यादेवं पुटत्रयम् ॥ ४४ ॥
पुटत्रयं कुमार्याश्च कुठारच्छिन्निकारसैः।
पुटषट्कं ततो दद्यादेवं तीक्ष्णमृतिर्भवेत् ॥ ४५ ॥

शुद्ध लोह (फौलाद या खेरी लोह) को रेतीसे रेतकर चूर्ण करे। फिर पातालगरुड़ीके रसमें खरल करके कसोरेके संपुटमें रखे और बनैले उपलोंके गज-पुटमें रखकर आग लगा दे। जब शीतल हो जाय तो निकालकर फिर पूर्व विधिके अनुसार अग्निपुट दे। उसी प्रकार घीकुवारके रसमें भी तीनही पुट देवे। तदनन्तर वनतुलसीके रसकी पुट दे। इस युक्तिसे पुट देनेपर लोहेकी उत्तम भस्म तैयार होती है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

लोह भस्म करनेका दूसरा प्रकार

क्षिपेद् द्वादशकांशेन पारदं तीक्ष्णलोहतः।
मर्दयेत्कन्यकाद्रावैर्यामयुग्मं ततः पुटेत् ॥ ४६ ॥
एवं सप्तपुटैर्मृत्युं लोहचूर्णमवाप्नुयात्।
रसैः कुठारच्छिन्नायाः पातालगरुडीरसैः ॥ ४७ ॥
स्तन्येन चार्कदुग्धेन तीक्ष्णस्यैवं मृतिर्भवेत्।

किसी कड़े लोहेको रेतीसे रेतकर चूर्ण करे। फिर उसका बारहवाँ हिस्सा हिंगुल लेकर घीकुवारके रसमें दो पहर तक खरल करे। तदनन्तर एक मिट्टीके कसोरेके संपुटमें उसे रखकर वनैले उपलोंमें फूँक दे। इस तरह सात पुट देनेसे लोहेकी उत्तम भस्म तैयार हो जाती है। इसके भस्म करनेका एक प्रकार और भी है। वह यह कि वनतुलसी, पातालगरुड़ी, किसी स्त्रीके दूध अथवा मदारके दूधमें सिंगरिफ मिलाकर लोहेको घोंट-घोंटकर पृथक्-पृथक् सात बार अग्नि देवे तो भी लोहेकी उत्तम भस्म तैयार हो जाती है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

लोहभस्मका तीसरा प्रकार

सूतकाद्द्विगुणं गन्धं दत्त्वा कुर्याच्च कज्जलीम् ॥ ४८ ॥
द्वयोः समं लोहचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः।
यामयुग्मं ततः पिण्डं कृत्वा ताम्रस्य पात्रके ॥ ४९ ॥
घर्मे धृत्वा ऋबूकस्य पत्रैराच्छादयेद् बुधः।
यामार्धेनोष्णता भूयाद्धान्यराशौ न्यसेत्ततः ॥ ५० ॥
तस्योपरि शरावं तु त्रिदिनांते समुद्धरेत्।
पिष्ट्वा च गालयेद्वस्त्रादेवं वारितरं भवेत् ॥ ५१ ॥
एवं सर्वाणि लोहानि स्वर्णादीन्यपि गालयेत्।

पारेकी अपेक्षा दुगुना गन्धक लेकर दोनोंकी कजली तैयार करे। फिर उसके ही बराबर लोहेका चूर्ण लेकर इन दोनोंको घीकुवारके रसमें दो पहर तक खरल करके गोला बनावे। इसके बाद उसे किसी तामेके बर्तनमें रखकर ऊपरसे दो अथवा तीन रेंड्के पत्तोंसे ढाँककर चार घड़ीके लिये धूपमें रख दे। जब कि घाम लगनेसे वह गोला गरम हो जाय तो कसोरेके संपुटमें रखकर धान्यकी राशिके भीतर उसे तीन दिनके वास्ते गाड़ दे। चौथे रोज़ बाहर निकाले और कपड़छान करके उसमेंसे थोड़ा-सा लेकर पानीमें डाले। यदि पानीमें डालनेपर वह भस्म तैरती रह जाय तो उसे उत्तम भस्म समझना चाहिए॥ ४८–५१॥

सब धातुओंकी भस्मविधि

शिलागन्धार्कदुग्धाक्ताः स्वर्णं वा सर्वधातवः॥ ५२॥
म्रियन्ते द्वादशपुटैः सत्यं गुरुवचो यथा।

मैनसिल तथा गन्धक, इन दोनों वस्तुओंको आकके दूधमें घोंटकर सुवर्ण आदि किसी भी धातुपर लेप करके आरने उपलोंके द्वादश गजपुट देनेसे वे धातु मर जाते हैं और उनकी भस्म तैयार हो जाती है। यह बात गुरुवाक्यके सदृश सत्य है॥ ५२॥

सात उपधातु

माक्षिकं तुत्थकाभ्रौ च नीलांजनशिलाऽऽलकाः॥ ५३॥
रसकश्चेति विज्ञेया एते सप्तोपधातवः।

सुवर्णमाक्षिक, लीलाथोथा, अभ्रक, नीलाञ्जन (सुर्मा), मैनसिल, हड़ताल तथा खपरिया, ये सात उपधातु माने गये हैं॥ ५३॥

सुवर्णमाक्षिकका शोधन और मारणविधि

माक्षिकस्य त्रयो भागा भागैकं सैन्धवस्य च॥ ५४॥
मातुलुङ्गद्रवैर्वाथ जंबीरोत्थद्रवैः पचेत्।
चालयेल्लोहजे पात्रे यावत्पात्रं सुलोहितम्॥ ५५॥
भवेत्ततस्तु संशुद्धिं स्वर्णमाक्षिकमृच्छति।
कुलत्थस्य कषायेण घृष्ट्वा तैलेन वा पुटेत्॥ ५६॥
तक्रेण वाऽऽजमूत्रेण म्रियेत स्वर्णमाक्षिकम्।

तीन भाग सुवर्णमाक्षिक और एक भाग सेंधानमक लेकर दोनोंका चूर्ण करे। इसके अनन्तर दोनों वस्तुओंको एक कड़ाहीमें रखे और चूल्हेपर चढ़ाकर नीचे अग्नि जलावे। फिर उसमें बिजोरे तथा जंभीरी नीबूका रस डालकर लोहेकी कलछीसे चलावे। कड़ाही आगकी तरह लाल हो जाय तो चूल्हेसे उतारकर नीचे रख दे। जब ठंढी हो जाय तो सुवर्णमाक्षिककी भस्म उसमेंसे अलग कर ले। यह सुवर्णमाक्षिक शोधन करनेकी रीति है। इस तरह शुद्ध हो जानेपर उस भस्मको कुलथीके काढ़े, तिलके तेल, छाछ या बकरीके मूत्रमें खरल करके कसोरोंके संपुट-में रखकर उसपर कपड़मिट्टी करके आरने उपलोंमें फूँके तो सुवर्णमाक्षिक भस्म तैयार हो जाती है ॥ ५४–५६ ॥

रौप्यमाक्षिकका शोधन और मारण

कर्कोटी मेषशृंग्युत्थैर्द्रवैर्जंबीरजैर्दिनम् ॥ ५७ ॥
भावयेदातपे तीव्रे विमला शुद्ध्यति ध्रुवम् ।

यदि रूपामाखीकी मारणक्रिया करनी हो तो उसका चूर्ण करके ककोड़ा, मेंढ़ा-सिंगी तथा जंभीरी नीबूके रसमें क्रमशः एक एक रोज़ खरल करके घाममें सुखा ले। यह हुई रौप्य माक्षिकको शुद्ध करनेकी रीति और मारणक्रिया तो ऊपर बतलाई हुई सुवर्णमाक्षिकके ही समान जाननी चाहिये ॥ ५७ ॥

तूतियाका शोधन

विष्ठया मर्दयेत्तुत्थं मार्जारककपोतयोः ॥ ५८ ॥
दशांशं टंकणं दत्वा पचेन्मृदुपुटे ततः ।
पुटं दध्नः पुटे क्षौद्रैर्देयं तुत्थविशुद्धये ॥ ५९ ॥

जितना कि लीलाथोथा (तूतिया) हो, उतनीही बिल्ली तथा कबूतरकी विष्ठा और लीलाथोथेका दशमांश सोहागा लेकर सबका खरल करे। इसके बाद उसे मिट्टीके कसोरेके संपुटमें रखकर ऊपरसे कपड़मिट्टी कर दे। फिर आरने उपलोंके बीचमें मृदुपुटकी रीतिसे रखकर फूँके। जब अग्नि शीतल हो जाय तो उसे बाहर निकाले और दहीमें खरल करके फिर पहलेकी तरह हल्की आँच दे। तदनन्तर शहदमें खरल करके आँच दे तो लीलाथोथाकी शुद्धि हो जाती है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

अभ्रकका शोधन और मारण

कृष्णाभ्रकं धमेद्वह्नौ ततः क्षीरे विनिक्षिपेत् ।
भिन्नपत्रं तु तत्कृत्वा तन्दुलीयाम्लयोर्द्रवैः ॥ ६० ॥
भावयेदष्टयामं तदेवं शुद्ध्यति चाभ्रकम् ।
कृत्वा धान्याभ्रकं तच्च शोषयित्वाथ मर्दयेत् ॥ ६१ ॥
अर्कक्षीरैर्दिनं खल्वे चक्राकारं च कारयेत् ।
पेषयेदर्कपत्रैश्च सम्यग्गजपुटे पचेत् ॥ ६२ ॥
पुनर्मर्द्यं पुनः पाच्यं सप्तवारं प्रयत्नतः ।
ततो वटजटाक्वाथैस्तद्वद्देयं पुटत्रयम् ॥ ६३ ॥
म्रियते नात्र संदेहः सर्वरोगेषु योजयेत् ।
मृतं त्वभ्रं हरेन्मृत्युं जरापलितनाशनम् ॥ ६४ ॥
अनुपानैश्च संयुक्तं तत्तद्रोगहरं परम् ।

पहले कृष्ण अभ्रकको आगमें डालकर तपावे । तप जानेपर उसे निकालकर दूधमें बुझावे । तत्पश्चात् उसके पत्रोंको अलग-अलग करके चौराई और नीबूके रसमें डालकर आठ पहर पर्यन्त तपा-तपाकर बुझावे । इस क्रियाके करनेसे अभ्रक शुद्ध हो जाता है । तदनन्तर उस रसमेंसे उसे निकाल ले और अभ्रकको धान्याभ्रकके रूपमें परिणत करके मदारके दूधमें एक पहर तक खरल करे और उसकी गोलाकार चकतियाँ बना ले । इसके बाद उन टिकियाओंके चारों ओर मदारके पत्ते लपेटकर शरावसंपुटमें रक्खे । फिर ऊपरसे कपड़मिट्टी करके धूपमें सुखा ले । इसके अनन्तर उसे वनैले उपलोंके गजपुटमें रखकर फूँक दे । इस रीतिके अनुसार दिनभर खरल करके रातको पुट दे और सवेरे फिर खरल कर दूसरी रातको पुट दे । सात पुट जब तक न हो जाय तब तक यही क्रम चलावे । इसके बाद बड़की जटाके रसमें खरल करके पुट दे । इस प्रकार तीन गजपुट देनेसे अभ्रककी उत्तम भस्म तैयार हो जाती है । यह भस्म प्रत्येक रोगोंके काममें लाना चाहिए । यह भस्म किया भया अभ्रक मनुष्यकी अकाल मृत्युकी आशंकाको दूर करता और बुढ़ौती तथा बालोंकी सफेदीको नष्ट करता है । अनुपानभेदसे यह अनेक रोगोंका दूर करनेवाला है । ऊपर धान्याभ्रककी चर्चा आ चुकी है, सो उसके तैयार करनेकी रीति यह है कि अभ्रकको खूब महीन कतरकर धानमें मिलावे

और कंबलमें पोटली बाँधकर परातमें रख दे। इसके बाद उसपर एक हाथसे पानी डाले और दूसरे हाथसे उसे मसलता जाय। ऐसा करनेसे कंबलकी पोटलीका सारा अभ्रक पानीमें छन जायगा। जब सब अभ्रक परातमें आ जाय तब परातके पानीको निथार ले और नीचे बैठे अभ्रकके चूर्णको घाममें सुखाकर अलग रख दे। इस प्रकार निकाले हुए अभ्रकको ही लोग धान्याभ्रक कहते हैं ॥ ६०–६४ ॥

दूसरी विधि

शुद्धं धान्याभ्रकं मुस्तं शुण्ठीषड्भागयोजितम् ॥ ६५ ॥
मर्दयेत्कांजिकेनैव दिनं चित्रकजै रसैः ।
ततो गजपुटं दद्यात्तस्मादुद्धृत्य मर्दयेत् ॥ ६६ ॥
त्रिफलावारिणा तद्वत्पुटेदेवं पुटैस्त्रिभिः ।
बलागोमूत्रमुसलीतुलसीसूरणद्रवैः ॥ ६७ ॥

ऊपर बतलाये हुए शुद्ध धान्याभ्रकका षष्ठांश नागरमोथा और सोंठका चूर्ण मिला ले। इसके बाद एक दिन कांजीमें इसका खरल करे। तदनन्तर एक दिन चित्रक (चीतेके) रसमें खरल करे और शरावसंपुटमें रखकर कपड़मिट्टी करे और बनैले उपलोंमें गजपुटकी रीतिसे तीन आँच दे। इसके बाद खरेटीके रस, खरेंटीके काढ़े, तुलसीपत्रके रस तथा सूरनके रसमें अलग-अलग खरल कर करके क्रमशः तीन-तीन गजपुट देवे। इस प्रकार आँच देनेसे अभ्रककी उत्तम भस्म तैयार होती है ॥ ६५–६७ ॥

सुरमा और गैरकादिकोंकी शोधनविधि

नीलांजनं चूर्णयित्वा जंबीरद्रवभावितम् ॥ ६८ ॥
दिनैकमातपे शुद्धं भवेत्कार्येषु योजयेत् ।
एवं गैरिककासीसं टंकणानि वराटिका ॥ ६९ ॥
तुवरीशंखकं कुष्ठं शुद्धिमायाति निश्चितम् ।

सुरमेके डलेका चूर्ण करके जंभीरी नीबूके रसमें खरल करे। फिर उसे दिनभर धूपमें सुखावे। यह विधि सुरमेको शुद्ध करनेकी है। गेरू, हीराकसीस, सुहागा, कौड़ी, फिटकरी तथा मुरदाशंखके भी शुद्ध करनेकी यही रीति है ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

मैनसिलकी शोधनविधि

पचेत्त्र्यहमजामूत्रैर्दोलायंत्रे मनःशिलाम् ॥ ७० ॥
भावयेत्सप्तधा पित्तैरजायाः शुद्धिमृच्छति ।

तीन दिन तक मैनसिलको दोलायंत्रमें रखकर पकावे । इसके बाद बकरीके पित्तेके साथ सात भावना दे तो मैनसिल शुद्ध हो जाता है ॥ ७० ॥

हरतालकी शोधनविधि

तालकं कणशः कृत्वा तच्चूर्णं कांजिके क्षिपेत् ॥ ७१ ॥
दोलायन्त्रेण यामैकं ततः कूष्मांडजैर्द्रवैः ।
तिलतैले पचेद्यामं यामं च त्रिफलाजलैः ॥ ७२ ॥
एवं यन्त्रे चतुर्यामं पाच्यं शुद्ध्यति तालकम् ।

हरतालका महीन चूर्ण करके कपड़ेकी पोटलीमें बाँधकर कांजीमें डाल दे । फिर दोलायंत्रमें रखकर कांजीमें एक प्रहर तथा पहर ही भर तिलके तेलमें डालकर पकावे । इस विधिसे चार प्रहर तक पकानेसे हरताल शुद्ध हो जाता है ॥७१॥७२॥

खपरियाको शोधनविधि

नृमूत्रे वाथ गोमूत्रे सप्ताहं रसकं क्षिपेत् ।
दोलायन्त्रेण शुद्धिः स्यात्ततः कार्येषु योजयेत् ॥ ७३ ॥

यदि खपरिया शुद्ध करनी हो तो मनुष्यके अथवा गैयाके मूत्रमें सात दिन तक दोलायंत्रमें रखकर पकानेसे खपरिया शुद्ध होती है । यह शुद्ध की हुई खपरिया ही औषधिमें डालनी चाहिए । ऊपर दोलायंत्र का नाम कई बार आचुका है । उसकी विधि यह है कि जिस किसी द्रव पदार्थमें औषधिको पकानेका विधान बताया गया हो, उसे किसे घड़े या हाँडी आदिमें भरकर शोधनीय औषधिको एक पोटलीमें बाँधे और उसे उसके भीतर एक लकड़ीके सहारे लटकाकर नीचेसे आँच देकर पकावे । इसीको लोग दोलायंत्र कहते हैं ॥ ७३ ॥

अभ्रक हरताल आदिसे सत्त्व निकालनेकी विधि

लाक्षामानपयश्छागं टंकणं मृगश्रृंगकम् ॥ ७४ ॥
पिण्याकं सर्षपाः शिग्रुगुंजोर्णागुडसैंधवाः ।
यवास्तिक्ता घृतं क्षौद्रं यथालाभं विचूर्णयेत् ॥ ७५ ॥
एभिर्विमिश्रताः सर्वे धातवो गाढवह्निना ।
मूषाध्माताः प्रजायंते मुक्तसत्त्वा न संशयः ॥ ७६ ॥

यदि हरताल आदिमेंसे सत्त्व निकालना हो तो, लाख, नछली, बकरीका दूध, सुहागा, हरिणको सींग, तिलकी खली, सरसों, सहजनके बीज, घुँघची, ऊन, गुड़, सेंधा नमक, जौ, कुटकी, घी तथा शहद, ये वस्तुयें एकत्रित करके जिस किसी धातुका सत्त्व निकालना हो उस धातुका अष्टमांश ऊपर बतलायी हुई औषधियें लेकर सबका चूर्ण करे और एक गोला-सा बना करके मिट्टीके बने मूसेमें रखकर कोयलोंकी आँचमें धरकर खूब धौंकनी दे। ऐसा करनेसे हरताल, अभ्रक आदि उपधातुओंका सत्त्व निकल आता और वह उपधातु सत्त्वविहीन हो जाया करता है। इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं है ॥ ७४–७६ ॥

हीराका शोधन और मारण

कुलित्थकोद्रवक्वाथैर्दोलायंत्रे विपाचयेत् ।
व्याघ्रीकंदगतं वज्रं त्रिदिनं शुद्धिमृच्छति ॥ ७७ ॥
तप्तं तप्तं तु तद्वज्रं खरमूत्रे निषेचयेत् ।
पुनस्ताप्यं पुनः सेच्यमेवं कुर्यात्त्रिसप्तधा ॥ ७८ ॥
मत्कुणैस्तालकं पिष्ट्वा यावद्भवति गोलकम् ।
तद्गोलं निहितं वज्रं तद्गोलं वह्निना धमेत् ॥ ७९ ॥
सेचयेदश्वमूत्रेण तद्गोलं च क्षिपेत्पुनः ।
रुद्ध्वाध्मातं पुनः सेच्यमेवं कुर्याच्च सप्तधा ॥ ८० ॥
एवं च म्रियते वज्रं चूर्णं सर्वत्र योजयेत् ।

व्याघ्रीकन्दको खूब पीसकर एक गोला-सा बना ले और उसमें हीरेको रख दे। फिर उस गोलेको कपड़ेकी पोटलीमें रखकर दोलायंत्र द्वारा कुलथीके काढ़ेमें तीन दिन और तीन ही दिन कोदोंके काढ़ेमें पकावे तो हीरा शुद्ध हो जाता है। इसके अनन्तर हीरेको पोटलीमेंसे निकालकर आगमें तपावे और तप जानेपर गधेके मूत्रमें बुझा दे। इस तरह इक्कीस बार उसे तपा-तपाकर बुझावे। इसके पश्चात् हड़तालमें खटमल मिलाकर पीसे और गोला बनाकर उसके बीचमें हीरेको रख दे। फिर उसको मिट्टीके बने मूसेमें रखकर कोयलोंकी आँचमें खूब अच्छी तरह तपावे। तप जानेपर उसे घोड़ेके मूतमें बुझा दे। इसके बाद उसे निकालकर फिर खटमलके रुधिरमें हरतालको पीसे और गोला बनाकर उसके भीतर हीरेको रख कोयलोंकी आँचमें धौंके। जब अतिशय संतप्त हो जाय तो उसे

घोड़ेके मूतमें फिर बुझावे । इस तरह सात आँच दे-देकर बुझानेसे हीरा जलकर खाक हो जाता है । यह भस्म सब प्रकारके रोगोंका निवारण करती है ॥७७-८०॥

हीरेकी भस्मकी दूसरी विधि

हिंगुसैन्धवसंयुक्ते क्वाथे कौलत्थजे क्षिपेत् ॥ ८१ ॥
तप्तं तप्तं पुनर्वज्रं भूयाच्चूर्णं त्रिसप्तधा ।

हीरेको इक्कीस बार तपा-तपाकर, हींग, सेंधा नमक तथा कुलथीके काढ़ेमें बुझानेसे हीरेकी भस्म तैयार हो जाती है ॥ ८१ ॥

तीसरी विधि

मंडूकं कांस्यजे पात्रे निगृह्य स्थापयेत्सुधीः ॥ ८२ ॥
स भीतो मूत्रयेत्तत्र तन्मूत्रे वज्रमावपेत् ।
तप्तं तप्तं च बहुधा वज्रस्यैवं मृतिर्भवेत् ॥ ८३ ॥

अथवा मेढकोंको पकड़कर किसी काँसेके पात्रमें बन्द कर दे । जब वे डरके मारे मूत दें तो वह मूत्र सम्हालकर रख ले और हीरेको खूब अच्छी तरह तपा-तपाकर उस मूत्रमें अनेक बार बुझावे तो भी हीरेकी भस्म तैयार हो जाती है ॥८२॥८३॥

वैक्रांतका शोधन और मारण

वैक्रांतं वज्रवच्छोध्यं नीलं वा लोहितं तथा ।
हयमूत्रे तु तत्सेच्यं तप्तं तप्तं द्विसप्तधा ॥ ८४ ॥
ततस्तु मेषशृंग्युक्तपंचांगगोलके क्षिपेत् ।
पुटेन्मूषापुटे रुद्ध्वा कुर्यादेवं च सप्तधा ॥ ८५ ॥
वैक्रांतं भस्मतां याति वज्रस्थाने नियोजयेत् ।

यदि वैक्रान्त अर्थात् नीलमणिकी भस्म करनी हो तो पूर्वोक्त वज्रशोधनकी रीतिसे उसका शोधन करके अग्निमें तपा-तपाकर चौदह बार घोड़ेके मूत्रमें बुझावे। तदनन्तर मेढ़ासिंगीके पंचांगको पीसकर गोलासा बनावे और उसमें उस वैक्रान्त मणिको रखकर कपड़मिट्टी करके बनैले उपलोंमें गजपुटकी विधिसे फूँके । इस तरह सात आंच देनेसे वह मणि भस्म हो जाती है । जब कि हीरेकी भस्म न मिले, उसी मौकेपर इसे काममें लाना चाहिए ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

सम्पूर्ण रत्नोंका शोधन और मारण

स्वेदयेद्दोलिकायन्त्रे जयन्त्याः स्वरसेन च ॥ ८६ ॥

मणिमुक्ताप्रवालानां यामैकं शोधनं भवेत्।
कुमार्या तन्दुलीयेन स्तन्येन च निषेचयेत् ॥ ८७ ॥
प्रत्येकं सप्तवेलं च तप्ततप्तानि कृत्स्नशः।
मौक्तिकानि प्रवालानि तथा रत्नान्यशेषतः ॥ ८८ ॥
क्षणाद्विविधवर्णानि म्रियंते नात्र संशयः।
उक्तमाक्षिकवन्मुक्ताः प्रवालानि च मारयेत् ॥ ८६ ॥
वज्रवत्सर्वरत्नानि शोधयेन्मारयेत्तथा।

सूर्यकान्त मणि, मोती और मूँगेको जयन्तीके रसमें दोलायन्त्र द्वारा एक पहर तक पकावे। ऐसा करनेसे उक्त वस्तुयें शुद्ध हो जाती है। इसके बाद घीकुवार, चौराईका रस और स्त्रीके दूध, इन तीनों वस्तुओंमें मणि, मोती तथा मूँगे आदिको तपा-तपाकर बुझावे। इस तरह एक-एक रसमें सात-सात बार बुझानेसे क्षणभरमें उनकी भस्म तैयार हो जाती है। अथवा पहले जो विधि सुवर्णमाक्षिकके मारणकी बतला आये हैं। उसीके अनुसार मोती और मूँगेका मारण करे और सब मणियोंको हीरेकी मारणविधिसे भस्म करे ॥८६–८९॥

शिलाजीतका शोधन

शिलाजतु समानीय ग्रीष्मतप्तशिलाच्युतम् ॥ ९० ॥
गोदुग्धैस्त्रिफलाक्वाथैर्भृंगद्रावैश्च मर्दयेत्।
आतपे दिनमेकैकं तच्छुष्कं शुद्धतां व्रजेत् ॥ ९१ ॥

गरमीके कारण शिलामेंसे निकले हुए रसको लोग शिलाजतु या शिलाजीत कहते हैं। उसे लाकर गौके दूध, त्रिफलाके काढ़े तथा भाँगरेके रसमें एक एक दिन अलग-अलग खरल करके धूपमें सुखा ले तो शिलाजीत शुद्ध हो जाती है ॥ ९० ॥ ९१ ॥

दूसरा प्रकार

मुख्यां शिलाजतुशिलां सूक्ष्मखण्डप्रकल्पिताम्।
निक्षिप्यात्युष्णपानीये यामैकं स्थापयेत्सुधीः ॥ ९२ ॥
मर्दयित्वा ततो नीरं गृह्णीयाद्वस्त्रगालितम्।
स्थापयित्वा च मृत्पात्रे धारयेदातपे बुधः ॥ ९३ ॥
उपरिस्थं घनं च स्यात्तत्क्षिपेदन्यपात्रके।
धारयेदातपे धीमानुपरिस्थं घनं नयेत् ॥ ९४ ॥

एवं पुनः पुनर्नीत्वा द्विमासाभ्यां शिलाजतु।
भूयात्कार्यक्षमं वह्नौ क्षिप्तं लिङ्गोपमं भवेत् ॥ ९५ ॥
निर्धूमं च ततः शुद्धं सर्वकर्मसु योजयेत्।
अधः स्थितं च यच्छेषं तस्मिन्नीरं विनिक्षिपेत् ॥ ९६ ॥
विमर्द्य धारयेद्धर्मे पूर्ववच्चैव तन्नयेत्।

अथवा जिस पत्थरसे शिलाजीत निकलता है, उसमेंसे किसी एक अच्छे पत्थरके टुकड़ेको लेकर खूब छोटे-छोटे टुकड़े कर डाले और खूब खौलते हुए पानीमें एक पहर तक भिगावे। इसके बाद उन टुकड़ोंको पीसकर कपड़ेसे छान ले और उसी पानीके साथ मिट्टीकी नाँदमें भरकर धूपमें रख दे। थोड़ी देर बाद जब पानी पर मलाई सी तैरने लगे तो उस मलाई सरीखे पदार्थको उतारकर एक दूसरे बर्तनमें रखता जाय। इस तरह जितनी भी नाँदें रक्खी गयी हों, उन सबकी मलाई जुटाकर इकट्ठी करे। इसके बाद उस मलाईके पात्रमें भी गरम जल डालकर धूपमें रख दे। जब उसमें भी मलाई पड़ने लगे तो उसे उतार-उतारकर किसी तीसरे बर्तनमें रखता जाय। थोड़ी देर बाद उसमें भी गरम जल डालकर धूपमें रख दे। जब उसमें भी मलाई आवे तो उतारकर पहलेकी शुद्धकी भयी नाँदमें उस मलाईको एकत्र करे। इस रीतिसे बराबर एकमें से निकालकर दूसरेमें रखता जाय और पहली नादमें नीचे जो गरद बैठ गयी हो, उसे फिर जलमें पीसकर छान ले। पहलेको विधिके अनुसार इसमेंसे भी मलाई उतारे। इस तरह दो महीने तक करनेसे शिलाजीत अच्छी तरह शुद्ध हो जाती है ॥९२-९६॥

मंडूर बनानेकी विधि

अक्षांगारैर्धमेत्किट्टं लोहजं तद्द्रवां जलैः ॥ ९७ ॥
सेचयेत्तप्ततप्तं च सप्तवारं पुनः पुनः।
चूर्णयित्वा ततः क्वाथैर्द्विगुणैस्त्रिफलाभवैः ॥ ९८ ॥
आलोड्य भर्जयेद्वह्नौ मण्डूरं जायते वरम्।

बहेड़ेकी लकड़ीके अंगारोंपर लोहेकी कीटको खूब अच्छी तरह तपावे। जब वह लाल हो जाय तो उसे गोमूत्रमें बुझावे। इस तरह सात बार आगमें तपा-तपाकर गोमूत्रमें बुझाता जाय। इसके बाद उस कीटको बारीक पीसकर उससे दूने त्रिफलाके रसमें धरे। उसमें उस कीटके चूर्णको डालकर हाँडीका

मुख ढाँककर ऊपरसे कपड़मिट्टी कर दे। फिर आरने उपलोंमें गजपुटकी रीतिसे रखकर फूँक दे। जब शीतल हो जाय तो निकाल ले। यही सर्वोत्तम मण्डूर होता है। इसे सब प्रकारके योगोंमें मिलाया जा सकता है ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

क्षार बनानेकी विधि

क्षारवृक्षस्य काष्ठानि शुष्काण्यग्नौ प्रदीपयेत् ॥ ९९ ॥
विमर्द्य धारयेद्रात्रौ प्रातरच्छजलं नयेत् ॥ १०० ॥
तन्नीरं क्वाथयेद्वह्नौ यावत्सर्वं विशुष्यति ।
ततः पात्रात्समुल्लिख्य क्षारो ग्राह्यः सितप्रभः ॥ १०१ ॥
चूर्णाभः प्रतिसार्यः स्यात्पेयः स्यात्क्वाथवत्स्थितः ।
इति क्षारद्वयं धीमान्युक्तकार्येषु योजयेत् ॥ १०२ ॥

अब क्षार निकालनेकी विधि बतलाते हैं। जिस किसी वृक्षका क्षार निकालना हो, उसकी सूखी लकड़ी जलावे। जब वह जलकर राख हो जाय तो राख बटोरकर एक घड़ेमें भर दे और राखकी अपेक्षा चौगुना पानी डालकर रातभर रक्खा रहने दे। सबेरे उस घड़ेके जलको कड़ाहीमें निथारकर आगपर चढ़ा दे और सब पानी जला डाले। इसके अनन्तर कड़ाहीमें जो सफेद-सफेद पदार्थ लगा रहे उसको निकाल ले। यही क्षार है। इसको कुछ लोग प्रतिसार भी कहते हैं। काढ़ेके समान पतला क्षार पेय कहलाता है। बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि योग्य कामोंमें इसका उपयोग करे ॥ ९९–१०२ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने धातुशोधनमारण-कल्पना नाम नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः ।

पारदके नाम तथा सूर्यादि नवग्रहोंके अनुसार ताम्रादि नौ धातुओंकी संज्ञा

पारदः सर्वरोगाणां जेता पुष्टिकरः स्मृतः ।
सुज्ञेन साधितः कुर्यात्संसिद्धिं देहलोहयोः ॥ १ ॥
रसेन्द्रः पारदः सूतो हरजः सूतको रसः ।
मिश्रकश्चेति नामानि ज्ञेयानि रसकर्मसु ॥ २ ॥

ताम्रताराऽरनागाश्च हेमवङ्गौ च तीक्ष्णकम् ।
सूर्यादीनां ग्रहाणां ते कथिता नामभिः क्रमात् ॥ ३ ॥

किसी चतुर मनुष्य द्वारा सिद्ध किया हुआ पारा सब प्रकारके रोगोंको जीतने में समर्थ, शरीरको पुष्ट करनेवाला तथा देह और लोहको सिद्ध करनेवाला है। यानी युक्तिपूर्वक खानेसे शरीर नीरोग होता और लोह, तामा, जस्ता आदि धातुओंमें पड़कर उन्हें सुधार देता है। रसेन्द्र, पारद, सूत, हरज, सूतक, रस और मिश्रक ये रसकार्योंके विषयमें पारदके नाम गिनाये गये हैं। ताम्र, चाँदी, पीतल, जस्ता, सीसा, सुवर्ण, राँगा, फौलाद तथा कान्तलोह ये नवों धातु क्रमशः सूर्य आदि ग्रहोंके नाम-परक हैं। कहनेका मतलब यह कि जितने सूर्यके नाम हैं, वे सब ताम्रके नाम है। जितने चन्द्रमाके नाम हैं, वे सब चाँदीके नाम हैं। जितने मंगलके नाम हैं, वे जस्ता और पीतलके नाम जानने चाहियें। इसी तरह और-और ग्रहोंके नामकी भी कल्पना कर लेनी चाहिए ॥ १—३ ॥

पारेका शोधन

राजीरसोनमूषायां रसं क्षिप्त्वा विबंधयेत् ॥ ४ ॥
वस्त्रेण दोलिकायंत्रे स्वेदयेत्कांजिकैस्त्र्यहम् ।
दिनैकं मर्दयेत्सूतं कुमारीसंभवैर्द्रवैः ॥ ५ ॥
तथा चित्रकजैः क्वाथैर्मर्दयेदेकवासरम् ।
काकमाची रसैस्तद्वद्दिनमेकं च मर्दयेत् ॥ ६ ॥
त्रिफलायास्ततः क्वाथे रसो मर्द्यः प्रयत्नतः ।
ततस्तेभ्यः पृथक्कुर्यात्सूतं प्रक्षाल्य कांजिकैः ॥ ७ ॥
ततः क्षिप्त्वा रसं खल्वे रसादर्धं च सैन्धवम् ।
मर्दयेन्निंबुकरसैर्दिनमेकमनारतम् ॥ ८ ॥
ततो राजीरसोनश्च मुख्यश्च नवसादरः ।
एतै रससमैस्तद्वत्सूतो मर्द्यस्तुषाम्बुना ॥ ९ ॥
ततः संशोष्य चक्राभं कृत्वा क्षिप्त्वा च हिंगुना ।
द्विस्थालीसंपुटे धृत्वा पूरयेल्लवणेन च ॥ १० ॥
अथ स्थाल्यां ततो मुद्रां दद्याद्दृढतरां बुधः ।
विशोष्याग्निं विधायाधो निषिंचेदंबुनोपरि ॥ ११ ॥

ततस्तु कुर्यात्तीव्राग्निं तदधः प्रहरत्रयम्।
एवं निपातयेदूर्ध्वं रसो दोषविवर्जितः।
अथार्धपिठरीमध्ये लग्नो ग्राह्यो रसोत्तमः ॥ १२ ॥

राई और लहसुन, इन दोनों वस्तुओंको पीसकर उसका मूस बनावे। उसीमें पारेको भरे और पोटली बाँधकर दोलायंत्र द्वारा कांजीमें तीन दिनतक पकावे। इसके बाद उसमेंसे निकालकर घीकुवारके रसमें दिनभर खरल करे। फिर चीतेकी छालके काढ़ेमें दिनभर खरल करके मालकाँगनीके रस तथा त्रिफलाके काढ़ेमें भी तीन दिन तक खरल करे। इसके बाद उसे काँजीसे धोकर साफ करे और खरलमें डालकर पारेका अर्धांश सेंधानमक डाले और नीबूके रसमें अथवा और किसी खटाईमें दिनभर खरल करे। इसके बाद पारेके बराबर राई, लहसुन तथा नौसादर इन तीन वस्तुओंको डालकर धानकी भूसीके काढ़ेमें खरल करे। इस तरह खरल करते-करते जब वह सूख जाय तो उसकी गोल-गोल टिकिया बनावे और उनके चारों तरफ हींगका लेप दे दे। उन्हें ऊर्ध्वपातन यंत्रकी रीतिसे एक घड़ेमें भरकर

दोलायंत्र

ऊर्ध्वपातनयंत्र
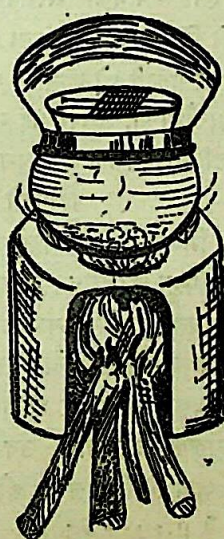
उसमें नमक डाल दे और उस घड़ेके ऊपर भी औंधा हुआ एक घड़ा रखकर कपड़मिट्टी करके धूपमें सूखा ले। सूख जानेके बाद उसे चूल्हेपर चढ़ाकर नीचे-से आँच दे और ऊपरवाले घड़ेके ऊपर गीले कपड़ेका पुचारा देता रहे। ऐसा करनेसे यह लाभ होगा कि ऊपरवाला घड़ा ठंढा रहेगा और उसमें जमता हुआ पारा नीचे न गिरकर ऊपर उड़ेगा। यदि ऐसा करनेमें असुविधा हो तो ऊपरवाले घड़ेके पेंदेपर किसी युक्तिसे पानी भरदे। इस रीतिसे उस नीचेवाले घड़ेमें बराबर तीन पहर तक तेज आँच देता रहे। जब वह शीतल हो जाय तो उतार ले और हल्के हाथसे ऊपरके घड़ेमें जमे हुए पारेको निकाल ले। यह पारा अतिशय शुद्ध और निर्दोष होता है। इस लिए इसीको काममें लाना चाहिए॥ ४–१२॥

गंधकका शोधन

लोहपात्रे विनिक्षिप्य घृतमग्नौ प्रतापयेत्।
तप्ते घृते तत्समानं क्षिपेद्गंधकजं रजः॥ १३॥
विद्रुतं गंधकं ज्ञात्वा दुग्धमध्ये विनिक्षिपेत्।
एवं गन्धकशुद्धिः स्यात् सर्वकार्येषु योजयेत्॥ १४॥

किसी लोहेके पात्रको आँचपर चढ़ावे और उसमें घी डाल दे। जब घी तप जाय तो जितना घी हो उतना ही आमलासार गन्धक चूर्ण करके डाले। जब गन्धक गलकर पतली हो जाय तो एक ऐसे पात्रमें जिसके भीतर दूध भरा हो और मुंहपर कपड़ा बँधा हो, उसपर वह गन्धक डाल दे। जब टंढी हो जाय तो निकाल ले और जहाँ आवश्यकता पड़े, बराबर यही गन्धक काममें लावे॥ १३॥ १४॥

हिंगुलसे पारा निकालनेकी विधि

निम्बूरसैर्निंबपत्ररसैर्वा याममात्रकम्॥ १५॥
पिष्ट्वा दरदमूर्ध्वं च पातयेत्सूतयुक्तिवत्।
ततः शुद्धरसं तस्मान्नीत्वा कार्येषु योजयेत्॥ १६॥

नीबू अथवा नीमके पत्तोंके रसमें हिंगुलका एक प्रहर तक खरल करे। इसके बाद उसे डमरूयंत्रमें भरकर चूल्हेपर चढ़ावे और नीचेसे तेज आँच दे। ऐसा करनेसे हिंगुलका सारा पारा उड़-उड़कर ऊपरके घड़ेमें जम जायगा। जब वह शीतल हो जाय तो निकाल ले और समय पड़नेपर काममें लावे। यह पारा भी शुद्ध होता है॥ १५॥ १६॥

डमरूयंत्र
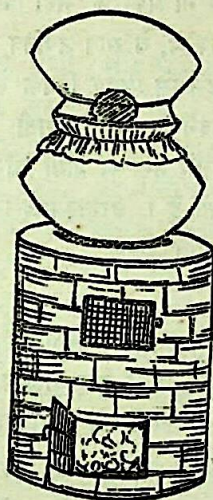
हिंगुलका शोधन

मेषीक्षीरेण दरदमम्लवर्गैश्च भावितम्।
सप्तवारं प्रयत्नेन शुद्धिमायाति निश्चितम्॥ १७॥

हिंगुलका खरल करके भेंड़के दूध तथा नीबूके रसमें सात-सांत भावना देनेसे शुद्ध हो जाता है। यह बात निश्चित है॥ १७॥

शुद्ध पारेके मुख करनेकी विधि

कालकूटो वत्सनाभः शृंगकश्च प्रदीपकः।
हालाहलो ब्रह्मपुत्रो हारिद्रः सक्तुकस्तथा॥ १८॥
सौराष्ट्रिक इति प्रोक्ता विषभेदा अमी नव।
अर्कसेहुण्डधत्तूरलांगलीकरवीरकम्॥ १९॥
गुंजाहिफेनावित्येताः सप्तोपविषजातयः।
एतैर्विमर्दितः सूतश्छिन्नपक्षः प्रजायते॥ २०॥
मुखं च जायते तस्य धातूँश्च ग्रसते क्षणात्।

कालकूट, वत्सनाभ, शृंगक (सींगिया), प्रदीपक, हालाहल, ब्रह्मपुत्र, हारिद्र, सक्तुक तथा सौराष्ट्रिक ये नौ प्रकारके महा विष होते हैं। आक, धतूरा, कलियारी, कनेर, गुंजा और अफीम, ये सात उपविष हैं। महाविष तथा उपविष कुल मिलाकर सोलह हुए। इनमेंसे प्रत्येक विषके साथ सात-सात दिन यदि पारेको घोंटा जाय तो पारेकी उड़नेकी शक्ति जाती रहती और उसमें यह विलक्षणता आ जाती है कि उसमें मुख हो जाता और वह सुवर्ण आदि धातुओंको क्षणमात्रमें उदरस्थ कर लेता है। हरीतक्यादि निघण्टुके मतानुसार यहाँपर उपर्युक्त महाविषोंके लक्षण बतलाते हैं—

१ कालकूट—

पृथुमाली नामक दैत्यसे एक वृक्षकी उत्पत्ति हुई थी। उसी वृक्षकी गोंदको लोग कालकूट कहते हैं। यह कीचड़की तरह मुलायम होता है। शृङ्गवेर पर्वत, मलयाचल तथा कोंकण देशमें इसकी विशेष उत्पत्ति होती है।

२ वत्सनाभ—

इस वृक्षके पत्ते निर्गुंडीके पत्तोंसे मिलते-जुलते होते हैं। इस वृक्षका आकार बछड़ेकी नाभिके समान होता है, इसी लिए लोग उसे वत्सनाभ कहते हैं। जहाँ यह वृक्ष रहता है, उसके आस-पासके सब वृक्ष तथा घास-फूस जल जाया करते हैं। द्रोणाचलपर इसकी उत्पत्ति विशेष करके होती है।

३ सींगिया—

इस विषका लक्षण यह है कि यदि गौकी सींगमें बाँध दिया जाय तो उसका सारा दूध लहू बन जाता है।

४ प्रदीपक—

यह जलते हुए अंगारेकी नाईं चमकता रहता है। इसके खाने या सूँघनेमात्रसे सारे शरीरमें महादाह उत्पन्न हो जाती है।

५ हालाहल—

यह विष जिस वृक्षसे उपजता है, उसके पत्ते तालके पत्तोंकी तरह लंबे-लंबे लाल और नीले रंगके होते हैं। इसके फल गौके स्तन सरीखे सफेद और गुच्छेदार होते हैं। इसके तेजसे इसके आसपासवाले वृक्ष जल जाते हैं।

किष्किन्धा, हिमालय, दक्षिणसमुद्रके तटपर और कोंकण देशमें यह विष उत्पन्न होता है ।

६ ब्रह्मपुत्र—

यह विष कपिल वर्णका होता और ज्यादातर इसकी उपज ब्रह्मपुत्र नदके तटपर होती है । इसके चार प्रकार होते हैं । जैसे–श्वेत, रक्त, पीत तथा श्यामवर्ण । श्वेत वर्णवाला ब्राह्मणजातिका रहता है, वह रसायनके काममें, रक्त वर्ण क्षत्रिय जातिका होता, वह शरीरको पुष्ट बनानेके काममें, पीत वैश्यजातिका होता है, वह कुष्ठनाश करनेके काममें और श्याम ब्रह्मपुत्र शूद्र जातिका होता इसलिए मारण आदिके काममें लाया जाता है ।

७ हारिद्र—

यह विष प्रायः हल्दीके खेतोंमें उत्पन्न होता है । हल्दीकी तरह इसका पीत वर्ण होता और इसकी गाँठे भी हल्दी ही की तरह होती हैं ।

८ सक्तुक—

यह विष भी गांठदार होता और इसकी गांठके भीतर सत्तूकी तरह सफेद रंगकी बुकनी-सी भरी रहती है ॥ १८–२० ॥

पारेके मुख करने और पक्षच्छेदनका दूसरा प्रकार

अथवा त्रिकटुक्षारौ राजी लवणपंचकम् ॥ २१ ॥
रसोनो नवसारश्च शिग्रुश्चैकत्र चूर्णितः ।
समांशैः पारदादेतैर्जंबीरेण द्रवेण वा ॥ २२ ॥
निम्बुतोयैः कांजिकैर्वा सोष्णखल्वे विमर्दयेत् ।
अहोरात्रत्रयेण स्याद्रसे धातुचरं मुखम् ॥ २३ ॥
अथवा बिंदुलीकीटरसो मर्द्य त्रिवासरम् ।
लवणाम्लमुखं तस्य जायते धातुघस्मरम् ॥ २४ ॥

सोंठ, काली मिर्च, पीपरि, जवाखार, सज्जीखार, सेंधा नमक, सोंचर नमक, विडनमक, रेंड़का खार, लहसुन, नौसादर और सँहजनकी छाल, इन औषधियों-को बराबर-बराबर भागसे एकत्रित कर चूर्ण करे और पारेके बराबर चूर्ण लेकर तप्तखल्वमें जँभीरी नीबूके रस अथवा काँजीके साथ तीन दिन अहोरात्र खरल करे तो पारेमें स्वर्णादि धातुओंको खानेकी सामर्थ्य आ जाती है । इसके

अतिरिक्त एक उपाय और भी है। वह यह कि बरसातके दिनोंमें लाल रंगके इन्द्रगोप नामक एक तरहके कीड़े उत्पन्न होते हैं, उन्हें लाये और पारेमें डालकर तीन दिन अहोरात्र खरल करे। इसके बाद नीबूके रस और सेंधानमकमें खरल कर ले तो पारेमें ऐसी शक्ति आ जाती है कि वह स्वर्ण आदि धातुओंको खा लेता है ॥ २१–२४ ॥

तप्तखल्व यंत्र
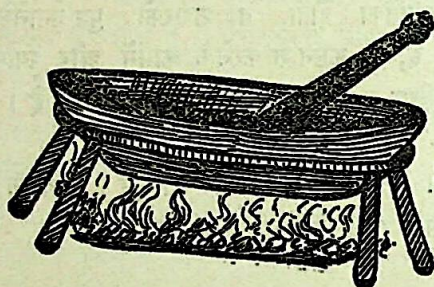
कच्छप यन्त्र द्वारा पारदजारणविधि

मृत्कुण्डे निक्षिपेन्नीरं तन्मध्ये च शरावकम्।
महत्कुण्डपिधानाभं मध्ये मेखलया युतम् ॥ २५ ॥
लिप्त्वा च मेखलामन्यं चूर्णेनात्र रसं क्षिपेत्।
रसस्योपरि गन्धस्य रजो दद्यात्समांशकम् ॥ २६ ॥
दत्त्वोपरि शरावं च भस्ममुद्रां प्रदापयेत् ॥ २७ ॥
एवं पुनःपुनर्गंधं षड्गुणं जारयेद्बुधः।
गन्धजीर्णे भवेत्सूतस्तीक्ष्णाग्निः सर्वकर्मकृत् ॥ २८ ॥

एक मिट्टीके कुण्डेमें जल भरे। उसके ऊपर एक परई रखे। वह परई ऐसी हो कि उसके बीचमें मेखला-सी पड़ी हो और रक्खी जाय तो नीचेके पानी-से छून जाय। इसके बाद परईमें मेखला तक चूना भर दे और उसमें एक गड्ढा करके पारा भरे। फिर पारेके जितना ही ऊपरसे गंधकका चूर्ण बुरक दे। इसके अनन्तर उस परईके ऊपरसे एक दूसरी परई रखकर राखसे उसकी संधियें बंद कर दे और उसके ऊपर गौके गोबरके चार उपले रखकर फूँक दे। इस तरह बार-बार गन्धक डाल-डालकर पारेका जारण करनेसे पारा तीखे अग्निकी तरह

चमकता हुआ रक्त वर्णका हो जाता है। ऐसा पारा सब कामोंमें लाया जा सकता है॥ २५–२८॥

पारामारणकी विधि

धूमसारं रसं तोरीं गन्धकं नवसादरम्।
यामैकं मर्दयेदम्लैर्भागं कृत्वा समं समम्॥ २९॥
काचकूप्यां विनिक्षिप्य तां च मृद्वस्त्रमुद्रिताम्।
विलिप्य परितो वक्त्रं मुद्रां दत्त्वा च शोषयेत्॥ ३०॥
अधः सच्छिद्रपिठरीमध्ये कूपीं निवेशयेत्।
पिठरीबालुकापूरैर्भृत्वा चाकूपिकागलम्॥ ३१॥
निवेश्य चुल्ल्यां तदधः कुर्याद्वह्निं शनैः शनैः।
तस्मादप्यधिकं किञ्चित्पावकं ज्वालयेत्क्रमात्॥ ३२॥
एवं द्वादशभिर्यामैर्म्रियते सूतकोत्तमः।
स्फोटयेत्स्वांगशीतं ऊर्ध्वगं गन्धकं त्यजेत्॥ ३३॥
अधःस्थं मृतसूतं च सर्वकर्मसु योजयेत्।
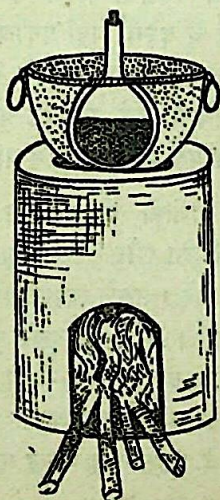
वालुकायंत्र

घरका धुआँ, पारा, फिटकिरी, गंधक तथा नौसादर, ये औषधियें समान भागसे एकत्रित करके एक पहर तक नीबूके रसमें खरल करे। फिर उसे एक काँचकी शीशीमें भरे और डाट लगाकर ऊपरसे कपड़मिट्टी कर दे। फिर एक बड़ेसे मिट्टीके बर्तनको लेकर उसके पेंदेमें छेद करे और छेदपर एक ठिकरी रखकर उसीपर वह शीशी रख दे और उस पात्रमें बालू भर दे। लेकिन शीशीके गलेको बालूसे न ढाँपे, खुला ही रहने दे। इसीको लोग बालुकायंत्र कहते हैं। यह सब करनेके बाद उसे चूल्हेपर चढ़ावे और उसके नीचेसे बारह पहर तक पहले साधारण, फिर मध्यम और उसके बाद खूब तेज आँच दे। शीतल हो जानेके बाद शीशीको निकाल ले और उसके मुखपर जो गन्धक लगी हो, उसे दूर करके नीचेवाली पारेकी भस्मको निकाल ले और काममें लावे ॥ २९-३३ ॥

पारदभस्म करनेका दूसरा प्रकार

अपामार्गस्य बीजानां मूषायुग्मं प्रकल्पयेत् ॥ ३४ ॥
तत्संपुटे न्यसेत्सूतं मलयूदुग्धमिश्रितम् ।
द्रोणपुष्पीप्रसूतानि विडंगान्यरिमेदकः ॥ ३५ ॥
एतच्चूर्णमधोऽर्ध्वं च दत्त्वा मुद्रां प्रदीयताम् ।
तं गोलं सन्धयेत्सम्यङ्मृन्मूषासम्पुटे सुधीः ॥ ३६ ॥
मुद्रां दत्त्वा शोषयित्वा ततो गजपुटे पचेत् ।
एवमेकपुटेनैव जायते भस्म सूतकम् ॥ ३७ ॥

अपामार्ग (चिचिड़ीके) बीजोंको पीसकर दो मूस बनावे। फिर द्रोणपुष्पी (गूमा)के फूल, वायविडंग और खैरकी छाल, इन औषधियोंका चूर्ण करके आधे चूर्णको एक मूसमें भरे। उसके ऊपरसे पारा रखकर कठूमरका दूध तथा बचे हुए चूर्णको भुरभुरा दे। इसके बाद दूसरे मूसेको पहले मूसेपर रखकर उसकी संधियें बन्द कर दे। फिर मिट्टीका एक गोला बनाकर उसमें उस मूसेको रखकर शरावसंपुटमें धरके उसकी सन्धियें बन्द कर दे। उसके ऊपरसे कपड़मिट्टी करके उपलोंके गजपुटमें फूँक दे। इस तरह केवल एक पुट देनेसे ही पारदकी उत्तम भस्म तैयार हो जाती है ॥ ३४-३७ ॥

तीसरा प्रकार

काकोदुम्बरिकादुग्धै रसं किञ्चिद्विमर्दयेत्।
तद्दुग्धघृष्टहिङ्गोश्च मूषायुग्मं प्रकल्पयेत्॥ ३८॥
क्षिप्त्वा तत्सम्पुटे सूतं तत्र मुद्रां प्रदापयेत्।
धृत्वा तं गोलकं प्राज्ञो मृन्मूषासंपुटेऽधिके॥ ३९॥
पचेन्मृदुपुटेनैव सूतको याति भस्मताम्।

काकोदुम्बर (कठूमरके) दूधमें पारेको थोड़ी देर तक घोंटे। इसके बाद कठूमरके ही दूधमें हींग डालकर खरल करे और उसके दो मूस तैयार करे। इसके अनन्तर एक मूसेमें पारा भरकर दूसरेसे ढाँक दे और चारों ओरसे उसकी सन्धियें बन्द कर दे। फिर मिट्टीका एक गोला बनाकर उसमें वह मूसा रक्खे और गोलेको शरावसंपुटमें रखकर कपड़मिट्टी कर दे। फिर आरने उपलोंमें रख-कर फूँके तो पारदकी उत्तम भस्म तैयार हो जाती है॥ ३८॥ ३९॥

चौथा प्रकार

नागवल्लीरसैर्घृष्टः कर्कोटीकन्दगर्भितः॥ ४०॥
मृन्मूषासम्पुटे पक्त्वा सूतो यात्येव भस्मताम्।

नागवल्ली (पान)के रसमें पारेका खरल करे। फिर ककोड़ेके कन्दमें उसे बन्द करे और उसके ही टुकड़ोंसे उसकी सन्धियें बन्द करके कपड़मिट्टी करे। फिर धूपमें सुखा ले और मिट्टीके शरावसंपुटमें रख तथा कपड़मिट्टी करके आरने उपलोंके बीचमें रखकर कड़ी आँच दे तो पारेकी भस्म तैयार हो जाती है॥ ४०॥

ज्वरांकुश रस

खण्डितं मृगश्रृंगं च ज्वालामुख्या रसैः समम्॥ ४१॥
रुद्ध्वा भांडे पचेच्चुल्ल्यां यामयुग्मं ततो नयेत्।
अष्टांशं त्रिकटुं दद्यान्निष्कमात्रं च भक्षयेत्॥ ४२॥
नागवल्ल्या रसैः सार्धं वातपित्तज्वरापहम्।
अयं ज्वरांकुशो नाम रसः सर्वज्वरापहः॥ ४३॥

हरिणकी सींगके बारीक टुकड़े करे। उन टुकड़ोंक किसी पात्रमें रखकर उसमें ज्वालामुखीका रस डाल दे। उस पात्रके मुखपर कसोरा रखकर कपड़मिट्टी करे।

यह सब हो जानेके बाद उसे चूल्हेपर चढ़ा दे और दो पहर तक आँच देता रहे। शीतल होनेपर उस पात्रमेंसे वह सींगका भस्म निकाल ले और भस्मका अष्टमांश सोंठ, मिर्च तथा पीपरिका चूर्ण डाल दे। फिर आवश्यकता पड़नेपर चार मासे पानके रसमें मिलाकर इसका सेवन करे। इसे लोग ज्वरांकुश रस कहते हैं। इससे सब प्रकारके ज्वर दूर हो जाया करते हैं॥ ४१–४३॥

ज्वरारि रस

पारदं रसकं तालं तुत्थटंकणगन्धकैः।
सर्वमेतत्समं शुद्धं कारवेल्ल्या रसैर्दिनम्॥ ४४॥
मर्दयेल्लेपयेत्तेन ताम्रपात्रोदरं भिषक्।
अंगुल्यर्धप्रमाणेन ततो रुद्ध्वा च तन्मुखम्॥ ४५॥
पचेत्तं बालुकायन्त्रे क्षिप्त्वा धान्यानि तन्मुखे।
यदा स्फुटन्ति धान्यानि तदा सिद्धं विनिर्दिशेत्॥ ४६॥
ततो नयेत्स्वांगशीतं ताम्रपात्रोदराद्भिषक्।
रसं ज्वरारिनामानं विचूर्ण्य मरिचैः समम्॥ ४७॥
माषैकं पर्णखण्डेन भक्षयेन्नाशयेज्ज्वरम्।
त्रिदिनैर्विषमं तीव्रमेकद्वित्रिचतुर्थकम्॥ ४८॥

पारद, खपरिया, हरताल, लीलाथोथा (तूतिया) सोहागा और गंधक, इन वस्तुओंका संशोधन करके बराबर-बराबर भागके हिसाबसे एकत्रित करे। फिर सबको खरलमें डालकर करेलेके पत्तोंके रसमें दिनभर खरल करे। इसके अनन्तर इसे एक तामेकी डिबियामें आधे अंगुल तक लीपकर ढकनेसे बन्द कर दे और बालुका यन्त्रमें रखकर नीचेसे आँच दे, परीक्षाके लिए उस डिबियाके ऊपर थोड़ेसे धानके दाने रख दे। जब वे दाने लावेके रूपमें परिमाण हो जायँ तो समझ ले कि यह औषधि सिद्ध हो गयी। जब शीतल हो जाय तो औषधि निकाल ले। फिर जितनी औषधि हो उसमें उतनी ही काली मिर्च पीसकर मिलावे। इसे लोग ज्वरारि रस कहते हैं। जिस व्यक्तिको ज्वर आता हो, वह यदि पानमें रखकर इसे खाय तो उसका ऐकाहिक, द्व्याहिक, त्र्याहिक तथा चातुर्थिक ज्वर और विषमज्वर भी शान्त हो जाता है॥ ४४–४८॥

शीतज्वरारि रस

तालकं तुत्थकं ताम्रं रसं गंधं मनःशिलाम् ।
कर्षं कर्षं प्रयोक्तव्यं मर्दयेत्त्रिफलांबुभिः ॥ ४९ ॥
गोलं न्यस्सेत्तु पुटके पुटं दद्यात्प्रयत्नतः ।
ततो नोत्वार्कदुग्धेन वज्रीदुग्धेन सप्तधा ॥ ५० ॥
क्वाथेन दंत्या श्यामाया भावयेत्सप्तधा पुनः ।
माषमात्रं रसं दिव्यं पञ्चाशन्मरिचैर्युतम् ॥ ५१ ॥
गुडगद्याणकं चैव तुलसीदलयुग्मकम् ।
भक्षयेत् त्रिदिनं भक्त्या शीतारिर्दुर्लभः परः ॥ ५२ ॥
पथ्यं दुग्धौदनं देयं विषमं शीतपूर्वकम् ।
दाहपूर्वं हरत्याशु तृतीयकचतुर्थकौ ॥ ५३ ॥
द्व्याहिकं संततं चैव वैवर्ण्यं च नियच्छति ।

हरताल, लीलाथोथा, ताम्रभस्म, पारा, गंधक और मैनसिल, इन छ वस्तुओं-को एक-एक कर्षके प्रमाणसे एकत्रित करे । फिर सबको त्रिफलाके काढ़ेमें खरल करके गोला बनावे और उसे शरावसंपुटमें रखकर धूपमें सुखा ले । इसके बाद आरने उपलोंके गजपुटमें रखकर फूँक दे । जब वह शीतल हो जाय तो निकाल ले । तत्पश्चात् आक अथवा वज्रीके दूध या दन्तीके काढ़ेमें सात भावना देकर एक-एक मासेकी गोली बना ले । जिस रोगीको ज्वर आता हो, उसका बलाबल देखकर पचास मिर्च, ६ मासे गुड़ और तुलसीके पत्तेके साथ सेवन करनेको दे और पथ्यमें खानेके लिए दूध भात बतला दे । इस तरह इसका सेवन करनेसे शीतज्वर, विषमज्वर, दाहज्वर, तृतीयकज्वर, चातुर्थिकज्वर, द्व्याहिक एवं सन्तत-ज्वर तथा विलक्षण ज्वर, ये सब ज्वर दूर हो जाते हैं ॥ ४९–५३ ॥

ज्वरघ्नी गुटिका

भागैकः स्याद्रसाच्छुद्धादेलायाः पिप्पली शिवा ॥ ५४ ॥
आकारकरभो गंधः कटुतैलेन शोधितः ।
फलानि चेंद्रवारुण्याश्चतुर्भागमिता ह्यमी ॥ ५५ ॥
एकत्र मर्दयेच्चूर्णमिंद्रवारुणिकारसे ।
माषोन्मितां गुटीं कृत्वा दद्यात्सर्वज्वरे बुधः ॥ ५६ ॥
छिन्ना रसानुपानेन ज्वरघ्नो गुटिका मता ।

शुद्ध पारा एक भाग, इलायची, पीपरि, जंगीहड़, अकरकरा, कडुए तेलमें शोधी भयी गंधक तथा इन्द्रवारुणीका फल, इन औषधियोंको चार-चार भागके परिमाणसे एकत्रित करे और इन्द्रायनके फलोंके रसमें खरल करके एक-एक मासेकी गोली बनावे। यदि गुरुचके रसके साथ इसका सेवन किया जाय तो सब प्रकारके ज्वर दूर हो जाते हैं। इसी लिए लोग इसे ज्वरघ्नी गुटिका कहते हैं ॥ ५४-५६ ॥

क्षयादि रोगोंपर लोकनाथ रस

शुद्धो बुभुक्षितः सूतो भागद्वयमितो भवेत् ॥ ५७ ॥
तथा गन्धस्य भागौ द्वौ कुर्यात्कज्जलिकां तयोः ।
सूताच्चतुर्गुणेष्वेव कपर्देषु विनिक्षिपेत् ॥ ५८ ॥
भागैकं टंकणं दत्त्वा गोक्षीरेण विमर्दयेत् ।
तथा शंखस्य खण्डानां भागानष्टौ प्रकल्पयेत् ॥ ५९ ॥
क्षिपेत्सर्वं पुटस्यं तश्चूर्णं लिप्तशरावयोः ।
गर्ते हस्तोन्मिते धृत्वा पचेद्गजपुटेन च ॥ ६० ॥
स्वांगशीतं समुद्धृत्य पिष्ट्वा तत्सर्वमेकतः ।
षड्गुंजासम्मितं चूर्णमेकोनत्रिंशदूषणैः ॥ ६१ ॥
घृतेन वातजे दद्यान्नवनीतेन पित्तजे ।
क्षौद्रेण श्लेष्मजे दद्यादतीसारे क्षये तथा ॥ ६२ ॥
अरुचौ ग्रहणीरोगे कार्श्ये मन्दानले तथा ।
कासे श्वासेषु गुल्मेषु लोकनाथो रसो हितः ॥ ६३ ॥
तस्योपरि घृतान्नं च भुञ्जीत कवलत्रयम् ।
मंचे क्षणैकमुत्तानः शयीतानुपधानके ॥ ६४ ॥
अनम्लमन्नं सघृतं भुंजीत मधुरं दधि ।
प्रायेण जांगलं मांसं प्रदेयं घृतपाचितम् ॥ ६५ ॥
सदुग्धभक्तं दद्याच्च जातेऽग्नौ सांध्यभोजने ।
सघृतान्मुद्गवटकान्व्यंजनेष्वेव चारयेत् ॥ ६६ ॥
तिलामलककल्केन स्नापयेत्सर्पिषाथवा ।
अभ्यंजयेत्सर्पिषा च स्नानं कोष्णोदकेन च ॥ ६७ ॥

क्वचित्तैलं न गृह्णीयान्न बिल्वं कारवेल्लकम्।
वार्ताकं शफरीं चिंचां त्यजेद्व्यायाममैथुने ॥ ६८ ॥
मद्यं संधानकं हिंगु शुण्ठीमाषान्मसूरकान्।
कूष्मांडं राजिकां कोपं कांजिकं चैव वर्जयेत् ॥ ६९ ॥
त्यजेदयुक्तनिद्रां च कांस्यपात्रे च भोजनम्।
ककारादियुतं सर्वं त्यजेच्छाकफलादिकम् ॥ ७० ॥
पथ्योऽयं लोकनाथस्तु शुभनक्षत्रवासरे।
पूर्णातिथौ शुक्लपक्षे जाते चंद्रबले तथा ॥ ७१ ॥
पूजयित्वा लोकनाथं कुमारीं भोजयेत्ततः।
दानं दद्याद् द्विघटिकामध्ये ग्राह्यो रसोत्तमः ॥ ७२ ॥
रसात्संजायते तापस्तदा शर्करया-युतम्।
सत्त्वं गूडूच्या गृह्णीयाद्वंशरोचनया युतम् ॥ ७३ ॥
खर्जूरं दाडिमं द्राक्षामिक्षुखण्डानि दापयेत्।
अरुचौ निस्तुषं धान्यं घृतभृष्टं सशर्करम् ॥ ७४ ॥
दद्यात्तथा ज्वरे धान्यं गुडूचीक्वाथमाहरेत्।
उशीरवासकक्वाथं दद्यात्समधुशर्करम् ॥ ७५ ॥
रक्तपित्ते कफे श्वासे कासे च स्वरसंक्षये।
अग्निभृष्टजयाचूर्णं मधुना निशि दीयते ॥ ७६ ॥
निद्रानाशेऽतिसारे च ग्रहण्यां मंदपावके।
सौवर्चलाभयाकृष्णाचूर्णमुष्णजलैः पिबेत् ॥ ७७ ॥
शूलेऽजीर्णे तथा कृष्णा मधुयुक्ता ज्वरे हिता।
प्लीहोदरे वातरक्ते छर्द्यां चैव गुदांकुरे ॥ ७८ ॥
नासिकादिषु रक्तेषु रसं दाडिमपुष्पजम्।
दूर्वायाः स्वरसं नस्ये प्रदद्याच्छर्करायुतम् ॥ ७९ ॥
कोलमज्जाकणाबर्हिपक्षभस्मसशर्करम्।
मधुना लेहयेच्छर्दिहिक्काकोपस्य शांतये ॥ ८० ॥
विधिरेष प्रयोज्यस्तु सर्वस्मिन्पोटलीरसे।
मृगांके हेमगर्भे च मौक्तिकाख्ये रसेषु च ॥ ८१ ॥
ह्ययं लोकनाथाख्यो रसः सर्वरुजो जयेत्।

शुद्ध और बुभुक्षित पारेका दो भाग, शुद्ध गंधक दो भाग, इन दोनोंकी कजली तैयार करे और पारेकी अपेक्षा चौगुनी कौड़ियोंमें भर दे। फिर एक भाग सुहागे-को गौके दूधमें खरल करके उसीसे उन कौड़ियोंका मुख बन्द कर दे। इसके बाद आठ भाग शंखके टुकड़े एकत्रित करके मिट्टीके दो कसोरे लेवे, एकमें चूना पोतकर उसमें आधेतक शंखके टुकड़े भर दे। उसके ऊपर उन कौड़ियोंको रखकर दूसरे कसोरेमें ढाँक दे। उसके ऊपरसे कपड़मिट्टी करके एक हाथ गहरे गड्ढेमें आरने उपलोंके गजपुटमें वह संपुट रखकर फूँक दे। शीतल होनेपर उस सम्पुट-में से वह औषधियाँ निकाल ले और खरल करके रख छोड़े। फिर जिसे वादीका रोग हो, उसको उन्नीस कालीमिर्चके चूर्णमें घीके साथ देवे। जिसको पित्तज रोग हो उसे मक्खनके साथ दे। कफज रोग हो तो शहदके साथ देवे। अतीसार, क्षय संग्रहणी, कृशता, मन्दाग्नि, खाँसी, श्वास और गोलेके लिए यह लोकनाथ रस बहुत ही उत्तम औषधि है। इस औषधिकी मात्राको खानेके बाद तीन ग्रास घी और भात खाना उचित है। भात खानेके बाद रोगी को चाहिए कि बिना तकिया-बिछौनेकी शय्यापर थोडी देरतक सीधा लेटा रहे। इसका सेवन करनेके समय खट्टी चीजोंसे परहेज रक्खे और घीके साथ भोजन करे। मीठा दही और घीमें तला हुआ हरिण आदि जीवोंका मांस खाना भी अनुचित नहीं है। शामको भूख लगे तो दूध-भात या घीमें तलकर बनाये हुए मूँगके बड़े भी खा सकता है। स्नान करनेके पहले शरीरमें तेल, घी या आमलेके कल्कका अभ्यटन लगाना आवश्यक है। स्नान करनेके लिए जो पानी हो, वह कुछ गरम रहे। साथ ही वेलके फल, करेला, बैगन, छोटी मछली, इमली, अधिक परिश्रम, स्त्रीप्रसंग, मदिरा, हींग, सोंठ, उड़द, मसूर, पेठा, राई, कांजी, गुस्सा करना, दिनमें सोना, काँसेके पात्रमें भोजन करना, करैला-ककड़ी आदि साग जिनके आदिमें "क" अक्षर आता हो उनका भोजन, इन सबका परित्याग कर दे। यह इस रसका पथ्य है। किसी अच्छे दिन, उत्तम तिथि, शुक्लपक्ष, जब कि रोगीके लिए चन्द्रमा बली हो, उस समय इस रसका पूजन करके कुमारी कन्याओंको भोजन करावे और यथा-शक्ति सुवर्णदान देकर इस रसका सेवन करे। इसको खानेपर दो घड़ी तक शरीर-में जोरोंकी गरमी उठती है। उसको दबानेके लिए मिश्री, गुरुचका सत्त्व तथा वंशलोचन, इन तीनों वस्तुओंका सेवन करना लाभदायक है। इनके अतिरिक्त

खजूर, अनार, दाख (अंगूर) गन्नेकी गडेरियाँ, ये पदार्थ भी थोड़ा-थोड़ा सेवन करे तो इसकी गरमी दूर हो जाती है। यदि अच्छी तरह कुटी और भूसी अलग करके घीमें भुनी हुई धनियाँ और गुरुचके काढ़ेमें इस रसको मिलाकर पिये तो ज्वरकी बाधा दूर हो जाती है। नेत्रवाला और अडूसा, इन दोनों वस्तुओंके काढ़े तथा मिश्री और शहदके साथ इस रसका सेवन किया जाय तो रक्तपित्त, कफ, खाँसी, श्वास तथा स्वरभंग, ये सब रोग दूर हो जाते हैं। यदि थोड़ी-सी भुनी भाँगके चूर्णमें शहदके साथ इस रसका सेवन किया जाय तो निद्रा मजेमें आती, संग्रहणी और अतीसार रोग दूर हो जाते और मन्द अग्नि भी प्रदीप्त हो जाता है। काला नमक, जंगी हरड़ तथा पीपरि, इन औषधियोंके चूर्णमें गरम पानीके साथ यदि इस लोकनाथ रसका सेवन करे तो पेटके बायीं और उठनेवाला दर्द, वात-रक्त, वमन, मूत्रव्याधि तथा नाकसे रुधिर बहनेका रोग दूर हो जाता है। यदि दूबके रसमें मिश्री डालकर इस लोकनाथ रसका नस्य लिया जाय तो नाकसे रुधिरका बहना रुक जाता है। यदि बेरकी गुठली, पीपरि तथा मोरपंखकी भस्म इनको एकत्रित करके उसमें मिश्री तथा शहद डालकर इस रसका सेवन करे तो उबकाई आना और हिचकी ये रोग दूर हो जाते हैं। जितने भी पोटली रस हैं, उनमें और मृगांक तथा मौक्तिकाख्य रसायनकी सिद्धिमें भी यही विधि काममें लानी चाहिए। यह जो मैंने लोकनाथ रस बतलाया है सो सब रोगोंको जीत लेता है॥ ५७—८१॥

क्षयपर लघुलोकनाथ रस

वराटभस्म मंडूरं चूर्णयित्वा घृते पचेत्॥ ८२॥
तत्समं मारिचं चूर्णं नागवल्ल्या विभावितम्।
तच्चूर्णं मधुना लेह्यमथवा नवनीतकैः॥ ८३॥
माषमात्रं क्षयं हन्ति यामेयामे च भक्षितम्।
लोकनाथरसो ह्येष मंडलाद्राजयक्ष्मनुत्॥ ८४॥

कौड़ीकी भस्म तथा मंडूर, इन दोनोंका चूर्ण करके घीमें पकावे। फिर इससे दूनी काली मिर्च लेकर इन तीनों चीजोंको खरलमें डालकर घोंटे और पानके रस में भावना देकर गोलियें बना ले। इसकी लघु लोकनाथ रस संज्ञा है। यदि तीन

माशे शहद अथवा मक्खनके साथ चलीस रोज इसका सेवन करे तो राजयक्ष्मा रोग दूर हो जाता है ॥ ८२-८४ ॥

क्षयादि रोगोंपर मृगांकपोट्ली रस

भूर्जवत्तनुपत्राणि हेम्नः सूक्ष्माणि कारयेत् ।
तुल्यानि तानि सूतेन खल्वे क्षिप्त्वा विमर्दयेत् ॥ ८५ ॥
कांचनाररसेनैव ज्वालामुख्या रसेन वा ।
लांगल्या वा रसैस्तावद्यावद्भवति पिष्टिका ॥ ८६ ॥
ततो हेम्नश्चतुर्थांशं टंकणं तत्र निक्षिपेत् ।
पिष्टमौक्तिकचूर्णं च हेमद्विगुणमावपेत् ॥ ८७ ॥
तेषु सर्वं समं गंधं क्षिप्त्वा चैकत्र मर्दयेत् ।
तेषां कृत्वा ततो गोलं वासोभिः परिवेष्टयेत् ॥ ८८ ॥
पश्चान्मृदा वेष्टयित्वा शोषयित्वा च धारयेत् ।
शरावसंपुटस्यांते तत्र मुद्रां प्रदापयेत् ॥ ८९ ॥
लवणापूरिते भांडे धारयेत्तं च संपुटम् ।
मुद्रां दत्त्वा शोषयित्वा बहुभिर्गोमयैः पुटेत् ॥ ९० ॥
ततः शीते समाहृत्य गंधं सूतसमं क्षिपेत् ।
घृष्ट्वा च पूर्ववत्खल्वे पुटेद्गजपुटेन च ॥ ९१ ॥
स्वांगशीतं ततो नीत्वा गुंजायुग्मं प्रकल्पयेत् ।
अष्टभिर्मरिचैर्युक्तः कृष्णात्रययुतोऽथवा ॥ ९२ ॥
विलोक्य देयो दोषादीनेकैका रसरक्तिका ।
सर्पिषा मधुना वापि दद्याद्दोषव्यपेक्षया ॥ ९३ ॥
लोकनाथसमं पथ्यं कुर्यात्स्वस्थमनाः शुचिः ।
श्लेष्माणं ग्रहणीं कासं श्वासं क्षयमरोचकम् ॥ ९४ ॥
मृगांकोऽयं रसो हन्यात्कृशत्वं बलहीनताम् ।

भोजपत्रकी नाईं सुवर्णके पतले पत्र करके उसके ही बराबर शुद्ध किया हुआ पारा लेकर कचनारके रस अथवा ज्वालामुखी या लांगलीके रसमें तबतक खरल करे, जबतक वह पीठीके समान न होजाय। इसके बाद सुवर्णका चतुर्थांश सोहागा और सुवर्णका दूना मोतियोंका चूर्ण एवं सब मिलाकर जितना हो, उतनी

हो शुद्ध गंधक लेकर एकमें खरलकर उसका गोला बना ले। तदनन्तर उस गोलेके चारों ओर कपड़ा लपेट दे और ऊपरसे मिट्टी लेस करके धूपमें सुखा ले। इसके पश्चात् एक कसोरेमें इस गोलेको रखकर दूसरेसे उसका मुख ढाँप दे। फिर उसके ऊपर भी अच्छी तरह नमक भर दे और हाँड़ीका मुख परईसे ढाँप तथा कपड़मिट्टी-कर आरने उपलोंके गजपुटमें जितनी आँच होती है, उससे कुछ अधिक आँचमें रखकर फूँक दे। जब शीतल हो जाय तो निकाल ले और उस पारेको इसके समान भागकी गंधकके साथ कचनार या ज्वालामुखीके रसमें खरल करे। फिर पूर्वकथित युक्तिके अनुसार गजपुटकी आँच दे। जब शीतल हो जाय तब निकाल ले। इसको लोग मृगांकपोटली रस कहते हैं। यह रस आठ मिर्च अथवा तीन पीपरिके चूर्णके साथ दो रत्ती देना चाहिये अथवा दोषकी जैसी तारतम्यता हो उसके अनुसार केवल एक रत्तीकी मात्रा दे। दोषोंका बलाबल देखकर शहद तथा घृतके साथ भी यह रस दिया जा सकता है। इसका सेवन करनेसे प्राणीकी अन्तरात्मा स्वस्थ और पवित्र होती है। इसके पथ्य वे ही हैं जो पीछे लोकनाथ रसमें बतला आये हैं। संग्रहणी, खाँसी, श्वास, क्षय, अरुचि, शारीरिक कृशता तथा बलहानि, ये सब व्याधियें दूर हो जाती हैं॥ ८५-९४॥

कफ-क्षयादिकोंपर हेमगर्भपोटली रस

सूतात्पादप्रमाणेन हेम्नः पिष्टं प्रकल्पयेत्॥ ९५॥
तयोः स्याद्द्विगुणो गंधो मर्दयेत्कांचनारिणा।
कृत्वा गोलं क्षिपेन्मूषासंपुटे मुद्रयेत्ततः॥ ९६॥
पचेद्भूधरयंत्रेण वासरत्रितयं बुधः।
तत उद्धृत्य तत्सर्वं दद्याद्गंधं च तत्समम्॥ ९७॥
मर्दयेच्चार्द्रकरसैश्चित्रकस्वरसेन च।
स्थूलपीतवराटांश्च पूरयेत्तेन युक्तितः॥ ९८॥
एतस्मादौषधात्कुर्यादष्टमांशेन टंकणम्।
टंकणार्धं विषं दत्त्वा पिष्ट्वा सेहुंडदुग्धकैः॥ ९९॥
मुद्रयेत्तेन कल्केन वराटानां मुखानि च।
भांडे चूर्णप्रलिप्तेऽथ धृत्वा मुद्रां प्रदापयेत्॥ १००॥

गते हस्तोन्मिते धृत्वा पुटेद्गजपुटेन च ।
स्वांगशीतं रसं ज्ञात्वा प्रदद्याल्लोकनाथवत् ॥ १०१ ॥
पथ्यं मृगांकवज्ज्ञेयं त्रिदिनं लवणं त्यजेत् ।
यदा छर्दिर्भवेत्तस्य दद्याच्छिन्नाशृतं तदा ॥ १०२ ॥
मधुयुक्तं तथा श्लेष्मकोपे दद्याद्गुडार्द्रकम् ।
विरेके भर्जिता भंगा प्रदेया दधिसंयुता ॥ १०३ ॥
जयेत्कासं क्षयं श्वासं ग्रहणीमरुचिं तथा ।
अग्निं च कुरुते दीप्तं कफवातं नियच्छति ॥ १०४ ॥
हेमगर्भः परो ज्ञेयो रसः पोट्टलिकाभिधः ।

शोधा हुआ पारा एक भाग, पारेकी एक चौथाई खरल किया हुआ सुवर्णका चूर्ण अथवा सोनेका वर्क और पारे तथा सुवर्णसे दूनी शुद्ध गंधक एकत्रित करे। इन तीनों वस्तुओंको कचनारके रसमें खरल करके उसका गोला बनावे। उसे कसोरेमें रखकर दूसरे कसोरेसे ढाँककर कपड़मिट्टी कर दे। तत्पश्चात् एक हाथ गहरा गड्हा खोदकर उसमें भी एक छोटा-सा गड्ढा खोदकर उसीमें वह शराव-सम्पुट रक्खे और ऊपरसे मिट्टी डालकर उसके चारों ओर आरने उपले रक्खे और तीन दिन तक अहर्निशि आँच देता रहे। यह क्रिया भूधरयन्त्रके नामसे विख्यात है। जब वह ठंढी हो जाय तो उस शरावसम्पुटसे रस निकाल ले। फिर रसके बराबर भागकी गंधक मिलाकर इन दोनों वस्तुओंको अदरखके रसमें खरल करके बड़ी-बड़ी पीली कौड़ियोंमें वह रस भर दे। इसके बाद उन औषधियों-का अष्टमांश सुहागा और सुहागेका आधा विष लेकर थूहरके दूधमें खरल करे और उसीसे उन कौड़ियोंका मुख बन्द करे। फिर एक हाँड़ीमें चूना पोतकर कौड़ियें रख दे। तत्पश्चात् उस हाँडीके ऊपर दूसरी हाँडी रखकर कपड़मिट्टी करे और हाथ भर गहरे गड्ढेमें धरकर गजपुटकी विधिसे आरने उपलोंकी आँच दे। जब वह शीतल हो जाय तो निकाल ले। इसको लोग हेमगर्भ पोटली करते हैं। पीछे बतलाये हुए लोकनाथ रसकी सेवनविधिके अनुसार इसका भी सेवन करे और मृगांक रसायनमें बतलाये पथ्यके अनुसार पथ्य दे। इसके पथ्यमें केवल इतनी विशेषता है कि इसका सेवन करते समय तीन दिनके लिए नमकका परित्याग करदे। इसके सेवनसमयमें कै होना अनिवार्य-सा रहता है। सो उस समय

शहदके साथ गिलोयका काढ़ा पीनेसे वह बाधा भी दूर हो जाती है। यदि कफ-के प्रकोपसे कोई रोग हो तो गुड़ तथा अदरखके साथ इसका सेवन करना चाहिए। यदि इस औषधिके कारण दस्त आने लगें तो थोड़ी-सी भाँग भूनकर दहीमें खाने-से दस्त बन्द हो जाते हैं। यह रस कास, श्वास, क्षय, संगहणी तथा अरुचि-को दूर करता, मन्द अग्नि प्रदीप्तकरता एवं कफ-वातके प्रकोपको शान्त कर दिया करता है ॥ ९५-१०४ ॥

दूसरी विधि

रसस्य भागाश्चत्वारस्तावंतः कनकस्य च ॥ १०५ ॥
तयोश्च पिष्टिकां कृत्वा गंधो द्वादशभागिकः।
कुर्यात्कज्जलिकां तेषां मुक्ताभागाश्च षोडश ॥ १०६ ॥
चतुर्विंशच्च शंखस्य भागैकं टंकणस्य च।
एकत्र मर्दयेत्सर्वं पक्वनिंबूकजै रसैः ॥ १०७ ॥
कृत्वा तेषां ततो गोलं मूषासंपुटके न्यसेत्।
मुद्रां दत्त्वा ततो हस्तमात्रे गर्ते च गोमयैः ॥ १०८ ॥
पुटेद्गजपुटेनैव स्वांगशीतं समुद्धरेत्।
पिष्ट्वा गुंजाचतुर्मानं दद्यादूगव्याज्यसंयुतम् ॥ १०९ ॥
एकोनत्रिंशदुन्मानमरिचैः सह दीयताम्।
राजते मृन्मये पात्रे काचजे वावलेहयेत् ॥ ११० ॥
लोकनाथसमं पथ्यं कुर्याच्च स्वस्थमानसः।
कासे श्वासे क्षये वाते कफे ग्रहणिकागदे ॥ १११ ॥
अतीसारे प्रयोक्तव्या पोटली हेमगर्भिका।

चार भाग पारा और चार ही भाग सुवर्ण, इन दोनोंको तबतक खरल करे जब तक वह पिट्ठीके समान न हो जाय। फिर शुद्ध गंधकका बारह भाग ले और उसको खरल करके कजली करे। इसके बाद सोलह भाग मोती, चौबीस भाग शंख तथा एक भाग सोहागा उस कजलीमें मिलाकर पके नीबूके रसमें खरल करके गोला बनावे और शरावसम्पुटमें रखकर कपड़मिट्टी करके एक हाथ गहरे गड्ढेमें वह सम्पुट रक्खे और गजपुटकी विधिके अनुसार गौके गोबरके उपलोंकी आँच दे। शीतल होनेपर बाहर निकाले और खरल करके रख दे। इस विधिसे

भी हेमगर्भपोटली तैयार की जाती है। उन्तीस काली मिर्चके साथ चाँदी, मिट्टी या काँचकी प्यालीमें रख तथा गौके घी में मिलाकर इसके सेवन करनेका विधान है। ऊपर बतलाये लोकनाथ रसके समान इसका भी पथ्य करना चाहिए। इसके उपयोगसे खाँसी, श्वास, क्षय, कफ, संग्रहणी और अतीसार रोग दूर हो जाते हैं॥ १०५–१११॥

विषमज्वरपर ज्वरांकुश रस

शुद्धसूतो विषं गंधः प्रत्येकं शाणसंमितः॥ ११२॥
धूर्तबीज त्रिशाणं स्यात्सर्वेभ्यो द्विगुणा भवेत्।
हेमाह्वी कारयेदेषां सूक्ष्मचूर्णं प्रयत्नतः॥ ११३॥
देयं जम्बीरमज्जाभिश्चूर्णं गुञ्जाद्वयोन्मितम्।
आर्द्रकस्वरसैर्वापि ज्वरं हन्ति त्रिदोषजम्॥ ११४॥
एकाहिकं द्व्याहिकं वा त्र्याहिकं वा चतुर्थकम्।
विषमं च ज्वरं हन्याद्विख्यातोऽयं ज्वरांकुशः॥ ११५॥

शोधा हुआ पारा तीन मासा, विष तीन मासा, गंधक तीन मासा, धतूरके बीज नौ मासे और इन सबका दूना चूक एकत्रित करके महीन चूर्ण करे और जंमीरी नीबू तथा अदरखके रसमें यदि दो रत्ती इसकी मात्रा दी जाय तो हमेशा आनेवाला त्रिदोषज्वर, दिन-रातके बीचमें दो बार आनेवाला द्व्याहिक, तीसरे दिन आनेवाला तिजरा, चौथे दिन आनेवाला चातुर्थिक [चौथिया] ये सब प्रकारके ज्वर दूर हो जाते हैं। इसे लोग ज्वरांकुश रस कहते हैं॥११२-११५॥

अतिसारादिकोंपर आनन्दभैरव रस

दरदं वत्सनाभं च मारिचं टंकणं कणा।
चूर्णयेत्समभागेन रसो ह्यानन्दभैरवः॥ ११६॥
गुञ्जैकं वा द्विगुञ्जं वा बलं ज्ञात्वा प्रयोजयेत्।
मधुना लेहयेच्चानु कुटजस्य फलं त्वचम्॥ ११७॥
चूर्णितं कर्षमात्रं तु त्रिदोषोत्थातिसारनुत्।
दध्यन्नं दापयेत्पथ्यं गोघृतं तक्रमेव च॥ ११८॥
पिपासायां जलं शीतं विजया च हिता निशि।

शुद्ध हिंगुल, शुद्ध वत्सनाभ, काली मिर्च, सोहागा तथा पीपरि, इन औषधियों-को एकत्रित करके चूर्ण तैयार करे। इसे लोग आनन्दभैरव रस कहते हैं। इन्द्रजौ तथा कुड़ेकी छाल, इन दोनों वस्तुओंका चूर्ण करके रोगीका बलाबल देखते हुए इसी चूर्णके साथ यह आनन्द भैरव रस देना चाहिए। इसका सेवन करनेसे त्रिदोषज अतीसार रोग दूर हो जाता है। इसका पथ्य गौका दही, भात, घी तथा छाछ हैं। प्यास लगनेपर ठंढा पानी पीना चाहिए। रात्रिके समय यदि थोड़ी-सी भाँग पीसकर पी ले तो वह भी लाभ ही पहुँचाती है॥ ११६–११८॥

सन्निपातपर लघुसूचकाभरण रस

विषं पलमितं सूतः शाणिकश्चूर्णयेद् द्वयम्॥ ११९॥
तच्चूर्णं संपुटे क्षिप्त्वा काचलिप्तशरावयोः।
मुद्रां दत्त्वा च संशोष्य ततश्चुल्ल्यां निवेशयेत्॥ १२०॥
वह्निं शनैः शनैः कुर्यात्प्रहरद्वयसंख्यया।
तत उद्घाटयेन्मुद्रामुपरिस्थां शरावकात्॥ १२१॥
संलग्नो यो भवेत्सूतस्तं गृह्णीयाच्छनैः शनैः।
वायुस्पर्शो यथा न स्यात्तथा कूप्यां निवेशयेत्॥ १२२॥
यावत्सूच्या मुखे लग्नः कूप्या निर्याति भेषजम्।
तावन्मात्रो रसो देयो मूर्च्छिते सन्निपातिनि॥ १२३॥
क्षुरेण प्रच्छिते मूर्ध्नि तत्रांगुल्या च घर्षयेत्।
रक्तभेषजसंपर्कान्मूर्च्छितोऽपि हि जीवति॥ १२४॥
तथैव सर्पदष्टस्तु मृतावस्थोऽपि जीवति॥ १२५॥

शुद्ध वत्सनाभ नामक विष एक पल, शोधा भया पारा तीन मासा, इन दोनों-को एकत्र करके इनका चूर्ण तैयार करे। इसके बाद दो ऐसे कसोरे ले, जिनमें काच चढ़ा हो। उन्हींमेंसे एकमें यह चूर्ण रखकर दूसरेसे ढाँप दे और उसके ऊपर कपड़मिट्टी कर देवे। सूख जानेपर उसे चूल्हेपर धरके दो पहर मन्द-मन्द आँच देवे। फिर उतारकर उस कसोरेको खोले और युक्तिपूर्वक हल्के हाथोंसे पारा निकाल ले और शीशीमें भरकर धर रक्खे। जिस मनुष्यको सन्निपातके कारण मूर्च्छा आ रही हो, उसकी खोपड़ीमें उस स्थानपर जहाँ कि तालु प्रदेश है, बाल मूँड़कर जरासी खाल छील दे और उस दवावाली शीशीमेंसे सींकसे

औषधि निकालकर उस छीले भये स्थानपर लगावे और तब तक मले जब तक वह रुधिरसे न मिल जाय। रुधिरमें मिलते ही उस प्राणीकी मूर्च्छा जाती रहेगी और वह होशमें आ जायगा। उसी तरह जिस प्राणीको साँपके काटनेसे मूर्च्छा आ गयी हो, उसे भी यही दवा लगावे तो वह अच्छा हो जायगा। इस औषधिसे शरीरमें दाह अधिक उठने लगती है। उसे दूर करनेके लिये गुलकन्द तथा अंगूर आदि तर चीजें खानेको देना चाहिए॥ ११६–१२५॥

सन्निपातपर जलचूडामणि रस

सूतभस्मसमं गन्धं गन्धात्पादं मनःशिला।
माक्षिकं पिप्पलीव्योषं प्रत्येकं शिलया समम्॥ १२६॥
चूर्णयेद्भावयेत्पित्तैर्मत्स्यमायूरसंभवैः।
सप्तधा भावयेच्छुष्कं देयं गुञ्जाद्वयं हितम्॥ १२७॥
तालपर्णीरसश्चानु पञ्चकोलशृतोऽथवा।
जलचूडारसो नाम सन्निपातं नियच्छति॥ १२८॥
जलयोगश्च कर्त्तव्यस्तेन वीर्यं भवेद्रसे।

पारेकी भस्म एक भाग, शुद्ध गंधक एक भाग, मैनसिल, गंधककी एक चौथाई सुवर्णमाक्षिककी भस्म, पीपरि तथा सोंठ ये पाँच चीजें मैनसिलके बराबर एकत्रित करके चूर्ण करे। इसके बाद उसे खरलमें डालकर मछलीके कलेजेके पित्तेमें सात भावनादे और सात ही भावना मोरके पित्तेमें देकर धूपमें सुखा ले। इसको लोग जलचूडामणि रस कहते हैं। मूसलीके रस अथवा पंचकोलके काढ़ेमें दो रत्तीके प्रमाणसे इसकी मात्रा दी जानी चाहिए। यदि इसका सेवन करनेके कारण शरीरमें गरमी मालूम पड़े तो शीतल जलका फुहारा दे। इससे गर्मी शान्त होगी और रसका प्रभाव भी बढ़ जायगा। इस युक्तिसे यदि औषधिका सेवन किया जाय तो सन्निपात रोग शान्त हो जाता है॥ १२६–१२८॥

सन्निपातपर पंचवक्त्र रस

शुद्धसूतं विषं गन्धं मरिचं टंकणं कणा॥ १२९॥
मर्दयेद्धूर्तजैर्द्रावैर्दिनमेकं तु शोषयेत्।
पञ्चवक्त्रो रसो नाम द्विगुंजः सन्निपातहा॥ १३०॥

अर्कमूलकषायं तु सत्र्यूषमनुपाययेत्।
युक्तं दध्योदनं पथ्यं जलयोगं च कारयेत्॥ १३१॥
रसेनानेन शाम्यन्ति सत्तौद्रेण कफादयः।
मध्वार्द्रकरसं चानु पिबदेग्निविवृद्धये॥ १३२॥
यथेष्टं घृतमांसाशी शक्तो भवति पावकः।

शोधा हुआ पारा, शोधित विष, गन्धक, मिर्च, सोहागा और पीपरि, इन छ औषधियोंको धतूरेके रसमें दिन भर खरल करे और ठीक हो जानेपर दो-दो रत्तीकी गोलियें बनाकर धूपमें सुखा ले। इसकी पंचवक्त्र रस संज्ञा है। आककी जड़के काढ़ेमें सोंठ, मिर्च और पीपरिका चूर्ण मिलाकर उसीके साथ यह रस देना चाहिए। पथ्यमें दही भात खाना हितकर है। गरमी लगनेपर पूर्वोक्त रीतिके अनुसार जलके छींटे देने चाहिएँ। इसके सेवनसे कफ आदिके रोग दूर हो जाते हैं। यदि अदरखके रसमें शहद मिलाकर उसमें यह औषधि दी जाय तो मन्द औदर्य अग्नि प्रदीप्त हो जाता और घृत, मांस आदि गरिष्ठ पदार्थोंके भी पचानेकी शक्ति उस व्यक्तिमें आ जाती है॥ १२९–१३२॥

सन्निपातपर उन्मत्त रस

रसगन्धौ समानांशौ धत्तूरफलजै रसैः॥ १३३॥
मर्दयेद्दिनमेकं च तत्तुल्यं त्रिकटु क्षिपेत्।
उन्मत्ताख्यो रसो नाम नस्ये स्यात्सन्निपातजित्॥ १३४॥

शोधित पारा और गन्धक एक भाग, सोंठ, काली मिर्च तथा पीपरि, इन औषधियोंको उसी परिमाणसे एकत्रित करे जितना कि पारा और गन्धक हो। फिर सबका चूर्ण करके धतूरेके फलके रसमें एकदिन खरल करे। इसके बाद उसे घाममें सुखाकर चूर्णके रूपमें रख ले। जिस मनुष्यको सन्निपात हो गया हो, उसे यदि इसकी नस्य दे तो वह रोग दूर हो जाता है। इसको लोग उन्मत्त रस कहते हैं॥ १३३॥ १३४॥

सन्निपातपर अंजन

निस्त्वग्जैपालबीजं च दश निष्कं विचूर्णयेत्।
मरिचं पिप्पलीं सूतं प्रतिनिष्कं विमिश्रयेत्॥ १३५॥

भाव्यो जम्बीरजैर्द्रावैः सप्ताहं संप्रयत्नतः ।
रसोऽयमंजनं दत्तः सन्निपातं विनाशयेत् ॥ १३६ ॥

बिना छिल्केवाले जमालगोटेके बीज दस निष्क, कालो मिर्च, पीपरि और शुद्ध पारा, ये औषधियें एक-एक निष्कके प्रमाणसे एकत्रित करे। फिर इनको जंभीरी नीबूके रसमें सात दिन तक खरल करके उसकी गोलियें बना ले। सन्निपातवाले रोगीके नेत्रमें यदि इस गोलीको जलमें घोंटकर अंजनकी तरह लगावे तो उसका सन्निपात रोग दूर हो जाता है ॥ १३५ ॥ १३६ ॥

शूलादिकोंपर इच्छाभेदी रस

दरदं टंकणं शुंठी पिप्पली चेति कार्षिकाः ॥ १३७ ॥
हेमाह्वा पलमात्रा स्याद्दन्तीबीजं च तत्समम् ।
विशोष्यैकत्र सर्वाणि गोदुग्धेनैव पाययेत् ॥ १३८ ॥
त्रिगुंजं रेचनं दद्याद्विष्टंभाध्मानरोगिषु ।

हिंगुल, सोहागा, सोंठ तथा पीपरि, ये औषधियें एक-एक तोले और चूक, शुद्ध किया भया जमालगोटा, ये दोनों चार-चार तोलेके परिमाणसे एकत्रित करे। फिर सबको कूट-पीसकर चूर्ण बना ले। यह इच्छाभेदी रस कहलाता है। जिसके पेटमें कब्ज रहता हो, उसको दस्त लानेके लिए गौके दूधमें दो रत्ती यह औषधि देना चाहिए। इसके प्रभावसे कब्जका रहना, पेट फूलना आदि रोग दूर हो जाते हैं ॥ १३७ ॥ १३८ ॥

शूलादि रोगोंपर नाराच रस

सूतटङ्कणके तुल्ये मरिचं सूततुल्यकम् ।
गन्धकं पिप्पली शुण्ठी द्वौ द्वौ भागौ विचूर्णयेत् ॥ १३९ ॥
सर्वतुल्यं क्षिपेद्दन्तीबीजं निस्तुषितं भिषक् ।
द्विगुंजं रेचनं सिद्धं नाराचोऽयं महारसः ॥ १४० ॥
आध्मानं शूलविष्टंभानुदावर्त्तं च नाशयेत् ।

शोधा हुआ पारा, सोहागा तथा काली मिर्च, इन औषधियोंको बराबर-बराबर लेकर गन्धक, पीपरि और सोंठ, ये औषधियें पारेसे दूने परिमाणमें एकत्रित करे और शोधा भया जमालगोटा सब औषधियोंके बराबर ले। इन सबको इकट्ठा करके चूर्ण तैयार करे, यह नाराच नामक महारस है। दस्त लानेके

वास्ते दो रत्तीकी मात्रा देनी चाहिए। इसका सेवन करनेसे पेटका फूलना, शूलरोग, मलका अवरोध तथा वायुकी ऊर्ध्वगति आदि समस्त औदर्य रोग दूर हो जाते हैं। विशेषतया गरम पानी, तुलसीके रस, शहद अथवा अदरखके रसमें इसकी मात्रा दी जाती है ॥ १३९-१४० ॥

प्रमेहादिकोंपर वसंतकुसुमाकर रस

द्वौ भागौ हेमभूतेश्च गगनं चापि तत्समम् ॥ १४१ ॥
लोहभस्म त्रयो भागाश्चत्वारो रसभस्मतः।
वंगभस्म त्रिभागं स्यात्सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ १४२ ॥
प्रबालं मौक्तिकं चैव रससात्म्येन दापयेत्।
भावना गव्यदुग्धेन रसैर्घृष्टाटरूषकैः ॥ १४३ ॥
हरिद्रावारिणा चैव मोचकंदरसेन च।
शतपत्ररसेनापि मालत्याः स्वरसेन च। १४४ ॥
पश्चान्मृगमदश्चंद्रस्तुलसीरसभावितः।
कुसुमाकर इत्येष वसन्तपदपूर्वकः ॥ १४५ ॥
गुंजाद्वयं ददीतास्य मधुना सर्वमेहनुत्।
सिताचन्दनसंयुक्तश्चाम्लपित्तादिरोगजित् ॥ १४६ ॥

स्वर्णभस्म दो भाग, अभ्रककी भस्म दो भाग, पारेकी भस्म चार भाग, लोहभस्म तीन भाग, वंगभस्म तीन भाग, मूँगा तथा मोतीकी भस्म चार भाग, इन औषधियोंको एकत्रित करके गौके दूध, अडूसेकी पत्तीके रस, हल्दीके रस, केलेके कन्दके रस, गुलाबजल, मालती, कस्तूरी, भीमसेनी कपूर और तुलसीकी पत्तियोंके रसमें क्रमशः एक-एक भावना देकर गोली बनावे और धूपमें सुखा ले। यह वसन्तकुसुमाकर रस है। सब प्रकारके प्रमेहोंपर दो रत्ती यह औषधि देनी चाहिए। यदि इस रसको मिश्री तथा श्वेत चन्दनके रसमें दिया जाय तो सब प्रकारके पित्तजनित रोग दूर हो जाते हैं ॥ १४१-१४६ ॥

क्षयरोगपर राजमृगांक रस

सूतभस्म त्रिभागं स्याद्भागैकं हेमभस्मकम्।
मृताभ्रस्य च भागैकं शिलागंधकतालकम् ॥ १४७ ॥

प्रतिभागद्वयं शुद्धमेकीकृत्य विचूर्णयेत् ।
वराटान्पूरयेत्तेन छागीक्षीरेण टंकणम् ॥ १४८ ॥
पिष्ट्वा तेन मुखं रुद्ध्वा मृद्भांडे तन्निरोधयेत् ।
शुष्कं गजपुटे पक्त्वा चूर्णयेत्स्वांगशीतलम् ॥ १४९ ॥
रसो राजमृगांकोऽयं चतुर्गुंजः क्षयापहः ।
दशपिप्पलिकाक्षौद्रैरेकोनत्रिंशदूषणैः ॥ १५० ॥

तीन भाग पारेकी भस्म एक-एक भाग, सुवर्ण और अभ्रककी भस्म, मैनसिल, गंधक तथा हड़ताल, ये तीनों शोधी भयी चीजें दो-दो भागके परिमाणसे एकत्रित-कर खरल करके चूर्ण कर ले। इसके अनन्तर इस चूर्णको पीली कौड़ियोंमें भरकर बकरीके दूधमें पीसे सोहागेसे उन कौड़ियोंका मुख बन्द कर दे। तत्पश्चात् उनको एक हाँडीमें रखकर ऊपरसे दूसरी हाँड़ी रखे और कपड़मिट्टी करके घाम-में सुखा ले। फिर उसे आरने उपलोंके गजपुटमें रखकर फूँक दे और जब वह ठंढा हो जाय तो उसका रस निकाल ले और सम्हालकर रख दे। यह राज-मृगांक रस कहलाता है। यदि इसकी चार रत्तीकी मात्रा दस पीपरि और उन्तीस काली मिर्चके चूर्ण तथा शहदमें मिलाकर दी जाय तो क्षय रोग दूर हो जाता है॥ १४७–१५० ॥

क्षयादिकोंपर स्वयमग्नि रस

शुद्धं सूतं द्विधा गंधं कुर्य्यात्खल्वेन कज्जलीम् ।
तयोः समं तीक्ष्णचूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ॥ १५१ ॥
द्वियामांते कृतं गोलं ताम्रपात्रे विनिक्षिपेत् ।
आच्छाद्यैरंडपत्रेण यामार्धेऽत्युष्णता भवेत् ॥ १५२ ॥
धान्यराशौ न्यसेत्पश्चादहोरात्रात्समुद्धरेत् ।
संचूर्ण्य गालयेद्वस्त्रे सत्यं वारितरं भवेत् ॥ १५३ ॥
भावयेत्कन्यकाद्रावैः सप्तधा भृंगजैस्तथा ।
काकमाचीकुरंटोत्थैर्द्रवैर्मुंड्यापुनर्नवैः ॥ १५४ ॥
सहदेव्यमृता नीली निर्गुंडीचित्रजैस्तथा ।
सप्तधा तु पृथग्द्रावैर्भाव्यं शोष्यं तथातपे ॥ १५५ ॥

सिद्धयोगो ह्ययं ख्यातः सिद्धानां च मुखागतः।
अनुभूतो मया सत्यं सर्वरोगगणापहः॥ १५६ ॥
स्वर्णादीन्मारयेदेवं चूर्णीकृत्य तु लोहवत्।
त्रिफलामधुसंयुक्तः सर्वरोगेषु योजयेत्॥ १५७ ॥
त्रिकटुत्रिफलैलाभिर्जातीफललवंगकैः।
नवभागोन्मितैरेतैः समः पूर्वरसो भवेत्॥ १५८ ॥
संचूर्ण्यालोडयेत्क्षौद्रैर्भक्ष्यं निष्कद्वयं द्वयम्।
स्वयमग्निरसो नाम्ना क्षयकासनिकृंतनः॥ १५९ ॥

शोधा भया पारा एक भाग, शोधी हुई गंधक एक भाग, इन दोनों वस्तुओंकी कजली करे। इसके बाद इसीके बराबर लोहका चूर्ण मिलाकर घीकुवारके रसमें दो प्रहर तक खरल करे। इसके पश्चात् उसका एक गोला बनाकर किसी ताम्रपात्रमें रक्खे और रेंड़के पत्तोंसे ढाँककर चार घड़ी तक धूपमें सुखावे। जब वह अच्छी तरह गरम हो जाय तो उसे चौबीस घण्टेके लिए धानके बखारमें गाड़ दे। फिर उसे निकालकर कपड़ेसे छान ले। परीक्षाके लिए यदि उसमेंसे थोड़ीसी भस्म पानीमें डाल दे तो वह भस्म तैरती दीखेगी। इसके बाद उसको खरल करके घीकुवार, भाँगरा, मकोय, पियाबाँसा, मुण्डी, पुनर्नवा, सहदेई, गिलोय, काली निर्गुंडी तथा चित्रक, इन औषधियोंमें अलग-अलग भावना देवे। ऐसा करनेसे यह स्वयमग्नि रस तैयार हो जाता है। यह रस सब प्रकारके रोगोंका नाशक है। इस बातका स्वयं मैंने अनुभव किया है। ऊपर बतलाये लोहचूर्णकी तरह सुवर्ण आदिका चूर्ण भी स्वयमग्नि रसके विधानके अनुसार करनेसे उसकी भी भस्म तैयार हो जाती है। यदि त्रिफलाके चूर्ण और शहदमें मिलाकर दो निष्क इस रसका सेवन किया जाय। तो सब प्रकारके रोग दूर हो जाते हैं। यदि सोंठ, मिर्च, पीपरि, हरड़, बहेड़ा, आँवला, इलायची, जायफल तथा लौंग, इनके चूर्णमें शहदके साथ यह औषधि दी जाय तो क्षय तथा खाँसीका रोग नष्ट हो जाता है॥ १५१-१५९ ॥

श्वासपर सूर्यावर्त्त रस

सूतार्धो गंधको मर्द्यो यामैकं कन्यकाद्रवैः।
द्वयोस्तुल्यं ताम्रपत्रं पूर्वकल्केन लेपयेत॥ १६० ॥

दिनैकं स्थालिकायंत्रे पक्त्वा चादाय चूर्णयेत् ।
सूर्यावर्तो रसो ह्येष द्विगुंजः श्वासजिद्भवेत् ॥ १६१ ॥

शोधा हुआ पारा एक भाग और पारेकी अपेक्षा आधी गंधक लेकर घीकुवारके रसमें एक प्रहरपर्यन्त खरल करके कल्क तैयार करे। इसके बाद इन दोनोंके समान परिमाणके ताम्रपत्र लेकर उनपर इस कल्कका लेप करे। फिर उन पत्रोंको एक मिट्टीके बर्तनमें रखकर उसपर दूसरा पात्र औंधावे और कपड़मिट्टी करके उसको संधियें बन्द कर दे। इसके बाद उसे घाममें सुखाकर चूल्हेपर चढ़ावे और दिन भर आँच दे। इसे लोग स्थालिकायंत्र कहते हैं। ठंढा होजानेके बाद उस पात्रसे वह औषधि निकाल ले और खरलमें बारीक चूर्ण करके रख दे। इसे लोग सूर्यावर्त रस कहते हैं। यदि श्वासरोगीको इसकी दो रत्तीकी मात्राके अनुसार यह सूर्यावर्त रस सेवन करावे तो उसका श्वासरोग दूर हो जाता है ॥ १६० ॥ १६१ ॥

वातरोगपर स्वच्छन्दभैरव रस

शुद्धं सूतं मृतं लोहं ताप्यं गंधकतालकम् ।
पथ्याग्निमंथनिर्गुंडीत्र्यूषणं टंकणं विषम् ॥ १६२ ॥
तुल्यांशं मर्दयेत्खल्वे दिनं निर्गुंडिकाद्रवैः ।
मुंडीद्रावैर्दिनैकं तु द्विगुंजं वटकीकृतम् ॥ १६३ ॥
भक्षयेद्वातरोगार्तो नाम्ना स्वच्छंदभैरवः ।
रास्नामृता देवदारु शुण्ठीवातारिजं शृतम् ॥ १६४ ॥
सगुग्गुलुं पिबेत्कोष्णमनुपानसुखावहम् ।

शोधा भया पारा, लौहभस्म, स्वर्णमाक्षिककी भस्म, गंधक, हड़ताल, जंगी हरड़, अरनी, निर्गुंडी, सोंठ, काली मिर्च, पीपल, सुहागा और शोधा भया वत्सनाभ नामक विष, इन औषधियोंको बराबर-बराबर लेकर निर्गुंडीके रसमें दिन भर खरल करे और दो-दो रत्तीकी गोलियें बनाकर रख ले। यह स्वच्छन्द भैरव रसके नामसे प्रसिद्ध है। यदि रास्ना, गिलोय, देवदारु, सोंठ, रेंड़की जड़, इनके काढ़ेमें गूगुलके साथ इसका सेवन किया जाय तो वायुसे संबन्ध रखनेवाले रोग दूर हो जाते हैं ॥ १६२–१६४ ॥

संग्रहणीपर हंसपोटली रस

दग्धान्कपर्दिकान्पिष्ट्वा त्र्यूषणं टंकणं विषम् ॥ १६५ ॥
गंधकं शुद्धसूतं च तुल्यं जम्बीरजैर्द्रवैः ।
मर्दयेद्भक्षयेन्माषं मरिचाज्यं लिहेदनु ॥ १६६ ॥
निहन्ति ग्रहणीरोगं पथ्यं तक्रौदनं हितम् ।

जली हुई कौड़ियोंको पीसकर तैयार किया हुआ भस्म, सोंठ, काली मिर्च, पीपरि, सोहागा, शोधा भया पारा, इन सब औषधियोंको कूट-पीसकर जंभीरी नीबूके रसमें खरल करके एक-एक मासेकी गोलियें बना ले और काली मिर्च-के चूर्णमें शहदके साथ यदि इसका सेवन किया जाय तो संग्रहणी रोग नष्ट हो जाता है। इसे लोग हंसपोटली रस कहते हैं। इसका सेवन करते समय दही-भात खाना पथ्य है ॥ १६५ ॥ १६६ ॥

पथरीरोगपर त्रिविक्रम रस

मृतं ताम्रमजाक्षीरे पाच्यं तुल्ये गतद्रवम् ॥ १६७ ॥
तत्ताम्रं शुद्धसूतं च गंधकं च समं समम् ।
निर्गुंडीस्वरसैर्मर्द्यं दिनं तद्गोलकं कृतम् ॥ १६८ ॥
यामैकं वालुकायंत्रे पाच्यं योज्यं द्विगुंजकम् ।
बीजपूरस्य मूलं तु सजलं चानुपाययेत् ॥ १६९ ॥
रसस्त्रिविक्रमो नाम्ना मासैकेनाश्मरीप्रणुत् ।

ताम्रभस्मके बराबर ही बकरीका दूध लेवे और उसमें वह ताम्रभस्म मिलाकर औटावे। जब गाढ़ी हो जाय तो ताम्रभस्म और उसके समान भागका शुद्ध पारा तथा गन्धक, ये तीनों औषधिये निर्गुंडीके रसमें दिनभर खरल करे और उसकी गोलियें बनाकर वालुका यन्त्र द्वारा एक पहर तक आँच दे। शीतल होनेपर उस सम्पुटमेंसे औषधियें निकाल ले। इसकी त्रिविक्रम रस संज्ञा है। यदि बिजौरेकी जड़के रस अथवा बिजौरेके काढ़ेके साथ रोज़ दो रत्तीकी मात्राका सेवन करे तो एक महीनेमें पथरी रोग नष्ट हो जाता है ॥ १६७—१६९ ॥

कुष्ठादिकोंपर महातालेश्वर रस

तालं ताप्यं शिलासूतं शुद्धं सैन्धवटङ्कणे ॥ १७० ॥

समांशं चूर्णयेत्खल्वे सूताद् द्विगुणगन्धकम् ।
गन्धतुल्यं मृतं ताम्रं जम्बीरैर्दिनपञ्चकम् ॥ १७१ ॥
मर्द्यं षड्भिः पुटैः पाच्यं भूधरे संपुटोदरे ।
पुटे पुटे द्रवैर्मर्द्यं सर्वमेतच्च षट्पलम् ॥ १७२ ॥
द्विपलं मारितं ताम्रं लोहभस्म चतुष्पलम् ।
जम्बीराम्लेन तत्सर्वं दिनं मर्द्यं पुटेल्लघु ॥ १७३ ॥
त्रिंशदंशं विषं चास्य क्षिप्त्वा सर्वं विचूर्णयेत् ।
माहिषाज्येन संमिश्रं निष्कार्धं भक्षयेत्सदा ॥ १७४ ॥
मध्वाज्यैर्वाकुचीचूर्णं कर्षमात्रं लिहेदनु ।
सर्वकुष्ठान्निहन्त्याशु महातालेश्वरो रसः ॥ १७५ ॥

हरताल, सुवर्णमाक्षिक, मैनसिल, शुद्ध किया हुआ पारा, सेंधा नमक और सुहागा, इन चीजोंको बराबर-बराबरके हिसाबसे एकत्रित करके पारेकी अपेक्षा दूनी गन्धक ले और गंधकके बराबर ताम्रभस्म लेकर खरलमें डाले और पाँच दिन तक जंभीरी नीबूके रसमें खरल करे। इसके बाद उसका गोला बनावे और शरावसंपुटमें रखकर कपड़मिट्टी करके भूधरयंत्रमें वह सम्पुट रखे और आँच दे तो वह भस्म हो जाता है। तत्पश्चात् यह भस्म छ पल, ताम्रभस्म दो पल तथा लौहभस्म चार पल, इनको एकत्रित करके दिनभर जंभीरी नीबूके रसमें खरल करे। फिर उसे शरावसंपुटमें रखे और कपड़मिट्टी करके आरने उपलोंकी साधारण आँच दे। जब वह शीतल हो जाय तो बाहर निकाल ले और इसमें इस भस्मका तीसवाँ हिस्सा शुद्ध वत्सनाभ विष बारीक पीसकर मिला ले। इसकी महातालेश्वर रस संज्ञा है। इस रसको आधे निष्कके प्रमाणसे लेकर भैंसका घी तथा शहद इन दोनोंको विषम भागके हिसाबसे लेकर उसमें एक कर्ष बाकुचीका चूर्ण मिलावे और सेवन करे तो सब प्रकारके कुष्ठ तत्काल दूर हो जाते हैं ॥१७०-१७५॥

कुष्ठरोगपर कुष्ठकुठार रस

सूतभस्मसमो गन्धो मृतायस्ताम्रगुग्गुलू ।
त्रिफला च महानिम्बश्चित्रकश्च शिलाजतु ॥ १७६ ॥
इत्येतच्चूर्णितं कुर्यात्प्रत्येकं शाणषोडशम् ।
चतुःषष्टिकरंजस्य बीजचूर्णं प्रकल्पयेत् ॥ १७७ ॥

चतुःषष्टिमृतं चाभ्रं मध्वाज्याभ्यां विलोडयेत्।
स्निग्धभांडे घृतं खादेद्द्विनिष्कं सर्वकुष्ठनुत्॥ १७८॥
रसः कुष्ठकुठारोऽयं गलत्कुष्ठनिवारणः।

पारेकी भस्म, गन्धक, लोहभस्म, ताम्रभस्म, गूगुल, हरड, बहेड़ा, आँवला, बकायनकी छाल, चीतेकी छाल और शिलाजीत, इन सब औषधियोंको सोलह-सोलह शाणके हिसाबसे एकत्रित करे और उसके साथ-साथ चौंसठ शाण कंजेके बीज लेवे। फिर सबका चूर्ण करके चौंसठ शाण अभ्रकके चूर्णमें मिला ले। यदि इसे दो निष्ककी मात्राके अनुसार प्रतिदिन सेवन करे तो सब प्रकारके कुष्ठ एवं बहता हुआ कुष्ठरोग भी दूर हो जाता है। इसे लोग कुष्ठकुठार रस कहते हैं॥ १७६-१७८॥

कुष्ठरोगपर उदयादित्य रस

शुद्धं सूतं द्विधा गन्धं मर्द्यं कन्याद्रवैर्दिनम्॥ १७९॥
तद्गोलं पिठरीमध्ये ताम्रपात्रेण रोधयेत्।
सूतकाद्द्विगुणेनैव शुद्धेनाधोमुखेन च॥ १८०॥
पार्श्वे भस्म निधायाथ पात्रोर्ध्वे गोमयं जलम्।
किञ्चित्किञ्चित्प्रदातव्यं चुल्ल्यां यामद्वयं पचेत्॥ १८१॥
चण्डाग्निना तदुद्धृत्य स्वांगशीतं विचूर्णयेत्।
काष्ठोदुम्बरिकावह्निं त्रिफलाराजवृक्षकम्॥ १८२॥
विडङ्गं बाकुचीबीजे क्वाथयेत्तेन भावयेत्।
दिनैकमुदयादित्यो रसो देयो द्विगुञ्जकः॥ १८३॥
विचर्चिकां दद्रुकुष्ठं वातरक्तं च नाशयेत्।
अनुपानं च कर्तव्यं बाकुचीफलचूर्णकम्॥ १८४॥
खदिरस्य कषायेण समेन परिपाचितम्।
त्रिशाणं तद्गवां क्षीरैः क्वाथैर्वा त्रिफलैः पिबेत्॥ १८५॥
त्रिदिनांते भवेत्स्फोटः सप्ताहाद्वा किलासके।
नीली गुंजाश्च कासीसं धत्तूरं हंसपादिकम्॥ १८६॥
सूर्यभक्ता च चांगेरी पिष्ट्वा मूलानि लेपयेत्।
स्फोटस्थानप्रशांत्यर्थं सप्तरात्रं पुनः पुनः॥ १८७॥

श्वेतकुष्ठान्निहन्त्याशु साध्यासाध्यं न संशयः ।
अपरः श्वित्रलेपोऽपि कथ्यतेऽत्र भिषग्वरैः ॥ १८८ ॥
गुञ्जाफलाग्निचूर्णं च प्रलेपः श्वेतकुष्ठनुत् ।
शिलापामार्गभस्मानि लिप्तं श्वित्रं विनाशयेत् ॥ १८९ ॥

चार पल शोधा भया पारा और उससे दुगुनी गन्धक लेकर घीगुवारके रसमें उन दोनों वस्तुओंको घोंटकर एक गोला बना ले । इसके बाद उस गोलेको एक घड़ेमें रखे और पारेकी अपेक्षा तिगुनी भारी तामेकी कटोरीसे उस घड़ेका मुँह ढाँक दे । फिर राखसे उसकी सन्धियें बन्द करके ऊपरसे गौके गोबरको कटोरीके चारों ओर पोत दे । इसके बाद उसे चूल्हेपर चढ़ावे और दो प्रहर पर्यन्त खूब तेज आँच दे । जब वह अपने आप शीतल हो जाय तो घड़ेकी औषधि निकाल ले और निम्नलिखित औषधियोंके रसकी भावना देवे । जैसे—कठूमर, चित्रक, हरड़, बहेड़ा, आँवला, अमिलतासका गूदा, वायविडंग और बावची, इन सब औषधियोंको एकत्रितकर काढ़ा तैयार करे और इस रसमें डालकर खरल करे । गाढ़ी हो जानेके बाद गोलियें बना ले । यह उदयादित्य रस कहलाता है । इसका सेवन करनेसे विचर्चिका, दाद, कुष्ठ तथा वातरक्त दूर हो जाते हैं । खैरकी छालके काढ़ेमें तीन शाण बावचीका चूर्ण मिला करके और उसमें एक रत्ती यह औषधि डालकर खानी चाहिए । इसका सेवन आरम्भ करनेके तीसरे, चौथे या सातवें दिन श्वित्रकुष्ठवाले मनुष्यके शरीरमें बहुतेरे फोड़े निकल आते हैं । उनको दूर करनेकी औषधि बतलाते हैं । जैसे—नीलपुष्पी, घुँघची, हीराकसीस, धतूरा, हंसपदी, हुरहुर और चूक, इन औषधियोंकी जड़को समान मात्राके हिसाबसे एकत्रित करके खूब बारीक पीस ले और उन फोड़ोंपर लगाकर लेप करे तो वे फोड़े अच्छे हो जायँगे और साध्य अथवा असाध्य, ये दोनों प्रकारके श्वेतकुष्ठ दूर हो जायँगे । इसमें किसी प्रकारका संशय नहीं है । एक औषधि यह भी है कि घुँघची और चित्रकका बारीक चूर्ण करके पानीके साथ सारे शरीरमें मालिश करे अथवा मैनसिल और ओंगाकी राख इन दोनोंको खरल करके भी मालिश किया जा सकता है । ऐसा करनेसे श्वेतकुष्ठरोग दूर हो जाता है ॥ १७९–१८९ ॥

कुष्ठादिकोंपर सर्वेश्वर रस

शुद्धं सूत चतुर्गंधं पलं यामं विचूर्णयेत् ।
मृतताम्राभ्रलोहानां दरदस्य पलं पलम् ॥ १६० ॥
सुवर्णं रजतं चैव प्रत्येकं दशनिष्ककम् ।
माषैकं मृतवज्रं च तालं शुद्धं पलद्वयम् ॥ १६१ ॥
जम्बीरोन्मत्तवासाभिः स्नुह्यर्कविषमुष्टिभिः ।
मर्द्यं हयारिजैर्द्रावैः प्रत्येकेन दिनं दिनम् ॥ १६२ ॥
एवं सप्तदिनं मर्द्यं तद्गोलं वस्त्रवेष्टितम् ।
वालुकायन्त्रगं स्वेदं त्रिदिनं लघुवह्निना ॥ १६३ ॥
आदाय चूर्णयेच्छ्लक्ष्णं पलैकं योजयेद्विषम् ।
द्विपलं पिप्पलीचूर्णं मिश्रं सर्वेश्वरो रसः ॥ १६४ ॥
द्विगुञ्जो लिह्यते क्षौद्रैः सुप्तिमण्डलकुष्ठनुत् ।
बाकुचीदेवकाष्ठं च कर्षमात्रं सुचूर्णयेत् ॥ १६५ ॥
लिहेदेरण्डतैलात्तमनुपानं सुखावहम् ।

चार पल शुद्ध पारा और एक पल गन्धक, इन दोनोंको एकत्रित करके एक पहर तक खरल करे । फिर ताम्रभस्म, अभ्रककी भस्म, लोहभस्म और हिंगुल, ये चार वस्तुयें चार-चार पलके प्रमाणसे एकत्रित करे । फिर सुवर्णभस्म तथा चाँदीकी भस्म ये दोनों दस-दस निष्क, हीरेकी भस्म एक मासा और हरताल-का सत्त्व दो पल, इन चीजोंको भी इकट्ठी करके इन सबको पारे तथा गन्धककी कज्जलीमें मिलावे और नीबू, धतूरा, अडूसा, बकायन तथा कनेरकी जड़की रसमें और थूहर तथा आकके दूधमें अलग-अलग एक-एक दिन खरल करके गोला बनावे । फिर उसके चारों तरफ कपड़ा लपेटकर बालुकायन्त्रमें रखकर चूल्हेपर चढ़ा दे और उसके नीचे तीन दिन तक मन्द-मन्द आँच देवे । जब शीतल हो जाय तो सम्पुटमेंसे रसको निकाल ले और उसमें शोधा हुआ वत्सनाभ विष एक पल तथा पीपरिका चूर्ण दो पल मिला दे । यह सर्वेश्वर रस कहलाता है । इस रसकी दो रत्तीकी मात्राका सेवन करे और तुरन्त बावची तथा देवदारुके चूर्णको एक कर्ष अरण्डीके तेलके साथ पिये तो सुप्तिकुष्ठ और मंडलकुष्ठ ये दोनों प्रकारके कुष्ठ दूर हो जाते हैं ॥ १६०–१६५ ॥

सुप्तिकुष्ठपर स्वर्णक्षीरी रस

हेमाह्वां पञ्चपलिकां क्षिप्त्वा तक्रघटे पचेत् ॥ १६६ ॥
तक्रे जीर्णे समाहृत्य पुनः क्षीरघटे पचेत् ।
क्षीरे जीर्णे समुद्धृत्य क्षालयित्वा विशेषतः ॥ १६७ ॥
तच्चूर्णं पञ्चपलिकं मरिचानां पलद्वयम् ।
पलैकं मूर्च्छितं सूतमेकीकृत्य तु भक्षयेत् ॥ १६८ ॥
निष्कैकं सुप्तिकुष्ठार्तः स्वर्णक्षीरी रसो ह्ययम् ।

पाँच पल चोकको छाछसे भरे घड़ेमें डालकर औटावे। जब सब छाछ जल जाय तो चोक निकाल ले और दूधके घड़ेमें चढ़ाकर औटावे। जब दूध भी सूख जाय तो औषधि निकालकर धो डाले। इसके बाद उसका चूर्ण करके दो पल वह चूर्ण और एक पल पारेकी भस्म, इन दोनों चीजोंको इकट्ठी करके पीस ले। यह स्वर्णक्षीरी रस कहलाता है। नित्य एक निष्कके प्रमाणसे इस रसका सेवन करनेसे सुप्तिकुष्ठ नामक रोग दूर हो जाता है ॥ १९६–१९८ ॥

प्रमेहरोगपर मेहबद्ध रस

सूतभस्म मृतं कांतं मुण्डभस्म शिलाजतु ॥ १६६ ॥
शुद्धं ताप्यं शिलाव्योषं त्रिफलां कोलबीजकम् ।
कपित्थं रजनीचूर्णं भृंगराजेन भावयेत् ॥ २०० ॥
विंशद्वारं विशोष्याथ मधुयुक्तं लिहेत्सदा ।
निष्कमात्रं हरेन्मेहान्मेहबद्धरसो महान् ॥ २०१ ॥
महानिंबस्य बीजानि पिष्ट्वा षट्सम्मितानि च ।
पलं तंदुलतोयेन घृतनिष्कद्वयेन च ॥ २०२ ॥
एकीकृत्य पिबेच्चानु हन्ति मेहं चिरन्तनम् ।

पारेकी भस्म, कान्तलोहकी भस्म, लोहभस्म, शुद्ध शिलाजीत, सुवर्णमाक्षिककी भस्म, मैनसिल, सोंठ, मिर्च, पीपरि, हड़, बहेड़ा, आँवला, कंकोलके बीज, कैथेका गूदा तथा हल्दी, इन औषधियोंको समान भागके हिसाबसे एकत्रित करके भस्मके अतिरिक्त जितनी भी चीजें हैं, उनका चूर्ण करके वह सब भस्म भी इसी चूर्णमें मिला ले और भाँगरेके रसकी बीस भावना दे। यह मेहबद्ध रस कहलाता है। यदि प्रतिदिन शहदके साथ इस रसकी एक निष्क मात्राका सेवन किया

जाय तो भयंकर प्रमेह रोग भी दूर हो जाता है। यदि बकायनके छः बीज पीसकर चूर्ण कर ले और एक पल चावलोंके धोवनमें दो निष्क घी डालकर उसमें एक निष्क यह रस मिलाकर खाय तो कितनेही दिनोंका पुराना प्रमेह रोग भी शान्त हो जाता है ॥ १९९–२०२ ॥

सब उदररोगोंपर महावह्नि रस

चतुः सूतस्य गंधाष्टौ रजनी त्रिफला शिवा ॥ २०३ ॥
प्रत्येकं च द्विभागं स्यात्त्रिवृज्जैपालचित्रकाः।
प्रत्येकं च त्रिभागं स्यात्त्र्यूषणं दन्तिजीरकम् ॥ २०४ ॥
प्रत्येकमष्टभागं स्यादेकीकृत्य विचूर्णयेत्।
जयन्ती स्नुक्पयोभृंगवह्निवातारितैलकैः ॥ २०५ ॥
प्रत्येकेन क्रमाद्भाव्यं सप्तवारं पृथक्पृथक्।
महावह्निरसो नाम निष्कमुष्णजलैः पिबेत् ॥ २०६ ॥
विरेचनं भवेत्तेन तक्रभक्तं ससैंधवम्।
दिनांते दापयेत्पथ्यं वर्जयेच्छीतलं जलम् ॥ २०७ ॥
सर्वोदरहरः प्रोक्तो मूढ़वातहरः परः।

चार भाग पारा, आठ भाग गन्धक, पीपरि, हल्दी, हड़, बहेड़ा, आँवला तथा छोटी हड़, इन औषधियोंके दो दो भाग ले। निसोथ, शोधा भया जमालगोटा एवं चित्रक, इन औषधियोंको तीन-तीन भागके हिसाबसे एकत्रित करे। सोंठ, मिर्च, पीपरि, दन्ती और जीरा, ये औषधियें आठ-आठ भागके हिसाबसे एकत्र करे। इसके बाद सबका चूर्ण करके जयन्तीका रस, थूहरका दूध, भाँगरेका रस, चित्रक तथा रेंडीका तेल, इन पाचों चीजोंमें क्रमशः उक्त औषधियोंकी सात-सात भावना दे और एक-एक निष्कके परिमाणकी गोलियें बना ले। इसकी एक गोलीको यदि गरम जलके साथ खाय तो दस्त हो। दस्त हो जानेके बाद शामको दही-भात खिलावे या देशकालके अनुसार जो पथ्य उचित जान पड़े सो दे। लेकिन ठंढा जल न पीने दे। यह रसायन दस्त कराकर समस्त उदर-रोग और मूढवात नामक रोगको दूर कर देता है ॥ २०३–२०७ ॥

गुल्मादि रोगोंपर विद्याधर रस

गंधकं तालकं ताप्यं मृतताम्रं मनःशिलाम् ॥ २०८ ॥

शुद्धं सूतं च तुल्यांशं मर्दयेद्भावयेद्दिनम् ।
पिप्पल्यास्तु कषायेण वज्रीक्षीरेण भावयेत् ॥ २०९ ॥
निष्कार्धं भक्षयेत्क्षौद्रैर्गुल्मप्लीहादिकं जयेत् ।
रसो विद्याधरो नाम गोमूत्रं च पिबेदनु ॥ २१० ॥

गन्धक, हड़ताल, सुवर्णमाक्षिककी भस्म, ताम्रभस्म, मैनसिल और शुद्ध किया भया पारा, इन औषधियोंको समान भागके हिसाबसे एकत्रित करे और खरलमें डालकर पीपरिके काढ़ेमें दिन भर खरल करे । फिर दो दिन थूहरके दूधमें खरल करके गोलियें बना ले । यह विद्याधर रस कहलाता है । यदि आधे निष्कके हिसाबसे शहदके साथ इस रसका सेवन किया जाय तो गुल्म नामक रोग तथा प्लीहादि व्याधियें दूर हो जाती हैं ॥ २०८–२१० ॥

परिणामशूलादिकोंपर त्रिनेत्र रस

टंकणं हारिणं शृंगं स्वर्णं शुल्वं मृतं रसम् ।
दिनैकमार्द्रकद्रावैर्मर्द्यं रुद्ध्वा पुटे पचेत् ॥ २११ ॥
त्रिनेत्राख्यरसस्यैकं माषं मध्वाज्यकैर्लिहेत् ।
सैंधवं जीरकं हिंगु मध्वाज्याभ्यां लिहेदनु ॥ २१२ ॥
पक्तिशूलहरः ख्यातो मासमात्रान्न संशयः ।

सोहागा, मृगशृंगभस्म, सुवर्णभस्म, ताम्रभस्म तथा पारेकी भस्म, इन औषधियोंको दिन भर अदरखके रसमें खरल करे और शरावसम्पुटमें रख कपड़-मिट्टी करके आरने उपलोंकी मन्द-मन्द आँच दे । जब अपने आप शीतल हो जाय तो उस सम्पुटको बाहर करके उसकी औषधि निकाल ले । यह त्रिनेत्र रसके नामसे प्रसिद्ध है । यदि इस रसको एक मासेके लगभगकी मात्राके हिसाबसे शहद और घीमें मिलाकर खाय और इसके ऊपर सेंधा नमक, जीरा, भुनी हींग इन तीनोंका चूर्ण घी और शहदके साथ खाय तो पक्ति अर्थात् परिणामशूल नामक रोग केवल एक महीनेमें दूर हो जाता है ॥ २११ ॥ २१२ ॥

शूलादिकोंपर शूलगजकेसरी रस

शुद्धसूतं द्विधा गंधं यामैकं मर्दयेद्दृढम् ॥ २१३ ॥
द्वयोस्तुल्यं शुद्धताम्रं संपुटे तं निरोधयेत् ।
ऊर्ध्वाधो लवणं दत्त्वा मृद्भांडे धारयेद्भिषक् ॥ २१४ ॥

ततो गजपुटे पक्त्वा स्वांगशीतं समुद्धरेत्।
संपुटं चूर्णयेत्सूक्ष्मं पर्णखंडे द्विगुञ्जकम् ॥ २१५ ॥
भक्षयेत्सर्वशूलार्तो हिंगुशुंठीसजीरकम्।
वचामरिचजं चूर्णं कर्षमुष्णजलैः पिबेत् ॥ २१६ ॥
असाध्यं नाशयेच्छूलं रसोऽयं गजकेसरी।

शोधा भया पारा एक भाग, गन्धक दो भाग, इन दोनों वस्तुओंको एक पहर तक घोंटे। इसके बाद इन दोनोंके समान भागका तामा लेकर उसकी कटोरी बनवावे और उसमें पारे तथा गन्धककी कज्जलीको रखकर एक दूसरी कटोरीसे ढाँके। फिर एक मिट्टीकी हाँडीमें आधी दूर तक नमक भरकर वह कटोरी रख दे और कटोरीके ऊपरसे नमक डाल दे। इसके अनन्तर एक परईसे उसका मुख ढाँके और कपड़मिट्टी करके उसकी संधियोंको बन्द कर दे। फिर गड्ढा खोदकर उसमें आरने उपले भरे और गजपुटकी विधिसे आँच देवे। जब वह अपने आप शीतल हो जाय तो कटोरीमेंसे रस निकालकर उसको खूब महीन चूर्ण कर ले। यह शूलगजकेसरी चूर्ण कहलाता है। जिस मनुष्यको शूल उठता हो, वह यदि इसकी दो रत्तीकी मात्रा पानमें रखकर खाय और इसके ऊपर तुरन्त भुनी हींग, सोंठ, जीरा, वच और काली मिर्च, इन औषधियोंका चूर्ण एक कर्षके परिमाणसे ले और पानीमें मिलाकर पी जाय तो उसका असाध्य शूलरोग भी दूर हो जाता है ॥ २१३—२१६ ॥

मंदाग्नि आदि रोगोंपर सूनादि वटी

शुद्धसूतं विषं गंधमजमोदां फलत्रयम् ॥ २१७ ॥
सर्जक्षारं यवक्षारं वह्निसैंधवजीरकौ।
सौवर्चलं विडंगानि सामुद्रं त्र्यूषणं समम् ॥ २१८ ॥
विषमुष्टिं सर्वतुल्यं जम्बीराम्लेन मर्दयेत्।
मरिचाभां वटीं खादेत्सर्वाजीर्णप्रशांतये ॥ २१९ ॥

शोधा हुआ पारा, शोधा भया वत्सनाभ विष, गंधक, अजमोदा, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सजीखार, जवाखार, चित्रक, सेंधा नमक, जीरा, काला नमक, विडनमक, सामुद्र नमक, सोंठ मिर्च, पीपरि, इन औषधियोंको बराबर भाग तथा जितनी सब औषधियाँ हों उतने बकायनके बीज लेकर चूर्ण करे

और जम्भीरी नीबूके रसमें खरल करके मिर्चके समान छोटी-छोटी गोलियें बना ले। यदि यह एक-एक गोली प्रति दिन खाय तो सब प्रकारका अजीर्ण रोग दूर हो जाता है ॥ २१७—२१९ ॥

अजीर्णपर अजीर्णकण्टक रस

शुद्धसूतं विषं गंधं समं सर्वं विचूर्णयेत् ।
मरिचं सर्वतुल्यांशं कण्टकार्याः फलद्रवैः ॥ २२० ॥
मर्दयेद्भावयेत्सर्वमेकविंशतिवारकम् ।
वटीं गुंजात्रयं खादेत्सर्वाजीर्णप्रशांतये ॥ २२१ ॥
अजीर्णकण्टकश्चायं रसो हन्ति विषूचिकाम् ।

शोधा हुआ पारा, शोधा हुआ वत्सनाभ विष तथा गन्धक, इन औषधियों-को समान भागके हिसाबसे एकत्रित करे और जितनी कि तीनों औषधियें हो उतनी ही काली मिर्च मिलावे। इसके अनन्तर सबको खरल करके कटेरीके फलों-के रसमें भावना देकर तीन-तीन रत्तीकी एक-एक गोलियें बना ले। यह अजीर्ण-कंटक रस कहलाता है। इसकी केवल एक एक गोलीका प्रतिदिन सेवन करनेसे सब प्रकारके अजीर्ण रोग एवं विषूचिका रोग तत्काल शान्त हो जाते हैं ॥ २२० ॥ २२१ ॥

कफरोगपर मंथानभैरव रस

मृतं सूतं मृतं ताम्रं हिंगु पुष्करमूलकम् ॥ २२२ ॥
सैंधवं गंधकं तालं कटुकीं चूर्णयेत्समम् ।
पुनर्नवादेवदालीनिर्गुंडीतंडुलीयकैः ॥ २२३ ॥
तिक्तकोशातकीद्रावैर्दिनैकं मर्दयेद् दृढम् ।
माषमात्रं लिहेत्क्षौद्रै रसं मंथानभैरवम् ॥ २२४ ॥
कफरोगप्रशांत्यर्थं निम्बक्वाथं पिबेदनु ।

पारदभस्म, ताम्रभस्म, हींग, पोहकरमूल, सेंधा नमक, गन्धक, हरताल तथा कुटकी, इन आठ औषधियोंको समान भागसे एकत्रित करे और भस्मके अतिरिक्त सब औषधियोंका चूर्ण करके उक्त भस्म मिलाकर पुनर्नवाके रसमें दिनभर खरल करे। इसके बाद वंदाल, निर्गुंडी, चौराई तथा कड़ुई तरोई, क्रमशः इन सब औषधियोंके रसमें दिन-दिन भर खरल करके गोलियें बना ले।

यह मन्थानभैरव रस कहलाता है। यदि इस रसकी एक मासेकी मात्राको शहद-में मिलाकर प्रतिदिन खाय और इसके ऊपर तत्काल नीमकी छालका बना काढ़ा पी लिया करे तो कफरोग दूर हो जाता है॥ २२२-२२४॥

वातविकारपर वातनाशन रस

सूतहाटकवज्राणि ताम्रं लोहं च माक्षिकम्॥ २२५॥
तालं नीलांजनं तुत्थमहिफेनं समांशकम्।
पञ्चानां लवणानां च भागमेकं विमर्दयेत्॥ २२६॥
वज्रीक्षीरैर्दिनैकं तु रुद्ध्वाथो भूधरे पचेत्।
माषैकमार्द्रकद्रावैर्लेहयेद्वातनाशनम्॥ २२७॥
पिप्पलीमूलजं क्वाथं सकृष्णमनुपाययेत्।
सर्वान्वातविकारांस्तु निहन्यात्क्षेपकादिकान्॥ २२८॥

पारदभस्म, सुवर्णभस्म, हीरेकी भस्म, लौहभस्म, सुवर्णमाक्षिककी भस्म, हरतालकी भस्म, शोधा भया सुरमा, लीलाथोथा एवं अफीम इन औषधियों-को समान भागके अनुसार एकत्रित करे। फिर सेंधा नमक, विडनमक, खारा नमक तथा सामुद्र नमक, इनको केवल एक-एक भाग लेवे। कहनेका मतलब यह कि यदि ऊपरकी औषधियें दो-दो तोलेके हिसाबसे ली गयी हों तो सब मिलाकर बीस तोले हुई तब ये पाँचों क्षार केवल दो तोले लेना चाहिए। फिर सबको इकट्ठी करके दिन भर थूरहके दूधमें खरल करे। इसके बाद उसे शरावसम्पुटमें रक्खे। उस सम्पुटको भूधरयंत्रमें रखकर नीचेसे आँच दे। जब शीतल हो जाय तो सम्पुटको निकालकर औषधि अलग कर ले। यह वातनाशन रसके नामसे प्रसिद्ध है। यदि आदीके रसमें मिलाकर प्रतिदिन इस औषधिका सेवन करे और ऊपरसे पिपरामूलके काढ़ेमें पीपरिका चूर्ण डाल करके पी लिया करे तो आक्षेपक आदि वातज रोग दूर हो जाते हैं॥ २२५-२२८॥

कनकसुन्दर रस

कनकस्याष्ट शाणाः स्युः सूतो द्वादशभिर्मतः।
गन्धोऽपि द्वादशप्रोक्तस्ताम्रं शाणद्वयोन्मितम्॥ २२९॥
अभ्रकस्य चतुः शाणं माक्षिकं च द्विशाणिकम्।
वंगो द्विशाणः सौवीरं त्रिशाणं लोहमष्टकम्॥ २३०॥

विषं त्रिशाणिकं कुर्याल्लांगली पलसम्मिता ।
मर्दयेद्दिनमेकं च रसैरम्लफलोद्भवैः ॥ २३१ ॥
दद्यान्मृदु पुटं वह्नौ ततः सूक्ष्मं विचूर्णयेत् ।
माषमात्रो रसो देयः सन्निपाते सुदारुणे ॥ २३२ ॥
आर्द्रकस्वरसेनैव रसोनस्य रसेन वा ।
किलासं सर्वकुष्ठानि विसर्पं च भगन्दरम् ॥ २३३ ॥
ज्वरं गरमजीर्णं च जयेद्रागहरो रसः ।

धतूरेके बीज आठ शाण, पारा बारह शाण, गंधक बारह शाण, ताम्रभस्म दो शाण, अभ्रककी भस्म चार शाण, स्वर्णमाक्षिककी भस्म दो शाण, वंगभस्म दो शाण, शोधा भया सुरमा तीन शाण, लोहेकी भस्म आठ शाण, शोधा हुआ वत्सनाभ नामक विष तीन शाण, कलियारी विषकी जड़ एक पल, इन समस्त औषधियोंको एकत्रित करके खूब बारीक पीसे और नीबूके रसमें दिन भर खरल करे। फिर उसे शरावसम्पुटमें रखकर कपड़मिट्टी करके बनैले उपलोंकी साधारण आँच दे। जब अपने आप शीतल हो जाय तो सम्पुटके रसको निकाल करके महीन पीस ले और सम्हालकर रख छोड़े। यदि अदरखके रस या लहसुनके रसमें इसके एक मासेकी मात्राका सेवन किया जाय तो भयावह सन्निपात रोग, किलासकुष्ठ, सब प्रकारके कुष्ठरोग, विसर्प, भगन्दर, ज्वर, विष-दोष तथा अजीर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं। इसको लोग कनकसुन्दर रस कहते हैं ॥ २२९-२३३ ॥

सन्निपातभैरव रस

रसो गंधस्त्रिकर्षौ कुर्यात्कज्जलिकां द्वयोः ॥ २३४ ॥
ताराभ्रताम्रवङ्गाहिसाराश्चैकैककार्षिकाः ।
शिग्रुज्वालामुखी शुण्ठी बिल्वेभ्यस्तंडुलीयकात् ॥ २३५ ॥
प्रत्येकं स्वरसैः कुर्याद्यामैकैकं विमर्दयेत् ।
कृत्वा गोलं वृतं वस्त्रे लवणापूरिते न्यसेत् ॥ २३६ ॥
काचभांडे ततः स्थाल्यां काचकूपीं निवेशयेत् ।
वालुकाभिः प्रपूर्याथ वह्निं यामद्वयं ददेत् ॥ २३७ ॥

तत उद्धृत्य तं गोलं चूर्णयित्वा विमिश्रयेत्।
प्रवालचूर्णकर्षेण शाणमात्रविषेण च॥ २३८॥
कृष्णसर्पस्य गरलैर्दिवसं भावयेत्तथा।
तगरं मुसली मांसी हेमाह्वा वेतसः कणा॥ २३९॥
नीलिनीपत्रकं चैला चित्रकश्च कुठेरकः।
शतपुष्पा देवदाली धत्तूरागस्त्यमुण्डिकाः॥ २४०॥
मधूकजातिमदनरसैरेषां विमर्दयेत्।
प्रत्येकमेकवेलं च ततः संशोष्य धारयेत्॥ २४१॥
बीजपूरार्द्रकद्रावैर्मरिचैः षोडशोन्मितैः।
रसो द्विगुञ्जाप्रमितः सन्निपातस्य दीयते॥ २४२॥
प्रसिद्धोऽयं रसो नाम्ना सन्निपातस्य भैरवः।

शोधा हुआ पारा डेढ़ कर्ष तथा गन्धक डेढ़ कर्ष, इन दोनों चीजों-को खरलमें डालकर कज्जली करे। तदनन्तर चाँदीभस्म, अभ्रकभस्म, ताम्र-भस्म, वंगभस्म, नागभस्म और लोहभस्म, इन चीजोंको एक-एक कर्षके हिसाब-से एकत्रित करे। फिर सबको उस कज्जलीमें मिला दे। इसके बाद सहँजनकी छालके रसमें पहर भर खरल करे। तत्पश्चात् ज्वालामुखीके रस, सोंठके काढ़े, बेलफलके रस और चौराईके रसमें अलग-अलग पहर-पहर भर खरल करके उसका एक गोला बनावे। उस गोलेके चारों ओर कपड़ा लपेटकर उसे एक काँचके प्यालेमें धरे और उस प्यालेको एक दूसरे प्यालेसे ढाँककर कपड़मिट्टी कर दे। इसके अनन्तर एक हाँड़ीमें आधे तक नमक भरे और उसमें वह सम्पुट रखकर ऊपरसे फिर नमक भर दे और चूल्हेपर चढ़ाकर दो पहर तक आँच दे। जब वह शीतल हो जाय तो उस सम्पुटकी औषधि निकाल ले और उस गोलेका चूर्ण करके उसमें मूँगेका चूर्ण एक कर्ष, शोधे हुए वत्सनाभ नामक विषका एक शाण और थोड़ा-सा सर्पविष डालकर दिन भर खरल करे। इसके बाद उसे एक आतसी काँचकी सीसीमें भरकर ईंटकी डाट लगाकर कपड़मिट्टी द्वारा उसकी संधियें बन्द कर दे और घाममें रखकर सुखा ले। फिर वालुकायन्त्रमें रखकर दो पहर तक आँच दे। शीतल होनेपर उसे निकाल ले और तगर, मुसली, जटामांसी, चूक, बेंत, पीपरि, नीलपुष्पी,

पत्रज, इलायची, चित्रक, वनतुलसी, वन्दाल, धतूरा, अगस्त, मुण्डी, महुआ, चमेली तथा मैनफल, इन औषधियोंके रसमें खरल करे। ये जितनी औषधियें बतायी गयी हैं, उन सबमें क्रमशः खरल होना चाहिए। जैसे कि एक औषधिका रस डालकर खरल करे, जब वह सूख जाय तब दूसरीका और दूसरीका रस भी सूख जाय तो तीसरीका रस डालकर खरल करे। हाँ एक बात और है, वह यह कि जिन औषधियोंका रस न निकल सकता हो, उनका काढ़ा बनाकर काममें लावे। इस तरह खरल करते-करते जब वह सूख जाय तो गोली बनाकर रख ले। यह सन्निपातभैरव रस कहलाता है। बिजौरेके रस तथा अदरखके रसमें सोलह काली मिर्चें डालकर दो रत्ती यह रस उस रोगीको देना चाहिए कि जिसे सन्निपातका प्रकोप हो। इसके सेवनसे वह बाधा दूर हो जाती है ॥२३४-२४२॥

संग्रहणीपर ग्रहणीकपाट रस

तारमौक्तिकहेमानि सारश्चैकैकभागिकः ॥ २४३ ॥
द्विभागो गन्धकः सूतस्त्रिभागो मर्दयेदिमान् ।
कपित्थस्वरसैर्गाढं मृगश‍ृङ्गे ततः क्षिपेत् ॥ २४४ ॥
पुटेन्मध्यपुटेनैव तत उद्धृत्य मर्दयेत् ।
बलारसैः सप्तवेलमपामार्गरसैस्त्रिधा ॥ २४५ ॥
लोध्रं प्रतिविषा मुस्तं धातकीन्द्रयवामृताः ।
प्रत्येकमेषां स्वरसैर्भावना स्यात्त्रिधा त्रिधा ॥ २४६ ॥
माषमात्रो रसो देयो मधुना मरिचैस्तथा ।
हन्यात्सर्वानतीसारान्ग्रहणीं सर्वजामपि ॥ २४७ ॥
कपाटो ग्रहणीरोगे रसोऽयं वह्निदीपनः ।

चाँदीकी भस्म, मोतीभस्म, सुवर्णभस्म तथा लौहभस्म, इन औषधियोंको एक-एक भागके हिसाबसे एकत्रित करे। फिर गन्धक दो भाग और शोधा भया पारा तीन भाग लेकर कैथेके रसमें खरल करके हरिनकी सींगमें भर दे। इसके बाद उसपर कपड़मिट्टी करके आरने उपलोंमें रखकर मध्यम आँच दे। शीतल होनेपर इस रसको बाहर कर ले और ओंगा, लोध, अतीस, नागरमोथा, धायके फूल, इन्द्रजौ और गिलोय, इनका स्वरस लेकर एक-एकमें अलग-अलग तीन-तीन भावना दे। इसमें भी वही बात रहेगी कि जिस औषधिका स्वरस

न मिल सके, उसका काढ़ा बनाकर उसीमें खरल करे। खरल करते-करते जब वह सूख जाय तो एक-एक माशेकी गोलियें बना ले। यह ग्रहणीकपाट रसके नामसे विख्यात है। यदि काली मिर्चके चूर्ण और शहदमें मिलाकर इसकी एक-एक गोलीका प्रतिदिन सेवन किया जाय तो सब प्रकारके अतीसार तथा सम्पूर्ण ग्रहणी रोग दूर हो जाते और मन्द अग्नि भी प्रदीप्त हो जाती है ॥ २४६—२४७ ॥

संग्रहणीपर ग्रहणीवज्रकपाट रस

मृतसूताभ्रकं गन्धं यवक्षारं सटंकणम् ॥ २४८ ॥
अग्निमंथं वचां कुर्यात्सूततुल्यानिमान्सुधीः ।
ततो जयन्ती जम्बीरभृङ्गद्रावैर्विमर्दयेत् ॥ २४९ ॥
त्रिवासरं ततो गोलं कृत्वा संशोष्य धारयेत् ।
लोहपात्रे शरावं च दत्त्वोपरि विमुद्रयेत् ॥ २५० ॥
अधो वह्निं शनैः कुर्याद्यामार्धं तत उद्धरेत् ।
रसतुल्यां प्रतिविषां दद्यान्मोचरसं तथा ॥ २५१ ॥
कपित्थविजयद्रावैर्भावयेत्सप्तधा भिषक् ।
धातकींद्रयवामुस्ता लोध्रं विल्वं गुडूचिका ॥ २५२ ॥
एतद्रसैर्भावयित्वा वेलैकैकं च शोषयेत् ।
रसं वज्रकपाटाख्यं शाणैकं मधुना लिहेत् ॥ २५३ ॥
वह्निशुण्ठीबिडं विल्वं लवणं चूर्णयेत्समम् ।
पिबेदुष्णाम्बुना चानु सर्वजां ग्रहणीं जयेत् ॥ २५४ ॥

पारेकी भस्म, अभ्रकभस्म, गन्धक, जवाखार, सोहागा, अरनीकी छाल और वच, इन औषधियोंको समान भागके हिसाबसे एकत्रित करे और सबको अरनीके रसमें दिन भर खरल करे। तत्पश्चात् जंभीरी नीबू और भाँगरेके रसमें एक-एक दिन खरल करके एक गोला बना ले। फिर उसे सुखाकर लोहेकी कड़ाहीमें धरे, गोलेके ऊपर एक कसोरा रखकर उसे ढाँक दे और संधियोंको बन्द करनेके लिए उसके चारों तरफ कपड़मिट्टी कर दे। यह सब हो जानेके बाद कड़ाहीको चूल्हेपर चढ़ावे और नीचे चार घड़ीतक मन्द-मन्द आँच दे। जब वह ठण्ढी हो जाय तो गोलेको बाहर निकाल ले। फिर उसके बराबर अतीस

और मोचरसका चूर्ण डालकर कैथेके स्वरस और भाँगके रसकी सात भावना दे। भावना देनेके अनन्तर धायके फूल, इन्द्रजौ, नागरमोथा, लोध, बेलफल तथा गिलोय, क्रमशः इन औषधियोंके स्वरसमें खरल करे। जब वह गोली बनानेके योग्य हो जाय तो एक-एक माशेकी गोलियें बना ले। यह ग्रहणीवज्रकपाट रस कहलाता है। जिस मनुष्यको ग्रहणीरोग हो, उसे मद्यके साथ देवे। ऊपरसे चित्रक, सोंठ, विडनमक, बेलगिरी तथा सेंधा नमक, इन औषधियोंका चूर्ण तैयारकर गरम जलके साथ फाँके तो सब प्रकारके संग्रहणी रोग दूर हो जाया करते हैं ॥ २४८–२५४ ॥

वाजीकरणपर मदनकामदेव रस

तारं वज्रं सुवर्णं च ताम्रसूतकगंधकम् ।
लोहं क्रमविवृद्धानि कुर्यादेतानि मात्रया ॥ २५५ ॥
विमर्द्य कन्यकाद्रावैन्यसेत्काचमये घटे ।
विमुच्य पिठरीमध्ये धारयेत्सैंधवावृते ॥ २५६ ॥
पिठरीं मुद्रयेत्सम्यक्ततश्चुल्ल्यां निवेशयेत् ।
वह्निं शनैः शनैः कुर्याद्दिनैकं तत उद्धरेत् ॥ २५७ ॥
स्वांगशीतं च संचूर्ण्य भावयेदर्कदुग्धकैः ।
अश्वगंधा च काकोली वानरी मुसली क्षुरा ॥ २५८ ॥
त्रिस्त्रिवेलं रसैरेषां शतावर्याश्च भावयेत् ॥ २५९ ॥
कस्तूरीत्र्यूषकर्पूरकंकोलैलालवंगकम् ।
पूर्वचूर्णादष्टमांशमेतच्चूर्णं विमिश्रयेत् ॥ २६० ॥
सर्वैः समां शर्करां च दत्त्वा शाणोन्मितं पिबेत् ।
गोदुग्धद्विपलेनैव मधुराहारसेवकः ॥ २६१ ॥
अस्य प्रभावात्सौंदर्यं स लभेन्नात्र संशयः ।
तरुणी रमयेद्बह्वीः शुक्रहानिर्न जायते ॥ २६२ ॥

चाँदीकी भस्म एक भाग, हीरेकी भस्म दो भाग, सुवर्णभस्म तीन भाग, ताम्रभस्म चार भाग, पारा पाँच, गन्धक छः तथा लौहभस्म सात भाग इन्हें घीकुवारके रसमें खरल करके आतसी काँचकी शीशीमें भरे और कपड़मिट्टी करके घाममें सुखावे। फिर एक हाँडीमें रखकर शीशीके गलेतक पिसा सेंधा नमक

भरे। ऊपरसे एक परई रखकर हाँड़ीका मुख ढाँक दे और उसकी संधियें बन्द करनेके लिए कपड़मिट्टी करदे। फिर उसे घाममें सुखाकर चूल्हेपर चढ़ावे और दिन भर नीचेसे मन्द-मन्द आँच दे। जब वह अपने आप शीतल होजाय तो शीशीमें से औषधि निकालकर खरलमें डाले और मदारके दूधमें तीन भावना देवे। तदनन्तर असगन्ध, काकोली और काकोली न मिलनेपर फिर असगन्ध, कौंचके बीज, मूसली, तालनखाना, शतावर, कमलगट्टा, कसेरू तथा कसोंदी, इन वस्तुओंका रस निकालकर एक-एक रसमें तीन-तीन बार भावना दे। यह हो जानेपर रस सिद्ध हो जाता है। फिर उसमें कस्तूरी, सोंठ, मिर्च, पीपरि, कपूर, कंकोल, इलायची तथा लौंग, इनका चूर्ण तैयारकर इस रसका आठवाँ भाग उसमें मिलावे। यदि इस रसकी एक शाणकी मात्रा और उसके बराबर ही मिश्री तथा दो पल गौके दूधके साथ खाय तो शरीर सुन्दर, बलवान तथा तेजस्वी होता और कितनी ही स्त्रियोंके साथ भोग करनेकी सामर्थ्य उस मनुष्यमें आ जाती है। यह मदनकामदेव रसके नामसे विख्यात है॥ २५५—२६२॥

वाजीकरणपर कन्दर्पसुन्दर रस

सूतो वज्रमहिर्मुक्तातारं हेमसिताभ्रकम्।
रसैः कपिशकानेतान्मर्दयेद्रिमेदजैः॥ २६३॥
प्रवालचूर्णं गंधश्च द्विद्विकर्षं विमिश्रयेत्।
ततोऽश्वगंधस्वरसैर्विमर्द्य मृगशृंगके॥ २६४॥
क्षिप्त्वा मृदुपुटे पक्त्वा भावयेद्वातकीरसैः।
काकोलीमधुकं मांसी बलात्रयाबिसंगुदम्॥ २६५॥
द्राक्षा पिप्पलिवंदाकं वारिपर्णीचतुष्टयम्।
परूषकं कसेरुश्च मधूकं वानरी तथा॥ २६६॥
भावयित्वा रसैरेषां शोषयित्वा विचूर्णयेत्।
एलात्वक्पत्रकं मांसी लवंगागरुकेशरम्॥ २६७॥
मुस्तं मृगमदः कृष्णाजलं चंद्रश्च मिश्रयेत्।
एतच्चूर्णैः शाणमितं रसं कन्दर्पसुंदरम्॥ २६८॥
खादेच्छाणमितं रात्रौ सिता धात्री विदारिका।
एतेषां कर्षचूर्णेन सर्पिः कर्षे सुसंयुतम्॥ २६९॥

तस्यानु द्विपलं क्षीरं पिबेत्सुस्थितमानसः ।
रमणी रमयेद्बह्वीः शुक्रहानिर्न जायते ॥ २७० ॥

पारदभस्म, हीरेकी भस्म, मोतीकी भस्म, रूपेकी भस्म, स्वर्णभस्म, श्वेत अभ्रककी भस्म, इन चीजोंको एक-एक कर्षके प्रमाणसे एकत्रित करे। फिर सबको खरलमें डाले और खैरकी छालके रसमें घोंटकर मूँगेका चूर्ण तथा गन्धक, इन दोनों वस्तुओंको एक-एक कर्षके प्रमाणसे उसमें डाले और असगन्धके रसमें खरल करे। इसके बाद उसको हरिणकी सींगमें भर दे और ऊपरसे कपड़मिट्टी करके आरने उपलोंमें रखकर मन्द-मन्द आँच दे। जब वह अपने आप ठंढी हो जाय तो निकाल ले और खरलमें डालकर निम्नलिखित औषधियोंको डाले। जैसे—धायके फूल, कंकोल, मुलहठी, जटामासी, खरेंटीकी छाल, कंगनी, गंगेरन, कमलकी कन्द, हिंगोट, दाख, पीपरि, बाँदा, शतावर, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, पृष्ठपर्णी, शालपर्णी, फालसा, कसेरू, महुआ और कौंचके बीज, इन औषधियोंके रसमें क्रमशः एक-एक भावना देकर घाममें सुखा ले। फिर इलायची, दालचीनी, तमालपत्र, वंशलोचन, लौंग, अगर, केसर, नागरमोथा, कस्तूरी, पीपरि, नेत्रबाला और भीमसेनी कपूर, इन औषधियोंके एक शाण प्रमाण चूर्णमें एक ही शाण यह कन्दर्पसुन्दर रस मिलाकर एकत्र करे। यदि इसे एक कर्ष घीमें मिला करके उसमें आँवला और विदारीकन्दका चूर्ण तथा मिश्री, इन वस्तुओंको भी एक-एक कर्ष मिलाकर रात्रिके समय खाय और ऊपरसे दो पल गौका औटा भया दूध पी ले तो बहुतेरी स्त्रियोंके साथ भोग करनेपर भी पुरुषका धातु नहीं क्षीण होने आता और उसके शरीरमें अत्यधिक वीर्य बढ़ जाता है ॥ २६३–२७० ॥

क्षयादि रोगोंपर लोहरसायन

शुद्धं रसेंद्रं भागैकं द्विभागं शुद्धगंधकम् ।
क्षिपेत्कज्जलिकां कुर्यात्तत्र तीक्ष्णभवं रजः ॥ २७१ ॥
क्षिप्त्वा कज्जलिकातुल्यं प्रहरैकं विमर्दयेत् ।
तत्र कन्याद्रवैः खल्वे त्रिदिनं परिमर्दयेत् ॥ २७२ ॥
ततः संजायते तस्य सोष्णो धूमोद्गमो महान् ।
अत्यन्तं पिंडितं कृत्वा ताम्रपात्रे निधाय च ॥ २७३ ॥

मध्ये धान्यैकशूकस्य त्रिदिनं धारयेद्बुधः।
उद्धृत्य तस्मात्खल्वे च क्षिप्त्वा घर्मे निधाय च॥ २७४॥
रसैः कुठारच्छिन्नायास्त्रिवेलं परिभावयेत्।
संशोष्य घर्मे क्वाथैश्च भावयेत्त्रिकटोस्त्रिधा॥ २७५॥
वासामृताचित्रकाणां रसैर्भाव्यं क्रमात्त्रिधा।
लोहपात्रे ततः क्षिप्त्वा भावयेत्त्रिफलाजलैः॥ २७६॥
निर्गुंडीदाडिमत्वग्भिर्बिसभृङ्गकुरण्टकैः।
पलाशकदलीद्रावैर्बीजकस्य शृतेन वा॥ २७७॥
नीलिकालम्बुषाद्रावैर्वंशमूलफलिकारसैः।
त्रित्रिवेलं यथालाभं भावयेदेभिरौषधैः॥ २७८॥
ततः प्रातर्लिहेत्क्षौद्रघृताभ्यां कोलमात्रकम्।
पलमात्रं वराक्वाथं पिबेदस्यानुपानकम्॥ २७९॥
मासत्रयं शीलितं स्याद्वलीपलितनाशनम्।
मन्दाग्निं श्वासकासौ च पांडुताकफमारुतौ॥ २८०॥
पिप्पलीमधुसंयुक्तं हन्यादेतन्न संशयः।
वातास्रमूत्रदोषांश्च ग्रहणीं तोयजां रुजम्॥ २८१॥
अण्डवृद्धिं जयेदेतच्छिन्नासत्त्वमधुप्लुतम्।
बलवर्णकरं वृष्यमायुष्यं परमं स्मृतम्॥ २८२॥
कूष्मांडं तिलतैलं च माषान्नं राजिका तथा।
मद्यमम्लरसं चैव त्यजेल्लोहस्य सेवकः॥ २८३॥

शोधा भया पारा और शोधी हुई गन्धक, इन दोनों वस्तुओंको खरलमें डालकर कज्जली करे। फिर उस कज्जलीमें उसके समान भागका लोहचूर्ण मिलावें और पहर भर खरल करके तीन दिन तक घीकुवारके रसमें खरल करे। जब खरल करते-करते उसमेंसे गरम-गरम धुआँ निकलने लगे तो उसका एक गोलासा बना ले और एक मिट्टीके बर्तनमें रखकर धानके बखारमें गाड़ दे। जब रक्खे-रक्खे तीन दिन हो जाय तो निकाल ले और गोलेको तोड़ और चूर्ण करके वनतुलसीके रसमें तीन भावना दे। इसके अनन्तर सोंठ, काली मिर्च, पीपरि, इन चीजोंका काढ़ा करके इन तीनों काढ़ोंमें भी क्रमशः तीन-तीन भावना

दे। तत्पश्चात् अडूसा, गिलोय तथा चित्रक, इनका रस निकालकर इनमें भी पहलेकी तरह तीन-तीन भावना दे। फिर इसे किसी लोहेकी कड़ाहीमें डालकर निम्नलिखित औषधियोंमें फिर भावना देनी चाहिए। जैसे हरड़ बहेड़ा, आँवला, निगुंडी, अनारकी छाल, कमलकी कन्द, भाँगरा, पियाबाँसा, पलास, केलाका कन्द, विजयसार, नीलपुष्पी, मुण्डी तथा बबूलकी छाल, इन औषधियोंका रस निचोड़कर क्रमशः एक-एक रसमें तीन-तीन भावना देवें। यह लौह रसायन कहलाता है। यदि इसे कोलप्रमाणसे मधु तथा घीमें मिलाकर तीन महीने तक प्रतिदिन खाय और ऊपरसे एक पल प्रमाण त्रिफलाका काढ़ा पी लिया करे तो प्राणीके शरीरमें पुरुषार्थकी मात्रा बढ़ जाती और उसके सफेद बाल काले हो जाया करते हैं। यदि इस रसायनको पीपरि और शहदके साथ खाय तो श्वास, कास, पाण्डुरोग एवं कफवात रोग दूर हो जाते हैं। यदि इसे गिलोयके सतमें मिलाकर खाय तो वातरक्त, मूत्रदोष, जलके कारण जायमान सग्रहणी रोग तथा अण्डवृद्धि ये सारे रोग दूर हो जाते हैं। इस रसायनका सेवन करनेसे बल बढ़ता, शरीरमें कान्ति आती, स्त्रीप्रसंग करनेकी इच्छा जाग्रत होती और आयु बढ़ती है। जो मनुष्य इस रसायनका सेवन करता हो उसे पेठा, तिल्लीका तेल, उड़द, राई, शहद तथा खटाई, ये चीजें न खानी चाहियें ॥ २७१–२८३ ॥

जमालगोटाकी शोधनविधि

जैपालं रहितं त्वगङ्कुररसज्ञाभिर्मले माहिषे
निःक्षिप्त त्र्यहमुष्णतायावमलं खल्ले सवासाऽर्दितम्।
लिप्तं नूतनखर्परेषु विगतस्नेहं रजःसान्निभं
निम्बूकाम्बुविभावितं च बहुशः शुद्धं गुणाढ्यं भवेत् ॥ २८४ ॥

सर्वप्रथम जमालगोटेका छिलका उतारकर बीचो बीच चीरे और अन्दरकी जीभी निकाल दे। फिर उसकी दोनों दालोंको कपड़ेकी ढीली पोटलीमें बाँधकर भैंसके गोबरमें तीन दिनोंतक दबा रखे। इसके बाद उसे निकाले और पानीसे धोकर साफ कर ले। तदनन्तर एक साफ कपड़ेकी पोटलीमें बाँधकर खरलमें डाले और मुसलीसे हल्के हाथों खूब कूटे। जब सब बीजोंकी लुगदीसी बन जाय तब उसे नये खपड़ेपर पतला-पतला लीप दे। एक-दो दिन बाद जब खपड़ा उसका काफी तेल सोख ले तब चाकूसे खुरचकर उसका भुरभुरा-सा चूर्ण निकाल ले। इतना ख्याल

रखना आवश्यक है कि लुगदीका सारा तेल खपड़ा न सोखने पाये, नहीं तो औषधि निर्वीर्य हो जायगी। तदनन्तर उस चूर्णको खरलमें डालकर नीबूके रसमें सात बार भावना दे। बस जमालगोटा शुद्ध हो गया ॥ २८४ ॥

विषशोधनकी विधि

विषं तु खण्डशः कृत्वा वस्त्रखण्डेन बन्धयेत्।
गोमूत्रमध्ये निःक्षिप्य स्थापयेदातपे त्र्यहम् ॥ २८५ ॥
गोमूत्रं च प्रदातव्यं नूतनं प्रत्यहं बुधैः।
त्र्यहेऽतीते समुद्धृत्य शोषयेन्मृदु पेषयेत् ॥ २८६ ॥
शुद्ध्यत्येवं विषं तच्च योग्यं भवति चार्तिजित्।

वत्सनाभ तथा कुचलाको चाकूसे काटकर चनके बराबर छोटे-छोटे टुकड़े कर ले। तदनन्तर स्वच्छ वस्त्रकी एक ढीली-सी पोटलीमें उसे बाँधे और गोमूत्र भरे पात्रमें डालकर तीनों तक धूपमें रखा रहने दे। प्रतिदिन बासी गोमूत्र अलग करके पात्रमें ताजा भरता रहे। चौथे दिन पोटली निकालकर विषके टुकड़ोंको धूपमें सुखाकर पीस ले। बस, विष शुद्ध और रोगनाशक होगया समझे ॥ २८५ ॥ २८६ ॥

विषशोधनकी दूसरी विधि

खण्डीकृतं विषं वस्त्रपरिबद्धं तु दोलया ॥ २८७ ॥
अजापयसि संस्विन्नं यामतः शुद्धिमाप्नुयात्।
अजादुग्धस्याभावे गव्यक्षीरेण शोधयेत् ॥ २८८ ॥

विषके शोधनकी दूसरी विधि यह है कि विषको उपर्युक्त रीतिसे चने बराबर टुकड़े कर लेनेके बाद दोलायंत्रकः विधिसे बकरीके दूधमें रखकर तीन घंटे तक पकावे। उसके बाद निकालकर सुखा ले। कदाचित् बकरीका दूध न मिले तो गायके दूधमें भी यह पकाया जा सकता है ॥ २८७ ॥ २८८ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायां चिकित्सास्थाने मध्यखण्डे
रसकल्पना नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

———

अथ उत्तरखण्डम् ।

——✲०✲——

प्रथमोऽध्यायः ।

स्नेहपानविधि

स्नेहश्चतुर्विधः प्रोक्तो घृतं तैलं वसा तथा ।
मज्जा च तं पिबेन्मर्त्यः किञ्चिदभ्युदिते रवौ ॥ १ ॥

स्नेह चार प्रकारके होते हैं । जैसे घी, तेल, वसा, (यानी मांसके भीतरकी चर्बी) और मज्जा (यानी हड्डीके भीतरकी चर्बी) । ये चारों प्रकारके स्नेह ठीक सूर्योदयके समय सेवन करने चाहियें ॥ १ ॥

स्थावरो जंगमश्चैव द्वियोनिः स्नेह उच्यते ।
तिलतैलंस्थावरेषु जंगमेषु घृतं वरम् ॥ २ ॥

उन स्नेहोंमें भी दो भेद होते हैं अर्थात् एक स्थावर स्नेह (यानी वनस्पतियोंसे निकलनेवाले तिलतेल आदि) और दूसरा जंगम स्नेह (जैसे घृत वसा आदि) । स्थावर स्नेहोंमें तिलका तेल और जंगम स्नेहोंमें घृत सर्वश्रेष्ठ माना गया है ॥ २ ॥

स्नेहके भेद

द्वाभ्यां त्रिभिश्चतुर्भिस्तैर्यमकस्त्रिवृतो महान् ।

यदि घी और तेल, ये दोनों एकत्र कर दिये जाते तो उसकी 'यमक' संज्ञा हो जाती है । घी, तेल और वसा, ये तीनों चीजें इकट्ठी होकर 'त्रिवृत' कहलाने लगती हैं । घी, तेल, वसा और मज्ज़ा, ये चारों चीजें जब इकट्ठो हो जातीं तो उसे लोग 'महान्' कहने लगते हैं ।

स्नेह पीनेका समय

पिबेत्त्र्यहं चतुरहं पञ्चाहं षडहं तथा ॥ ३ ॥

ऊपर बतलाये हुए चारों स्नेह क्रमशः तीन, चार, पाँच और छ दिन पीने चाहियें। जैसे—घी तीन दिन, तेल चार दिन, वसा पाँच दिन और मज्जा छ दिन ॥ ३ ॥

स्नेहका सात्म्य कितने दिनमें होता है ?

सप्तरात्रात्परं स्नेहः सात्मीभवति सेवितः ।

सात रात्रिके बाद स्नेह शरीरमें सात्म्यरूप धारण कर लेता है। फिर उससे कुछ गुण-अवगुण होनेका अन्देशा नहीं रह जाता।

स्नेहकी मात्रा

दोषकालाग्निवयसां बलं दृष्ट्वा प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥
हीना च मध्यमां ज्येष्ठां मात्रां स्नेहस्य बुद्धिमान् ।

दोष (वात-पित्त आदि) का काल और अग्नि, इनका बलाबल देखकर ही स्नेहकी हीन (दो कर्ष प्रमाण), मध्यम (तीन कर्ष प्रमाण) और ज्येष्ठ (एक पल) मात्रा देनेकी व्यवस्था करनी चाहिए ॥ ४ ॥

स्नेहकी मात्राप्रमाणको त्यागकर स्नेह पीनेके दोष

अमात्रया तथाऽकाले मिथ्याहारविहारतः ॥ ५ ॥
स्नेहः करोति शोफार्शस्तन्द्रानिद्राविसंज्ञताः ।

ऊपर बतलाये स्नेहोंको बिना किसी तौल-नापके पी लेनेसे, जो समय निर्धारित है उसमें उसका सेवन न करनेसे, घृतादि स्नेह पीकर उसमें जो परहेज़ बतलाये गये हैं, उनके विरुद्ध मिथ्या आहार-बिहार करनेसे शोथ, बवासीर, तन्द्रा, निद्रा तथा संज्ञाहीनता, ये रोग हो जाते हैं ॥ ५ ॥

मिथ्याहारका लक्षण इस प्रकार है—

(अकाले चातिमात्रां वा असात्म्यं यच्च भोजनम् ।
विषमाशनवद्भुक्तं मिथ्याहारः स कथ्यते ॥)

बिना समयके थोड़ा या अधिक भोजन करने, जो वस्तु अपनी प्रकृतिके विरुद्ध हो, उसे खाने और देश-कालका कोई विचार न करके जो मिले सो ही खाते रहनेको मिथ्याहार कहते हैं ॥

दीप्ताग्नि, मध्याग्नि और अल्पाग्निमें स्नेहकी मात्रा देनेका प्रमाण

देया दीप्ताग्नये मात्रा स्नेहस्य पलसंमिता ॥ ६ ॥
मध्यमायाः त्रिकर्षा स्याज्जघन्या यद् द्विकार्षिकी ।

प्रदीप्त अग्निवालेको चार तोले स्नेहकी मात्रा देनी चाहिये। जिसकी औदर्य अग्नि मध्यम हो, उसे तीन तोले तथा मन्द अग्निवाले व्यक्तिके लिए दो तोले स्नेहकी मात्रा देनी चाहिए॥ ६॥

स्नेहकी मात्राओंके अन्य भेद

अथवा स्नेहमात्राः स्युस्तिस्रोऽन्याः सर्वसम्मताः॥ ७॥
अहोरात्रेण महती जीर्यत्यह्नि तु मध्यमा।
जीर्यत्यल्पा दिनार्धेन सा विज्ञेया सुखावहा॥ ८॥

सर्वसम्मत तीन ही मात्राएँ होती हैं। जैसे कि जो मात्रा दिन भरमें पचे, वह महती यानी बड़ी मात्रा पल-भरकी होती है। जो मात्रा दिन-रातमें पच जाय, वह मध्यम अर्थात् तीन कर्षकी होती है और जो दो प्रहरमें ही पच जाय, वह आनन्ददायिनी अल्प मात्रा दो कर्षकी होती है॥ ७॥ ८॥

अल्पादि मात्राओंके गुण

अल्पा स्याद्दीपनी वृष्या वातदोषे सुपूजिता।
मध्यमा स्नेहनी ज्ञेया बृंहणी भ्रमहारिणी॥ ९॥
ज्येष्ठा कुष्ठविषोन्मादग्रहापस्मारनाशिनी।

ऊपर बतलायी घृतादिकी अल्पमात्रा जठराग्निको प्रदीप्त करती हुई स्त्रीप्रसंगकी इच्छा जाग्रत करती तथा वात-पित्त-कफके साधारण प्रकोपको शान्त करती है। मध्यमा अर्थात् तीन कर्षवाली मात्रा शरीरको परिपुष्ट करती हुई धातुकी वृद्धि करती और भ्रमका निवारण करती है। एक पलवाली सर्वश्रेष्ठ मात्रा कुष्ठ, विषबाधा, उन्माद, भूतादिके उपद्रव और अपस्मार (मृगी) को दूर करनेमें समर्थ होती है॥ ९॥

दोषोंमें अनुपानविशेष

केवलं पैत्तिके सर्पिर्वातिके लवणान्वितम्॥ १०॥
पेयं बहुकफे वापि व्योषक्षारसमन्वितम्।

पैत्तिक व्याधियोंमें केवल घी, वातज रोगोंमें सेंधा नमक मिला हुआ घी तथा कफसे जायमान उपद्रवोंमें सोंठ, मिर्च, पीपरि तथा जवाखारका चूर्ण मिलाकर घृतका पान करावे॥ १०॥

घी पिलाने योग्य प्राणी

रूक्षं क्षतविषार्तानां वातपित्तविकारिणाम् ॥ ११ ॥
हीनमेधास्मृतीनां च सर्पिः पानं प्रशस्यते ।

जिस प्राणीका शरीर रूक्ष हो गया हो, उरःक्षत रोगने घर दबाया हो, किसी प्रकारका विषदोष हुआ हो, कोई वातज विकार हो और जिनकी बुद्धि तथा स्मरणशक्ति क्षीण हो गयी हो, उनके लिए घृतपान कराना अतिशय लाभदायक होता है ॥ ११ ॥

तैल पिलाने योग्य रोगी

कृमिकोष्ठानिलाविष्टाः प्रवृद्धकफमेदसः ॥ १२ ॥
पिबेयुस्तैलसात्म्या ये तैलं दीप्ताग्नयस्तु ये ।

जिस प्राणीके पेटमें कृमिका विकार हो, वायुके प्रकोपसे पेट फूला रहता हो, कफ और मेद विशेष बढ़ गया हो, ऐसे प्राणियोंको तैलपान कराना हितकर है और उन लोगोंको भी तैलपान कराना अच्छा है कि जिनको तेलका पान करनेसे कोई हानि न होती हो और जिनका औदर्य अग्नि भली भाँति प्रदीप्त हो, उनको भी तेल पिलाना ठीक है ॥ १२ ॥

वसा (मांसस्नेह) पिलाने योग्य रोगी

व्यायामकर्षिताः शुष्करेतोरक्तमहारुजः ॥ १३ ॥
महाग्निमारुतप्राणा वसायोग्या नराः स्मृताः ।

जिस मनुष्यका शरीर किसी प्रकारका व्यायाम करनेसे कृश हो गया हो, वीर्य और रक्त क्षीण हो चला हो, शरीरमें सदैव घोर पीड़ा विद्यमान रहती हो, जिसके शरीरमें अग्नि, वायु तथा बलकी अधिकता हो, ऐसे मनुष्यको वसा पिलाना लाभदायक होता है ॥ १३ ॥

मज्जा पिलाने योग्य रोगी

क्रूराशयाः क्लेशसहा वातार्ता दीप्तवह्नयः ॥ १४ ॥
मज्जानं च पिबेयुस्ते सर्पिर्वा सर्वतो हितम् ।

जिनके कोष्ठाशय क्रूर हो गये हों यानी ठीकसे काम न करते हों, जिनके शरीरको विविध प्रकारके क्लेश घेरे रहते हों और अग्नि प्रदीप्त रहता हो, ऐसे प्राणियोंको मज्जा यानी अस्थिगत चर्बी पिलाना लाभदायक होता है ॥ १४ ॥

स्नेह पीनेमें कालनियम

शीतकाले दिवास्नेहमुष्णकाले पिबेन्निशि ॥ १५ ॥
वातपित्ताधिके रात्रौ वातश्लेष्माधिके दिवा ।

जाड़ेके दिनोंमें दिनके समय और गर्मियोंमें रात्रिको स्नेहपान करना चाहिए। उसी तरह यदि वात-पित्त, ये दोनों दोष प्रबल हों तो रात्रिके समय और जब कि कफ तथा वात प्रबल हो तो दिनमें स्नेहपान करे। यह स्नेहपान करनेका नियम है ॥ १५ ॥

स्थलविशेषमें स्नेहोंकी योजना

नस्याभ्यंजनगण्डूषमूर्धकर्णाक्षितर्पणे ॥ १६ ॥
तैलं घृतं वा युंजीत दृष्ट्वा दोषबलाबलम् ।

वैद्यको चाहिए कि रोगीके वात-पित्तादि दोषोंका बलाबल देखकर ही उसके लिए घृत या तैलका नस्य, अभ्यंजन (मालिश) गंडूष (कुल्ला) करने तथा मस्तक और कानमें तेल डालनेकी योजना करे ॥ १६ ॥

स्नेहोंके पृथक्-पृथक् अनुपान

घृते कोष्णं जलं पेयं तैले यूषः प्रशस्यते ॥ १७ ॥
वसामज्ज्ञोः पिबेन्मण्डमनुपानं सुखावहम् ।

घृतका पान करनेके बाद रोगीको चाहिए कि गरम पानी पीवे, तेल पीनेके बाद यूषका पान करे, वसा तथा मज्जाका सेवन करके मंडपान करनेसे लाभ होता है। ये ही चारों प्रकारके स्नेहोंके अनुपान हैं ॥ १७ ॥

भातके साथ स्नेह पिलाने योग्य रोगी

स्नेहद्विषः शिशून्वृद्धान्सुकुमारान्कृशानपि ॥ १८ ॥
तृष्णातुरानुष्णकाले सह भक्तेन पाययेत् ।

जिन लोगोंको घृत आदि स्नेह न रुचते हों उन्हें और बालक, वृद्ध तथा सुकुमार मनुष्यको एवं ग्रीष्म ऋतुमें सबके लिए भातके साथ स्नेह पिलानेकी व्यवस्था करे ॥ १८ ॥

स्नेहके विना यवागूसे सद्यःस्निग्ध होनेवाले पदार्थ

सर्पिष्मती बहुतिला यवागूः स्वल्पतंदुला ॥ १९ ॥
सुखोष्णा सेव्यमाना तु सद्यः स्नेहनकारिणी ।

पहले तिलांको कूट ले। फिर उसमें थोड़ासा चावल तथा घी मिलाकर पानीके साथ आगपर चढ़ा दे। जब कि चावल गलकर लपसीके समान हो जाय तो उसकी यवागू संज्ञा होती है। ऐसी यवागू जब कुछ गरम रहे तभी खायी जाय तो तुरन्त स्नेहनका काम दे जाती है ॥ १९ ॥

धारोष्ण दूधसे तत्काल धातु उत्पन्न होता है

शर्कराचूर्णसंभृष्टे दोहनस्थे घृते तु गाम् ॥ २० ॥
दुग्ध्वा क्षीरं पिबेदुष्णं सद्यः स्नेहनमुच्यते ।

यदि मिश्री पीस करके उसमें घी मिलाकर गौ दुही जानेवाली दोहनीमें डाले और उसी घीमें तत्काल गौका दूध दुहकर पीवे तो वह स्नेह पीनेका काम दे जाता है ॥ २० ॥

मिथ्या आचारसे न पचे हुए स्नेहका यत्न

मिथ्याचाराद्बहुत्वाद्वा यस्य स्नेहो न जीर्यति ॥ २१ ॥
विष्टभ्य वापि जार्येत वारिणोष्णेन वामयेत् ।

यदि स्नेहपान करके उसके नियमानुसार न चल सकनेके कारण या मिथ्या-हार-विहार करनेसे, विशेषतया कफकारी पदार्थ खानेसे पिया हुआ स्नेह न पचे तो रोगीको गरम जल पिलाकर उलटी करा दे। ऐसा करनेसे उसका स्नेहजनित अजीर्ण दूर हो जायगा ॥ २१ ॥

स्नेहजन्य अजीर्णका उपाय

स्नेहस्याजीर्णशंकायां पिबेदुष्णोदकं नरः ॥ २२ ॥
तेनोद्गारो भवेच्छुद्धो भक्तं प्रति रुचिस्तथा ।

यदि स्नेहपान करनेके बाद कुछ ऐसा मालूम हो कि स्नेह पचा नहीं है तो गरम जल पीवे। गरम जल पीनेपर यदि शुद्ध डकार आवे और अन्नकी तरफ अपनी इच्छा जाग्रत हो तो समझ ले कि अजीर्ण दूर हो गया है ॥ २२ ॥

स्नेहजन्य अजीर्णका दूसरा उपाय

स्नेहेन पैत्तिकस्याग्निर्यदा तीक्ष्णतरीकृतः ॥ २३ ॥
तदास्योदीरयेत्तृष्णां विषमां तस्य पाययेत् ।
शीतं जलं वामयेच्च पिपासा तेन शाम्यति ॥ २४ ॥

पित्त प्रकृतिवाले मनुष्यको स्नेहपान करानेसे यदि उसका औदर्य अग्नि हदसे ज्यादा तीक्ष्ण हो जाय और प्यास विशेष लगने लगे तो रोगीको शीतल जल पिलाकर वमन करावे। ऐसा करनेसे उसकी तृष्णा शान्त हो जाती है ॥२४॥

स्नेहपानके अयोग्य मनुष्य

अजीर्णी वर्जयेत्स्नेहमुदरी तरुणज्वरी।
दुर्बलो रोचकी स्थूलो मूर्च्छार्तो मदपीडितः ॥ २५ ॥
दत्तबस्तिर्विरिक्तश्च वांततृष्णाश्रमान्वितः।
अकालप्रसवा नारी दुर्दिने च विवर्जयेत् ॥ २६ ॥

जिस किसी मनुष्यको कोई अजीर्णसम्बन्धी विकार, उदररोग, तरुण ज्वर, दुर्बलता, अरुचि, स्थौल्य, मूर्च्छा और मदरोग हो, जिसने कि बस्तिकर्म किया हो, जिस मनुष्यको दस्त आ रहे हों, प्यास विशेष लग रही हो अथवा अकाल प्रसूता स्त्री हो, इतने प्रकारके रोगियोंको स्नेहपान नहीं ही करावे ॥ २५-२६ ॥

स्नेहपानके योग्य रोगी

स्वेद्यसंशोध्यमद्यस्त्रीव्यायामासक्तचिन्तकाः।
वृद्धा बालाः कृशा रूक्षाः क्षीणास्रा क्षीणरेतसः ॥ २७ ॥
वातार्तितिमिरार्ता ये तेषां स्नेहनमुत्तमम्।

किसी स्वेद्य औषधिके प्रयोगसे जिस मनुष्यका पसीना निकाल दिया गया हो और दस्त आदि कराकर जिसके शरीरका संशोधन कर लिया गया हो, जो मनुष्य शराब पीता हो, स्त्रीमें जिसकी विशेष लालसा रहती हो, जो वृद्ध, बालक, दुर्बल तथा रूखे शरीरवाला हो, जिसका रक्त तथा वीर्य क्षीण हो चला हो, जिसे वातरोग सताये रहते हों, कभी भी जिसके चित्तको चैन न मिलती हो, जो तिमिर-रोगसे आक्रान्त हो, इतने प्रकारके प्राणी घृतादिक स्नेह पान करनेके अधिकारी हैं अर्थात् इनको यह लाभ पहुँचाता है ॥ २७ ॥

अच्छी तरह स्नेहपान किये जानेके लक्षण

वातानुलोम्यं दीप्तोऽग्निर्वर्चः स्निग्धमसंहतम् ॥ २८ ॥
मृदुस्निग्धांगता ग्लानिः स्नेहो वेगोऽङ्गलाघवम्।
विमलेन्द्रियता सम्यक् स्निग्धे रूक्षे विपर्ययः ॥ २९ ॥

इन स्नेहोंका पान करनेवाले प्राणीके अंगोंका सूखापन जाता रहता, शरीर

चिकना होता, वायु ठीक तरहसे आती जाती, अग्नि प्रदीप्त होता, मल चिकना और साफ उतरता, शरीर मुलायम जान पड़ता और ग्लानि दूर हो जाती है। फिर चाहे वह स्नेहपान न भी करे तो उसे किसी उपद्रवका सामना नहीं करना पड़ता। उस स्नेहपानके प्रभावसे शरीर हल्का मालूम पड़ने लगता और इन्द्रियाँ स्वच्छ हो जाती हैं। ऊपर कहे हुए सब लक्षण उस मनुष्यके बतलाये गये हैं कि जिसका शरीर स्निग्ध (चिकना) है और जो मनुष्य रूक्ष शरीरवाले हैं, उनकी देहमें इसके विपरीत लक्षण दिखायी देने लगते हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

मात्रासे अधिक स्नेहपान करनेके लक्षण

भक्तद्वेषो मुखस्रावो गुदे दाहः प्रवाहिका।
तन्द्रातिसारः पांडुत्वं भृशं स्निग्धस्य लक्षणम् ॥ ३० ॥

जो मनुष्य मात्रासे अधिक स्नेहपान करता है, भोजनकी ओरसे उसकी तबीयत हट जाती, मुँहसे लार टपकने लगती, गुदामें जलन होती, दस्त पतला होने लगता, नेत्रोंमें झपकी-सी आया करती, कभी-कभी अतीसार रोग उभड़ आता और शरीर पीला पड़ जाया करता है ॥ ३० ॥

रूक्षको स्निग्ध और स्निग्धको रूक्ष करनेका उपाय

रूक्षस्य स्नेहनं स्नेहैरतिस्निग्धस्य रूक्षणम्।
श्यामाकचणकाद्यैश्च तक्रपिण्याकसक्तुभिः ॥ ३१ ॥

जिसका शरीर रूक्ष हो, उसको ताजी छाछ तथा तिलका कल्क आदि स्निग्ध पदार्थ देकर स्निग्ध करे और जो स्निग्ध शरीरवाला हो उसे साँवाँ-चना तिलकी खली तथा सत्तू आदि रूखे पदार्थ खिलाकर रूक्ष बनावे ॥ ३१ ॥

स्नेहादि सेवनसे लाभ

दीप्ताग्निः शुद्धकोष्ठश्च पुष्टधातुर्जितेन्द्रियः।
निर्जरो बलवर्णाढ्यः स्नेहसेवी भवेन्नरः ॥ ३२ ॥

इन स्नेहोंका पान करनेसे अग्नि प्रदीप्त होता, समस्त कोठे शुद्ध हो जाते, शरीरकी रसादि धातुयें पुष्ट हो जातीं, इन्द्रियाँ वशमें हो जातीं, वृद्धावस्था दूर रहती और बल तथा कान्तिकी वृद्धि होती है ॥ ३२ ॥

स्नेहपानमें वर्जनीय वस्तुयें

स्नेहे व्यायामसंशीतवेगाघातप्रजागरान्।
दिवास्वप्नमभिष्यंदि रूक्षान्नं च विवर्जयेत् ॥ ३३ ॥

स्नेहपान करनेवाला प्राणी कसरत न करे, अतिशय ठंढी चीजें न खाय, मल-मूत्रका वेग न रोके, जागरण और दिवाशयन न करे, कफ बढ़ानेवाला और रूखे-सूखे पदार्थ न खाय ॥ ३३ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां तृतीयखण्डे स्नेहपानविधिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयोऽध्यायः ।

स्नेहपानान्तर पसीना काढ़नेकी विधि

स्वेदश्चतुर्विधः प्रोक्तस्तापोष्मौ स्वेदसंज्ञितौ ।
उपनाहो द्रवः स्वेदः सर्वे वातार्तिहारिणः ॥ १ ॥

स्नेहविधि कहनेके अनन्तर स्वेदविधि बतलाते हैं। वह स्वेदविधि चार प्रकारकी मानी गयी है । ताप, ऊष्म, उपनाह और द्रव । ये चारके चारों स्वेदन वातसे सम्बन्ध रखनेवाली पीड़ाओंको दूर करते हैं । १—बालूकी गरम पोटली अथवा ईंट-पत्थर आदि गरम करके उससे सेंककर पसीना निकालनेको क्रिया ताप कहलाती है । २—काढ़े आदिका भाप देकर पसीना निकालनेको ऊष्म कहते हैं । ३—औषधिको पोटलीसे सेंककर पसीना निकालनेको उपनाह कहते हैं । ४—तेल आदि किसी पतले पदार्थमें बैठकर पसीना निकालनेकी क्रिया द्रव कहलाती है ॥ १ ॥

उसके भेद

स्वेदौ तापोष्मजौ प्रायः श्लेष्मघ्नौ समुदीरितौ ।
उपनाहस्तु वातघ्नः पित्तसंगे द्रवो हितः ॥ २ ॥

इनमें भी ताप और ऊष्मसंज्ञक प्रकार कफका नाश करते हैं । उपनाह स्वेद वातका नाश करता और द्रव नामक स्वेदनप्रकार पित्त तथा वातको दूर करता है ॥ २ ॥

बलाबलकी तारतम्यता और स्वेदकी न्यूनाधिक योजना

महाबले महाव्याधौ शीते स्वेदो महान्स्मृतः ।
दुर्बले दुर्बलः स्वेदो मध्ये मध्यतमो मतः ॥ ३ ॥

जो मनुष्य बलवान् है, किन्तु शरीरमें व्याधि भी असाधारण है। उसके शरीरसे जाड़ेके दिनोंमें ज्यादा पसीना निकालना चाहिए। यदि वह मनुष्य दुर्बल है और व्याधि भी दुर्बल है तो शरीरसे कम पसीना निकाले और मध्यका रोग हो तो वैद्यको चाहिए कि उसके शरीरसे मध्यम पसीना निकाले ॥ ३ ॥

रोगविशेषसे स्वेदविशेषकी योजना

बलासे रूक्षणः स्वेदो रूक्षस्निग्धः कफानिले ।
कफमेदोवृते वाते कोष्णं गेहं रवेः करान् ॥ ४ ॥
नियुद्धं मार्गगमनं गुरुप्रावरणं ध्रुवम् ।
चिन्ताव्यायामभारांश्च सेवेतामयमुक्तये ॥ ५ ॥

कफके दूषित होनेपर बालूकी पोटलीसे सेंककर रूखा पसीना निकाले । कफ और वायु इन दोनोंके प्रकोपमें रूक्ष और स्निग्ध दोनों मिले भये पदार्थसे पसीना निकाले। यदि कफमेदोयुक्त वायुका प्रकोप हो तो किसी गरम घरमें या घाममें बैठकर अथवा कुश्ती आदि लड़कर, रास्ता चलकर, भारी ओढ़ना ओढ़कर, चिन्ता करके, अच्छी तरह परिश्रम करके या बोझा उठाकर पसीना निकाले । इन उपायोंको काममें लानेसे कफमेदोयुक्त वातरोग भी नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥ ५ ॥

पसीनेके योग्य रोगी

येषां नस्यं विधातव्यं वस्तिश्चापि हि देहिनाम् ।
शोधनीयाश्च ये केचित्पूर्वं स्वेद्याश्च ते मताः ॥ ६ ॥

जो मनुष्य नस्य देने, बस्तिकर्म करने और जुलाब देनेके योग्य हो और पहले उसके शरीरसे पसीना निकाल दे । तब नस्य आदि देनेकी व्यवस्था करे ॥ ६ ॥

भगन्दर आदि रोगोंमें स्वेदनकी विधि

स्वेद्यः पूर्वं त्रयोऽपीह भगंदर्यर्शसस्तथा ।
अश्मर्याश्चातुरो जन्तुः शमयेच्छस्त्रकर्मणा ॥ ७ ॥

भगन्दर, बवासीर तथा पथरी, इन तीनों रोगवाले मनुष्यका पहले पसीना निकाले तब शस्त्र कर्म आदिके द्वारा उस व्याधिको शान्त करनेका यत्न करे ॥७॥

बादमें पसीना निकालने योग्य प्राणी

पश्चात्स्वेद्या गते शल्ये मूढगर्भगदे तथा ।
काले प्रजाता काले वा पश्चात्स्वेद्या नितम्बिनी ॥ ८ ॥

जिस स्त्रीके उदरमें गर्भशल्य हो या मूढ़गर्भ रुका हुआ हो, तो जब गर्भ बाहर हो जाय तब पसीना निकाले । ठीक समयपर या कुछ आगे-पीछे जब गर्भ बाहर हो, तभी पसीना निकालना चाहिए—अन्यथा नहीं ॥ ८ ॥

पसीना निकालनेका स्थान और समय

सर्वान्स्वेदान्निवाते च जीर्णाहारे च कारयेत् ।

पसीना निकालनेके चारों प्रकारोंको तभी उपयुक्त करे जब कि रोगीका आहार पच जाय । पसीना निकालनेका स्थान ऐसा होना चाहिए, जहाँ कि वायुका आवागमन बिल्कुल न हो ।

पसीना काढ़नेपर किस मार्गसे दोष निकलते हैं

स्वेदाद्धातुस्थिता दोषाः स्नेहस्निग्धस्य देहिनः ॥ ९ ॥
द्रवत्वं प्राप्य कोष्ठान्तर्गता यांति विरेकताम् ।

पसीना निकालनेसे यह लाभ होता है कि स्नेहसे स्निग्ध शरीरवाले प्राणीके रस आदि धातुओंमें रहनेवाले दोष उस प्राणीके कोठोंमें पहुँच जाते और वहाँ पतले होकर गुदाके मार्गसे निकल जाते हैं ॥ ९ ॥

पसीना निकालनेके बादकी चिकित्सा

स्विद्यमानशरीरस्य हृदयं शीतलैः स्पृशेत् ॥ १० ॥
स्नेहाभ्यक्तशरीरस्य शीतैराच्छाद्य चक्षुषी ।

यदि ऊपर बतलायी हुई युक्तिके अनुसार पसीना निकालकर दोषोंको पतला करके गुदाके द्वारा निकालना हो तो उस प्राणीकी छातीमें चन्दनका लेप करे और जिसके शरीर भरमें घी, तेल आदि स्नेह लगा हो, उसकी आँखोंको कमल या केलेके पत्ते आदि किसी शीतल वस्तुसे ढाँक दे । ऐसा करनेसे उसकी प्रकृति स्वस्थ हो जायगी ॥ १० ॥

स्वेदके अयोग्य मनुष्य

अजीर्णी दुर्बलो मेही क्षतक्षीणः पिपासितः ॥ ११ ॥
अतिसारी रक्तपित्ती पांडुरोगी तथोदरी ।
मदार्तो गर्भिणी चैव न हि स्वेद्या विजानता ॥ १२ ॥
एतानपि मृदुस्वेदैः स्वेदसाध्यानुपाचरेत् ।

अजीर्ण रोगी, दुर्बल, प्रमेहरोगी, क्षतक्षीण, प्यास रोगवाला तथा अतिसार, रक्तपित्त, पाण्डु और उदररोग, इन रोगोंसे आक्रान्त रोगियोंको पसीना निकालनेकी राय न दे। उसी तरह मदरोगके रोगी तथा गर्भिणी स्त्रियोंकी भी देहसे पसीना न निकाले। यदि इनके लिए पसीना निकालनेके सिवाय और कोई मार्ग ही न रहे तो मामूली तौरके उपचारों द्वारा पसीना निकलवा दे॥ ११॥ १२॥

थोड़ा पसीना निकालनेके योग्य अंग

मृदु स्वेदं प्रयुंजीत तथा हृन्मुष्कदृष्टिषु॥ १३॥

हृदय, अण्डकोश तथा आँखोंमें मृदु स्वेदविधिका प्रयोग करना चाहिये॥ १३॥

अधिक पसीना निकालनेके उपद्रव

अतिस्वेदात्संधिपीडा दाहस्तृष्णा क्लमो भ्रमः।
पित्तासृक्पिटिकाकोपस्तत्र शीतैरुपाचरेत्॥ १४॥

शरीरसे अधिक पसीना निकालनेपर शरीरकी संधियोंमें पीड़ा होने लगती, तृष्णा, ग्लानि, भ्रम, पिरकी निकलना तथा रक्तपित्त, ये उपद्रव खड़े हो जाते हैं। इनको शान्त करनेके लिये शीतल उपचार करना चाहिए॥ १४॥

तापसंज्ञक पसीनेकी विधि

तेषु तापाभिधः स्वेदो वालुकावस्त्रपाणिभिः।
कपालकंदुकांगारैर्यथायोग्यं प्रजायते॥ १५॥

पसीना निकालनेके जितने प्रकार हैं, उनमें ताप नामका प्रकार बालू, वस्त्र, हाथ, ठीकरा, कपड़ेकी पोटली और अंगार, इनके द्वारा पसीना निकालनेमें समर्थ होता है॥ १५॥

ऊष्मसंज्ञक पसीनेकी विधि

ऊष्मस्वेदः प्रयोक्तव्यो लोहपिंडेष्टकादिभिः।
प्रतप्तैरम्लसिक्तैश्च काये रल्लकवेष्टिते॥ १६॥
अथवा वातनिर्णाशि द्रव्यक्काथरसादिभिः।
उष्णैर्घटं पूरयित्वा पार्श्वे छिद्रं निधाय च॥ १७॥
विमुद्र्यास्यं त्रिखण्डां च धातुजां काष्ठवंशजाम्।
षडंगुलास्यां गोपुच्छां नलीं युंज्याद् द्विहस्तिकाम्॥ १८॥

सुखोपविष्टं स्वभ्यक्तं गुरुप्रावरणावृतम् ।
हस्तिशुण्डिकया नाड्या स्वेदयेद्वातरोगिणम् ॥ १९ ॥
पुरुषायाममात्रां वा भूमिमुत्कीर्य खादिरैः ।
काष्ठैर्दग्ध्वा तथाभ्युक्ष्य क्षीरधान्याम्लवारिभिः ॥ २० ॥
वातघ्नपत्रैराच्छाद्य शयानं स्वेदयेन्नरम् ।
एवं माषादिभिः स्विन्नैः शयानं स्वेदमाचरेत् ॥ २१ ॥

ऊष्मा नामक स्वेदनविधि करनेका विधान यह है कि लोहेका गोला तथा ईंटका टुकड़ा खूब गरम करे। फिर उसपर थोड़ा-सा खटाईका पानी छिड़क दे। इसके अनन्तर रोगीको कम्बल ओढ़ाकर उसी लोहेके गोले अथवा ईंटके टुकड़ेसे सेंके तो शरीरसे पसीना निकल आता है। इसके सिवाय एक विधि यह भी है कि दशमूलकी औषधियोंका काढ़ा तैयार करके या उसके गरम किये भये रसको एक मिट्टीके घड़ेमें भरे और उस घड़ेका मुँह अच्छी तरह बन्द कर दे। फिर उस घड़ेके पेटमें एक छेद करके किसी धातु, लकड़ी अथवा बाँसकी दो हाथकी एक नली बनाकर उस नलीके सिरेमें तीन छेद करे। नलीका मुख छ अंगुल ऊँचा, छ अंगुल लम्बा अथवा गौकी पूँछकी तरह गावदुम होना चाहिए। तैयार हो जानेपर उसकी आकृति हाथीकी सूँड़के समान हो जाती है। इसी लिए लोग इसे हस्तिशुण्डिका भी कहते हैं। उस नलीको घड़ेके छेदमें लगा दे। जब यह ठीक हो जाय तो रोगीको अच्छी तरह बैठाकर एक भारी ओढ़ना ओढ़ा दे और कपड़ेके भीतर नलीका मुख करके उसकी भाप शरीरमें लगावे तो पसीना अच्छी तरह निकल जाता है। एक विधि और भी है। वह यह कि जितनी मनुष्यकी लम्बाई होती है, उतनी ही लम्बी जमीनको थोड़ा गहरा खोदकर उसमें खैरकी लकड़ियें भरकर जला दे। जब लकड़ियें जल जायँ तो कोयलेको अलग करके उस जमीनपर दूध, धानका पानी, छाछ अथवा काँजीका छिड़काव करे और वातको दूर करनेवाले वनस्पतियोंके पत्ते बिछाकर उसपर रोगीको सुलावे। ऐसा करनेसे भी पसीना निकल जाता है। एक उपाय यह भी है कि दो सेरके लगभग उड़द लेकर पानीके साथ आगपर चढ़ादे। जब वह उबलकर अधकचरा हो जाय तो उसे तपी भयी जमीनमें फैलावे। उसके ऊपर रेंड आदि किसी वातनाशक

वनस्पतिके पत्ते बिछावे और उसपर रोगीको लिटाकर ऊपरसे कंबल ओढ़ा दे तो भी पसीना निकल आता है ॥ १६–२१ ॥

उपनाहसंज्ञक स्वेद निकालनेकी विधि

अथोपनाहस्वेदं च कुर्याद्वातहरौषधीः ।
प्रदिह्य देहं वातार्तं क्षीरमांसरसान्वितैः ॥ २२ ॥
अम्लपिष्टैः सलवणैः सुखोष्णैः स्नेहसंयुतः ।

अब उपनाह नामक स्वेदकी क्रिया बतलाते हैं । दशमूलादि वायुको हरण करनेवाली औषधियोंको कूटे और चूर्णकर उसमें दूध और हरिणादिकोंके मांसका स्नेह, इन दोनोंको मिलाके कुछ गरमकर वायुपीड़ित अंगमें गाढ़ा लेप करके वस्त्रादिकी पट्टीसे बाँधकर अगका पसीना निकाले । अथवा वातहर औषधोंको कूटकर चूर्ण करे । उसको छाछमें अथवा काँजीमें पीसके उसमें थोड़ा सेंधा नमक और तिलका तेल मिलाकर कुछ गरमकर वादीसे पीड़ित अंगपर गाढा लेप करके वस्त्रादिकसे बाँधकर अंगका पसीना निकाले । यह उपनाहकसंज्ञक क्रिया कहलाती है ॥ २२ ॥

उपनाहका दूसरा प्रकार महाशाल्वण प्रयोग

उपग्राम्यानूपमांसैर्जीवनीयगणेन च ॥ २३ ॥
दधिसौवीरकक्षारैर्वीरतर्वादिना तथा ।
कुलित्थमाषगोधूमैरतसीतिलसर्षपैः ॥ २४ ॥
शतपुष्पादेवदारुशेफालीस्थूलजीरकैः ।
एरंडमूलबीजैश्च रास्नामूलकशिग्रुभिः ॥ २५ ॥
मिशिकृष्णाकुठेरैश्च लवणैरम्लसंयुतैः ।
प्रसारिण्यश्वगंधाभ्यां बलाभिर्दशमूलकैः ॥ २६ ॥
गुडूचीवानरीबीजैर्यथालाभं समाहृतैः ।
क्षुण्णैः स्विन्नैश्च वस्त्रेण बद्धैः संस्वेदयेन्नरम् ॥ २७ ॥
महाशाल्वणसंज्ञोऽयं योगः सर्वानिलार्तिजित् ।

वायुको शमन करनेवाली दशमूल आदिकी औषधियोंको कूटकर चूर्ण करे । फिर उसमें दूध तथा हरिण आदिकोंका मांस अथवा दोनों वस्तुयें मिलाकर थोड़ा गरम करे और जिस प्राणीको वादीकी शिकायत हो उसके अंगोमें उस औषधिका

गाढ़ा-सा लेप करदे और उसके ऊपर कपड़ेकी पट्टी बाँधकर शरीरका पसीना निकाले। दूसरा उपाय यः है कि वातको शमन करनेवाली औषधियोंको कूट-पीसकर चूर्ण करके छाछ अथवा काँजीमें पीसें और उसमें सेंधा नमक या तिलका तेल मिलाकर थोड़ा गरम कर ले और ग्राम्यमांस, आनूप मांस, जीवनीय गणमें गिनायी हुई औषधियाँ, गैयाका दही, सौवीर, सज्जीखार, जवाखार, रेहको खार, वीरतर्वादि गणोक्त औषधियाँ, कुलथी, उड़द, गेहूँ, अलसी, तिल, सरसों, सौंफ, देवदारु, निर्गुंडी, कलौंजी, अंडीकी जड़, अंडीके बीज, रास्ना, मूली, सहँजन, अजमोद, पीपरि, वनतुलसी, पाँचों प्रकारके नमक, अनारदाना, प्रसारिणी, असगन्ध, गंगेरनकी छाल, दशमूलमें गिनायी हुई औषधियाँ और कौंचके बीज, इन समस्त औषधियोंको एकत्रित करके कूट डाले। इसके बाद उसे थोड़ा गरम कर ले और कपड़ेकी पोटलीमें रखकर उससे रोगीके अंगोंको सेंके तो सब प्रकारके वातसम्बन्धी रोग दूर हो जाते हैं। यह प्रयोग महाशाल्वण प्रयोगके नामसे विख्यात है। ये इतनी उपनाह नामकी क्रियायें हैं ॥ २३–२७ ॥

द्रवसंज्ञक स्वेदकी विधि

द्रवस्वेदस्तु वातघ्नद्रव्यक्वाथेन पूरिते ॥ २८ ॥
कटाहे कोष्ठके वापि सूपविष्टोऽवगाहयेत्।
सौवर्णे राजते वापि ताम्रआयसदारुजे ॥ २९ ॥
कोष्ठकं तत्र कुर्वीतोच्छ्राये षट्त्रिंशदंगुलम्।
आयामेन तदेव स्याच्चतुष्टंकसृणि तथा।
नाभेः षडंगुलं यावन्मग्नः क्वाथस्य धारया ॥ ३० ॥
कोष्ठके स्कन्धयोः सिक्त्वा तिष्ठेत्स्निग्धतनुर्नरः।
एवं तैलेन दुग्धेन सर्पिषा स्वेदयेन्नरम् ॥ ३१ ॥
एकांतरे द्व्यंतरे वा स्नेहो युक्तोऽवगाहने।
शिरामुखै रोमकूपैर्धमनीभिश्च तर्पयेत् ॥ ३२ ॥
शरीरबलमाधत्ते युक्तः स्नेहावगाहने।
जलसिक्तस्य वर्धंते यथामूलेंऽकुरास्तरोः ॥ ३३ ॥
तथा धातुविवृद्धिर्हि स्नेहसिक्तस्य जायते।
वातः परतरः कश्चिदुपायो वातनाशनः ॥ ३४ ॥

वायुको शमन करनेवाली औषधियोंका काढ़ा तैयार करे। फिर रोगीके शरीरमें घी अथवा तेलकी मालिश करके किसी कड़ाही या ताँबे आदिके एक बड़े पात्रमें बिठाले और उस काढ़ेकी गरम और पतली धार रोगीके कन्धेपर गिरावे। जब वह काढ़ा इतना गिर जाय कि जिस पात्रमें रोगी बैठा हो उसमें छ अंगुल तक ऊपर चढ़ आवे तो बन्द कर दे। इसी तरह तेल, घी अथवा दूधकी धार डाली जाय तो वह घर्मयुक्त द्रवक्रिया कही जाती है। यदि बीचमें एक या दो दिन छोड़कर यह क्रिया करता रहे तो नाड़ियोंके मुख द्वारा रोगके छेदोंमें होता हुआ वह स्नेहादि पदार्थ शरीरके भीतर पहुँचकर बल बढ़ाता है। जिस तरह कि जड़में पानी देते रहनेसे वृक्ष बढ़ते हैं उसी तरह स्नेहका स्नान करनेसे मनुष्यका शारीरिक बल बढ़ता और वायुका प्रकोप शान्त होता है। वायुको नाश करनेके लिए इससे बढ़कर और कोई उपाय नहीं है ॥ २८–३४ ॥

स्वेदविधिकी अवधि

शीतशूलाद्युपरमे स्तम्भगौरवनिग्रहे ।
दीप्तेऽग्नौ मार्दवे जाते स्वेदनाद्विरतिर्मता ॥ ३५ ॥

जब कि शीत, शूल आदि उपद्रव शांत हो जायँ, शरीरकी जकड़न तथा भारीपन दूर हो, मन्द अग्नि भी प्रदीप्त हो जाय और शरीरके समस्त अंगोंमें कड़ाई न रहे, बल्कि वे मुलायम हो जायँ तब पसीना निकालना बन्द कर दे॥३५॥

स्वेद निकालनेके बाद क्या करे

सम्यक्स्विन्नं विमृदितं स्नानमुष्णांबुभिः शनैः ।
भोजयेच्चानभिष्यंदि व्यायामं च न कारयेत् ॥ ३६ ॥

जिस रोगीके शरीरसे पसीना निकाला गया हो या तेलकी मालिश की गई हो, उसे धीरे-धीरे गरम पानीसे नहलावे और खानेके लिये कोई ऐसी चीज न दे, जिससे कफवृद्धिकी संभावना हो और उसे व्यायाम भी न करने दे ॥३६॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे स्वेदविधिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

———

अथ तृतीयोऽध्यायः ।

वमनकाल

शरत्काले वसंते च प्रावृट्काले च देहिनाम् ।
वमनं रेचनं चैव कारयेत्कुशलो भिषक् ॥ १ ॥

शरद्, वर्षा और वसन्त ऋतुमें वमन तथा दस्त करानेके लिये औषधि देनी चाहिये । हाँ, इतना अवश्य ध्यानमें रखे कि वमन और विरेचन करनेके लिए किसी जानकार वैद्यसे औषधि ले । ऐसे-वैसे वैद्यकी औषधि लेनेसे लाभके अतिरिक्त हानिकी संभावना रहती है ॥ १ ॥

वमन कराने योग्य रोगी

बलवन्तं कफव्याप्तं हृल्लासार्तिनिपीडितम् ।
तथा वमनसात्म्यं च धीरचित्तं च वामयेत् ॥ २ ॥
विषदोषे स्तन्यरोगे मंदेऽग्नौ श्लीपदेऽर्बुदे ।
हृद्रोगकुष्ठवीसर्पमेहाजीर्णभ्रमेषु च ॥ ३ ॥
विदारिकापचीकासश्वासपीनसवृद्धिषु ।
अपस्मारे ज्वरोन्मादे तथा रक्तातिसारिषु ॥ ४ ॥
नासाताल्वोष्ठपाकेषु कर्णस्रावे द्विजिह्वके ।
गलशुण्ड्यामतीसारे पित्तश्लेष्मगदे तथा ॥ ५ ॥
मेदोगदेऽरुचौ चैव वमनं कारयेद्भिषक् ।

जो मनुष्य शरीरसे बली किन्तु कफसे व्याप्त हो, मुँहसे लार टपक रही हो, जिसे वमन सह्य हो सकता हो, चित्त गम्भीर हो यानी जो धैर्य धारण कर सके, जिसको विषबाधा, स्तन्यरोग, मन्दाग्नि, श्लीपद, अर्बुद, हृदयसम्बन्धी रोग, कुष्ठ, विसर्प, प्रमेह, अजीर्ण, भ्रम, विदारिका, गंडमाला, अपची, कास, श्वास, पीनस, अण्डवृद्धि, अपस्मार, ज्वर, उन्माद, रक्तातीसार, नासापाक, तालुपाक, ओष्ठपाक, कर्णस्राव, द्विजिह्वक, गलशुण्डी, अतीसार, पित्त तथा श्लेष्मासम्बन्धी रोग, मेदोरोग तथा अरुचि, इन रोगोंमेंसे कोई भी रोग हो तो रोगीको वमन कराना चाहिए ॥ २–५ ॥

वमनके अयोग्य प्राणी

न वामनीयस्तिमिरी न गुल्मी नोदरी कृशः ॥ ६ ॥
नातिवृद्धो गर्भिणी च न च स्थूलः क्षतातुरः।
मदार्तो बालको रूक्षः क्षुधितश्च निरूहितः ॥ ७ ॥
उदावर्त्यूर्ध्वरक्ती च दुश्छर्दिः केवलानिली।
पांडुरोगी कृमिव्याप्तः पठनात्स्वरघातकः ॥ ८ ॥
एतेऽप्यजीर्णव्यथिता वाम्या ये विषपीडिताः।
कफव्याप्ताश्च ते वाम्या मधुकक्वाथपानतः ॥ ९ ॥

तिमिर, गुल्म तथा उदररोगके रोगियोंको और अतिशय दुर्बल, अतिवृद्धि, गर्भिणी स्त्री, दीर्घकार्य पुरुष, उरःक्षत रोगी, मदरोगका रोगी, बालक, रूक्षशरीर-वाला, भूखा, जिसके कि निरूहणक्रिया (गुदामें पिचकारी देनेकी) क्रियाकी जा चुकी है, उदावर्त रोगी, उर्ध्वरक्त रोगका रोगी, जिसके बड़ी कठिनाईसे वमन होता हो, जिसके शरीरमें एकमात्र वायुसम्बन्धी रोगोंकी शिकायत हो, पाण्डुरोगी, कृमिरोगी तथा उस प्राणीको कि जिसका कण्ठ जोर-जोरसे बोलने या पढ़नेके कारण बैठगया हो, इतने प्रकारके प्राणियोंको वमन कभी भी न करावे। हाँ, यदि ऊपर गिनाये हुए रोगी अजीर्णताके कारण व्याधिग्रस्त हों तो उन्हें मुलहठी या महुएकी छालका काढ़ा पिलाकर वमन करा दे। इससे कोई हर्ज नहीं ॥६–९॥

विशेष करके वमनके अयोग्य प्राणी

सुकुमारं कृशं बालं वृद्धं भीरुं न वामयेत्।

सुकुमार, कृश, बालक, वृद्ध और भयभीत प्राणियोंको भी वमन नहीं कराना चाहिये।

वमनमें विहित पदार्थ

पीत्वा यवागूमाकंठं क्षीरतक्रदधीनि च ॥ १० ॥
असात्म्यैः श्लेष्मलैर्भोज्यैर्दोषानुत्क्लिश्य देहिनः।
स्निग्धस्विन्नाय वमनं दत्तं सम्यक्प्रवर्तते ॥ ११ ॥

जिस प्राणीको वमन कराना हो, पहले उसे गलातक यानी खूब अच्छी तरह लपसी या दही पिलावे और जो चीजें उसे अच्छी तरह न भाती हों, उन्हें तथा कफकारी पदार्थ खिलाकर उसका जी मिचला देवे तो वमन होनेमें कोई बाधा

नहीं पहुँचती। जिस मनुष्यने घृत या तेलके द्वारा स्वेदकर्म किया हो उस प्राणीको एकदिन बीचमें छोड़कर वमन कराना चाहिए। ऐसा करनेसे भी वमन अच्छी तरह होता है ॥ १० ॥ ११ ॥

वमन-विरेचनमें सहायक पदार्थ

वमनेषु च सर्वेषु सैन्धवं मधु वा हितम्।
बीभत्सं वमनं दद्याद्विपरीतं विरेचनम् ॥ १२ ॥

वमनक्रिया करानेके लिए जितनी औषधियाँ बतलायी गयी हैं, उनमें शहद तथा सेंधा नमक भी मिला दे तो अच्छा है। वमन करानेमें बीभत्स (घिनौनी) चीजें और विरेचन अर्थात् दस्त करानेमें अच्छी-अच्छी चीजें देनी चाहियें ॥ १२ ॥

वमनप्रयोगमें काढ़ा बनानेका प्रमाण

क्वाथ्यद्रव्यस्य कुडवं श्रपयित्वा जलाढके।
अर्धभागावशिष्टं च वमनेष्वेव चारयेत् ॥ १३ ॥

वमनप्रयोगमें यदि कोई काढ़ा देना हो तो एक कुडव औषधि ले और उसमें एक आढक जल डालकर आगपर चढ़ा दे। जब आधा जल शेष रह जाय तो उतार ले और काममें लावे ॥ १३ ॥

काढ़ा पीनेका प्रमाण

क्वाथपाने नव प्रस्था ज्येष्ठा मात्रा प्रकीर्तिता।
मध्यमा षण्मिता प्रोक्ता त्रिप्रस्था च कनीयसी ॥ १४ ॥

वमन करानेके लिए नौ प्रस्थकी मात्रा सर्वश्रेष्ठ मात्रा है। छ प्रस्थकी मात्रा मध्यम और तीन प्रस्थकी सबसे निम्न मात्रा मात्रा कहलाती है ॥ १४ ॥

कल्कादिकोंका प्रमाण

कल्कचूर्णावलेहानां त्रिपलं श्रेष्ठमात्रया।
मध्यमं द्विपलं विद्यात्कनीयस्तु पलं भवेत् ॥ १५ ॥

कल्क, चूर्ण तथा अवलेह, इनकी तीन पलकी मात्रा श्रेष्ठ, दो पलकी मध्यम और एक पलकी मात्रा लघु मात्रा कहलाती है ॥ १५ ॥

वमनके विषयमें उत्तम मध्यम और कनिष्ठ वेगोंका प्रमाण

वमने चापि वेगाः स्युरष्टौ पित्तांतमुत्तमाः।
षड्वेगा मध्यवेगाश्च चत्वारस्त्ववरा मताः ॥ १६ ॥

किसी बलवान मनुष्यको जब कोई वमन करानेवाली औषधि दी जाती तो उसके सातवें वेग तक शरीरमें जो दोष रहते, वे ही निकलते हैं और आठवेंमें पित्त आने लगता है। यदि इस रीतिसे वमन हो तो उसे उत्तम वेग समझे। यदि पाँच वेग तक दोष निकलकर छठेंमें पित्त आ जाय तो उसे मध्यम वेग जाने और यदि केवल तीन वेग तक दोष निकलकर चौथेमें पित्त आ जाय तो उस वमनको हीनवेग समझना चाहिए॥ १६॥

वमनके विषयमें प्रस्थका प्रमाण

वमने च विरेके च तथा शोणितमोक्षणे।
सार्धत्रयोदशपलं प्रस्थमाहुर्मनीषिणः॥ १७॥

वमन, विरेचन तथा शोणितमोक्षण (यानी फस्त खोलनेमें) साढ़े तेरह पलका एक प्रस्थ मानना चाहिए। ऐसा बहुतेरे विद्वानोंने कहा है॥ १७॥

वमनमें औषधिविशेष द्वारा कफादिककी जय

कफं कटुकतीक्ष्णेन पित्तं स्वादुं हिमैर्जयेत्।
सस्वादुलवणाम्लोष्णैः संसृष्टं वायुना कफम्॥ १८॥

कटु और तीक्ष्ण औषधियाँ देकर कफका, मधुर तथा शीतल औषधियों द्वारा पित्तका और उष्ण औषधियोंको देकर वायुसे मिश्रित कफका शमन करना चाहिए॥ १८॥

वमन द्वारा कफ आदिकोंको निकालनेवाली औषधियाँ

कृष्णाराठफलैः सिंधुकफे कोष्णजलैः पिबेत्।
पटोलवासानिम्बैश्च पित्ते शीतजलं पिबेत्॥ १९॥
सश्लेष्मवातपीडायां सक्षीरं मदनं पिबेत्।
अजीर्णे कोष्णपानीयं सिंधुं पीत्वा वमेत्सुधीः॥ २०॥

जिस रोगीको कफका प्रकोप हो, उसे मैनफल, पीपरि तथा सेंधा नमकका चूर्ण तैयार करके गरम जलके साथ पिलावे। ऐसा करनेसे वमनके साथ कफ निकल जाता है। यदि पित्तका प्रकोप हो तो पटोलपत्र, अडूसा तथा नीमके पत्तोंका चूर्ण तैयार करके ठंढे जलके साथ पिलावे तो वमनके साथ पित्त निकलता है। यदि वायुमिश्रित कफका प्रकोप हो तो दूधमें मैनफलका चूर्ण डालकर पिलावे। ऐसा करनेसे उक्त बाधा दूर हो जाती है। यदि अजीर्णकी शिकायत हो

तो गरम पानीमें सेंधा नमक मिलाकर पिलानेसे वमन द्वारा उसकी व्याधि दूर हो जाती है ॥ १९ ॥ २० ॥

वमन करनेपर बाह्योपचार

वमनं पाययित्वा च जानुमात्रासने स्थितम् ।
कण्ठमेरंडनालेन स्पृशंतं वामयेद्भिषक् ॥ २१ ॥

ललाटं वमनः पुंसः पार्श्वौ द्वौ च प्रबोधयेत् ।

रोगीको वमनकारिणी औषधि देकर ऐसे आसनपर बिठाले जो घुटने तक ऊँचा हो । बैठ जानेपर एक रेंड़के पत्तेकी नली उसके मुखमें डाले और धीरसे उसे हलक तक पहुँचाकर सहलावे । बाहरसे वैद्य स्वयं गलेको सहलाता रहे, जब कि कै होने लगे तो उसकी काँखों तथा मस्तकको भी सहलाने लगे ॥ २१ ॥

उत्तम वमम न होनेसे उपद्रव

प्रसेको हृद्ग्रह कोढः कण्डूर्दुश्छर्दितोद्भवे ॥ २२ ॥

यदि वमन अच्छी तरह नहीं होता तो जी मिचलाया करता, मुँहसे पानी निकलता रहता, हृदयमें पीड़ा होती रहती और शरीर भरमें चकत्ते निकल आते और खुजली हो जाती है ॥ २२ ॥

अधिक वमनसे होनेवाले उपद्रव

अतिवांते भवेत्तृष्णा हिक्कोद्गारौ विसंज्ञता ।
जिह्वानिःसर्पणं चाक्ष्णोर्व्यावृत्तिर्हनुसंहतिः ॥ २३ ॥
रक्तच्छर्दिः ष्ठीवनं च कण्ठे पीडा च जायते ।

जितना वमन होना चाहिए उससे अधिक होनेपर तृष्णा, हिचकी, डकार, बेहोशी, जिह्वाका मुखसे बाहर निकल आना, नेत्रोंका बिल्कुल न खुलना और और नाचना, ठुड्डीका जकड़ जाना, रक्तका वमन होना, धुकधुकी लगी रहना और गलेमें पीड़ा होना, ये उपद्रव खड़े हो जाते हैं ॥ २३ ॥

अधिक वमन होनेकी चिकित्सा

वमनस्यातियोगेन मृदु कुर्याद्विरेचनम् ॥ २४ ॥

जिस मनुष्यको आवश्यकतासे अधिक वमन हो रहा हो, उसे हल्का-सा जुलाब देना चाहिये ॥ २४ ॥

कै करते-करते जीभ भीतर चली गयी हो उसकी चिकित्सा

वमनांतःप्रविष्टायां जिह्वायां कवलग्रहः।
स्निग्धाम्ललवणैर्हृद्यैर्घृतक्षीररसैर्हितः॥ २५॥
फलान्यम्लानि खादेयुस्तस्य चान्येऽग्रतो नराः।

यदि उलटी करते-करते किसी प्राणीका जीभ बिल्कुल भीतर धँस जाय तो उसे खट्टी, मीठी, नमकीन चीजें, घी, दूध तथा भात तथा मांस रस खिलावे अथवा उसके सामने कोई दूसरा मनुष्य खट्टे-खट्टे पदार्थ खाय तो उसकी जिह्वा ठिकाने आ जाती है॥ २५॥

कै करते-करते जीभ बाहर निकलपड़ी हो उसका उपाय

निःसृतां तु तिलद्राक्षाकल्कं लिप्त्वा प्रवेशयेत्॥ २६॥

यदि कै करते-करते जीभ बाहर निकल आयी हो तो वैद्यको चाहिए कि तिल या दाखका कल्क तैयारकर उसकी जीभपर लेप करके भीतर घुसावे॥ २६॥

वमनके कारण नेत्रोंमें विकार होनेकी चिकित्सा

व्यावृत्तेऽक्षिणि घृताभ्यक्ते पीडयेच्च शनैः शनैः।

यदि उलटी करते-करते नेत्र अधिक खुल जायँ तो उसकी आँखोंको हल्के हाथोंसे घी लगाकर उसे धीरे-धीरे दबाकर ठिकाने करना चाहिये।

उलटी करते-करते ठोड़ी जकड़ गई हो उसकी औषधि

हनुमोक्षे स्मृतः स्वेदो नस्यं च श्लेष्मवातहृत्॥ २७॥

ठोड़ी जकड़ गयी हो तो वैद्यको चाहिए कि रोगीके शरीरका पसीना निकाल दे या कोई कफ और वातको नाश करनेवाली औषधि उसकी नाकमें डाले। ऐसा करनेसे उसकी वह बाधा दूर हो जायगी॥ २७॥

कै करते-करते रुधिर गिरने लगे उसका उपचार

रक्तपित्तविधानेन रक्तच्छर्दिमुपाचरेत्।

यदि उलटी करते-करते रुधिरका वमन होने लगे तो रक्तपित्तके प्रसंगमें बतलायी औषधियोंका सेवन करके उसका शमन करे।

अधिक वमन होनेसे अधिक तृष्णा निवारणका उपाय

धात्रीरसांजनोशीरलाजाचंदनवारिभिः॥ २८॥

मंथं कृत्वा पाययेच्च सघृतक्षौद्रशर्करम् ।
शाम्यंत्यनेन तृष्णाद्याः पीडाश्छर्दिसमुद्भवा ॥ २९ ॥

आँवले, रसौत, खस, धानका लावा, चन्दन तथा नेत्रवाला, इन औषधियों-का मन्थ तैयार करके घी, शहद तथा मिश्रीके साथ पीवे तो वमनके कारण उत्पन्न होनेवाली तृष्णा आदि व्याधियें नष्ट हो जाती हैं ॥ २८ ॥ २९ ॥

अच्छी तरह वमन होनेके लक्षण

हृत्कण्ठशिरसां शुद्धिं दीप्ताग्नित्वं च लाघवम् ।
कफपित्तविनाशश्च सम्यग्वातस्य चेष्टितम् ॥ ३० ॥

जिस मनुष्यको अच्छी तरह वमन हो जाता, उसका हृदय, कण्ठ तथा मस्तक, ये शुद्ध हो जाते, उदरकी अग्नि प्रदीप्त होती, देह हल्की-सी मालूम पड़ती और कफ तथा पित्त, ये दोनों दोष शान्त हो जाते हैं ॥ ३० ॥

ततोऽपराह्ने दीप्ताग्निं मुद्गषष्टिकशालिभिः ।
हृद्यैश्च जांगलरसैः कृत्वा यूषं च भोजयेत् ॥ ३१ ॥

भली भाँति वमन हो जानेके अनन्तर वह प्राणी तीसरे पहर जब कि औदर्य अग्नि प्रदीप्त हो तब मूँगकी दाल, साठी चावलका भात तथा रुचिवर्द्धक हरिण आदिके मांसका यूष, ये वस्तुयें खानेको दे ॥ ३१ ॥

अच्छी तरह वमन होनेके लाभ

तन्द्रानिद्रास्यदौर्गंध्यं कण्डूं च ग्रहणीविषम् ।
सुवांतस्य न पीडायै भवंत्येते कदाचन ॥ ३२ ॥

अच्छी तरह वमन हो जानेके बाद उस रोगीको तन्द्रा, निद्रा, मुख तथा शरीरसे दुर्गंध निकलना, खुजली, संग्रहणी तथा विषबाधा, ये उपद्रव कभी भी नहीं सताते ॥ ३२ ॥

अजीर्णं शीतपानीयं व्यायामं मैथुनं तथा ।
स्नेहाभ्यंगं प्रकोपं च दिनैकं वर्जयेत्सुधीः ॥ ३३ ॥

जिस दिन जिस प्राणीको वमनकारिणी औषधि लेनी हो, उस रोज अजीर्ण उत्पन्न करनेवाले भारी पदार्थ, ठण्ढा पानी, व्यायाम, मैथुन, तेलकी मालिश एवं क्रोध, ये सब कर्म त्याग देवे ॥ ३३ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां उत्तरखण्डे वमनविधानो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

———

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।

विरेचनविधान

स्निग्धस्विन्नस्य वांतस्य दद्यात्सम्यग्विरेचनम् ।
अवांतस्य त्वधः स्रस्तो ग्रहणीं छादयेत्कफः ॥ १ ॥
मन्दाग्निं गौरवं कुर्याज्जनयेद्वा प्रवाहिकाम् ।
अथवा पाचनैरामं बलासं च विपाचयेत् ॥ २ ॥

जब कि किसी तेल, घी आदि वस्तुकी मालिश, स्नेहपान, स्वेदविधि (पसीना निकालनेकी क्रिया) और वमन कराकर रोगीका उदर और शरीर शुद्ध कर ले । तब विरेचनकी (दस्त लानेवाली) औषधि दे । यदि विना वमन कराये दस्त कराया जाता तो औषधिके प्रभावसे उसका कफदोष निचले भागमें चला जाता है । जिससे वह ग्रहणी यानी पित्तधरा और अग्निधरा नाड़ीको ढाँक लेता और मन्दाग्नि, शरीरमें भारीपन तथा प्रवाहिका रोग उत्पन्न कर देता है । यदि वमन करानेमें किसी प्रकारकी असुविधा मालूम पड़े तो पाचनकारी औषधियें देकर उस रोगीके आम तथा कफको पचा दे तब विरेचनकारी औषधियें दे॥१-२॥

दूसरी विधि

स्निग्धस्य स्नेहनैः कार्यं स्वेदैः स्विन्नस्य रेचनम् ।

अथवा रोगीको पहले घी-दूध आदि पदार्थ देकर स्निग्ध कर ले । फिर उसके शरीरका पसीना निकाले तब विरेचनौषधि देवे ।

सामान्य काल

शरदृतौ वसन्ते च देहशुद्धौ विरेचयेत् ॥ ३ ॥
अन्यदात्ययिके काले शोधनं शीलयेद्बुधः ।

शरद और वसन्त ऋतुमें जुलाब लिया जाता तो देहकी शुद्धि होती है । यदि वसन्त तथा शरद ऋतुके अतिरिक्त किसी और समयमें जुलाबकी आवश्यकता आ पड़े तब भी विरेचन करानेवाली औषधियें दी जा सकती हैं ॥ ३ ॥

विरेचनके योग्य प्राणी

पित्ते विरेचनं दद्यादामोद्भूते गदे तथा ॥ ४ ॥
उदरे च तथाध्माने कोष्ठशुद्धौ विशेषतः ।

पित्तप्रकोप, आमके कारण जायमान रोग, उदरव्याधि, अफरा तथा कोष्ठ-शुद्धिके लिए वैद्यको चाहिए कि विरेचनकारी औषधियें अवश्य दे ॥ ४ ॥

दोषको दूर करनेमें विरेचनकी उत्कृष्टता

दोषाः कदाचित्कुप्यन्ति जिता लंघनपाचनैः ॥ ५ ॥
ये तु संशोधनैः शुद्धा न तेषां पुनरुद्भवः ।

लंघन और पाचनकी औषधियों द्वारा पचाये हुए वातादि दोष कभी-कभी फिरसे कुपित हो जाया करते हैं, किन्तु वमन और विरेचन द्वारा संशोधित रोग फिर कभी भी नहीं उभड़ते ॥ ५ ॥

दस्त कराने योग्य रोगी

जीर्णज्वरी गरव्याप्तो वातरक्ती भगन्दरी ॥ ६ ॥
अर्शः पांडूदरग्रंथिहृद्रोगारुचिपीडिताः ।
योनिरोगप्रमेहार्ता गुल्मप्लीहव्रणार्दिताः ॥ ७ ॥
विद्रधिच्छर्दिविस्फोटविपूचीकुष्ठसंयुताः ।
कर्णनासाशिरोवक्त्रगुदमेढ्रामयान्विताः ॥ ८ ॥
यकृच्छोथाक्षिरोगार्ताः कृमिक्षारानिलार्दिताः ।
शूलिनो मूत्रघातार्ता विरेकार्हा नरा मताः ॥ ९ ॥

जिस प्राणीको जीर्णज्वर, विषदोष, वातरक्त, भगन्दर, बवासीर, पाण्डु रोग, ग्रन्थि, हृद्रोग, अरुचि, प्रमेह, योनिरोग, वायुगोला, प्लीहा, व्रण, विद्रधि, वमन, विस्फोट, विषूचिका, कुष्ठ, कर्णरोग, नासिक रोग, मस्तक पीड़ा, मुखरोग, गुदा-सम्बन्धी रोग, लिंगरोग, यकृत्, शोथ, नेत्ररोग, कृमिरोग, क्षारके कारण जायमान रोग, वातज रोग, शूलरोग तथा मूत्राघात रोगसें पीड़ित मनुष्यको विरेचन-कारिणी औषधियें देनी चाहियें ॥ ६–९ ॥

दस्त करानेके अयोग्य प्राणी

बालवृद्धावतिस्निग्धक्षतक्षीणो भयान्वितः ।
श्रांतस्तृषार्तः स्थूलश्च गर्भिणी च नवज्वरी ॥ १० ॥
नवप्रसूता नारी च मन्दाग्निश्च मदात्ययी ।
शल्यार्दितश्च रूक्षश्च न विरेच्या विजानता ॥ ११ ॥

बालक, वृद्ध, अतिशय स्निग्ध, उरःक्षतरोगी, भयभीत, थके हुए, तृष्णाकुल, स्थूलकाय, गर्भिणी, नवीन ज्वरसे अभिभूत, नवप्रसूता नारी, मन्दाग्नि और मदात्यय रोगका रोगी, शल्य रोगसे दुःखी तथा रुक्षकाय, इतने प्रकारके रोगियोंको विरेचनकारिणी औषधि कभी भी न दे ॥ १० ॥ ११ ॥

दस्तोंके विषयमें मृदु मध्य और क्रूर कोष्ठका विचार

बहुपित्तो मृदुः प्रोक्तो बहुश्लेष्मा च मध्यमः।
बहुवातः क्रूरकोष्ठो दुर्विरेच्यः स कथ्यते ॥ १२ ॥
मृद्वी मात्रा मृदौ कोष्ठे मध्यकोष्ठे च मध्यमा।
क्रूरे तीक्ष्णा मता तज्ज्ञैर्मृदुमध्यमतीक्ष्णकैः ॥ १३ ॥

जिसके कोष्ठमें पित्तकी अधिकता हो उस व्यक्तिको मृदुकोष्ठ समझना चाहिए और जिसके कोठोंमें वातकी अधिकता हो उसे क्रूरकोष्ठ जाने। इस क्रूर कोष्ठवाले रोगीको विरेचनौषधि देनेपर भी बड़ी कठिनाईसे दस्त होते हैं। जिस रोगीका कोठा मृदु हो उसे मृद्वी मात्रा, जिसका कोठा मध्यम श्रेणीका हो उसे मध्यम और जिसका कोठा क्रूर हो, उसे तीक्ष्ण मात्रा देनी चहिए ॥१२॥१३॥

कोष्ठोंकी योग्यताके अनुसार मृदुमध्यादिक औषधि

मृदुर्द्राक्षापयश्चंचुतैलैरपि विरिच्यते।
मध्यमस्त्रिवृतातिक्काराजवृक्षैर्विरिच्यते ॥ १४ ॥
क्रूरः स्नुक्पयसा हेमक्षीरीदंतीफलादिभिः।

मृदु कोठेवालेको दाख, दूध तथा अण्डीका तेल पिलानेसे ही दस्त हो जाते हैं। मध्यम कोष्ठवाले मनुष्यको निसोथ, कुटकी तथा अमिलतासका गूदा पिलानेसे दस्त होते और क्रूर कोठेवालोंको थूहरका दूध, चोक और जमालगोटेके बीज तथा इन्द्रायनकी जड़ देनेसे दस्त हो जाते हैं ॥ १४ ॥

उत्तमादि भेदसे दस्तोंके प्रमाण

मात्रोत्तमा विरेकस्य त्रिंशद्वेगैः कफांतिका ॥ १५ ॥
वेगैर्विंशतिभिर्मध्या हीनोक्ता दशवेगिका।

यदि तीस बार दस्त होनेके बाद अन्तमें कफ आवे तो उसे उत्तम मात्रा जाननी चाहिए। यदि बीस दस्त आकर कफ आ जाय तो उसे मध्यम मात्रा

और जिसे केवल दस दस्त आकर कफ आ जाय तो उसे हीनमात्रा जाननी चाहिए ॥ १५ ॥

कषायादिकी मात्राका प्रमाण

द्विपलं श्रेष्ठमाख्यातं मध्यमं च पलं भवेत् ॥ १६ ॥
पलार्धं च कषायाणां कनीयस्तु विरेचनम् ।

यदि दस्त करानेके लिये दो पल प्रमाण काढ़ेकी मात्रा दी जाय तो श्रेष्ठ, एक पल काढ़ेकी मात्रा मध्यम और आधे पलकी मात्रा कनिष्ठ जाननी चाहिए ॥ १६ ॥

कल्कादिकोंके प्रमाण

कल्कमोदकचूर्णानां कर्षमध्वाज्यलेहतः ॥ १७ ॥
कर्षद्वयं पलं वापि वयोरोगाद्यपेक्षया ।

कल्क, मोदक और चूर्ण, ये वस्तुयें एक कर्षके हिसाबसे घी तथा शहदमें मिलाकर देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त रोगकी तारतम्यताके अनुसार दो कर्ष या एक पलकी भी मात्रा दी जा सकती है ॥ १७ ॥

दोषोंके अनुसार रेचन औषधि

पित्तोत्तरं त्रिवृच्चूर्णंद्राक्षाक्वाथादिभिः पिबेत् ॥ १८ ॥
त्रिफलाक्वाथगोमूत्रैः पिबेद्व्योषं कफार्दितः ।
त्रिवृत्सैंधवशुण्ठीनां चूर्णमम्लैः पिबेन्नरः ॥ १९ ॥
वातार्दितो विरेकाय जांगलानां रसेन वा ।

पित्तकी प्रधानतामें निसोथके चूर्णको दाख आदिके काढ़ेमें दे। कफका प्रकोप होनेपर त्रिफलाका काढ़ा तथा गोमूत्र, इन दोनों वस्तुओंको एकत्रित करके उसमें सोंठ और मिर्चका चूर्ण मिलाकर देवे और यदि वायुकी प्रधानता हो तो निसोथ, सेंधा नमक तथा सोंठ, इनके चूर्णको नीबूके रसमें अथवा किसी वनैले जीवके मांसरस (यूषमें) देवे। ऐसा करनेसे मजेमें दस्त आ जाते हैं ॥१८॥१९॥

अन्य औषधियाँ

एरण्डतैलं त्रिफलाक्वाथेन द्विगुणेन च ॥ २० ॥
युक्तं पीत्वा पयोभिर्वा न चिरेण विरिच्यते ।

त्रिफलाके काढ़ेमें काढ़ेकी अपेक्षा अर्धांश अरण्डीका तेल पिलावे अथवा दूध-में अरण्डीका तेल डालकर पिलावे तो भी दस्त आ जाते हैं ॥ २० ॥

ऋतुभेदके अनुसार दस्त

त्रिवृताकौटजं बीजं पिप्पली विश्वभेषजम् ॥ २१ ॥
समृद्वीकारसः क्षौद्रं वर्षाकाले विरेचनम्।

निसोथ, इन्द्रजौ, पीपरि, सोंठ, दाखका रस तथा शहद, ये औषधियें वर्षाऋतु-में दस्त लानेके लिए देनी चाहिये ॥ २१ ॥

शरदृऋतुमें दस्त लानेके लिए औषधि

त्रिवृद्दुरालभा मुस्ता शर्करा दिव्यचन्दनम् ॥ २२ ॥
द्राक्षाम्बुना सयष्टीकं शीतलं च घनात्यये ।

शरद ऋतुमें निसोथ, धमासा, नागरमोथा, मुलहठी और बढ़िया चंदन, इन वस्तुओंको दाखके पानीमें मिलाकर पीनेको देवे तो भी दस्त अच्छी तरह होते हैं। यह विरेचनकी शीतल औषधि है ॥ २२ ॥

हेमन्त ऋतुमें दस्तके लिए नियत औषधियाँ

त्रिवृता चित्रकं पाठा ह्यजाजी सरला वचा ॥ २३ ॥
हेमक्षीरी च हेमन्ते चूर्णमुष्णांवुना पिबेत्।

हेमन्त ऋतुमें निसोथ, चीता, पाढ़, जीरा, देवदारु, वच और चोक, इन वस्तुओंके चूर्णको गरम पानीमें मिलाकर पीनेके लिये देना चाहिए ॥ २३ ॥

शिशिर और वसंत ऋतुमें दस्तकी औषधियाँ

पिप्पली नागरं सिंधु श्यामा त्रिवृतया सह ॥ २४ ॥
लिहेत्क्षौद्रेण शिशिरे वसन्ते च विरेचनम्।

वसन्त ऋतुमें सोंठ, सेंधानमक तथा काली निसोथ, इन औषधियोंके चूर्ण-को शहदमें मिलाकर पिलाना चाहिए ॥ २४ ॥

ग्रीष्म ऋतुमें दस्त

त्रिवृता शर्करा तुल्या ग्रीष्मकाले विरेचनम् ॥ २५ ॥

ग्रीष्म ऋतुमें दस्त लानेके लिए निसोथका चूर्ण मिश्रीमें मिलाकर देना चाहिए ॥ २५ ॥

अभया मोदक

अभया मरिचं शुण्ठी विडंगामलकानि च ।
पिप्पली पिप्पलीमूलं त्वक्पत्रं मुस्तमेव च ॥ २६ ॥
एतानि समभागानि दन्ती च त्रिगुणा भवेत् ।
त्रिवृदष्टगुणा ज्ञेया षड्गुणा चात्र शर्करा ॥ २७ ॥
मधुना मोदकं कृत्वा कर्षमात्रप्रमाणतः ।
एकैकं भक्षयेत्प्रातः शीतं चानु पिबेज्जलम् ॥ २८ ॥
तावद्विरिच्यते जन्तुर्यावदुष्णं न सेवते ।
पानाहारविहारेषु भवेन्नियंत्रणः सदा ॥ २९ ॥
विषमज्वरमन्दाग्निपांडुकासभगन्दरम् ।
दुर्नामकुष्ठगुल्मार्शोगलगंडभ्रमोदरान् ॥ ३० ॥
विदाहप्लीहमेहांश्च यक्ष्माणं नयनामयम् ।
वातरोगं तथाध्मानं मूत्रकृच्छ्राणि चाश्मरीम् ॥ ३१ ॥
पृष्ठपार्श्वोरुजघनकट्युदररुजं जयेत् ।
सततं शीलनादेष पलितानि विनाशयेत् ॥ ३२ ॥
अभयामोदका ह्येते रसायनवराः स्मृताः ।

हड़, काली मिर्च, सोंठ, वायविडंग, आँवले, पीपरि, पिपरामूल, दालचीनी, पत्रज और नागरमोथा इन औषधियोंको समान भागके हिसाबसे एकत्रित करके तीन भाग दन्ती, आठ भाग निसोथ और छ भाग शर्करा लेवे । इन सब वस्तुओं-को कूट-पीसकर चूर्ण करे और शहदमें मिलाकर एक-एक कर्षके लड्डू बना ले । दस्त लानेके लिए प्रातःकाल यह एक लड्डू खाकर ऊपरसे ठंढा पानी पी लिया करे । फिर जब तक वह प्राणी कोई गरम चीज नहीं खायगा, तब तक उसका दस्त नहीं बन्द होगा । उस रोगीको भी चाहिए कि इस मोदकका सेवन करते समय पान, आहार, विहार तथा परिश्रम नियमित रूपसे करे । ऐसा करनेसे विषमज्वर, मन्दाग्नि, पांडुरोग, खाँसी, भगन्दर, कुष्ठ, गोला, बवासीर, गलगंड, भ्रम, उदररोग, विदाह, प्लीहा, राजयक्ष्मा, नेत्ररोग, वातज रोग, पेट फूलना, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, पीठ, पसली, कमर, जाँघ, पिंडरियाँ शान्त हो जाती हैं । यह अभयादिक मोदक कहलाता है । जो लोग हमेशा इसका सेवन किया करते हैं

उनका पलित (बालोंका सफेद होना) रोग दूर हो जाता है। यह अभयामोदक एक उत्तम रसायन है ॥ २६–३२ ॥

दस्तोंके सहायक उपचार

पीत्वा विरेचनं शीतजलैः संसिच्य चक्षुषी ॥ ३३ ॥
सुगंधि किंचिदाघ्राय ताम्बूलं शीलयेन्नरः ।

दस्त करानेवाली औषधि लेनेवालेको चाहिए कि औषधि खाकर ठंढे जलसे आँखोंको तर करे। फिर कोई सुगन्धित फूल या इत्र आदि सूँघे और पान खाय। ऐसा करनेसे दस्त अच्छी तरह होते है ॥ ३३ ॥

दस्त आरम्भ होनेपर रहनेकी विधि

निर्वातस्थो न वेगांश्च धारयेन्न स्वपेत्तथा ॥ ३४ ॥
शीताम्बु न स्पृशेत्क्वापि कोष्णनीरं पिबेन्मुहुः ।

जब कि दस्त होने लगे तो किसी ऐसी जगहपर बैठे जहाँ हवा न जाती हो। किसी प्रकारके वेग यानी मल, मूत्र, छींक आदिका वेग न रोके, सोवे नहीं, ठंढा पानी न छुए और थोड़ा गुनगुना पानी पीता रहे ॥ ३४ ॥

दस्तमें निकलनेवाले पदार्थ

बलादौषधपित्तानि वायुर्वाते यथा व्रजेत् ॥ ३५ ॥
रेकात्तथा मलं पित्तं भेषजं च कफो व्रजेत् ।

जिस तरह वमनकी औषधि सेवन करनेपर कफ, पित्त, वात तथा पी भयी औषधियाँ मुँहसे निकलती हैं। उसी तरह विरेचनकारी औषधि लेनेपर मल, पित्त, पी हुई औषधि तथा कफ, ये वस्तुयें गुदाके मार्गसे निकलती है ॥ ३५ ॥

अच्छी तरह दस्त न होनेसे उपद्रव

दुर्विरिक्तस्य नाभेस्तु स्तब्धत्वं कुक्षिशूलता ॥ ३६ ॥
पुरीषवातसंगश्च कण्डूमण्डलगौरवम् ।
विदाहोऽरुचिराध्मानं भ्रमश्छर्दिश्च जायते ॥ ३७ ॥

यदि दस्त अच्छी तरह नहीं होता तो उस रोगीकी नाभिमें जकड़न होती, पेटमें शूल उठता, मल और अपान वायु रुक जाती, शरीरमें खुजली होती, गोल-गोल चकत्ते उभड़ आते, अंगोंमें भारीपन मालूम पड़ता, दाह, अरुचि, पेटका तन जाना, भ्रम और वमन ये उपद्रव खड़े हो जाया करते हैं ॥ ३६–३७ ॥

जुलाब ठीक न होनेपर उपचार

तं पुनः पाचनैः स्नेहैः पक्त्वा संस्नेह्य रेचयेत् ।
तेनास्योपद्रवा यांति दीप्तोऽग्निर्लघुता भवेत् ।। ३८ ।।

जुलाब देनेपर भी जिसको अच्छी तरह दस्त न हों तो उसे आरग्वधादि क्वाथ पिलाकर उसका आम पचावे । फिर स्निग्ध औषधियाँ देकर कोठोंको स्निग्ध करे । तब जुलाब दे तो उसकी सारी बाधायें दूर हो जातीं, जठराग्नि प्रदीप्त हो जाता और शरीर हल्का मालूम पड़ने लगता है ।। ३८ ।।

अधिक दस्त होनेसे उपद्रव

विरेकस्यातियोगेन मूर्च्छा भ्रंशो गुदस्य च ।
शूलं कफातियोगः स्यान्मांसधावनसन्निभम् ।। ३९ ।।
मेदोनिभं जलाभासं रक्तं चापि विरिच्यते ।

जितने दस्त होने चाहियें उनसे अधिक होनेपर रोगीको मूर्छा आ जाती, गुदामें पीड़ा होने लगती, शूल उठने लगता, कफ विशेष गिरने लगा करता और गुदासे मांस धोये हुये जलकी तरह, मेदके समान या स्वच्छ जलकी भाँति रक्त गिरने लगता है ।। ३९ ।।

अत्यन्त दस्तसे जायमान उपद्रवोंका प्रतीकार

तस्य शीतांबुभिः सिक्तं शरीरं तंदुलांबुभिः ।। ४० ।।
मधुमिश्रैस्तथा शीतैः कारयेद्वमनं मृदु ।

यदि ऊपर लिखी अवस्था घटित हो जाय तो रोगीकी देहपर ठंढे जलका छींटा दे और चावलके धोवनमें शहद मिलाकर पिलावे या साधारण वमन करा दे ।। ४० ।।

दस्त बन्द करनेकी औषधि

सहकारत्वचः कल्को दध्ना सौवीरकेण वा ।। ४१ ।।
पिष्टो नाभिप्रलेपेन हंत्यतीसारमुल्बणम् ।

आमकी छालको दही या सौवीर (काँजीमें) पीसकर कल्क करे और उस कल्कको यदि रोगीकी नाभिपर लेप कर दे तो जोरोंसे आता हुआ दस्त भी रुक जाता है ।। ४१ ।।

दस्त रोकनेके और उपाय

अजाक्षीरं पिबेद्वापि वैष्किरं हारिणं तथा ॥ ४२ ॥
शालिभिः षष्टिकैः स्वल्पं मसूरैर्वापि भोजयेत् ।
शीतैः संग्राहिभिर्द्रव्यैः कुर्यात्संग्रहणं भिषक् ॥ ४३ ॥

यदि दस्त अधिक हो रहे हों तो बकरीका दूध, विष्किर नामक पक्षीके मांसका यूष (शोरवा) अथवा हरिणका मांस खाय। साठी धानके चांवलका भात अथवा मसूरको सिझाकर खाय अथवा और किसी शीतल तथा संग्राही पदार्थके उपयोगसे रोगीके दस्त रोके ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

उत्तम दस्त होनेके लक्षण

लाघवे मनसस्तुष्ट्यामनुलोमे गतेऽनिले ।
सुविरिक्तं नरं ज्ञात्वा पाचनं पाययेन्निशि ॥ ४४ ॥

जब कि शरीर हल्का मालूम पड़े, चित्त प्रसन्न हो, वायुका आवागमन मजेसे हो रहा हो तो समझ ले कि दस्त अच्छी तरह हुआ है। ऐसी अवस्था देखकर जुलाब लेनेवालेको रात्रिके समय कोई पाचन औषधि पिलावे ॥ ४४ ॥

विरेचनके गुण

इन्द्रियाणां बलं बुद्धेः प्रसादो वह्निदीप्तता ।
धातुस्थैर्यं वयःस्थैर्यं भवेद्रेचनसेवनात् ॥ ४५ ॥

जुलाब लेनेवाले मनुष्यकी इन्द्रियाँ बलवती होतीं, बुद्धि विकसित होती, जठरानल प्रदीप्त होता, रस आदि धातुयें और अवस्था स्थिर होती है ॥ ४५ ॥

दस्तमें वर्जित पदार्थ

प्रवातसेवाशीतांबुस्नेहाभ्यंगमजीर्णताम् ।
व्यायाममैथुनं चैव न सेवेत विरेचितः ॥ ४६ ॥

दस्त हो जानेके अनन्तर दस्तकी औषधि लेनेवाला प्राणी विशेष हवा खाना, ठंढा पानी पीना, तेलकी मालिश करना, अजीर्ण, परिश्रम और स्त्रीप्रसंग, इन कामोंका परित्याग कर दे ॥ ४६ ॥

पथ्य

शालिषष्टिकमुद्गाद्यैर्यवागूं भोजयेत्कृताम् ।
जांगलैर्विष्किराणां वा रसैः शाल्योदनं हितम् ॥ ४७ ॥

जब कि दस्त हो जाय तो साठीके चावलका भात, मूँग आदिकी लपसी, हरिण आदि जंगली पशुओं अथवा विष्किर नामक पक्षीके मांसरसके साथ भात खाना चाहिए ॥ ४७ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे विरेचनविधिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

बस्तिविधान

बस्तिर्द्विधाऽनुवासाख्यो निरूहश्च ततः परम् ।
बस्तिभिर्दीयते यस्मात्तस्माद्बस्तिरिति स्मृतः ॥ १ ॥
यः स्नेहैर्दीयते स स्यादनुवासननामकः ।
कषायक्षीरतैलैर्यो निरूहः स निगद्यते ॥ २ ॥

गुदा या अण्डकोश आदिमें पिचकारी मारनेकी क्रिया बस्तिक्रिया कहलाती है। वह बस्तिक्रिया दो प्रकारकी होती है। एक अनुवासन बस्ति और दूसरी निरूहण बस्ति। घी तेल आदि स्नेहों द्वारा जो बस्तिक्रिया की जाती, उसे अनुवासन बस्ति और काढ़ा, दूध तथा तेल आदिकी क्रिया निरूहण बस्तिके नामसे पुकारी जाती है ॥ १ ॥ २ ॥

अनुवासन बस्ति

तत्रानुवासनाख्यो हि बस्तिर्यः सोऽत्र कथ्यते ।
पूर्वमेव ततो बस्तिर्निरूहाख्यो भविष्यति ॥ ३ ॥
निरूहादुत्तरं चैव बस्तिः स्यादुत्तराभिधः ।
अनुवासनभेदैश्च मात्राबस्तिरुदीरितः ॥ ४ ॥
पलद्वयं तस्य मात्रा तस्मादर्धापि वा भवेत् ।

उन दो प्रकारकी बस्तिक्रियाओंमेंसे पहले अनुवासनबस्ति, इसके आगे निरूहबस्ति, निरूहबस्तिके आगे उत्तरबस्ति कही जाती है। अनुवासन बस्तिकी मात्राओंमें ही कुछ हेर-फेर होनेसे एक प्रकारकी मात्राबस्ति होती है। उस मात्राबस्तिमें घी तेल आदि जिस स्निग्ध वस्तुका उपयोग किया जाता, उसकी मात्रा दो या एक पलकी होती है ॥ ३ ॥ ४ ॥

अनुवासन वस्तिके योग्य प्राणी

अनुवास्यस्तु रूक्षः स्यात्तीक्ष्णाग्निः केवलानिली ॥ ५ ॥

अनुवासन वस्तिके योग्य वही रोगी होता है कि जिसे पहले स्नेहपान न कराया गया हो, जिसका जठरानल तीव्र हो और जिसके शरीरमें वातप्रधान रोग विद्यमान हो ॥ ५ ॥

अनुवासनके अयोग्य रोगी

नानुवास्यस्तु कुष्ठी स्यान्मेही स्थूलस्तथोदरी ।
अस्थाप्या नानुवास्याः स्युरजीर्णोन्मादतृड्युताः ॥ ६ ॥
शोकमूर्च्छारुचिभयश्वासकासक्षयातुराः ।

कुष्ठ रोगवाले, प्रमेहरोगग्रस्त, मोटे शरीरवाले तथा उदररोगी, ये इतने मनुष्य अनुवासन वस्तिके योग्य नहीं होते । इनके अतिरिक्त अजीर्ण, उन्माद तृष्णा, शोक, मूर्च्छा, अरुचि, भय, श्वाँस, खाँसी, तथा क्षय रोगवाले मनुष्य और जिनके लिए निरूहण वस्ति उपयुक्त हो, ऐसे रोगियोंको भी अनुवासन वस्तिकी क्रिया नहीं करनी चाहिए ॥ ६ ॥

वस्तिके मुख बनानेका विधि और सुवर्णादिकी नली

नेत्रं कार्यं सुवर्णादिधातुभिर्वृक्षवेणुभिः ॥ ७ ॥
नलैर्दन्तैर्विषाणाग्रैर्मणिभिर्वा विधीयते ।

वस्तिक्रिया करनेके लिए जो पिचकारी हो उसकी नली सुवर्ण, चाँदी आदि धातु या नरकुल (एक प्रकारके बहुत ही पतले बाँसकी) बनायी जाय और उसके अग्रभागमें हाथीका दाँत, बिल्लौर या सूर्यकान्तमणि आदि लगा हुआ होना चाहिए ॥ ७ ॥

नलीका प्रमाण

एकवर्षात्तु षड्वर्षयावन्मानं षडङ्गुलम् ॥ ८ ॥
ततो द्वादशकं यावन्मानं स्यादष्टसंयुतम् ।
ततः परं द्वादशभिरंगुलैर्नेत्रदीर्घता ॥ ९ ॥

एक वर्षसे लेकर छ वर्षकी अवस्थावाले रोगीके लिए छ अंगुलकी, छ से बारह वर्ष तककी अवस्थावाले रोगीके लिये आठ अंगुलकी और बारह वर्षसे ऊपरकी अवस्थावालोंके लिए बारह अंगुलकी नली बनानी चाहिए ॥ ८ ॥ ९ ॥

छिद्रका प्रमाण

मुद्गच्छिद्रं कलायाभं छिद्रं कोलास्थिसन्निभम् ।
यथासंख्यं भवेन्नेत्रं श्लक्ष्णं गोपुच्छसन्निभम् ॥ १० ॥
आतुरांगुष्ठमानेन मूले स्थूलं विधीयते ।
कनिष्ठिकापरीणाहमग्रे च गुटिकामुखम् ॥ ११ ॥
तन्मूले कर्णिके द्वे च कार्ये भागाच्चतुर्थकात् ।
योजयेत्तत्र बस्तिं च बन्धद्वयविधानतः ॥ १२ ॥

उक्त रीतिसे बनी भयी छ अंगुलकी नलीमें मूँगके दानेके बराबर, आठ अंगुलकी नलीमें मटरके बराबर और बारह अंगुलकी लम्बी नलीमें बेरकी गुठलीके बराबर छिद्र होना चाहिए। वह नली चिकनी, गावदुम अर्थात् ऊपर और नीचे तो पतली किन्तु बीचमें मोटी रहे और उसका अग्रभाग रोगीकी कनिष्ठिका उँगली जितनी मोटी और मुख गोल-गोल रहना आवश्यक है। ऊपरसे लेकर जिस स्थान पर तीन चौथाई पूरा होता हो, उस जगह कमलकी पंखुडीके समान दो कर्णिकायें बनी हों। उसी जगह हरिण आदिके अण्डकोशकी बनी बस्तिको सटाकर उन्हीं ऊपरवाली कर्णिकाओंसे भली भाँति मिलाकर बाँध देना चाहिए ॥ १०-१२ ॥

किसके अण्डकी बस्ति हो

मृगाजसूकरगवां महिषस्यापि वा भवेत् ।
मूत्रकोशस्य बस्तिस्तु तदलाभेन चर्मजः ॥ १३ ॥
कषायरक्तः सुमृदुर्बस्तिः स्निग्धो दृढो हितः ।

हरिण, बकरा, सुअर, बैल अथवा भैंसा, इन्हीं जानवरोंकी बस्ति काममें लानी चाहिए। जहाँतक हो सके इन पशुओंके मूत्राशयकी बस्ति ही उपयुक्त करे। यदि न मिले तो हरिणके चमड़ेकी बना ले। वह बस्ति कसैले रंगमें रंगी हुई, मुलायम, चिकनी और मजबूत होनी चाहिए ॥ १३ ॥

व्रणबस्तिका प्रमाण

व्रणबस्तेस्तु नेत्रं स्याच्छ्लक्ष्णमष्टांगुलोन्मितम् ॥ १४ ॥
मुद्गच्छिद्रं गृध्रपक्षनलिकापरिणाहि च ।

जो बस्ति व्रणके काममें आती, वह आठ अंगुलकी लम्बी और चिकनी होती है । उसका छिद्र मूँगके बराबर होता और गृध्रके पंखकी नली जितनी मोटाई उसमें रहती है ॥ १४ ॥

बस्तिके गुण

शरीरोपचयं वर्णं बलमारोग्यमायुषः ॥ १५ ॥
कुरुते परिवृद्धिं च बस्तिः सम्यगुपासितः ।

यदि अच्छी तरह बस्तिक्रिया की जाय तो शरीर, बल और वर्णकी वृद्धि होती, रोगी मनुष्य आरोग्य लाभ करता और आयुष्य भी बढ़ती है ॥ १५ ॥

बस्तिसेवनका समय

दिवसान्ते वसन्ते च स्नेहबस्तिः प्रदीयते ॥ १६ ॥
ग्रीष्मवर्षाशरत्काले रात्रौ स्यादनुवासनम् ।
न चातिस्निग्धमशनं भोजयित्वानुवासनम् ॥ १७ ॥
मदं मूर्च्छां च जनयेद् द्विधा स्नेहः प्रयोजितः ।
रूक्षं भुक्तवतोऽत्यन्तं बलं वर्णं च हीयते ॥ १८ ॥

यदि वसन्त ऋतुमें स्नेहबस्ति क्रिया करनी हो तो सायंकालमें करे । ग्रीष्म, वर्षा और शरदकालमें रात्रिके समय करना चाहिए । जिस रोगीको बस्तिक्रियाकी जानेवाली हो उसे बहुत स्निग्ध पदार्थ खिलाकर बस्तिक्रिया न करे । ऐसा करनेसे मद और मूर्छा उत्पन्न हो जाती है । यदि बहुत रूखे पदार्थ खिलाकर यह क्रिया की जाती तो रोगीके बल और वर्णकी हानि होती है । इस लिए कुशल वैद्यको चाहिए कि ऐसा कुछ करे कि जिससे रोगीको किसी विपत्तिका सामना न करना पड़े ॥ १६–१८ ॥

हीनमात्रा और अतिमात्राका परिणाम

हीनमात्रावुभौ बस्ती नातिकार्यकरौ स्मृतौ ।
अतिमात्रौ तथानाहक्लमातीसारकारकौ ॥ १९ ॥

अनुवासन और निरूहण, इन दोनों प्रकारकी बस्तियोंमें यदि मात्रा कम रहती तो जिस कार्यके लिये क्रिया की जाती, वह कार्य नहीं सिद्ध होता । उन बस्तियोंमें यदि मात्रा अधिक हो जाती तो आनाह, ग्लानि तथा अतीसार ये रोग उत्पन्न हो जाया करते हैं ॥ १९ ॥

उत्तम-मध्यम आदि मात्रा

उत्तमस्य पलैः षड्भिर्मध्यमस्य पलैस्त्रिभिः ।
पलाध्यर्धेन हीनस्य युक्ता मात्रानुवासने ॥ २० ॥

जो लोग उत्तम बलवाले हों उन्हें छ पल, मध्यम बलवालोंको तीन पल और हीन बलवाले मनुष्योंको डेढ़ पलकी मात्रा देनी चाहिए। ये मात्रायें अनुवासन बस्तिके लिए बतलायी गयी हैं ॥ २० ॥

स्नेहादिकमें पड़नेवाले सैंधवादिककी मात्रा

शताह्वासैंधवाभ्यां च देयं स्नेहे च चूर्णकम् ।
तन्मात्रोत्तममध्यांत्याः षट्चतुर्द्वयमाषकैः ॥ २१ ॥

शतावर और सैंधा नमकका चूर्ण देना हो तो छ मासेकी उत्तम मात्रा, चार मासेकी मध्यम और दो मासेकी कनिष्ठ मात्रा समझकर दे ॥ २१ ॥

दस्त होनेके बाद अनुवासन बस्ति देनेकी विधि

विरेचनात्सप्तरात्रे गते जातबलाय च ।
भक्तान्नायानुवास्याय बस्तिर्देयोऽनुवासनः ॥ २२ ॥

जिस मनुष्यने जुलाब लिया हो उसे सातदिन बाद, जब उसके शरीरमें बल आ जाय और वैद्य यह समझ ले कि यह रोगी बस्तिक्रियाके योग्य है या नहीं। तब भोजन कराकर अनुवासन बस्तिकी क्रिया करे ॥ २२ ॥

बस्ति देनेका प्रकार

अथानुवासांस्त्वभ्यक्तमुष्णांबुस्वेदितं शनैः ।
भोजयित्वा यथाशास्त्रं कृतचंक्रमणं ततः ॥ २३ ॥
उत्सृष्टानिलविण्मूत्रं योजयेत्स्नेहबस्तिना ।
सुप्तस्य वामपार्श्वेन वामजंघाप्रसारिणः ॥ २४ ॥
कुंचितापरजंघस्य नेत्रं स्निग्धगुदे न्यसेत् ।
बद्ध्वा बस्तिमुखं सूत्रैर्वामहस्तेन धारयेत् ॥ २५ ॥
पीडयेद्दक्षिणेनैव मध्यमवेगेन धीरधीः ।
जृम्भाकासक्षवयादींश्च बस्तिकाले न कारयेत् ॥ २६ ॥

जिस मनुष्यको बस्तिकर्म करना हो, उसके शरीरमें तेल लगाकर गरम जलसे साधारणतया पसीना निकाले। फिर उसे नियमानुसार चावलकी पतली पेया

पिलाकर थोड़ी देर इधर-उधर टहलावे। यदि मल त्याग करनेकी इच्छा हो तो उसका भी त्याग कराकर बस्तिकर्म करना चाहिए। यह कर्म करनेके पहले रोगीको बाँयीं करवट सुलाकर उसका बाँया पैर फैला दे और दाहिना पैर सिकोड़ ले। इसके बाद घी लगाकर रोगीकी गुदाको चिकनी करे और बस्तिको नलीके मुखपर एक डोरेसे बाँध दे। फिर उसको गुदापर रखकर बाँये हाथसे पकड़े और दहिने हाथसे धीरे-धीरे उसमें पिचकारी मारे। जब कि वैद्य बस्तिक्रिया कर रहा हो, उस समय रोगीको खाँसने, जँभाई लेने और छींकने न दे॥ २३–२६॥

पिचकारी मारनेका समय

त्रिंशन्मात्रामितः कालः प्रोक्तो बस्तेस्तु पीडने।
ततः प्राणिहितः स्नेह उत्तानो वाक्छतं भवेत्॥ २७॥

पिचकारी मारनेमें ज्यादासे ज्यादा तीस मात्राका समय लगाना चाहिए। फिर जितनी देरमें सौ तक गिनती गिनी जाती है, उतनी देरतक उस रोगीको चित्त लेटा रहने दे॥ २७॥

कितने कालकी मात्रा होती है

जानुमण्डलमावेष्ट्य कुर्याच्छोटिकया युतम्।
एकमात्रा भवेदेषा सर्वत्रैष विनिश्चयः॥ २८॥

इस विषयमें मात्राका प्रमाण यह है कि अपने घुटनोंको सिकोड़कर जितनी देरमें एक चुटकी बजावे। उतनी देरको एक मात्रा कहते हैं॥ २८॥

पिचकारी मारनेके बादकी क्रियायें

प्रसारितैः सर्वगात्रैर्यथा वीर्यं प्रसर्पति।
ताडयेत्तलयोरेनं त्रीन्वारांश्च शनैः शनैः॥ २९॥
स्फिजश्चैव ततः श्रोणे शय्यां चैवोत्क्षिपेत्ततः।
जाते विधाने तु ततः कुर्यान्निद्रां यथासुखम्॥ ३०॥

पिचकारी मारनेके अनन्तर रोगीके सब अंग फैला दे, जिससे बस्तिका प्रभाव सारे शरीरमें फैल जाय। इस वास्ते रोगीके हाथोंकी हथेली और पैरके तलवोंमें तीन बार धीरे-धीरे थपकियाँ मारे। इसी प्रकार कूल्हों और कटिके पश्चात् भागमें थपकियाँ मारकर रोगीको बिछौनेपर बिठाल दे। बस्तिकर्मकी समस्त क्रियायें समाप्त हो जानेपर रोगीको आनन्दपूर्वक शयन करावे॥ २९॥ ३०॥

उत्तम बस्तिकर्मके लक्षण

सानिलः सपुरीषश्च स्नेहः प्रत्येति यस्य तु ।
उपद्रवं विना शीघ्रं स सम्यगनुवासितः ॥ ३१ ॥

बस्तिकर्म द्वारा भीतर गया हुआ तेल यदि वायु और मलके साथ-साथ बिना किसी उपद्रवके बाहर आवे तो समझ ले कि बस्तिकर्म बहुत अच्छी तरह हुआ है ॥ ३१ ॥

स्नेहका विकार दूर करनेका यत्न

जीर्णान्नमथ सायाह्ने स्नेहे प्रत्यागते पुनः ।
लघ्वन्नं भोजयेत्कामं दीप्ताग्निं तु नरो यदि ॥ ३२ ॥
अनुवासिताय देयं स्यादितरेऽह्नि सुखोदकम् ।
धान्यशुण्ठीकषायो वा स्नेहव्यापत्तिनाशनम् ॥ ३३ ॥

जब कि भीतर गया हुआ तेल आदि स्नेह बाहर आ जाय और जठरानल प्रदीप्त जान पड़े तो उस रोगीको हल्का-सा भोजन दे। फिर दूसरे रोज उसे गरम पानी अथवा धनियाँ और सोंठका काढ़ा पिलावे। ऐसा करनेसे रोगीके शरीरका सारा स्नेहविकार दूर हो जाता है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

वातादि व्याधियोंमें पिचकारी मारनेका प्रमाण

अनेन विधिना षड् वा सप्त चाष्टौ नवापि वा ।
विधेया बस्तयस्तेषामन्ते चैव निरूहणम् ॥ ३४ ॥

ऊपर बतलायी विधिके अनुसार वातादि दोषोंमें छ, सात, आठ अथवा नौ बार पिचकारी मारे। इसके बाद निरूहण बस्तिकर्मकी व्यवस्था करे ॥ ३४ ॥

बस्तिका क्रम और गुण

दत्तस्तु प्रथमो बस्तिः स्नेहयेद्बस्तिवंक्षणौ ।
सम्यग्दत्तो द्वितीयस्तु मूर्धस्थमनिलं जयेत् ॥ ३५ ॥
बलं वर्णं च जनयेत्तृतीयस्तु प्रयोजितः ।
चतुर्थपञ्चमौ दत्तौ स्नेहयेतां रसासृजी ॥ ३६ ॥
षष्ठो मांसं स्नेहयति सप्तमो मेद एव च ।
अष्टमो नवमश्चापि मज्जानं च यथाक्रमम् ॥ ३७ ॥

एवं शुक्रगतान्दोषान्द्विगुणः साधु साधयेत्।
अष्टादशाष्टादशकान्बस्तीनां यो निषेवते॥ ३८॥
सकुञ्जरबलोऽप्यश्वं जयेत्तुल्योऽमरप्रभः।

बस्तिकी पहली बस्ति, पेंडू और अण्डकोशकी संधियों द्वारा भीतर पहुँचकर शरीरको स्निग्ध करती हुई धातुकी वृद्धि करती है। दूसरी बस्ति मस्तककी वायुको दूर करती, तीसरी शारीरिक बल और कान्ति बढ़ाती, चौथी और पाँचवी बस्ति रस तथा रुधिर बढ़ाती, छठीं और सातवीं मांस तथा मेदेको स्निग्ध करती एवं आठवीं और नवीं बस्ति मज्जा तथा शुक्रको स्निग्ध करती है। इस तरह अठारह बार पिचकारी मारनेसे शुक्रसे सम्बन्ध रखनेवाले सारे रोग दूर हो जाते हैं। जिस मनुष्यको छत्तीस पिचकारियें मार दी जातीं, उसमें हाथीके समान बल आ जाता है, वह घोड़ेको परास्त कर देता और देवताके समान प्रभाशाली होकर आनन्द करता है॥ ३५–३८॥

अनुवासन बस्ति तथा निरूहण बस्तिके योग्य प्राणी

रूक्षाय बहुवाताय स्नेहबस्तिर्दिने दिने॥ ३९॥
दद्याद्वैद्यस्तथान्येषामन्यां बाधामपाहरेत्।
स्नेहोऽल्पमात्रा रूक्षाणां दीर्घकालमनत्ययः॥ ४०॥
तथा निरूहः स्निग्धानामल्पमात्रः प्रशस्यते।

जिस मनुष्यका शरीर रूखा हो और वातसम्बन्धी रोग विशेष हों, उसे प्रतिदिन अनुवासनबस्ति देना चाहिये। यदि रोगीका शरीर रूखा हो तो स्नेहकी हल्की-सी पिचकारी मारे। यदि ज्यादा दिनोंसे रोगीमें रोग समाया हो और उसका शरीर स्निग्ध हो तो उसे बिल्कुल थोड़ी-सी निरूह बस्ति दे॥३९॥४०॥

बस्तिका स्नेह गुदाके बाहर निकालनेका यत्न

अथवा यस्य तत्कालं स्नेहो निर्याति केवलः॥ ४१॥
तस्यान्योऽन्यतरो देयो न हि स्निग्धस्य तिष्ठति।

स्निग्ध मनुष्यको अनुवासन बस्ति देते ही उसका तेल बाहर आ जाता है–ठहरता नहीं। अतएव उसे अनुवासनबस्ति देनेके अनन्तर तुरन्त निरूहण बस्ति देनी चाहिए॥ ४१॥

तैल बाहर न निकलनेसे जायमान उपद्रवका प्रतीकार

अशुद्धस्य मलोन्मिश्रः स्नेहो नैति यदा पुनः ॥ ४२ ॥
तदा शैथिल्यमाध्मानं शूलं श्वासश्च जायते ।
पक्वाशये गुरुत्वं च तत्र दद्यान्निरूहणम् ॥ ४३ ॥
तीक्ष्णं तीक्ष्णौषधियुता फलवर्तिर्हिता तथा ।
यथानुलोमनं वायुर्मलं स्नेहश्च जायते ॥ ४४ ॥
तथा विरेचनं दद्यात्तीक्ष्णं नस्यं च शस्यते ।

यदि पहले विना वमन और विरेचन कराये किसी रोगीको बस्ति दी जाती और मल मिला भया स्नेह बाहर नहीं आता तो रोगीका शरीर शिथिल हो जाता, पेट फूल आता, शूल उठने लगता, श्वासका वेग बढ़ जाता और पक्वाशय भारी मालूम पड़ने लगता है । किन्तु निरूहण बस्ति दे देनेसे ये सब बाधायें शान्त हो जाती हैं । इन उपद्रवोंको शान्त करनेके लिए और जिससे मलमिश्रित स्नेह बाहर आ जाय, इस वास्ते तीक्ष्ण औषधियोंकी बत्ती भी दी जा सकती है । अधोगामी वायु तथा मलमिश्रित स्नेहको बाहर करनेके लिए तीखा जुलाब या नस्य ले लेना भी अच्छा होता है ॥ ४२–४४ ॥

स्नेहबस्ति उपद्रव न करे उसके लिए उपाय

यस्य नोपद्रवं कुर्यात्स्नेहबस्तिरनिःसृतः ॥ ४५ ॥
सर्वोऽल्पो वा वृतो रौक्ष्याद्रुपेक्ष्यः स विजानता ।

यदि स्नेहबस्तिकी पिचकारी मारनेके बाद बस्तिका स्नेह गुदाका सारा हिस्सा अथवा केवल एक भाग आवृत करके रुक जाय, किन्तु उससे किसी प्रकारका उपद्रव न खड़ा हो तो उसे ज्यादा देरतक भी रहने दे । किसी उपचार द्वारा उसे बाहर निकालनेकी चेष्टा न करे ॥ ४५ ॥

दिन-रातमें भी जिसके तैल बाहर न निकले उसका प्रतीकार

अनायातं त्वहोरात्रे स्नेहं संशोधनैर्हरेत् ॥ ४६ ॥
स्नेहबस्तावनायाते नान्यः स्नेहो विधीयते ।

यदि रात और दिन भरके बाद भी स्नेह बाहर न आवे तो रोगीको जुलाब देकर वह स्नेह निकाले । यदि स्नेहकी पिचकारी मारनेपर स्नेह बाहर न आवे तो फिर दूसरी पिचकारी नहीं ही देवे ॥ ४६ ॥

अनुवासन तैल

गुडूच्येरण्डपूतीकभार्ङ्गीवृषकरोहिषम् ॥ ४७ ॥
शतावरी सहचरी काकनासापलोन्मितम् ।
चतुर्द्रोणांभसा पक्त्वा द्रोणशेषेण तेन च ।
पचेत्तैलाढके पेष्यैर्जीवनीयैः पलोन्मितैः ॥ ४८ ॥
अनुवासनमेतद्धि सर्ववातविकारनुत् ॥ ४९ ॥

गुरुच, एरण्डकी जड़, कंजेकी छाल, भारंगी, अडूसा, रोहिषतृण, शतावर, पियाबाँसा और काकनासा, इन नौ औषधियोंको एक-एक पलके हिसाबसे एकत्रित करके जौ, उड़द, अलसी, बेरकी गुठली तथा कुलथी, इन पाँचों वस्तुओंको दो दो पलके प्रमाणसे ले और सबको जौकूट करके उसमें चार द्रोण पानी डालकर आगपर चढ़ा दे। जलते-जलते जब एक द्रोण पानी बच रहे तो उतार ले। इसके बाद इसमें एक आढक तिलका तेल और एक-एक पल जीवनीय गणकी औषधियोंका चूर्ण डालकर फिर खौलावे। जब कि सब पानी जल जाय और केवल तेल भर बाकी बच रहे तो उतारकर छान ले और सम्हालकर रख छोड़े। यह अनुवासन तैलके नामसे विख्यात है। वातसे सम्बन्ध रखनेवाले सब विकार इससे दूर हो जाते हैं ॥ ४७–४९ ॥

असावधानीसे उत्पन्न रोगोंकी चिकित्सा

षट्सप्ततिव्यापदस्तु जायन्ते बस्तिकर्मणः ॥ ५० ॥
दूषितात्समुदायेन तांश्चिकित्स्यास्तु सुश्रुतात् ।

अनुवासन बस्तिकर्ममें यदि कुछ भी हेर-फेर हो जाता तो छिहत्तर प्रकारके रोग खड़े हो जाते हैं। उनकी चिकित्सा सुश्रुतमें बतलायी रीतिके अनुसार करनी चाहिये ॥ ५० ॥

बस्तिकर्मके पथ्य

पानाहारविहाराश्च परिहाराश्च कृत्स्नशः ।
स्नेहपानसमाः कार्या नात्र कार्या विचारणा ॥ ५१ ॥

अन्न, जल, आहार तथा विहार आदिके विषयमें स्नेहप्रकरणमें जिस तरहका पथ्य बतला आये हैं, उसी तरहका पथ्य इसमें भी करना चाहिए। इस बातके लिए कोई विशेष विचार नहीं ही करे ॥ ५१ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे स्नेहविधिर्नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः ।

निरूहवस्तिकी विधि

निरूहवस्तिर्बहुधा भिद्यते कारणांतरैः ।
तैरेव तस्य नामानि कृतानि मुनिपुङ्गवैः ॥ १ ॥

अब निरूहवस्तिके विषयमें कहते हैं। यह निरूहवस्ति कारणभेदसे कई प्रकारकी होती है। प्राचीन श्रेष्ठ ऋषियोंने इसके नाम भी कारणों हीके आधार पर रक्खे हैं। जैसे—शोधनवस्ति, दोषशमनवस्ति, पिच्छिलवस्ति आदि ॥ १ ॥

निरूहवस्तिका पर्यायवाचक शब्द

निरूहस्यापरं नाम प्रोक्तमास्थापनं बुधैः ।
स्वस्थानस्थापनाद्दोषधातूनां स्थापनं मतम् ॥ २ ॥

विद्वानोंने निरुहवस्तिका दूसरा नाम आस्थापन कहा है। यह निरूहवस्ति दोष और रस आदि धातुओंको अपने स्थानपर लाकर टिका देती है। इसीलिए इसका 'आस्थापन' यह नाम रक्खा गया है ॥ २ ॥

निरूहवस्तिमें काढ़े आदि देनेका प्रमाण

निरूहस्य प्रमाणं तु प्रस्थः पादोत्तरं मतम् ।
मध्यमं प्रस्थमुद्दिष्टं हीनस्य कुडवास्त्रयः ॥ ३ ॥

इस निरूहण वस्तिको देनेके विषयमें कषायादिकी मात्राका प्रमाण इस प्रकार जानना चाहिए। जैसे—सवा प्रस्थकी उत्तम, एक प्रस्थकी मध्यम और तीन कुडव-की हीन मात्रा होती है ॥ ३ ॥

निरूहवस्तिके अयोग्य मनुष्य

अतिस्निग्धोत्क्लिष्टदोषौ क्षतोरस्कः कृशस्तथा ।
आध्मानच्छर्दिहिक्कार्शःकासश्वासप्रपीडितः ॥ ४ ॥
गुदशोफातिसारार्तो विषूचीकुष्ठसंयुतः ।
गर्भिणी मधुमेही च नास्थाप्यश्च जलोदरी ॥ ५ ॥

अतिशय स्निग्ध, कठिन दोषोंका रोगी, उरःक्षत रोगसे दुःखी, दुर्बल, पेटका तना रहना, उबकाई आना, हिचकी, बवासीर, खाँसी, श्वाँस, गुदभ्रंश, शोफ,

अतीसार, विशूचिका तथा कुष्ठ इन रोगोंके रोगी, गर्भिणी स्त्री, मधुमेही और जलोदर रोगका रोगी, इन लोगोंको निरूहवस्ति कर्म न करना चाहिए ॥४॥५॥

निरूहवस्तिके योग्य प्राणी

वातव्याधावुदावर्ते वातासृग्विषमज्वरे।
मूर्च्छा तृष्णोदरानाहमूत्रकृच्छ्राश्मरीषु च ॥ ६ ॥
वृद्धासृग्दरमंदाग्निप्रमेहेषु निरूहणम्।
शूलेऽम्लपित्ते हृद्रोगे योजयेद्विधिवद्बुधः॥ ७ ॥

वातव्याधि, उदावर्त, वातरक्त, विषमज्वर, मूर्च्छा, तृष्णा, उदररोग, आनाह, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, पुराना रक्तप्रदर, मन्दाग्नि, प्रमेह, शूलरोग, अम्लपित्त तथा हृद्रोग, इन रोगोंके रोगियोंको निरुहवस्ति कर्म करनेके योग्य समझना चाहिए ॥ ६ ॥ ७ ॥

निरूहवस्ति देनेकी विधि

उत्सृष्टानिलविण्मूत्रस्निग्धस्विन्नमभोजितम्।
मध्याह्ने गृहमध्ये च यथायोग्यं निरूहयेत् ॥ ८ ॥
स्नेहबस्तिविधानेन बुधः कुर्यान्निरूहणम्।
जाते निरूहे च ततो भवेदुत्कटकासनः ॥ ९ ॥
तिष्ठेन्मुहूर्तमात्रं च निरूहगमनेच्छया।
अनायातं मुहूर्ते तु निरूहं शोधनैर्हरेत् ॥ १० ॥

जिस मनुष्यको यह निरूहण बस्ति करनी हो उसका मलमूत्र त्याग कराकर स्निग्ध पदार्थों द्वारा पसीना निकाले। भोजन न करने दे और दोपहरके समय घरके भीतर बैठाकर यथायोग्य निरूहबस्ति कर्म करे। निरूहबस्ति हो जानेके बाद जो औषधियें भीतर गयी हैं, उन्हें बाहर निकालनेके लिए रोगीको एक मुहूर्त अर्थात् दो घड़ी तक उँकुरू बिठाल दे। इस तरह करनेपर भी यदि निरूह बाहर न आवे तो उसका शोधन करके बाहर निकालनेका प्रयत्न करे॥८॥९॥१०॥

यदि निरूह बाहर न आवे तो उसके शोधनकी विधि

निरूहैरेव मतिमान्क्षारमूत्राम्लसैंधवैः।

यदि निरूह बाहर न आता हो तो जवाखार, गोमूत्र, नीबू अथवा जंभीरी-

का रस और सेंधा नमक, इस वस्तुओंकी फिरसे निरूहवस्ति देवे तो रुका हुआ निरूह बाहर आ जाता है ।

अच्छी तरह निरूहवस्ति होनेके लक्षण

यस्य क्रमेण गच्छन्ति विट्पित्तकफवायवः ।। ११ ।।
लाघवं चोपजायेत सुनिरूढं तमादिशेत् ।

निरूहवस्ति लेनेवालेका मल, पित्त, कफ और वायु, क्रमशः बाहर निकल आवे और शरीर हल्का मालूम पड़े तो समझ ले कि उस मनुष्यका निरूह वस्तिका काम उत्तम रीतिसे हुआ है ।। ११ ।।

निरूहवस्ति अच्छी तरह न हुई हो उसके लक्षण

यस्य स्याद्वस्तिरल्पाल्पवेगो हीनमलानिलः ।। १२ ।।
मूत्रार्तिजाड्यारुचिमान्दुर्निरूढं तमादिशेत् ।

जिस मनुष्यको निरूहवस्ति दी गयी है । यदि उसका वेग बहुत ही कम हो, मल तथा वायु जितनी आनी चाहिए उतनी न आवे, पेशाब करते समय पीड़ा हो, शरीर भारी मालूम पड़े, किसी वस्तुको ओर रुचि न जाय तो समझ ले कि उस रोगीका निरूहवस्तिकर्म अच्छी तरह नहीं हुआ है ।। १२ ।।

उत्तम निरूहवस्ति और स्नेहवस्तिके लक्षण

विविक्तता मनस्तुष्टिः स्निग्धता व्याधिनिग्रहः ।। १३ ।।
आस्थापनस्नेहवस्त्योः सम्यग्दाने तु लक्षणम् ।
अनेन विधिना युञ्ज्यान्निरूहं वस्तिदानवित् ।। १४ ।।

यदि वस्ति लेनेवालेकी देह हल्की हो, चित्त प्रसन्न हो, शरीरमें चिकनापन मालूम पड़े, जिस रोगके लिये वस्ति ली गयी हो, उसमें कुछ आराम मालूम पड़े तो समझ ले कि निरूहण बस्ति अच्छी तरह हुई है । बस्ति प्रदान करने-वाले चतुर वैद्यको चाहिए कि अच्छी विधिसे निरूह बस्ति दे ।। १३ ।। १४ ।।

निरूहण बस्ति कितनी बार देनी चाहिए और उसका प्रकार

द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुर्थं वा यथोचितम् ।
सस्नेह एकः पवने पित्ते द्वौ पयसा सह ।। १५ ।।
कषायकटुरूक्षाद्याः कफे कोष्णास्त्रयो मताः ।
पित्तश्लेष्मानिलाविष्टं क्षीरयूषरसैः क्रमात् ।। १६ ।।
निरूहं योजयित्वा च ततस्तदनुवासयेत् ।

दो, तीन, चार या वैद्यको जितनी बस्तियें देनी उचित मालूम पड़ें, रोगके बलाबलके अनुसार उतनी बस्ति देवे। यदि वातसम्बन्धी रोग हो तो एक स्नेहमयी बस्ति और पित्तज रोग हो तो दूधके साथ दो बस्ति देनी चाहिए। यदि कफसे जायमान रोग हो तो कसैला, कड़ुआ और रूखा पदार्थ एकत्र करे और उसको थोड़ा गरम करके तीन बार निरूहबस्ति देवे। यदि कफ और वातज रोग हो तो दूध, यूष तथा मांसरस क्रमशः इनकी बस्ति दे करके अन्तमें अनुवासन बस्ति देवे ॥ १५ ॥ १६ ॥

सुकुमार, वृद्ध, बालक आदि मनुष्योंको निरूहबस्ति देनेके नियम

सुकुमारस्य वृद्धस्य बालस्य च मृदुर्हितः ॥ १७ ॥
बस्तिस्तीक्ष्णः प्रयुक्तस्तु तेषां हन्याद्बलायुषी।

सुकुमार, वृद्ध और बालक, इन लोगोंको हल्की-सी पिचकारी मारनी चाहिए। इन्हें यदि तीक्ष्ण बस्ति दी जाती तो इनके बल और आयुष्यका नाश होता है। अतएव इनको तीक्ष्ण बस्ति न देकर मृदु बस्ति ही देवे ॥ १७ ॥

बस्तिका क्रम

दद्यादुत्क्लेशनं पूर्वं मध्ये दोषहरं ततः ॥ १८ ॥
पश्चात्संशमनीयं च दद्याद्बस्तिं विचक्षणः।

पहले ऐसी बस्ति दे कि जिससे दोष उत्क्लेशित हो जायँ, मध्यमें ऐसी दे कि जिससे दोषका नाश हो और अन्तमें ऐसी बस्ति देनी चाहिए कि जिससे दोषोंका शमन हो जाय ॥ १८ ॥

उत्क्लेशन बस्ति

एरंडबीजं मधुकं पिप्पली सैंधवं वचा ॥ १९ ॥
हपुषाफलकल्कश्च बस्तिरुत्क्लेशनः स्मृतः।

अरण्डीके बीज, महुआके फल, पिप्पली, सेंधा नमक, वच, हाऊबेर तथा मैनफल इन औषधियोंको समान भागके हिसाबसे एकत्रित करके कल्क करे और दोषोंको उत्क्लेशित करनेके लिए यह उत्क्लेशन नामकी बस्ति देवे ॥ १९ ॥

दोषको हरनेवाली बस्ति

शताह्वामधुकं बिल्वं कौटजं फलमेव च ॥ २० ॥
सकांजिकः स गोमूत्रो बस्तिर्दोषहरः स्मृतः।

सौंफ, मुलहठी, वेल और कुटजके फल, इन सबको समान भागसे एकत्रित करके काँजीमें पीसे और गोमूत्रमें मिलाकर गुदामें पिचकारी मारे तो वातादि दोष शान्त हो जाते हैं। यह दोषहर वस्ति कहलाती है ॥ २० ॥

शोधन वस्ति

शोधनद्रव्यनिष्क्वाथैस्तत्कल्कैः स्नेहसैन्धवैः ॥ २१ ॥
युक्त्या खजेन मथिता बस्तयः शोधनाः स्मृताः ।

पूर्वोक्त निशोथ आदि शोधनौषधियोंकाका काढ़ा तैयार करके और उन्हीं शोधन द्रव्योंका कल्क तथा सेंधा नमक मिलाकर मथानीसे मथे और दोषोंको शमन करनेके लिए इसकी वस्ति देवे ॥ २१ ॥

दोषको शमन करनेवाली वस्ति

प्रियंगुर्मधुको मुस्ता तथैव च रसांजनम् ॥ २२ ॥
सक्षीरः शस्यते बस्तिर्दोषाणां शमने स्मृतः ।

प्रियंगु, महुएका फूल, नागरमोथा तथा रसौत इन चार औषधियोंको समान भागके हिसाबसे एकत्रित करके दूध डालकर पीसे और दोषोंको शमन करनेके लिए इसकी पिचकारी मारे। यह दोषशमनवस्ति कही जाती है ॥ २२ ॥

लेखन वस्ति

त्रिफलाक्वाथगोमूत्रक्षौद्रक्षारसमायुताः ॥ २३ ॥
ऊषकादिप्रतीवापैर्वस्तयो लेखनाः स्मृताः ।

त्रिफलाके काढ़ेमें गोमूत्र, शहद, जवाखार और ऊषकादि गणमें गिनायी हुई औषधियोंका चूर्ण मिलाकर जो वस्ति दी जाती, वह लेखनवस्ति कहलाती है। इससे मेदोरोग आदि उपद्रव दूर हो जाते हैं ॥ २३ ॥

बृंहण वस्ति

बृंहणद्रव्यनिष्क्वाथः कल्कैर्मधुरकैर्युतः ॥ २४ ॥
सर्पिर्मांसरसोपेता वस्तयो बृंहणा मताः ।

मुसली, गोखरू तथा कौंचके बीज आदि बृंहण औषधियोंका काढ़ा तैयारकर महुएके पत्ते, दाख और अनार आदि मीठे द्रव्योंका कल्क, घी और मांसरसको डालकर पिचकारी मारनेकी क्रिया बृंहणवस्ति कही जाती है ॥२४॥

पिच्छिल वस्ति

वदर्यैरावती शेलुशाल्मली धन्वनागराः ॥ २५ ॥
क्षीरसिद्धाः क्षौद्रयुक्ता नाम्ना पिच्छिलसंज्ञिताः।
अजोरभ्रैणरुधिरैर्युक्ता देया विचक्षणैः॥ २६ ॥
मात्रा पिच्छिलबस्तीनां पलैर्द्वादशभिर्मता।

वेरका फल, नागवला, लिसोड़ा, सेमरकी छाल, धमासा और सोंठ, इन औषधियोंको समान भागके अनुसार एकत्रित करके दूधके साथ पीसे। फिर उसमें वकरे, मेढ़े तथा हरिणका रक्त मिलाकर इसीकी पिचकारी मारे। यह पिच्छिल वस्ति कहलाती है। इस वस्तिके देनेसे समस्त शारीरिक दोष पतले पड़ जाते हैं ॥ २५ ॥ २६ ॥

निरूहण वस्ति

दत्त्वादौ सैंधवस्याक्षं मधुना प्रसृतिद्वयम् ॥ २७ ॥
विनिर्मथ्य ततो दद्यात्स्नेहस्य प्रसृतित्रयम्।
एकीभूते ततः स्नेहे कल्कस्य प्रसृतिं क्षिपेत् ॥ २८ ॥
संमूर्च्छिते कषाये तु चतुःप्रसृतिसंमितम्।
क्षिप्त्वा विमथ्य दद्याच्च निरूहं कुशलो भिषक् ॥ २९ ॥
वाते चतुष्पलं क्षौद्रं दद्यात्स्नेहस्य षट्पलम्।
पित्ते चतुःपलं क्षौद्रं स्नेहस्य च पलत्रयम् ॥ ३० ॥
कफे षट्पलिकं क्षौद्रं स्नेहस्यैव चतुष्पलम्।

एक कर्ष सेंधा नमक चार पल शहदमें डालकर खरल करके उसमें छ पल तेल तथा घृत डाल दे। इसके बाद कल्कमें गिनायी औषधियोंका कल्क करके पूर्वोक्त स्नेहमें मिलावे। ऐसा न हो सके तो कल्ककी औषधियोंका काढ़ा खौलाकर स्नेहमें मिलावे। फिर उसे मथकर जानकार वैद्य निरूह वस्ति देवे। यदि वात-सम्बन्धी कोई रोग हो तो चार पल मधु और छ पल तेल या घी, यदि पित्तज रोग हो तो चार पल शहद तथा तीन पल तेल या घी और यदि कफ-सम्बन्धी कोई रोग हो तो छ पल शहद तथा चार पल घी या तेल मिलाकर निरूहवस्ति देनी चाहिए ॥ २७–३० ॥

मधुतैलिक वस्ति

एरंडक्वाथतुल्यांशं मधु तैलं पलाष्टकम् ॥ ३१ ॥
शतपुष्पापलार्द्धेन सैन्धवार्धेन संयुतम् ।
मधुतैलिकसंज्ञोऽयं वस्तिः खजविलोडितः ॥ ३२ ॥
मेदोगुल्मकृमिप्लीहमलोदावर्तनाशनः ।
बलवर्णकरश्चैव वृष्यो बृंहणदीपनः ॥ ३३ ॥

रेंड़की जड़का काढ़ा आठ पल, शहद चार पल, सौंफ और सेंधा नमक आधा पल, इन सब चीजोंको एकत्रकर मथानीसे मथे और इसीकी निरूह-वस्ति दे । यह मधुतैलिक वस्ति कहलाती है । इसको देनेसे मेदोरोग, गुल्म, कृमिरोग, प्लीहा, मल एवं उदावर्त नामक वायु, ये सब विकार नष्ट हो जाते और इसके प्रभावसे बल तथा कान्ति आती और स्त्रीप्रसंगकी रुचि बढ़ती, धातुकी वृद्धि होती और मन्द अग्नि भी प्रदीप्त हो जाता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

दीपनवस्ति

क्षौद्राज्यक्षीरतैलानां प्रसृतिः प्रसृतिर्भवेत् ।
हपुषासैन्धवाक्षांशौ बस्तिः स्याद्दीपनः परः ॥ ३४ ॥

शहद, घी तथा दूध, ये तीनों चीजें दो-दो पल, हाऊबेर और सेंधा नमक इन दोनोंको एक-एक कर्ष लेकर खरल करे । फिर शहद, घी तथा दूधमें भिगोकर इस औषधिकी वस्ति उस रोगीको दे, जिसकी जठराग्नि मन्द पड़ गयी हो। इसके प्रभावसे अग्निकी मन्दता जाती रहती है ॥ ३४ ॥

युक्तरथ बस्ति

एरंडमूलनिष्क्वाथो मधुतैलं ससैन्धवम् ।
एष युक्तरथो बस्तिः सवचापिप्पलीफलः ॥ ३५ ॥

एरंडकी जड़का काढ़ा तैयार करके उसमें तेल और शहद मिलावें । फिर सेंधा नमक, वच, पीपरि और मैनफल इन चार चीजोंको समान भागसे लेकर चूर्ण करे और उस एरंडके काढ़ेमें मिलाकर इसीकी निरूहवस्ति दे । यह बस्ति युक्तरथ वस्ति कहलाती है ॥ ३५ ॥

सिद्धवस्ति

पञ्चमूलस्य निष्क्वाथस्तैलं मागधिका मधु ।
ससैन्धवः समधुकः सिद्धबस्तिरिति स्मृतः ॥ ३६ ॥

बृहत्पंचमूलके काढ़ेमें तेल, पीपरिका चूर्ण, शहद, सेंधा नमक और मुलहठी मिलाकर जो बस्ति दी जाती उसे लोग सिद्ध बस्ति कहते हैं। यह प्रत्येक रोग-पर दी जा सकती है ॥ ३६ ॥

बस्तिकर्ममें पथ्यापथ्य

स्नानमुष्णोदकैः कुर्याद्दिवास्वप्नमजीर्णताम् ।
वर्जयेदपरं सर्वमाचरेत्स्नेहबस्तिवत् ॥ ३७ ॥

बस्ति लेनेवाले मनुष्यको चाहिये कि गरम जलसे नहाय, दिनमें न सोवे, ऐसा भोजन न करे जिससे अजीर्ण हो जाय और पथ्य आदि सारे आचरण पूर्वोक्त स्नेहबस्तिके समान करे ॥ ३७ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायामुत्तरखण्डे चिकित्सा-स्थाने निरूहणबस्तिविधिनाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः ।

उत्तरबस्ति

अतः परं प्रवक्ष्यामि बस्तिमुत्तरसंज्ञितम् ।
द्वादशांगुलकं नेत्रं मध्ये च कृतकर्णिकम् ॥ १ ॥
मालतीपुष्पवृन्ताभं छिद्रं सर्षपनिर्गमम् ।

इसके अनन्तर उत्तरबस्तिके विषयमें कहते हैं। इस उत्तरबस्तिकी नलीकी लंबाई बारह अंगुलकी रहेगी और मध्यमें कमलकी कर्णिकाके समान तथा मालतीके फूलकी डंडीकी तरह इसका आकार होगा और एक सरसों आने-जाने भरका छिद्र रहेगा ॥ १ ॥

उत्तरबस्तिकी योजना

पञ्चविंशतिवर्षाणामधो मात्रा द्विकार्षिकी ॥ २ ॥
तदूर्ध्वं पलमानं च स्नेहस्योक्ता विचक्षणैः ।

इस बस्तिका यह नियम है कि पचीस वर्ष तककी अवस्थावालेके लिए स्नेहकी मात्रा एक कर्ष और इसके बादकी अवस्थावालोंके लिए एक पल स्नेहकी मात्रा देनी चाहिए ॥ २ ॥

उत्तर बस्ति योजनाकी विधि

अथास्थापनशुद्धस्य तृप्तस्य स्नानभोजनैः ॥ ३ ॥
स्थितस्य जानुमात्रेण पीठे त्विष्टशलाकया ।
स्निग्धया मेढ्रमार्गे च ततो नेत्रं नियोजयेत् ॥ ४ ॥
शनैः शनैर्घृताभ्यक्तं मेढ्ररन्ध्रेंगुलानि षट् ।
ततोऽवपीडयेद्बस्तिं शनैर्नेत्रं च निर्हरेत् ॥ ५ ॥
ततः प्रत्यागते स्नेहे स्नेहबस्तिक्रमो हितः ।

जिस रोगीको पहले निरूहबस्ति देकर शुद्धकर लिया गया हो और जो स्नान तथा भोजनसे तृप्त हो चुका हो, ऐसे मनुष्यको किसी आसनपर घुटनोंके बल बिठालकर पहले उसको लिंगेद्रियमें एक चिकनी सी छ अंगुलकी सलाई प्रविष्ट करके पिचकारी मारे। इस तरह बस्तिकर्म करनेके बाद सलाईको धीरे-धीरे बाहर निकाल ले। यदि बस्तिकर्म द्वारा दिया हुआ स्निग्ध पदार्थ बाहर आ जाय तो उसे उत्तम बस्तिकर्म समझना चाहिये ॥ ३–५ ॥

स्त्रियोंके योग्य बस्ति

स्त्रीणां कनिष्ठिकास्थूलं नेत्रं कुर्याद्दशांगुलम् ॥ ६ ॥
मुद्गप्रवेशं योज्यं च योन्यंतश्चतुरंगुलम् ।
द्व्यंगुलं मूत्रमार्गे च सूक्ष्मं नेत्रं नियोजयेत् ॥ ७ ॥

स्त्रियोंको बस्ति देनेके लिये जो नली बनी हो, वह कनिष्ठिका उँगलीकी तरह मोटी तथा दस अंगुलकी लम्बी हो और उसमें मूँग आने-जाने भरका छिद्र होना चाहिए। चार अंगुल इस नलीको योनिके भीतर प्रविष्ट करके पिचकारी मारनी चाहिए। पिचकारी मारनेके पहले एक पतली-सी दो अंगुलकी नली मूत्रमार्गमें भी डाल दे तो अच्छा हो ॥ ६ ॥ ७ ॥

बालकोंको बस्ति देनेकी विधि

मूत्रकृच्छ्रविकारेषु बालानां त्वेकमंगुलम् ।
शनैर्निष्कंपमाधेयं सूक्ष्मनेत्रं विचक्षणैः ॥ ८ ॥

यदि किसी बच्चेको मूत्रकृच्छ्र विकार हो तो शिश्नके भीतर एक पतली सी नलीको केवल एक अंगुल घुसेड़कर बस्तिकर्म करे। बच्चोंका बस्तिकर्म करते हुए वैद्य बड़ी सावधानीसे काम ले और हाथको किसी तरह हिलने न दे ॥ ८ ॥

स्त्रियों और बालकोंको बस्ति देनेके स्नेहकी मात्रा

योनिमार्गेषु नारीणां स्नेहमात्रा द्विपालिकी।
मूत्रमार्गे पलोन्माना बालानां च द्विकार्षिकी ॥ ६ ॥
उत्तानायै स्त्रियै दद्यादूर्ध्वजान्वै विचक्षणः।
अप्रत्यागच्छति भिषग्बस्तावुत्तरसंज्ञके ॥ १० ॥

यदि स्त्रियोंके योनिमार्गमें बस्ति देनी हो तो दो पल और मूत्रमार्गमें देनी हो तो केवल एक पल स्नेहकी योजना करे। बच्चोंके बस्तिकर्ममें केवल दो कर्ष स्नेह काममें लावे। यदि स्त्रीको बस्ति देनी हो तो चतुर वैद्यको चाहिए कि स्त्रीको सीधी बिठाले और उसके घुटनोंको ऊपर उठाकर पिचकारी मारे। यदि बस्तिकर्म कर लेनेके अनन्तर वह स्नेह बाहर न आवे तो आगे बतलाये जानेवाले यत्नसे काम ले ॥ ९ ॥ १० ॥

शोधनद्रव्य द्वारा बस्तिका विधान

भूयो बस्तिं निदध्याच्च संयुक्तैः शोधनैर्गणैः।
फलवर्तिं निदध्याद्वा योनिमार्गे दृढां भिषक् ॥ ११ ॥
सूत्रैर्विनिर्मितां स्निग्धशोधनद्रव्यसंयुताम्।
दह्यमाने तथा बस्तौ दद्याद्बस्तिं विचक्षणः ॥ १२ ॥
क्षीरवृक्षकषायेण पयसा शीतलेन च।
बस्तिः शुक्ररुजः पुंसां स्त्रीणामार्तवजा रुजः ॥ १३ ॥
हन्यादुत्तरबस्तिस्तु नोचितो मेहिनां क्वचित्।

यदि वह स्नेह बाहर न आवे तो शोधनीय द्रव्यों द्वारा योनिमार्गमें पिचकारी मारे। अथवा पीछे बतलायी हुई ऐरंड बीज आदि औषधियोंकी फलवर्ति बनाकर योजना करे अथवा सूतकी बत्ती बनाकर अंडी आदि औषधियोंको लपेटकर योनिमें प्रविष्ट करे। योनिमार्गके नीचे एक बस्तिस्थान है। पिचकारी मारनेपर यदि बस्तिमें जलन होने लगे तो फिरसे गूलर, बरगद आदि किसी क्षीरवृक्षका काढ़ा करके या ठंडे दूधकी बस्ति देवे। ऐसा करनेसे वह बस्तिस्थान शुद्ध हो जायगा। यह उत्तरबस्ति पुरुषोंके शुक्रसम्बन्धी रोग और स्त्रियोंके रजोदोषको दूर करता है। किन्तु प्रमेह रोगवालेको इससे कुछ भी लाभ नहीं होता ॥ ११-१३ ॥

बस्तिकर्म अच्छी तरह होनेके लक्षण

सम्यग्दत्तस्य लिंगानि व्यापदः क्रम एव च ॥ १४ ॥
बस्तेरुत्तरसंज्ञस्य शमनं स्नेहबस्तिना ।

उत्तरबस्ति उत्तम रीतिसे हुई है या नहीं, इसका लक्षण, दोष तथा उपद्रवों-की शान्तिविधि पूर्वोक्त स्नेहबस्तिके समान जाननी चाहिए ॥ १४ ॥

फलवर्तीकी योजनाका विधान

घृताभ्यक्ते गुदे क्षेप्या श्लक्ष्णा स्वांगुष्ठसंनिभा ।
मलप्रवर्तिनी वर्तिः फलवर्तिश्च सा स्मृता ॥ १५ ॥

पहले गुदामें घी लगाकर अंगूठेके जितनी मोटी बत्तीमें एरण्ड बीजादि रेचक औषधियोंका लेप करके गुदामें प्रविष्ट करे इससे दस्त अवश्य होंगे। यह बत्ती फलवर्तीके नामसे विख्यात है ॥ १५ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायां उत्तरखण्डे उत्तरबस्तिविधिर्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

नस्यविधि

नस्यं तत्कथ्यते धीरैर्नासाग्राह्यं यदौषधम् ।
नावनं नस्यकर्मेति तस्य नामद्वयं मतम् ॥ १ ॥

जो औषधि नाकमें दी जाती वह नस्य कहलाती है। उसकी दो संज्ञायें हैं। एक नस्यकर्म और दूसरी संज्ञा है नावन ॥ १ ॥

नस्यके भेद

नस्यभेदो द्विधा प्रोक्तो रेचनं स्नेहनं तथा ।
रेचनं कर्षणं प्रोक्तं स्नेहनं बृंहणं मतम् ॥ २ ॥

रेचन और स्नेहन नामक इसके दो भेद हैं। इनमेंसे रेचन नस्य वातादि दोषोंका नाश करता और स्नेहन नस्य रस आदि धातुओंकी वृद्धि करता है ॥ २ ॥

नस्य देनेका समय

कफपित्तानिलध्वंसे पूर्वमध्यापराह्णके ।
दिने च गृह्यते नस्यं रात्रावप्युत्कटे गदे ॥ ३ ॥

कफ, पित्त और वायु इन तीनों दोषोंका शमन करनेके लिए क्रमशः सवेरे, दोपहर और शामको नस्य लेना चाहिए। यदि दोष बहुत ही प्रबल हों तो रात्रिके समय लेनेमें भी कोई हर्ज नहीं ॥ ३ ॥

नस्यका निषेध

नस्यं त्यजेद्भोजनान्ते दुर्दिने चापतर्पणे ।
तथा नवप्रतिश्यायी गर्भिणी गरदूषितः ॥ ४ ॥
अजीर्णी दत्तबस्तिश्च पित्तस्नेहोदकासवः ।
क्रुद्धः शोकाभिभूतश्च तृषार्तो वृद्धबालकौ ॥ ५ ॥
वेगावरोधी स्नातश्च स्नातुकामश्च वर्जयेत् ।

भोजन करनेके बाद, बदलीके दिनोंमें, लंघनके दिन और नवीन जुकाम हुआ हो ऐसे अवसरपर नस्य नहीं लेना चाहिए। गर्भिणी - स्त्री, विषग्रस्त, अजीर्णरोगी, जिसने बस्ति लिया हो, जो घी तेल, जल तथा मत्स्य आदिका सेवन करता हो, क्षुधाकुल मनुष्य, शोक तथा तृष्णासे पीडित, वृद्ध, बालक, मलमूत्र तथा शुक्र आदिका वेग रोकनेवाला, जो स्नान कर चुका हो या करना चाहता हो, इतने प्रकारके मनुष्य नस्य न लें ॥ ४ ॥ ५ ॥

नस्यकर्ममें योग्यायोग्य रोगी

अष्टवर्षस्य बालस्य नस्यकर्म समाचरेत् ॥ ६ ॥
अशीतिवर्षादूर्ध्वं च नावनं नैव दीयते ।
अथ वै रेचनं नस्यं ग्राह्यं तैलैः सुतीक्ष्णकैः ॥ ७ ॥

आठ वर्ष तककी अवस्थावाले बालकसे लेकर अस्सी वर्षके बूढ़े तकको नस्यकी औषधियें देनी चाहिए। आठसे कम और अस्सीसे ऊपरकी अवस्था वालोंको नस्य न दे। रेचनके लिए वही नस्य उत्तम है जो खूब तीखे तेलोंसे तैयार किया गया हो। ऐसा न हो सके तो तीखी औषधियोंके योगसे तैयार तेल, काढ़े या रससे तो अवश्य सिद्ध किया हुआ होना चाहिये ॥ ६ ॥ ॥ ७ ॥

रेचक नस्यका प्रमाण

नासिकारंध्रयोरष्टौ षट्चत्वारश्च बिंदवः ॥ ८ ॥
प्रत्येकं रेचने योज्या मुख्यमध्यांत्यमात्रया ।

रेचनके लिए जो नस्य लिया जा रहा हो वह नाकके दोनों छेदोंमें

औषधिकी आठ छ या चार बूँद डालनी चाहिये। आठ बूँदकी उत्तम, छ बिन्दुकी मध्यम और चार बूँदकी कनिष्ठ मात्रा होती है ॥ ८ ॥

नस्यकर्ममें औषधका प्रमाण

नस्यकर्मणि दातव्यं शाणैकं तीक्ष्णमौषधम् ॥ ९ ॥
हिंगु स्याद्यवमात्रं तु माषैकं सैंधवं स्मृतम् ।
क्षीरं चैवाष्टशाणं स्यात्पानीयं च त्रिकार्षिकम् ॥ १० ॥
कार्षिकं मधुरं द्रव्यं नस्यकर्मणि योजयेत् ।

नस्य कर्मके लिये यदि किसी तीखी औषधिकी आवश्यकता हो तो उसकी मात्रा एक शाण होती है और हींग जौ भर, सेंधा नमक दो मासे, दूध आठ शाण, पानी तीन कर्ष और खाँड़ आदि मीठे पदार्थ एक कर्ष लेकर उसमें मिलाना चाहिए ॥ ९ ॥ १० ॥

विरेचन नस्यके और दो भेद

अवपीडः प्रधमनं द्वौ भेदावपरौ स्मृतौ ॥ ११ ॥
शिरोविरेचनस्थाने तौ तु देयौ यथायथम् ।

ऊपर बतलाये हुए विरेचन नस्यके भी दो भेद हैं। पहलेका नाम है— अवपीड और दूसरा प्रधमन कहलाता है। ये दोनों नस्य शिरोविरेचनके काममें लाये लाते हैं ॥ ११ ॥

अवपीडन और प्रधमनके लक्षण

कल्कीकृतादौषधाद्यः पीडितो निःसृतो रसः ॥ १२ ॥
सोऽवपीडः समुद्दिष्टस्तीक्ष्णद्रव्यसमुद्भवः ।
षडंगुला द्विवक्त्रा या नाडी चूर्णं तया धमेत् ॥ १३ ॥
तीक्ष्णं कोलमितं वक्त्रवातैः प्रधमनं हि तत् ।

नस्यकर्मके लिये बतलायी तीखी औषधियोंके कल्कको निचोड़कर जो नस्य तैयार किया जाता वह अवपीड कहलाता है। इसके लिए एक ऐसी नली होनी चाहिए, जो छ अंगुलकी लम्बी और दो मुँहकी हो। उसमें तीखी औषधियों- का एक कोल चूर्ण रखकर मुँहसे नाकमें फूँक दे। इसको लोग प्रधमननस्य कहते हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

रेचन और स्नेहनके योग्य प्राणी

ऊर्ध्वजत्रुगते रोगे कफजे स्वरसंक्षये ॥ १४ ॥
अरोचके प्रतिश्याये शिरःशूले च पीनसे ।
शोफापस्मारकुष्ठेषु नस्यं स्नेहेन दीयते ॥ १५ ॥

जिसको ऊर्ध्वजत्रुगत कोई रोग हो, कफके प्रकोपसे जिसकी आवाज बैठ गयी हो, उसे और अरुचि, प्रतिश्याय, शिरःशूल, पीनस, सूजन, अपस्मार तथा कुष्ठ, इन रोगवालोंको यह रेचन नस्य लाभ पहुँचाता है। डरपोक मनुष्य, स्त्री तथा बच्चोंको स्नेहके साथ-साथ नस्य देना चाहिए ॥ १४ ॥ १५ ॥

अवपीडन नस्यके योग्य प्राणी

गलरोगे सन्निपाते निद्रायां विषमज्वरे ॥ १६ ॥
मनोविकारे कृमिषु युज्यते चावपीडनम् ।

गलरोग, सन्निपात, अतिनिद्रा, विषमज्वर, मानसविकार तथा कृमिरोगमें अवपीडन नस्य देना चाहिए ॥ १६ ॥

प्रधमन नस्यके योग्य प्राणी

अत्यन्तोत्कटदोषेषु विसंज्ञेषु च दीयते ॥ १७ ॥
चूर्णं प्रधमनं धीरैस्तद्धि तीक्ष्णतरं यतः ।

जब कि वातादि दोष बड़ी उत्कट अवस्थामें पहुँच जायँ या कि बेहोशी आ जाय तो अतिशय तीक्ष्ण औषधियोंके चूर्णका प्रधमन नामक नस्य देना चाहिए ॥ १७ ॥

रेचकसंज्ञक नस्य

नस्यं स्याद्गुडशुण्ठीभ्यां पिप्पल्या सैंधवेन च ॥ १८ ॥
जलपिष्टेन तेनाक्षिकर्णनासाक्षिरोगदाः ।
हनुमन्यागलोद्भूता नश्यंति भुजपृष्ठजाः ॥ १९ ॥

गुड़, सोंठ अथवा पीपली और सेंधा नमकको पानीमें पीसकर नस्य ले तो आँख, कान, नाक, मस्तक, दाढ़ी, गर्दन, भुजा और पीठकी पीडा दूर हो जाती है ॥ १८ ॥ १९ ॥

रेचन नस्यका दूसरा प्रकार

मधूकसारकृष्णाभ्यां वचामरिचसैंधवैः ।
नस्यं कोष्णजले पिष्टं दद्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ।। २० ।।
अपस्मारे तथोन्मादे सन्निपातेऽपतन्त्रके ।

महुआकी लकड़ीके भीतरकी गाभ, पीपली, वच, कालीमिर्च, सेंधानमक, इन औषधियोंको गरम पानीमें पीसकर नस्य देनेसे मृगी, उन्माद, सन्निपात तथा अपतन्त्रक वायुके कारण आयी हुई बेहोशी दूर हो जाती है ।। २० ।।

तीसरा प्रकार

सैंधवं श्वेतमरिचं सर्षपाः कुष्ठमेव च ।। २१ ।।
बस्तमूत्रेण पिष्टानि नस्यं तन्द्रानिवारणम् ।

सेंधा नमक, सफेद मिर्च तथा कूठ, इन वस्तुओंको बकरेके मूत्रमें पीसकर इनकी नस्य देनेसे तन्द्रा दूर हो जाती है ।। २१ ।।

प्रधमन नस्य

रोहीतमत्स्यपित्तेन भावितं सैंधवं वचा ।। २२ ।।
मरिचं पिप्पली शुण्ठी कंकोलं लशुनं पुरम् ।
कट्फलं चेति तच्चूर्णं देयं प्रधमनं बुधैः ।। २३ ।।

यदि सेंधा नमक, वच, काली मिर्च, पीपली, सोंठ, कंकोल, लासुन तथा कायफर, इन चीजोंमें रोहू मछलीके पित्तेकी भावना देकर धूपमें सुखा ले और उसे नलीमें भरकर प्रधमन नस्य दे तो तन्द्रादिक बाधायें दूर हो जाती है ।।२२।।२३।।

बृंहण नस्य

अथ बृंहणनस्यस्य कल्पना कथ्यतेऽधुना ।
मर्शश्च प्रतिमर्शश्च द्वौ भेदो स्नेहने मतौ ।। २४ ।।
मर्शस्य तर्पणी मात्रा मुख्या शाणैः स्मृताष्टभिः ।
मध्यमा च चतुःशाणैर्हीना शाणमिता स्मृता ।। २५ ।।
एकैकस्मिंस्तु मात्रेयं देया नासापुटे बुधैः ।
मर्शस्य द्वित्रिवेलं वा वीक्ष्य दोषबलाबलम् ।। २६ ।।
एकांतरं द्व्यंतरं वा नस्यं दद्याद्विचक्षणः ।
त्र्यहं पंचाहमथवा सप्ताहं वा सुयंत्रितम् ।। २७ ।।

अब बृंहण यानी धातुको बढ़ानेवाले नस्यकी विधि बतलायी जाती है। इस नस्यके दो भेद हैं। एकका नाम है मर्श और दूसरेका प्रतिमर्श। मर्शनस्यमें आठ शाणकी उत्तम तर्पणी मात्रा दी जाती है और चार शाण मध्यम तथा एक शाणकी हीन मात्रा होती है। इन तीनों मात्राओंको दो तीन बार देवे। फिर रोगीका बलाबल देखकर देना चाहिए। यह नस्य प्रतिदिन न देकर एक, दो, तीन, पाँच या सात दिनके अन्तरसे देवे ॥ २०-२७ ॥

नस्य अधिक होनेसे उत्पन्न उपद्रवोंका यत्न

मर्शो शिरोविरेके च व्यापदो विविधाः स्मृताः ।
दोषोत्क्लेशात्क्षयाच्चैव विज्ञेयास्ता यथाक्रमम् ॥ २८ ॥
दोषोत्क्लेशनिमित्तासु युंज्याद्वमनशोधनम् ।
अथ क्षयनिमित्तासु यथास्वं बृंहणं मतम् ॥ २९ ॥

नस्य तथा शिरोविरेचन नस्यमें अनेक प्रकारकी पीडायें कही गयी हैं। ये पीडायें दोषकी अधिकतासे या दोषके क्षयसे जायमान होती हैं। यदि दोषकी अधिकतासे उत्पन्न पीड़ा हो तो वामन या शोधन औषधियें दे और दोषोंके क्षयसे उत्पन्न पीड़ाओंमें बृंहण नस्य देना चाहिए ॥ २८ ॥ २९ ॥

बृंहण नस्यके योग्य प्राणी

शिरोनासाक्षिरोगेषु सूर्यावर्तार्द्धभेदके ।
दन्तरोगे बले हीने मन्याबाहुंसजे गदे ॥ ३० ॥
मुखशोषे कर्णनादे वातपित्तगदे तथा ।
अकालपलिते चैव केशश्मश्रुप्रपातने ॥ ३१ ॥
युज्यते बृंहणं नस्यं स्नेहैर्वा मधुरद्रवैः ।

शिरोरोग, नासारोग, नेत्रव्याधि, सूर्यावर्त, आधाशीशी, दन्तरोग, दुर्बलताके कारण गर्दन, कन्धा और बाहुमें उत्पन्न पीडा, मुखशोष, कर्णनाद, वात और पित्तसे सम्बन्ध रखनेवाले रोग, पलितरोग और इन्द्रलुप्त रोग, इन व्याधियोंमें घृत आदि स्नेह तथा खाँड़ आदि मीठे पदार्थोंके साथ यह बृंहण नस्य देना चाहिए ॥ ३० ॥ ३१ ॥

बृंहण नस्यकी विधि

सशर्करं पयःपिष्टं भृष्टमाज्येन कुंकुमम् ॥ ३२ ॥

नस्यप्रयोगतो हन्याद्वातरक्तभवा रुजः ।
भ्रूशंखाक्षिशिरःकर्णसूर्यावर्तार्धभेदकान् ॥ ३३ ॥
नस्यं स्याद्रुबुतैलेन तथा नारायणेन वा ।
माषादिना वापि सर्पिस्तत्तद्भेषजसाधितैः ॥ ३४ ॥
तैलं कफे स्याद्वाते च केवले पवने वसा ।
दद्यान्नस्यं सदा पित्ते सर्पिर्मज्जानमेव च ॥ ३५ ॥

पहले केसरको घीमें भूनकर उसमें खाँड़ मिलावे और दूधमें मिलाकर नस्य देवे। ऐसा करनेसे वातरक्तसे जायमान सभी रोग दूर हो जायँगे। अंडीके तेल-में नारायण तैल और माषादि तैलके साथ अनेक औषधियोंके योगसे तैयार किया हुआ घृतका नस्य देनेसे भृकुटी और कनपटीकी पीड़ा तथा सूर्यावर्त एवं आधाशीशी, ये सब रोग दूर हो जाते हैं। कफके प्रकोपसे जायमान रोगोंमें तेल, वातरोगमें वसा और पित्तज रोगोंमें मज्जाका नस्य देना चाहिए ॥३२–३५॥

पक्षाघातादिक रोगोंके लिये नस्य

माषात्मगुप्तारास्नाभिर्बलारुबुकरोहिषैः ।
कृतोऽश्वगन्धया क्वाथो हिंगुसैंधवसंयुतः ॥ ३६ ॥
कोष्णनस्यप्रयोगेण पक्षाघातं सकंपनम् ।
जयेदर्दितवातं च मन्यास्तंभापबाहुकौ ॥ ३७ ॥

उड़द, कौंचके बीज, रास्ना, गंगेरनको जड़, रेड़की जड़, रोहिषतृण तथा असगन्ध, इन औषधियोंके काढ़ेमें भुनी हींग और सेंधा नमक डालकर गरम-गरम नस्य देनेसे सकम्प पक्षाघात वायु, लकवा, गर्दनकी जड़ता और अपबाहुक, ये सारे रोग दूर हो जाते हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

प्रतिमर्श नस्यकी मात्रा

प्रतिमर्शस्य मात्रा तु द्विद्विबिंदुमिता मता ।
प्रत्येकशो नस्तकयोः स्नेहेनेति विनिश्चितम् ॥ ३८ ॥

घृत, तेल आदि किसी भी स्निग्ध पदार्थकी दो-दो बूँदें एक-एक नाकमें डालनेकी क्रियाको लोग प्रतिमर्श नस्य कहते हैं। इसकी मात्रा दो ही बूँदोंकी होती है ॥ ३८ ॥

बिन्दुसंज्ञक मात्रा

स्नेहे ग्रंथिद्वयं यावन्निमग्ना चोद्धृता ततः।
तर्जनी यं स्रवेद्बिंदुं सा मात्रा बिंदुसंज्ञिता ॥ ३९ ॥
एवंविधैर्बिंदुसंज्ञैरष्टभिः शाण उच्यते।
स देयो मर्शनस्यस्तु प्रतिमर्शो द्विबिंदुकः ॥ ४० ॥

घृत और तेल आदि स्नेहमें उँगलीके दो पोरोंको डालकर ऊपर उठावे। उसमें जितना घी या तेल फँसकर बाहर आ जाय और टपकानेसे टपक पड़े, उसकी बिन्दु संज्ञा है। इस तरहके आठ बिन्दुओंका एक शाण होता है। यह एक शाणकी मात्रा मर्श नस्यमें काम आती और प्रतिमर्शमें पूर्वोक्त दो बूँदोंको ही मात्रा मानी जाती है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

प्रतिमर्श नस्य देनेका समय

समयाः प्रतिमर्शस्य बुधैः प्रोक्ताश्चतुर्दश।
प्रभाते दंतकाष्ठांते गृहान्निर्गमने तथा ॥ ४१ ॥
व्यायामाध्वव्यवायांते विण्मूत्रांतेऽजने कृते।
कवलांते भोजनान्ते दिवास्वप्नोत्थिते तथा ॥ ४२ ॥
वमनांते तथा सायं प्रतिमर्शः प्रयुज्यते।

आयुर्वेदके प्रवीण पंडितोंने प्रतिमर्श नस्यके लिए चौदह समय कहे हैं। जैसे-सवेरे, दातौन करनेके बाद, बाहर निकल जानेपर, कसरत करनेके अनन्तर, रास्ता चलकर, स्त्रीप्रसंगके पश्चात्, पाखानेसे निवृत्त होकर, पेशाब करनेके बाद, अञ्जन लगानेके अनन्तर, कवलके अन्तमें, भोजनके पश्चात्, दिनमें सोनेके बाद, वमन करके और सन्ध्याको प्रतिमर्श नस्य लिया जाता है ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

प्रतिमर्श नस्यसे तृप्तके लक्षण

ईषदुच्छिङ्कनात्स्नेहो यदा वक्त्रं प्रपद्यते ॥ ४३ ॥
नस्ये निषिक्तं तं विद्यात्प्रतिमर्शप्रमाणतः।
उच्छिन्दनं पिबेच्चैतन्निष्ठीवेन्मुखमागतम् ॥ ४४ ॥

प्रतिमर्श नस्यके द्वारा नाकमें गया हुआ स्नेह यदि कुछ ही छींकें आनेके बाद मुखमें आ जाय तो समझ ले कि नस्यविधान अच्छी तरह हुआ है। मुखमें आये हुए स्नेहको निगले नहीं, बल्के थूक दे ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

प्रतिमर्श देनेके योग्य रोगी

क्षीणे तृष्णास्यशोषार्ते बाले वृद्धे च युज्यते ।
प्रतिमर्शेन शाम्यंति रोगाश्चैवोर्ध्वजत्रुजाः ॥ ४५ ॥
बलीपलितनाशश्च बलमिंद्रियजं भवेत् ।

धातुक्षयसे क्षीण, मुखशोषके कारण दुखी, बालक और वृद्ध, इन लोगोंको यह प्रतिमर्श नस्य दिया जा सकता है । इससे जबड़ेके ऊपरी भागमें होनेवाले रोग, त्वचाकी शिथिलता और पलितरोग, ये व्याधियें दूर हो जातीं और समस्त इन्द्रियोंमें बल आता है ॥ ४५ ॥

पलित रोगके लिए नस्य

बिभीतनिम्बगम्भारीशिवाशेलुश्च काकिनी ॥ ४६ ॥
एकैकं तैलनस्येन पलितं नश्यति ध्रुवम् ।

बहेड़ा, नीम, गंभारी, हरड़, शाखोटक और कौआठोड़ी, इन औषधियोंमेंसे प्रत्येकके साथ नस्य लेनेसे बालोंकी सफेदी दूर हो जाती है ॥ ४६ ॥

नस्यकी विधि

अथ नस्यविधिं वक्ष्ये नस्यग्रहणहेतवे ॥ ४७ ॥
देशे वातरजोमुक्ते कृतदंतनिघर्षणम् ।
विशुद्धं धूमपानेन स्विन्नभालगलं तथा ॥ ४८ ॥
उत्तानशायिनं किञ्चित्प्रलंबशिरसं नरम् ।
आस्तीर्णहस्तपादं च वस्त्राच्छादितलोचनम् ॥ ४९ ॥
समुन्नमितनासाग्रं वैद्यो नस्येन योजयेत् ।
कोष्णमच्छिन्नधारं च हेमतारादिशुक्तिभिः ॥ ५० ॥
शुक्त्या वा यन्त्रयुक्त्या वा प्लोतैर्वा नस्यमाचरेत् ।

अब नस्य ग्रहण करनेकी विधि बतलाते हैं । रोगी किसी ऐसे स्थानमें बैठे जहाँ कि न हवा पहुँच सके और न गर्द-धूलकी ही गति हो । वहाँपर वह दातौन और धूमपान करके कपाल तथा कण्ठको शुद्ध करता हुआ पसीना निकाले । फिर चित्त लेटकर हाथ-पैर फैला दे और माथा थोडा लम्बा करके आँखोंपर कपड़ा डाल दे । यह सब हो जानेके बाद उसकी नासिकाको कुछ ऊँची करके कुछ गुनगुनी नस्यकी धार डाले । जिस पात्रमें लेकर नस्य डालना

हो वह पात्र सोने, चाँदी, सीप या कौड़ीका होना चाहिए। यदि इनमेंसे कोई भी न जुट सके तो कपड़ेके टुकड़ेका फाहा बना ले और उसीको नस्यमें डुबो-डुबोकर नाकमें निचोड़े ॥ ४७–५० ॥

नस्य लेते समय क्या करे ?

नस्येष्वासिच्यमानेषु शिरो नैव प्रकम्पयेत् ॥ ५१ ॥
न कुप्येन्न प्रभाषेत नोच्छ्चिदेन्न हसेत्तथा ।
एतर्हि विहितः स्नेहो नैवांतः सम्प्रपद्यते ॥ ५२ ॥
ततः कासप्रतिश्यायशिरोऽक्षिगदसंभवः ।

जब कि नस्य दिया जा रहा हो, उस समय माथा न हिलावे, कोप न करे, बातचीत न करे, छींके और हँसे भी नहीं। यदि इस नियमका उल्लंघन किया जाता है तो वह नस्यवाला स्नेह भीतर नहीं जाता, जिससे खाँसी, जुकाम तथा मस्तक या आँखोंका कोई रोग उत्पन्न हो जाता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

नस्यधारणकी विधि

शृंगाटकमभिप्लाव्य स्थापयेन्न गिलेद् द्रवम् ॥ ५३ ॥
पंचसप्तदशैव स्युर्मात्रा नस्यस्य धारणे ।
उपविश्याथ निष्ठीवेन्नासावक्त्रगतं द्रवम् ॥ ५४ ॥
वामदक्षिणपार्श्वाभ्यां निष्ठीवेत्सम्मुखे न हि ।

वैद्य नस्य तब तक देता रहे जब तक कि दोनों भौंहोंके बीचका शृंगाटक अच्छी तरह तर न हो जाय। इस नस्यको धारण करनेका समय पाँच सात या दस मात्राका होता है। जब उतना समय बीत जाय तो रोगी उठ बैठे और जो स्नेह मुखमें आ गया हो, उसे अपने दहिनी या बायीं तरफ थूक दे। सामने नहीं थूके ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

नस्यकर्मके बाद क्या करे ?

नस्ये नीते मनस्तापं रजः क्रोधं च संत्यजेत् ॥ ५५ ॥
शयीत निद्रां त्यक्त्वा च उत्तानो वाक्छतं नरः ।
तथा वै रेचनस्यांते धूमो वा कवलोऽहितः ॥ ५६ ॥

नस्य ले लेनेके बाद किसी प्रकारका सन्ताप न करे, धूल-गुबार नाकमें न जाने दे और क्रोध भी न करे। जितनी देरमें सौ तककी गिनती गिनी जाती है,

उतनी देर तक उतान लेटा रहे। उस समय नींद नहीं आनी चाहिए। विरेचन नस्य लेनेके बाद धूम्रपान अथवा कवल ग्रहण करना भी ठीक नहीं है ॥५५॥५६॥

शुद्धादिक भेद

नस्यत्रीण्युपदिष्टानि लक्षणानि समासतः।
शुद्धिहीनातियोगानि विशेषाच्छास्त्रचिन्तकैः ॥ ५७ ॥

आयुर्वेद शास्त्रका मनन करनेवाले विद्वानोंने नस्यको शुद्धिके तीन भेद बतलाये हैं। जैसे—शुद्धि, हीनयोग और अतियोग। इनके विषयमें आगे संक्षेपमें और कुछ कहेंगे ॥ ५७ ॥

उत्तम शुद्धि होनेके लक्षण

लाघवं मनसः शुद्धिः स्रोतसां व्याधिसंक्षयः।
चित्तेंद्रियप्रसादश्च शिरसः शुद्धिलक्षणम् ॥ ५८ ॥

यदि नस्य लेनेसे शरीर हल्का मालूम पड़े, चित्त प्रसन्न हो, मुख, नाक, कान आदि स्रोत्रेन्द्रियों तथा सिरकी शुद्धि हो जाय और इन्द्रियाँ भी प्रसन्न दीखें तो समझ ले कि नस्यसे उत्तम शुद्धि हुई है ॥ ५८ ॥

हीन शुद्धि होनेके लक्षण

कण्डूपदेहो गुरुता स्रोतसां कफसंस्रवः।
मूर्ध्नि हीनविशुद्धे तु लक्षणं परिकीर्तितम् ॥ ५९ ॥

यदि नस्यकर्मके द्वारा उत्तम शुद्धि न होकर साधारण शुद्धि होती तो देहमें खुजली उठने लगती, शरीर भारी मालूम पड़ने लगता और स्रोत यानी मुख-नासिका आदि मार्गोंसे कफ आने लगता है ॥ ५९ ॥

अतिशुद्धिके लक्षण

मस्तुलुंगागमो वातवृद्धिरिन्द्रियविभ्रमः।
शून्यता शिरसश्चापि मूर्ध्नि गाढं विरेचिते ॥ ६० ॥

यदि नस्यकर्म द्वारा अतिशुद्धि होती तो मस्तुलुंग (यानी मस्तकके भीतरका मगज) पिघल-पिघलकर नाकके रास्ते टपकने लगता, वायु बढ़ जाती, इन्द्रियाँ भ्रान्त हो जातीं और मस्तक शून्य हो जाया करता है ॥ ६० ॥

हीनशुद्ध्यादिकोंकी चिकित्सा

हीनातिशुद्धे शिरसि कफवातघ्नमाचरेत्।
सम्यग्विशुद्धे शिरसि सर्पिर्नस्यं निषेचयेत् ॥ ६१ ॥

नस्य कर्म करनेपर यदि अल्पशुद्धि अथवा हीनशुद्धिके लक्षण दीखें तो कफ और वातको नाश करनेवाला नस्य देवे । अतिशुद्धिकी अवस्थामें घृतका नस्य देना भी लाभकारी होता है ॥ ६१ ॥

अतिस्निग्धके लक्षण

कफप्रसेकः शिरसो गुरुतेन्द्रियविभ्रमः ।
लक्षणं तदतिस्निग्धं रूक्षं तत्र प्रदापयेत् ॥ ६२ ॥

कफ गिरना, माथा भारी लगना और इन्द्रियोंका भ्रमित होना, ये लक्षण अतिस्निग्धके हैं । अतिस्निग्धकी हालतमें किसी रूक्ष पदार्थका नस्य देना चाहिए ॥ ६२ ॥

नस्यके लिये पथ्य

भोजयेच्चानभिष्यंदि नस्याचरिकमादिशेत् ॥ ६३ ॥

नस्य लेनेके अनन्तर किसी ऐसी वस्तुका सेवन न करे जो अभिष्यन्दी (जैसे भैंसका घी आदि) हो । नस्यकर्ममें जो पथ्य बतलाये गये हैं, उनका भली भाँति पालन करे ॥ ६३ ॥

पञ्चकर्म

वमनं रेचनं नस्यं निरूहमनुवासनम् ।
एतानि पञ्च कर्माणि कथितानि मुनीश्वरैः ॥ ६४ ॥

प्राचीन ऋषियोंने वमन, विरेचन, नस्य, निरूहण बस्ति और अनुवासन बस्ति, इन पाँचोंको "पंचकर्म" कहा है ॥ ६४ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायामुत्तरखण्डे स्नेहविधिर्नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

अथ नवमोऽध्यायः ।

धूम्रपानकी विधि

धूमस्तु षड्विधः प्रोक्तः शमनो बृंहणस्तथा ।
रेचनः कासहा चैव वामनो व्रणधूपनः ॥ १ ॥

शमन, बृंहण, रेचन, कासहा, वामन, व्रण और धूपन, इन भेदोंसे धूम्र छः प्रकारका हुआ करता है ॥ १ ॥

शमनादिके पर्यायवाची शब्द

शमनस्य तु पर्यायौ मध्यः प्रायोगिकस्तथा ।
बृंहणस्यापि पर्यायौ स्नेहनो मृदुरेव च ॥ २ ॥
रेचनस्यापि पर्यायौ शोधनस्तीक्ष्ण एव च ।

मध्य और प्रायोगिक, ये दोनों शमन नामक धूम्रके पर्यायवाचक नाम हैं। स्नेहन और मृदु, ये दो बृंहण धूम्रके पर्यायवाचक शब्द हैं। उसी तरह धूम्रशोधन और तीक्ष्ण, ये दो रेचनके पर्यायवाचक नाम हैं ॥ २ ॥

धूम्रसेवनके अयोग्य रोगी

अधूमार्हाश्च खल्वेते श्रांतो भीरुश्च दुःखितः ॥ ३ ॥
दत्तबस्तिर्विरिक्तश्च रात्रौ जागरितस्तथा ।
पिपासितश्च दाहार्तस्तालुशोषी तथोदरी ॥ ४ ॥
शिरोऽभितापी तिमिरी छर्द्याध्मानप्रपीडितः ।
क्षतोरस्कः प्रमेहार्तः पांडुरोगी च गर्भिणी ॥ ५ ॥
रूक्षः क्षीणोऽभ्यवहृतक्षीरक्षौद्रघृतासवः ।
भुक्तान्नदधिमत्स्यश्च बालो वृद्धः कृशस्तथा ॥ ६ ॥
अकाले चातिपीतश्च धूमः कुर्यादुपद्रवान् ।

निम्नलिखित प्रकारके लोग धूम्रपान करनेके योग्य नहीं होते । जैसे—थका हुआ, भयभीत, दुःखी, जिसको बस्ति दी गयी हो, जिसने विरेचन औषधि ली हो, जो रातको जाग चुका हो, प्यासा, दाहसे दुखी, तालुशोषी, उदररोगी, शिरोऽभितापसे पीडित, तिमिररोगी, वमन, आध्मान, उरःक्षत, प्रमेह और पाण्डुरोगसे पीडित, गर्भिणी, रूक्ष, क्षीण, दूध, शहद, घी, आसव और अन्न, दही तथा मछली, इन वस्तुओंको जिसने खाया हो, बालक, वृद्ध तथा दुर्बल, इतने प्रकारके प्राणियोंको धूम्रपान नहीं ही करावे । अकालमें और मात्रासे अधिक धूम्रपान करनेसे भी उपद्रव ही खड़े होते हैं ॥ ३–६ ॥

धूम्रपानके उपद्रवोंका प्रतीकार

तत्रेष्टं सर्पिषः पानं नावनांजनतर्पणम् ॥ ७ ॥
सर्पिरिक्षुरसं द्राक्षां पयो वा शर्करांबु वा ।
मधुराम्लौ रसौ वापि शमनाय प्रदापयेत् ॥ ८ ॥

यदि अतिधूम्रपान करनेसे उपद्रव उपस्थित हो जायँ तो उस मनुष्यको घी पिलावे, नस्य दे, अंजन लगावे और कोई तर्पण औषधि देवे। घी, ऊँखका रस, दाख, दूध, चीनीका शर्बत और चीनी, जल अथवा मीठे या खट्टे पदार्थ खानेको दे। इनसे धूम्रपानसम्बन्धी उपद्रव दूर हो जाते हैं॥ ७॥ ८॥

धूम्रपानका समय और उसका गुण

धूमश्च द्वादशाद्वर्षाद्गृह्यतेऽशीतिकान्नरः।
कासश्वासप्रतिश्यायान्मन्याहनुशिरोरुजः॥ ९॥
वातश्लेष्मविकारांश्च हन्याद् धूमः सुयोजितः।

बारह वर्षसे लेकर अस्सी वर्षतककी अवस्थावाले रोगीको धूम्रपान कराना चाहिए। इसके बाद या पहले नहीं। यदि धूम्रपानकी अच्छी योजना की जाय तो श्वास, खाँसी, पीनस, गर्दनकी पीड़ा, ठोढ़ी और मस्तककी व्याधि तथा वात-कफसे सम्बन्ध रखनेवाले सारे विकार दूर हो जाते हैं॥ ९॥

धूमप्रयोगसे मनुष्यकी चेष्टा

धूमोपयोगात्पुरुषः प्रसन्नेन्द्रियवाङ्मनाः॥ १०॥
दृढकेशद्विजश्मश्रुः सुगन्धवदनो भवेत्।

धूम्रपान करनेसे मनुष्यकी चक्षुरादि इन्द्रियें, वाणी तथा मन प्रसन्न रहता है। साथ ही केश, दाँत मूँछ और दाढ़ी, ये मजबूत हो जाते हैं॥ १०॥

धूम्रपानमें नलीका विचार

धूमनाडी भवेत्तत्र त्रिखण्डा च त्रिपर्विका॥ ११॥
कनिष्ठिका परीणाहा राजमाषागमांतरा।
धूमनाडी भवेद्दीर्घा शमने रोगिणोऽङ्गुलैः॥ १२॥
चत्वारिंशन्मितैस्तद्वद्द्वात्रिंशद्भिर्मृदौ स्मृता।
तीक्ष्णे चतुर्विंशतिभिः कासघ्ने षोडशोन्मितैः॥ १३॥
कलायमण्डलं स्थूला कुलित्थागमरंध्रिका॥ १४॥

धूम्रपान करनेके लिए जो नली बनायी जाय, वह तीन गाँठोंकी हो, कनिष्ठिका उँगली जितनी मोटाई उसमें रहे और चौराईका दाना आवे जाय, इतनी पोली होनी चाहिए। उसकी लम्बाई चालीस अंगुल तककी रहे। उसमें भी मृदुसंज्ञक धूम्रपानमें बत्तीस अंगुल, तीक्ष्णसंज्ञक धूम्रपानमें दस अंगुल, कासघ्न

नामक धूम्रपानमें सोलह अंगुल, वामनीनामक धूम्रपानमें दस अंगुल और व्रण नामक धूम्रपानमें भी दस अंगुलकी लम्बी नली काममें लानी चाहिए। व्रणके लिए जो नली ली जाय, उसमें मटर जितनी मोटाई और कुलथीका दाना आने-जाने भरका बारीक छिद्र होना आवश्यक है ॥ ११–१४ ॥

धूम्रपानके लिए ईषिका विधान

अथेषिकां प्रलिंपेच्च सुश्लक्ष्णां द्वादशांगुलाम् ।
धूमद्रवस्य कल्केन लेपश्चाष्टांगुलः स्मृतः ॥ १५ ॥
कल्कं कर्षमितं लिप्त्वा छायाशुष्कं प्रकारयेत् ।
ईषिकामपनीयाथ स्नेहाक्तां वर्तिमादरात् ॥ १६ ॥
अंगारैर्दीपितां कृत्वा धृत्वा नेत्रस्य रंध्रके ।
वदनेन पिवेद्धूमं वदनेनैव संत्यजेत् ॥ १७ ॥
नासिकाभ्यां ततः पीत्वा मुखेनैव वमेत्सुधीः ।
शरावसंपुटे क्षिप्त्वा कल्कमंगारदीपितम् ॥ १८ ॥
छिद्रे नेत्रं सुवेश्याथ व्रणं तेनैव धूपयेत् ।

धूम्रपानके लिए जो नैचा लिया जाय वह बारह अंगुलका लम्बा हो। उसमें धूम्रपानके लिए बतलायी औषधियोंका कल्क भरकर एक कर्ष कल्कको नैचा-के आठ अंगुल तक लेप करके धूपमें सुखावे। सूखजानेपर ईषिका (नैचे) को बाहर निकाल ले। ऐसा करनेसे कल्कका ही एक नैचासा निकल आवेगा। उसमें एक दूसरे प्रकारकी स्निग्ध बत्ती रखकर अंगार रखे और उस कल्कवाले नैचेके छिद्रपर धरे और उस कल्ककी नलीसे धूम खींच-खींचकर पिये। जो कुछ धुआँ मुँहमें आवे, उसे मुँहसे बाहर निकाल दे। पेटमें न जाने दे। अभ्यास हो जानेपर नाकसे धुआँ खींचकर मुँहसे निकाले। यदि व्रणधूम्रपान करना हो तो एक कसोरेमें छेद करके कसोरेको नलीपर धरे और कसोरेमें औषधियें भरकर आग रक्खे और धूम्रपान करे ॥ १५–१८ ॥

किस औषधिका कल्क किस धूममें दे ?

एलादिकल्कं शमने स्निग्धं सर्जरसं मृदौ ॥ १९ ॥
रेचने तीक्ष्णकल्कं च कासघ्ने क्षुद्रिकोषणम् ।
वामने स्नायुचर्माद्यं दद्याद् धूमस्य पानकम् ॥ २० ॥
व्रणे निम्बवचाद्यं च धूमनं सम्प्रचक्षते ।

शमन नामक धूम्रपानमें एलादिगण (१ इलाची २ बड़ी इलायची ३ शिलाजीत ४ कूठ ५ गन्धप्रियंगु ६ जटामांसी ७ नेत्रवाला ८ रोहिषतृण ९ कपूरी (शाकविशेष) १० किरमानी, अजवायन ११ मोटी दालचीनी १२ तमालपत्र १३ तगर १४ गन्धपर्णिका भेददूर्वा १५ राईका रस १६ नखद्रव्य १७ व्याघ्रनख १८ देवदारु १९ अगर २० विशेष धूम २१ केसर २२ कौंचकी जड़ २३ गूगल २४ राल २५ कुन्दरू २६ नागचम्पा, वाग्भट्टमें ये एलादि गण-की औषधियें बतलायी गयी हैं) में बतलायी हुई औषधियोंका कल्क, रेचन नामक धूम्रपानमें तीक्ष्णसंज्ञक यानी सरसों, राई आदिका कल्क, मृदुसंज्ञक धूम्रपानमें स्निग्ध अर्थात् घृत आदि पदार्थोंमें शिलाजीतका कल्क, कासनामक धूम्रपानमें कटेरी, काली मिर्च आदिका कल्क, वमन करानेके लिए जिस धूम्रपानकी योजना हो, उसमें स्नायु तथा चर्म आदिका कल्क और व्रणनामक धूम्रपानमें नीम और वचका कल्क सुलगाकर पीना चाहिए ॥ १९ ॥ २० ॥

बालग्रहनाशक धूनी

अन्येऽपि धूमगेहेषु कर्तव्या रोगशांतये ॥ २१ ॥
मायूरपिच्छं निम्बस्य पत्राणि बृहतीफलम् ।
मरिचं हिंगु मांसी च बीजं कार्पाससम्भवम् ॥ २२ ॥
छागरोमाहिनिर्मोकं विष्ठा वैडालिकी तथा ।
गजदंतश्च तच्चूर्णं किञ्चिद्घृतविमिश्रितम् ॥ २३ ॥
गेहेषु धूपनं दत्तं सर्वान्बालग्रहाञ्जयेत् ।
पिशाचान्राक्षसाञ्जित्वा सर्वज्वरहरं भवेत् ॥ २४ ॥

बालग्रहको दूर करनेके लिए अब विशेष प्रकारके धूम्रपानकी विधि बतलाते हैं । मोरका पंख, नीमकी पत्तियें, कटेरीके फल, मिर्च, हींग, जटामासी, कपासके बिनौले, बकरेके बाल, साँपकी केंचुल, बिल्लीकी विष्ठा और हाथीका दाँत इन चीजों के चूर्णमें थोड़ासा घृत मिलाकर घरमें धूनी देनी चाहिए। ऐसा करनेसे सब प्रकारके बालग्रह, पिशाच तथा राक्षसोंके उपद्रव और ज्वर दूर हो जाते हैं ॥ २१–२४ ॥

धूम्रपानविषयक कुछ और बातें

परिहारस्तु धूमेषु कार्यो रेचननस्यवत् ।
नेत्राणि धातुजान्याहुर्मलवंशादिजान्यपि ॥ २५ ॥

पीछे रेचक नामक नस्यमें जो परिहार बतला आये हैं। वही इसमें भी काम देता है। धूम्रपानके लिए जो नली बनवायी जाय, उसका मुख सुवर्ण-चाँदी आदि किसी धातु, नरकुल अथवा बाँसकी होनी चाहिए ॥ २५ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायामुत्तरखण्डे
धूमविधिर्नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

अथ दशमोऽध्यायः।

गण्डूष, कवल तथा प्रतिसारण

चतुर्विधः स्याद् गंडूषः स्नैहिकः शमनस्तथा।
शोधनो रोपणश्चैव कवलश्चापि तद्विधः ॥ १ ॥

अब गंडूष और कवलकी विधि बतलाते हैं। किसी तरल पदार्थकी कुल्ली करनेको गण्डूष और किसी कड़े पदार्थको मुखमें डालकर चाबनेको कवल कहते हैं। वह गंडूष और कवल स्नैहिक, शमन, शोधन और रोपण इन भेदोंसे चार प्रकारका होता है। एक अथवा औषधिसमुदायकके स्वरस, क्वाथ, हिम, फाण्ट अथवा इनसे सिद्ध घृत-तैलादिको मात्रा, काल और दोषके अनुसार मुखमें धारण करने और विधिपूर्वक निकालनेके प्रकारको गंडूष कहते हैं। इससे मुख-जिह्वादिका स्वेदन भी हो जाता है ॥ १ ॥

दोषभेदसे स्नैहिकादिक गंडूषोंकी योजना

स्निग्धोष्णैः स्नैहिको वाते स्वादशीते प्रसादनः।
पित्ते कट्वम्ललवणैरुष्णैः संशोधनैः कफे ॥ २ ॥
कषायतिक्तमधुरैः कटूष्णो रोपणव्रणे।
चतुःप्रकारो गण्डूषः कवलश्चापि कीर्तितः ॥ ३ ॥

वातज रोगोंमें चिकने और गरम पदार्थोंका कुल्ला करना चाहिए। यही स्नैहिक गंडूष कहलाता है। मीठे और ठंढे पदार्थोंकी कुल्ली करनेको लोग शमन गंडूष कहते हैं। यह पित्तज रोगोंमें काम देता है। तीखे, खट्टे खारे तथा गरम पदार्थोंका गंडूष शोधन गंडूष कहलाता है। यह कफज रोगोंमें काम आता है। कड़ुए,

कसैले और मीठे पदार्थोंका गंडूष रोपण गंडूषके नामसे प्रसिद्ध है। यह थोड़ा गरम करके व्रणमें उपयुक्त होता है। ठीक इसी तरह कवल भी चार प्रकारका होता है ॥ २ ॥ ३ ॥

गंडूष तथा कवलके भेद

असंचारी मुखे पूर्णे गंडूषः कवलश्चरः।
तत्र द्रव्येण गंडूषः कल्केन कवलः स्मृतः ॥ ४ ॥

गंडूष करनेकी विधि यह है कि किसी प्रकारके काढ़ेको मुखमें भरकर थोड़ी देरतक ज्योंका त्यों रहने दे। फिर उसे बाहर निकाल दे। इसीको गंडूष या कुल्ला कहते हैं और कवलमें कल्क आदि कोई पदार्थ मुखमें रखकर उनका रस चूसा जाता है ॥ ४ ॥

गंडूष और कवलकी औषधियोंकी माप

दद्याद्द्रवेषु चूर्णं च गंडूषे कोलमात्रकम्।
कर्षप्रमाणः कल्कश्च दीयते कवलो बुधैः ॥ ५ ॥

गंडूषके लिए जिस किसी काढ़े आदिकी योजना की गयी हो, उसमें एक कोल चूर्ण डाला जाता और कवलमें एक कर्ष प्रमाण कल्ककी योजना करनी होती है ॥ ५ ॥

किस अवस्थामें कितने कुल्ले करे

धार्यंते पञ्चमाद्वर्षाद्गंडूषकवलादयः।
गंडूषात्सुस्थितः कुर्यात्स्विन्नभालगलादिकः ॥ ६ ॥
मनुष्यस्त्रींस्तथा पंच सप्त वा दोषनाशनात्!

पाँच वर्षके ऊपरकी अवस्थावालोंको ही इस गंडूष अथवा कवलकी औषधि लेनी चाहिए। जो मनुष्य यह औषधि लेना चाहता हो वह रोगसे मुक्त होनेके लिए तब तक तीन, पाँच अथवा सात कुल्ले करे जब तक कि कपाल, गला तथा मुखमें कुछ पसीना न आ जाय। कुछ लोगोंकी यह भी राय है कि जब तक दोष दूर न हों, तब तक गंडूषके क्वाथको मुखमें धारण किये रहे ॥ ६ ॥

गंडूषधारणका दूसरा प्रमाण

कफपूर्णास्यतां यावच्छेदो दोषस्य वा भवेत् ॥ ७ ॥
नेत्रघ्राणश्रुतिर्यावत्तावद्गंडूषधारणम्।

कुछ लोग कहते है कि जब तक मुँहमें कफ न आवे या दोष न दूर हो जाय अथवा नेत्र और नाक न बहने लगे तब तक गंडूष धारण किये रहे ॥ ७ ॥

वातज रोगमें स्नैहिक गंडूषकी विधि

तिलकल्कोदकं क्षीरं स्नेहो वा स्नैहिके हितः ॥ ८ ॥

स्नैहिक गंडूषमें तिलका कल्क, जल, दूध और तेल आदि चिकने पदार्थोंकी योजना की जानी चाहिए ॥ ८ ॥

पित्तज रोगमें शमन गंडूष

तिला नीलोत्पलं सर्पिः शर्कराक्षीरमेव च ।
सक्षौद्रो हनुवक्त्रस्थो गंडूषो दाहनाशनः ॥ ६ ॥

तिल, नील कमल, घी, खाँड और दूध, इन चीजोंको एकत्रित करके शहद मिलाकर कुल्ले करे तो पित्तके कारण उत्पन्न ठोढ़ी और मुखकी दाह दूर हो जाती है ॥ ९ ॥

व्रणादिमें मधुगंडूषकी योजना

वैशद्यं जनयत्यास्ये संदधाति मुखव्रणान् ।
दाहतृष्णाप्रशमनं मधुगंडूषधारणम् ॥ १० ॥

जलमें शहद डालकर कुल्ले करे तो मुँहके घाव, छाले, दाह और प्यास दूर हो जाती है ॥ १० ॥

विषादिकी वाधाओंमें देने योग्य गंडूष

विषक्षाराग्निदग्धे च सर्पिर्धार्यं पयोऽथवा ।

किसी प्रकारकी विषवाधा, क्षारके कारण उत्पन्न व्याधि और अग्निदाहसे जायमान उपद्रव, इनमें दूध अथवा घीके कुल्ले करने चाहियें ।

दाँतोंके हिलनेपर गंडूष

तैलसैंधवगंडूषो दंतचाले प्रशस्यते ॥ ११ ॥

यदि समयमें दाँत हिलने लगें तो तिलका तेल और सेंधानमक मिले हुए जलके कुल्ले करे । ऐसा करनेसे दाँतोंका हिलना बन्द हो जाता और दाँत पुष्ट हो जाते हैं ॥ ११ ॥

मुखशोष रोगके लिए विहित गंडूष

शोषं मुखस्य वैरस्यं गंडूषः कांजिको जयेत् ।

मुखशोष और मुखकी विरसतामें काँजीके कुल्ले करे तो ये बाधायें दूर हो जाती हैं।

कफके लिए गंडूष

सिंधुत्रिकटुराजीभिरार्द्रकेण कफे हितः ॥ १२ ॥

सेंधा नमक और त्रिकुटा अर्थात् सोंठ, मिर्च और पीपलीके चूर्णको अदरख-के रसमें मिलाकर कुल्ले करे तो कफके दोष दूर हो जाते हैं ॥ १२ ॥

कफ तथा पित्तपर देने योग्य गंडूष

त्रिफलामधुगंडूषः कफासृक्पित्तनाशनः।

त्रिफलाके चूर्णमें शहद मिलाकर कुल्ले करनेसे कफ और रक्तपित्त रोग दूर हो जाते हैं।

मुखपाक रोगके योग्य गंडूष

दार्वी गुडूची त्रिफला द्राक्षा जात्याश्च पल्लवः ॥ १३ ॥
यवासश्चेति तत्काथः षष्ठांशः क्षौद्रसंयुतः।
शीतो मुखे धृतो हन्यान्मुखपाकं त्रिदोषजम् ॥ १४ ॥

दारुहल्दी, गुरुच, त्रिफला, मुनक्का, चमेलीके पत्ते और जवासा, इन चीजों-को समान भागके हिसाबसे एकत्रित करके काढ़ा तैयार करे। जितना काढ़ा हो, उतनी ही शहद मिलाकर काढ़ेको ठंढा कर ले और कुल्ले करे तो वात, कफ तथा पित्तके प्रकोपसे जायमान मुखपाक रोग शान्त हो जाते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

गंडूष प्रतिसारण और कवलका एकीकरण

यस्यौषधस्य गंडूषस्तथैव प्रतिसारणम्।
कवलश्चापि तस्यव ज्ञेयोऽत्र कुशलैर्नरैः ॥ १५ ॥

जो औषधियें जिस रोगके गंडूषके लिए निर्धारित हैं, उन्हींका प्रतिसारण यानी मंजन और कवल भी देना चाहिए ॥ १५ ॥

कवलकी विधि

केशरं मातुलिंगस्य सैंधवव्योषसंयुतम्।
हन्यात्कवलो जाड्यमरुचिं कफवातजाम् ॥ १६ ॥

बिजौरेकी केसरमें सेंधा नमक तथा त्रिकुटा, इन दोनों वस्तुओंको एकत्रित करके इसका कवल ग्रहण करनेसे मुखकी जड़ता तथा कफ और वातसे जायमान अरुचि दूर हो जाती है ॥ १६ ॥

प्रतिसारणके भेद

कल्कोऽवलेहश्चूर्णं च त्रिविधं प्रतिसारणम् ॥ १७ ॥

उपर्युक्त प्रतिसारण कल्क, अवलेह तथा चूर्ण, इन भेदोंसे तीन प्रकारका माना गया है। इसे मुखरोगीके रोगके अनुसार उँगलीकी अगली पोरमें भरकर मुख-में लगाना चाहिए ॥ १७ ॥

प्रतिसारणचूर्ण

कुष्ठं दार्वी समंगा च पाठा तिक्ता च पीतिका ।
तेजनीमुस्तलोध्रं च चूर्णं स्यात्प्रतिसारणम् ॥ १८ ॥
रक्तस्रुतिं दंतपीडां शोथं दाहं च नाशयेत् ।

कूठ, दारुहल्दी, लजालू, पाढ़, कुटकी, मंजीठ, हल्दी, नागरमोथा और लोध इन औषधियोंका चूर्ण करके जीभ तथा सारे मुखमें मंजन करनेसे मसूड़ेसे रुधिर गिरना, दाँतोंमें पीड़ा होना, सूजन और दाह, ये सब रोग दूर हो जाया करते हैं। इसको प्रतिसारण या मंजन कहते हैं ॥ १८ ॥

गंडूषादिके हीनयोगादिसे होनेवाली हानियाँ

हीनयोगात्कफोत्क्लेशो रसाज्ञानारुची तथा ॥ १९ ॥
अतियोगान्मुखे पाकः शोषस्तृष्णा क्लमो भवेत् ।

ऊपर बतलाये गंडूष, कवल अथवा प्रतिसारणमें यदि हीनयोग हो जाता तो कफ बढ़ता, मुखका स्वाद बिगड़ जाता और अन्न आदिपर रुचि नहीं होती है। यदि कहीं इनका अतियोग होता तो मुँह पक जाता, छाले पड़ जाते, मुखशोष होता और प्यास विशेष लगने लगती है ॥ १९ ॥

शुद्ध गंडूष

व्याधेरवचयस्तुष्टिर्वैशद्यं वक्त्रलाघवम् ।
इंद्रियाणां प्रसादश्च गंडूषे शुद्धिलक्षणम् ॥ २० ॥

यदि गंडूषादिकोंका उत्तम योग होता तो व्याधि नष्ट होती, चित्त प्रसन्न रहता, मुखमें निर्मलता आती और चक्षुरादि इन्द्रियाँ प्रसन्न मालूम देती हैं ॥ २० ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरसंहितायामुत्तरखण्डे गंडूषादिविधिर्नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अथैकादशोऽध्यायः।

आलेप

आलेपस्य च नामानि लिप्तो लेपश्च लेपनम्।
दोषघ्नो विषहा वर्ण्यो मुखलेपस्त्रिधा मतः॥ १॥
त्रिप्रमाणश्चतुर्भागस्त्रिभागार्धांगुलोन्नतः।
आर्द्रो व्याधिहरः स स्याच्छुष्को दूषयति च्छविम्॥ २॥

लेपके तीन नाम हैं। जैसे—लिप्त, लेप और लेपन। आलेप भी इसीको कहते हैं। इनमें मुखलेप नामका लेप, दोषघ्न, विषघ्न तथा वर्ण्य, इन भेदोंसे तीन प्रकारका होता है। उसके प्रमाण भी तीन ही हैं। जो एक अंगुलका मोटा लेप किया जाता वह दोषघ्न, पौन अंगुलका विषघ्न और आधे अंगुलका मोटा लेप वर्ण्य कहलाता है। गीली औषधिका लेप करनेसे रोग दूर हो जाता और सूखा लेप शरीरकी शोभाको बिगाड़ देता है॥ १॥ २॥

दोषघ्न लेप

पुनर्नवां दारु शुण्ठीं सिद्धार्थं शिग्रुमेव च।
पिष्ट्वा चैवारनालेन प्रलेपः सर्वशोथहा॥ ३॥

पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ, सफेद सरसों तथा सहँजनकी छाल इन चीजोंको काँजीमें पीसकर लेप करनेसे सब प्रकारके शोथ दूर हो जाते हैं॥ ३॥

दाहशांतिके लिए लेप

विभीतफलमज्जाक्तलेपो दाहार्तिनाशनः।

बहेड़ेके भीतरके गूदेको पीसकर लेप करनेसे शरीरकी दाह दूर हो जाती है।

दशांग लेप

शिरीषमधुयष्टी च तगरं रक्तचन्दनम्॥ ४॥
एला मांसी निशायुग्मं कुष्ठं बालकमेव च।
इति संचूर्ण्य लेपोऽयं पंचमांशघृतप्लुतः॥ ५॥
जलेन क्रियते सुज्ञैर्दशांग इति संज्ञितः।
विसर्पान्विषविस्फोटाञ्छोथदुष्टव्रणाञ्जयेत्॥ ६॥

सिरसकी छाल, मुलहठी, तगर, लाल चन्दन, इलायची, जटामासी, हल्दी, दारुहल्दी, कूठ तथा नेत्रवाला, इन औषधियोंको बारीक पीसकर जलसे गीला करके लेप करे तो विसर्प, विषदोष, विस्फोट, शोथ तथा दुष्टव्रण, ये सब व्याधियें दूर हो जाती हैं। यह दशांग लेपके नामसे विख्यात है ॥ ४–६ ॥

विषघ्न लेप

अजादुग्धतिलैर्लेपो नवनीतेन संयुतः।
शोथमारुष्करं हन्ति लेपो वा कृष्णमृत्तिकैः ॥ ७ ॥

यदि बकरीके दूधमें तिल पीसकर नवनीत (मक्खन) के साथ अथवा काली मिट्टीके साथ शरीरमें लेप करे तो भेलावेके कारण उत्पन्न शोथरोग दूर हो जाता है ॥ ७ ॥

अन्य प्रकार

लांगल्यतिबिषालाबूजालिनीबीजमूलकैः।
लेपो धान्यांबुसंपिष्टः कीटविस्फोटनाशनः ॥ ८ ॥

लांगली (करियारी), अतीस, कड़ुवा लौआ और कड़ुई तरोईके बीज तथा मूलीके बीज, इन वस्तुओंको काँजीमें पीसकर किसी कीड़ेने काट लिया हो उस स्थानपर अथवा विस्फोटरोगमें लेप करे तो उसके विकार दूर हो जाते हैं ॥ ८ ॥

मुखकांतिकारक लेप

रक्तचंदनमञ्जिष्ठालोध्रकुष्ठप्रियंगवः।
वटांकुरमसूराश्च व्यंगघ्ना मुखकांतिदाः ॥ ९ ॥

लाल चन्दन, मंजीठ, लोध, कूठ, फूल प्रियंगु, बरगदकी जटाके अंकुर और मसूर, इन औषधियोंको समान भागसे एकत्रित करके पानीमें पीसे। इस लेपका उपयोग करनेसे मुखकी झाईं दूर हो जाती और कांति खिल उठती है ॥ ९ ॥

दूसरा प्रकार

मातुलुंगजटासर्पिः शिला गोशकृतो रसः।
मुखकांतिकरो लेपः पिटिकाव्यंगकालजित् ॥ १० ॥

बिजोरेकी जड़, घी, मैनसिल और गैयाके गोबरका रस, इन औषधियोंको

समान भागके हिसाबसे एकत्रित करके पानीमें पीस ले और मुखपर लेप करे तो मुँहासे, व्यंग तथा नीलिका नामक रोग दूर हो जाते हैं ॥ १० ॥

मुँहासानाशक लेप

लोध्रधान्यवचालेपस्तारुण्यपिटिकापहः।
तद्वद्गोरोचनायुक्तं मरिचं मुखलेपनात् ॥ ११ ॥
सिद्धार्थकवचालोध्रसैंधवैश्च प्रलेपनम्।

लोध, धनियाँ और वच अथवा गोरोचन तथा काली मिर्च, इन चीजोंको जलमें पीसकर लेप करे तो मुँहासे दूर हो जाते हैं। सरसों, वच, लोध और सेंधा नमक इनका लेप करनेसे भी मुँहासे नहीं रह जाते ॥ ११ ॥

व्यंगरोगनाशक लेप

व्यंगेषु चार्जुनत्वग्वा मंजिष्ठा वा समाक्षिकः ॥ १२ ॥
लेपः सनवनीतो वा श्वेताश्वखुरजा मषी।

यदि किसीको व्यंग रोग हुआ हो तो अर्जुननामक वृक्षकी छालका चूर्ण अथवा मंजीठका चूर्ण, सफेद घोड़ेके खुरकी राख, इन औषधियोंको मक्खन तथा शहद-में मिलाकर लेप करे ॥ १२ ॥

मुखकी झाईं दूर करनेका लेप

अर्कक्षीरहरिद्राभ्यां मर्दयित्वा विलेपनात्।
मुखकार्ष्ण्यं शमं याति चिरकालोद्भवं ध्रुवम् ॥ १३ ॥

मदारके दूधमें हल्दी पीसकर लेप करनेसे बहुत दिनोंकी पुरानी झाईं भी दूर हो जाती है ॥ १३ ॥

मुँहासे आदिपर एक और लेप

वटस्य पांडुपत्राणि मालती रक्तचंदनम् ॥ १४ ॥
कुष्ठं कालीयकं लोध्रमेभिर्लेपं प्रयोजयेत्।
तारुण्यपिटिकाव्यंगनीलिकादिविनाशनम् ॥ १५ ॥

बरगदके पीले पत्ते, चमेली, लालचन्दन तथा लोध, इन चीजोंको इकट्ठी करके पीसे और लेप करे तो उभड़ती जवानीके निकलते हुए मुँहासे, व्यंग और नीलिका आदि रोग दूर हो जाते हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥

अरुंषिकारोगनाशक लेप

पुराणमथ पिण्याकं पुरीषं कुक्कुटस्य च।
मूत्रपिष्टः प्रलेपोऽयं शीघ्रं हन्यादरुंषिकाम् ॥ १६ ॥

तिलकी पुरानी खलो और मुरगेकी बीट, इनको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे अरुंषिका रोग दूर हो जाता है ॥ १६ ॥

दूसरा प्रकार

खादिरारिष्टजंबूनां त्वग्भिर्वा मूत्रसंयुतैः।
कुटजत्वक्सैन्धवं वा लेपो हन्यादरुंषिकाम् ॥ १७ ॥

खैर, नीम, जामुन, इनकी छालका चूर्ण करके गोमूत्रमें पीसकर लेप करे अथवा कुडेकी छाल और सेंधा नमक, इनको गोमूत्रमें पीसकर लेप करे तो अरुंषिका (शरीरसे रूसी निकलना) रोग दूर हो जाता है ॥ १७ ॥

दारुणरोगपर लेप

प्रियालबीजमधुककुष्ठमाषैः ससैन्धवैः।
कार्यो दारुणके मूर्ध्नि प्रलेपो मधुसंयुतः ॥ १८ ॥

चिरौंजी, मुलहठी, कूट, उड़द और सेंधा नमक, इन औषधियोंको समान भागके हिसाबसे एकत्रित करके बारीक पीसे और शहदमें मिलाकर माथेमें लेप करे तो दारुण नामक रोग दूर हो जाता है ॥ १८॥

दूसरी विधि

दुग्धेन खाखसं बीजं प्रलेपाद्दारुणं जयेत्।
आम्रबीजस्य चूर्णं तु शिवाचूर्णं समं द्वयम् ॥ १६ ॥
दुग्धपिष्टः प्रलेपोऽयं दारुणं हन्ति दारुणम्।

खसखसको दूधमें पीसकर मस्तकपर लेप करे अथवा आमकी गुठलियों तथा छोटी हर्रेके चूर्णको समान भागसे एकत्रित करके लेप करे तो भयंकर दारुणरोग दूर हो जाता है ॥ १६ ॥

इन्द्रलुप्तनाशक लेप

रसस्तिक्तपटोलस्य पत्राणां तद्विलेपनात् ॥ २० ॥
इन्द्रलुप्तं शमं याति त्रिभिरेव दिनैर्ध्रुवम्।

कड़ुये परवलके पत्तोंका रस निकालकर यदि तीन दिन तक लेप किया जाय तो इन्द्रलुप्त रोग अवश्य दूर हो जाता है ॥ २० ॥

दूसरी विधि

इन्द्रलुप्तापहो लेपो मधुना बृहतीरसः ॥ २१ ॥
गुञ्जामूलफलं वापि भल्लातकरसोऽपि वा ।

कटेरीके रसको शहदके साथ अथवा घुँघचीके रसको शहदमें मिलाकर या भिलावेके पत्तोंके रसको शहदमें मिलाकर लेप करे तो इन्द्रलुप्त नामक रोग दूर हो जाता है ॥ २१ ॥

केशवृद्धिके लिए लेप

गोक्षुरस्तिलपुष्पाणि तुल्ये च मधुसर्पिषी ॥ २२ ॥
शिरःप्रलेपनं तेन केशसंवर्धनं परम् ।

गोखरू तथा तिलके फूल, इन दोनों चीज़ोंको समान भागसे लेकर चूर्ण करे। फिर शहद तथा घी इन दोनोंमें फेंटकर मस्तकपर लेप करे तो केश बढ़ते हैं ॥ २२ ॥

केश जमानेवाला लेप

हस्तिदंतमषीं कृत्वा छागीदुग्धं रसांजनम् ॥ २३ ॥
रोमाण्यनेन जायंते लेपात्पाणितलेष्वपि ।

हाथीके दाँतको जलाकर उसकी राख और रसौत, इन दोनोंको बकरीके दूधमें पीसकर उस स्थानपर लेप करे कि जहाँके बाल उड़ गये हों। ऐसा करनेसे उड़े बाल फिर उग आते हैं। इस लेपमें इतनी शक्ति है कि यदि हाथकी हथेलीपर भी इसका लेप कर दिया जाय तो बाल उग आते हैं ॥ २३ ॥

इन्द्रलुप्तरोगपर दूसरा लेप

यष्टींदीवरमृद्वीकातैलाज्यक्षीरलेपनैः ॥ २४ ॥
इंद्रलुप्तः शमं याति केशाः स्युः सघना दृढाः ।

मुलहठी, कमल तथा मुनक्का, इन तीन चीजोंको तिलके तेल, गौके दूध अथवा घीमें पीसकर लेप करे तो इन्द्रलुप्त रोग दूर हो जाता और केश मजबूत तथा सघन हो जाते हैं ॥ २४ ॥

उड़े हुए केश आनेपर दूसरा लेप

चतुष्पदानां त्वग्रोमनखशृंगास्थिभस्मभिः ॥ २५ ॥
तैलेन सह लेपोऽयं रोमसंजननः परः ।

बकरी अथवा किसी भी चौपाये जानवरके बाल, त्वचा, सींग अथवा हड्डी-की भस्म करके तिलके तेलके साथ लेप करे तो उड़े हुए भी केश उग आते हैं । यह केशोंको उगानेके लिए उत्कृष्ट दवा है ॥ २५ ॥

श्वेत केश काले करनेका लेप

इंद्रवारुणिकाबीजतैलेनाभ्यंगमाचरेत् ॥ २६ ॥
प्रत्यहं तेन कालाभ्रसन्निभाः कुन्तला ह्यलम् ।

यदि इन्द्रायणके बीजका तेल लगाया जाय तो सफेद बाल उसी तरह काले हो जाते हैं । जैसे नवीन श्याम मेघ होता है ॥ २६ ॥

दूसरी विधि

अयोरजो भृङ्गराजस्त्रिफला कृष्णमृत्तिका ॥ २७ ॥
स्थितमिक्षुरसे मासं लेपनात्पलितं जयेत् ।

लौहचूर्ण, भँगरैया, त्रिफला और काली मिट्टी, इन चीजोंको एकत्र करके ऊँखके रसमें डालकर एक महीने तक ज्योंका त्यों रक्खा रहने दे और यदि इसका लेप करे तो सफेद बाल काले हो जाते हैं ॥ २७ ॥

तीसरा प्रकार

धात्रीफलत्रयं पथ्ये द्वे तथैकं बिभीतकम् ॥ २८ ॥
पंचाम्रमज्जा लोहस्य कर्षैकं च प्रदीयते ।
पिष्ट्वा लोहमये भांडे स्थापयेदुषितं निशि ॥ २९ ॥
लेपोऽयं हन्ति न चिरादकालपलितं महत् ।

आँवले तीन, हड़ दो, बहेड़ेका फल एक, पाँच आमोंकी गुठलियोंके भीतर का गूदा, लौहचूर्ण एक कर्ष, इन सब चीजोंको एकत्रितकर लोहेकी कड़ाहीमें महीन पीसे और एक रात्रि भर ज्योंका त्यों रक्खी रहने दे । फिर दूसरे रोज़ यदि इसका लेप करे तो थोड़ी अवस्थामें जिन लोगोंके बाल सफेद हो गये हों, वे काले हो जायँगे ॥ २८ ॥ २९ ॥

चतुर्थ प्रकार

त्रिफला नीलिकापत्रं लोहं भृंगरजः समम् ॥ ३० ॥
अजामूत्रेण संपिष्टं लेपात्कृष्णीकरं स्मृतम्।

त्रिफला, नीलकी पत्तियाँ, लौहचूर्ण तथा भँगरैया, इन वस्तुओंको समान भागके हिसाबसे एकत्रितकर बकरीके मूत्रमें पीसकर लेप करे तो सफेद बाल काले हो जाते है ॥ ३० ॥

पाँचवाँ प्रकार

त्रिफलालोहचूर्णं च दाडिमत्वग्बिसं तथा ॥ ३१ ॥
प्रत्येकं पंचपलिकं चूर्णं कुर्याद्विचक्षणः।
भृङ्गराजरसस्यापि प्रस्थषट्कं प्रदापयेत् ॥ ३२ ॥
क्षिप्त्वा लोहमये पात्रे भूमिमध्ये निधापयेत्।
मासमेकं ततः कुर्याच्छागीदुग्धेन लेपनम् ॥ ३३ ॥
कूर्चे शिरसि रात्रौ च संवेष्ट्यैरंडपत्रकैः।
स्वपेत्प्रातस्ततः कुर्यात्स्नानं तेन च जायते ॥ ३४ ॥
पलितस्य विनाशश्च त्रिभिर्लेपैर्न संशयः।

त्रिफला, लौहचूर्ण, अनारके फलका छिल्का और कमलकी जड़ (भसीड़), इन सब चीजोंको पाँच-पाँच पलके हिसाबसे एकत्र करके बारीक पीसकर चूर्ण करे और छ प्रस्थ प्रमाण भँगरैयाका रस एक लोहेके बर्तनमें भरकर उसीमें ये औषधियें डाल दे। फिर जमीन खोदकर उसमें वह पात्र एक महीनेके लिये गाड़ दे। इसके बाद उसे निकाले और बकरीके दूधमें मिलाकर मस्तकमें लेप करे। ऊपरसे रेंड़के पत्ते बाँधकर सो जाय और सबेरे उठकर स्नान करे। इस तरह तीन बार लेप करनेसे युवावस्थामें पके बाल काले पड़ जाते हैं। इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ३१–३४ ॥

केशनाशक लेप

शंखचूर्णस्य भागौ द्वौ हरितालं च भागिकम् ॥ ३५ ॥
मनःशिला चार्धभागा स्वर्जिका चैकभागिका।
लेपोऽयं वारिपिष्टस्तु केशानुत्पाट्य दीयते ॥ ३६ ॥
अनया लेपयुक्त्या च सप्तवेलं प्रयुक्तया।
निर्मूलकेशस्थानं स्यात्क्षपणस्य शिरो यथा ॥ ३७ ॥

शंखका चूर्ण दो भाग, हड़ताल एक भाग, मैनसिल आधा भाग, सज्जीखार एक भाग, इन सब चीजोंको जलमें पीसकर उस स्थानपर लेप करे कि जिस जगहके बाल निर्मूल करने हों। इसका लेप करनेके पहले उस्तरेसे सब बाल काट देने चाहियें। इस युक्तिसे सात बार लेप करनेसे उस स्थानके बाल हमेशाके लिए उड़ जाते हैं और वह जगह ऐसी चिकनी हो जाती है जैसे संन्यासीका मस्तक चिकना होता है ॥ ३५-३७ ॥

दूसरा प्रकार

तालकं शाणयुग्मं स्यात्षट्शाणं शंखचूर्णकम् ।
द्विशाणिकं पलाशस्य क्षीरं दत्त्वा प्रमर्दयेत् ॥ ३८ ॥
कदलीदंडतोयेन रविपत्ररसेन वा ।
अस्यापि सप्तभिर्लेपैर्लोम्नां शातनमुत्तमम् ॥ ३९ ॥

हरताल दो शाण, शंखका चूर्ण छ शाण, पलाशसे निकाला हुआ खार दो शाण, इन सब औषधियोंको एकत्रित करके केलेके पत्तोंके रस अथवा आकके पत्तोंके रसमें खरल करके जिस स्थानके केश दूर करने हों, उस जगह सात बार लेप करे। ऐसा करनेसे भी केश दूर हो जाते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

श्वेतकुष्ठ दूर होनेका लेप

सुवर्णपुष्पी कासीसं विडंगानि मनःशिला ।
रोचना सैंधवं चैव लेपनाच्छ्वित्रनाशनम् ॥ ४० ॥

सुवर्णपुष्पी (पीली चमेलीके फूल), हीराकसीस, वायविडंग, मैनसिल, गोरोचन, सेंधा नमक, इन सब औषधियोंको समान भागके हिसाबसे एकत्रित करके गोमूत्रमें पीसकर लेप करे तो श्वेतकुष्ठ नामक रोग दूर हो जाता है ॥ ४० ॥

दूसरी विधि

वायस्येडगजाकुष्ठकृष्णाभिर्गुटिका कृता ।
बस्तमूत्रेण संपिष्टा प्रलेपाच्छ्वित्रनाशिनी ॥ ४१ ॥

मकोयकी जड़, चकवनके बीज, कूठ और पीपली, इन चार औषधियोंको समान भागके हिसाबसे एकत्रितकर बकरेके मूत्रमें पीस करके लेप करे तो श्वेतकुष्ठ रोग समूल नष्ट हो जाता है ॥ ४१ ॥

तीसरी विधि

बाकुचो वेतसो लाक्षा काकोदुंबरिका कणा।
रसांजनमयश्चूर्णं तिलाः कृष्णास्तदेकतः॥ ४२॥
चूर्णयित्वा गवां पित्तैः पिष्ट्वा च गुटिका कृता।
अस्याः प्रलेपाच्छित्राणि प्रणश्यन्त्यतिवेगतः॥ ४३॥

बाकुची, अमलवेत, लाख, कठूमर, पीपली, सुरमा, लोहका चूर्ण, काले तिल, इन सब औषधियोंको समान भागके हिसाबसे एकत्रित करके चूर्ण बनावे। इसके बाद उस चूर्णको गौके पित्तसे खरल करके गोली बना ले और समय-समयपर इसका लेप करे। ऐसा करनेसे श्वित्रकुष्ठ नामक रोग शीघ्र दूर हो जाता है॥४२-४३॥

सिध्मनाशक लेप

धात्रीसर्जरसश्चैव यवक्षारश्च चूर्णितैः।
सौवीरेण प्रलेपोऽयं प्रयोज्यः सिध्मनाशने॥ ४४॥

धात्री (आँवले) जवाखार और राल, इन तीनों चीजोंको सौवीरमें पीस-कर लेप करे तो सिध्मकुष्ठ नामक रोग दूर हो जाता है॥ ४४॥

दूसरा प्रकार

दार्वीमूलकबीजानि तालकं सुरदारु च।
तांबूलपत्रं सर्वाणि कार्षिकाणि पृथक्पृथक्॥ ४५॥
शंखचूर्णं शाणमात्रं सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत्।
लेपोऽयं वारिणा पिष्टः सिध्मानां नाशनः परः॥ ४६॥

दारुहल्दी, मूलीके बीज, हरताल, देवदारु, ताम्बूलपत्र (पान), इन सब वस्तुओंको अलग-अलग एक-एक कर्षके परिमाणसे एकत्र करके चूर्ण करे और चार शाण शंखका चूर्ण उसमें मिलाकर जलमें घोंट करके लेप करे तो सब प्रकारका सिध्मकुष्ठ रोग दूर हो जाता है॥ ४५॥ ४६॥

नेत्ररोगनाशक लेप

हरीतकी सैन्धवं च गैरिकं च रसांजनम्।
बिडालको जले पिष्टः सर्वनेत्रामयापहः॥ ४७॥

हड़, सेंधा नमक, गेरू और रसौत, इन चार चीजोंको समान भागके हिसावसे एकत्रितकर जलमें पीसे और नेत्रकी पलकोंपर लेप करे तो सब प्रकारके नेत्रविकार दूर हो जाते हैं ॥ ४७ ॥

दूसरी विधि

रसांजनं व्योषयुतं संपिष्टं वटकीकृतम् ।
कण्डूं पाकान्वितां हंति लेपादंजननामिकाम् ॥ ४८ ॥

रसांजन, सोंठ, मिर्च तथा पीपली, इन चार औषधियोंको समान भागके अनुसार ले करके पानीमें पीसकर गोली बनावे। फिर इसको जलमें घिसकर आँखमें लगावे तो आँखके कोयेमें होनेवाले सब रोग दूर हो जाते हैं ॥ ४८ ॥

दाद-खुजली आदिका लेप

प्रपुन्नाटस्य बीजानि वाकुची सर्षपास्तिलाः ।
कुष्ठं निशाद्वयं मुस्तं पिष्ट्वा तक्रेण लेपतः ॥ ४९ ॥
प्रलेपादस्य नश्यंति कण्डूदद्रूविचर्चिकाः ।

चकवनके बीज, बाकुची, सरसों, तिल, कूठ, दोनों प्रकारकी हल्दी यानी साधारण हल्दी और दारुहल्दी, नागरमोथा, इन औषधियोंको समान भागके हिसावसे एकत्रितकर चूर्ण करे और छाछमें पीसकर इसका लेप करे तो खुजली, दाद और विचर्चिका (बेवाई), ये रोग दूर हो जाते हैं ॥ ४९ ॥

दाद-खुजली आदिपर दूसरा लेप

हेमक्षीरीविडङ्गानि दरदं गंधकस्तथा ॥ ५० ॥
दद्रुघ्नः कुष्ठसिन्दूरं सर्वाण्येकत्र मर्दयेत् ।
धत्तूरनिम्बतांबूलीपत्राणां स्वरसैः पृथक् ॥ ५१ ॥
अस्य प्रलेपमात्रेण पामादद्रूविचर्चिकाः ।
कण्डूश्च रकसश्चैव प्रशमं यांति वेगतः ॥ ५२ ॥

हेमक्षीरी (चूक), वायविडंग, हिंगुल, गन्धक, चकवनके बीज, कूठ तथा सिंदुर, इन सात औषधियोंको बराबर बराबर लेकर धतूर, नीम तथा पानके पत्तोंके रसमें क्रमशः अलग-अलग खरल करके लेप करनेसे दाद खाज, विचर्चिका, कण्डू और पामा आदि रोग शीघ्र शान्त हो जाते हैं ॥ ५०—५२ ॥

दूसरा प्रकार

दूर्वाभयासैंधवं च चक्रमर्दः कुठेरकः ॥
एभिस्तक्रयुतो लेपः कण्डूदद्रूविनाशनः ॥ ५३ ॥

दुर्वा, छोटी हड़, सेंधा नमक, चवकनके बीज और वनतुलसी, इन पाँच औषधियोंको एकत्रितकर मट्ठेसे पीस करके लेप करे तो खुजली तथा दाद नष्ट हो जाती है ॥ ५३ ॥

रक्तपित्तादिनाशक लेप

चन्दनोशीरयष्ट्याह्वा बलाव्याघ्रनखोत्पलैः।
क्षीरपिष्टैः प्रलेपः स्याद्रक्तपित्तशिरोरुजि ॥ ५४ ॥

लाल चन्दन, खस, मुलहठी, गंगेरनकी जड़, बघनखी तथा कमल, इन औषधियोंको समान भागके अनुसार एकत्रित करके दूधमें पीसकर लेप करे तो रक्तपित्तके प्रकोपसे जायमान मस्तकपीड़ा दूर हो जाती है ॥ ५४ ॥

उदर्दरोगपर लेप

सिद्धार्थरजनीकुष्ठप्रपुन्नाटतिलैः सह।
कटुतैलेन संमिश्रमुदर्दघ्नं प्रलेपनम् ॥ ५५ ॥

सफेद सरसों, हल्दी, कूठ, चकवनके बीज तथा तिल, इन वस्तुओंको समान भागसे एकत्रितकर बारीक चूर्ण करे और सरसोंके तेलमें मिलाकर लेप करे तो उदर्द नामक रोग दूर हो जाता है ॥ ५५ ॥

वातविसर्प रोगपर लेप

रास्नानीलोत्पलं दारु चन्दनं मधुकं बला।
घृतक्षीरयुतो लेपो वातवीसर्पनाशनः ॥ ५६ ॥

रास्ना, नील कमल, देवदारु, लालचन्दन, मुलहठी और गंगेरनकी जड़, इन छ औषधियोंको समान भागके हिसाबसे एकत्रितकर बारीक चूर्ण करे। फिर दूध या घीमें मिलाकर इसका लेप करे तो वातज विसर्प रोग नष्ट हो जाता है ॥ ५६ ॥

पित्तज विसर्परोगपर लेप

मृणालं चन्दनं लोध्रमुशीरं कमलोत्पलम्।
सारिवामलकं पथ्यालेपः पित्तविसर्पनुत् ॥ ५७ ॥

मृणाल यानी कमलकी दंडी, लाल चन्दन, लोध, नेत्रबाला, कमल, छोटा कमल, सारिवा, आँवले और छोटी हड़, इन सब चीज़ोंको समान भागके हिसाबसे एकत्रित करके पानीमें पीसकर लेप करे तो पित्तज विसर्प रोग दूर होता है ॥५७॥

कफज विसर्पपर लेप

त्रिफलापद्मकोशीरसमंगाकरवीरकम् ।
नलमूलमनंता च लेपः श्लेष्मविसर्पहा ॥ ५८ ॥

त्रिफला, पद्माख, खस, धायके फूल, कनैल, नरकुलकी जड़ और धमासा, इन औषधियोंको समान भागके हिसाबसे एकत्रितकर जलमें पीस करके लेप करे तो कफजनित विसर्प रोग दूर हो जाता है ॥ ५८ ॥

पित्तज वातरक्तपर लेप

मूर्वानीलोत्पलं पद्मं शिरीषकुसुमैः सह ।
प्रलेपः पित्तवातास्रे शतधौतघृतप्लुतः ॥ ५९ ॥

मूर्वा, नीलकमल, पद्माख, सिरसका फूल, इन चार औषधियोंको समान भागके हिसाबसे एकत्र करके चूर्ण करे और सौ पानीसे धुले घीमें मिलाकर लेप करे तो पित्तज वातरक्त दूर हो जाता है ॥ ५९ ॥

नाकसे रुधिर गिरनेपर लेप

आमलं घृतभृष्टं तु पिष्टं कांजिकवारिभिः ।
जयेन्मूर्ध्नि प्रलेपेन रक्तं नासिकया स्रुतम् ॥ ६० ॥

आँवलेको घीमें भून और काँजीमें पीसकर मस्तकपर लेप करे तो नाकको राहसे खून बहनेका रोग दूर हो जाता है ॥ ६० ॥

वातजा मस्तकपीडापर लेप

कुष्ठमेरण्डतैलेन लेपात्कांजिकपेषितम् ।
शिरोऽर्तिवातजां हन्यात्पुष्पं वा मुचुकुन्दजम् ॥ ६१ ॥

कूठ अथवा मुचुकुन्दके फूलोंको काँजीमें पीसे और उसमें अरण्डीका तेल मिलाकर मस्तकपर लेप करे तो वातसंबधी रोग दूर हो जाता है ॥ ६१ ॥

दूसरा प्रकार

देवदारुनतं कुष्ठं नलदं विश्वभेषजम् ।
सकांजिकः स्नेहयुक्तो लेपो वातशिरोऽर्तिनुत् ॥ ६२ ॥

देवदारु, तगर, कूठ, नेत्रबाला और सोंठ, इन पाँच औषधियोंको समान भागके अनुसार लेकर काँजीमें पीसे और उसमें अंडीका तेल मिलाकर लेप करे तो वातके कारण उत्पन्न मस्तकपीड़ा दूर हो जाती है ॥ ६२ ॥

पित्तज शिरोरोगपर लेप

धात्रीकसेरुह्रीवेरपद्मपद्मकचंदनैः ।
दूर्वोशीरनलानां च मूलैः कुर्यात्प्रलेपनम् ॥ ६३ ॥
शीरोर्तिं पित्तजां हन्याद्रक्तपित्तरुजं तथा ।

आँवला, कचूर, हाऊबेर, कमल, पद्माख, लाल चन्दन, दुर्वाकी जड़, नेत्रबाला तथा नरकुलकी जड़, इन औषधियोंको पानीमें पीसकर लेप करे तो पित्तसे जायमान सब पीड़ायें दूर हो जाती हैं ॥ ६३ ॥

कफज मस्तकपीड़ापर लेप

हरेणुनतशैलेयमुस्तैलागरुदारुभिः ॥ ६४ ॥
मांसीरास्नारुबूकैश्च कोष्णो लेपः कफार्तिनुत् ।

रेणुका, तगर, मैनसिल, नागरमोथा, इलायची, अगर, देवदारु, जटामांसी, रास्ना, रेंड़की जड़, ये औषधियें एकत्रित करके गरम जलमें पीसे और कफके कारण उत्पन्न मस्तकपीड़ामें लेप करे तो वह अच्छी हो जाती है ॥ ६४ ॥

दूसरा प्रकार

शुण्ठीकुष्ठप्रपुन्नाटदेवकाष्ठैः सरोहिषैः ॥ ६५ ॥
मूत्रपिष्टैः सुखोष्णैश्च लेपः श्लेष्मशिरोऽर्तिनुत् ।

सोंठ, कूठ, चकवनके बीज, देवदारु और रोहिषतृण, इन औषधियोंको समान भागके हिसाबसे एकत्रकर गोमूत्रमें पीसे और थोड़ा गुनगुना करके लेप करे तो कफके प्रकोपसे जायमान मस्तकपीड़ा दूर हो जाती है ॥ ६५ ॥

सूर्यावर्त तथा अर्धभेदक रोगपर लेप

सारिवाकुष्ठमधुकं वचाकृष्णोत्पलैस्तथा ॥ ६६ ॥
लेपः सकांजिकस्नेहः सूर्यावर्तार्धभेदयोः ।

सारिवा, कूठ, मुलहठी, वच, पीपली और नील कमल, इन औषधियोंका बराबर-बराबरके हिसाबसे इकट्ठीकर काँजीमें पीसे और उसमें रेंड़ीका तेल मिलाकर लेप करे तो सूर्यावर्त तथा आधासीसी, ये दोनों रोग दूर हो जाते हैं ॥ ६६ ॥

कनपटी अनंतवात तथा सर्वशिर आदि रोगोंपर लेप

वरीनीलोत्पलं दूर्वा तिलाः कृष्णा पुनर्नवा ॥ ६७ ॥
शंखकेऽनंतवाते च लेपः सर्वशिरोऽर्तिजित् ।

विदारीकन्द, नील कमल, दुर्वा, काले तिल और पुनर्नवा, इन पाँच औषधियोंको समान भागके हिसाबसे एकत्रितकर पानीमें पीस करके लेप करे तो कनपटीकी पीड़ा, अनन्तवात तथा मस्तकपीड़ासम्बन्धी सारे रोग दूर हो जाते हैं ॥ ६७ ॥

दूसरा प्रकार

अथ लेपविधिश्चान्यः प्रोच्यते सुज्ञसम्मतः ॥ ६८ ॥
द्वौ तस्य कथितौ भेदौ प्रलेपाख्यप्रदेहकौ ।

कितने ही विद्वानोंसे सम्मत दो प्रकारके लेपकी विधि बतलाते हैं । उनमेंसे एकका नाम है प्रलेप और दूसरेको प्रदेह कहते हैं ॥ ६८ ॥

दोनों लेपोंकी उच्चताका प्रमाण

चर्मार्द्रं माहिषं यद्वत्प्रोन्नतं सा मितिस्तयोः ॥ ६९ ॥
शीतस्तनुर्विशोषी च प्रलेपः परिकीर्तितः ।
आर्द्रो घनस्तथोष्णः स्यात्प्रदेहः श्लेष्मवातहा ॥ ७० ॥

उपर्युक्त दोनों प्रकारके लेप भैंसके चमड़े जितने मोटे लेप करने चाहियें। प्रलेपक लेप शीतवीर्य, सूक्ष्म, स्रोतेन्द्रियोंमें प्रविष्ट होनेवाला और विष विहीन है, और प्रदेहक लेप गीला, जड़, उष्ण तथा कफ और वायुका दूर करनेवाला होता है ॥ ६९ ॥ ७० ॥

ये दोनों प्रकारके लेप कहाँ-कहाँ दे ?

रोमाभिमुखमादेयौ प्रलेपाख्यप्रदेहकौ ।
वीर्यं सम्यग्विशत्याशु रोमकूपैः शिरामुखैः ॥ ७१ ॥

ये दोनों प्रकारके लेप लोमके अभिमुख देना चाहिये । ऐसा करनेसे रोमकूपके जो छिद्र हैं, उनके द्वारा उस लेपका प्रभाव शरीरके भीतर अच्छी तरह प्रवेश कर जाता है ॥ ७१ ॥

इस लेपके विषयमें निषेध.

न रात्रौ लेपनं कुर्याच्छुष्यमाणं न धारयेत् ।
शुष्यमाणमुपेक्षेत प्रदेहं पीडनं प्रति ॥ ७२ ॥

रात्रिके समय प्रलेप लेप न करे और यदि लेप सूख गया हो तो काममें न लावे। क्योंकि सूखा लेप लगा रहनेसे शरीरको बड़ा कष्ट होता है, किन्तु शरीरके फोड़े आदिको दबानेके लिए लगाये हुए प्रदेह लेपको सूखनेपर भी लगा रहने दे ॥ ७२ ॥

रात्रिमें निषेधका हेतु

तमसा पिहितो ह्यूष्मा रोमकूपमुखे स्थितः।
विना लेपेन निर्याति रात्रौ नो लेपयेत्ततः ॥ ७३ ॥

रात्रिके समय शरीरकी सारी गरमी अन्धकारसे आच्छन्न होकर रोमकूपके मुखपर आ रुकती है। उस समय यदि किसी प्रकारका लेप आदि नहीं किया जाता तो वह गर्मी बाहर निकल जाती है। इसी कारण रात्रिमें लेप करनेकी मनाही की गयी है ॥ ७३ ॥

रात्रिके समय प्रलेपादिकोंकी विधि

रात्रावपि प्रलेपादिविधिः कार्यो विचक्षणैः ।
अपाकि शोथे गम्भीरे रक्तश्लेष्मसमुद्भवे ॥ ७४ ॥

जो शोथ पका नहीं है, उसमें और गम्भीर नामक व्रणमें एवं रक्त-कफके प्रकोपसे जायमान सूजनमें रात्रिके समय भी विद्वान रोगीको चाहिए कि इन लेपों-को काममें लावे ॥ ७४ ॥

व्रण दूर करनेके लिए लेप

आदौ शोथहरो लेपो द्वितीयो रक्तसेचनः ।
तृतीयश्चोपनाहः स्याच्चतुर्थः पाटनक्रमः ॥ ७५ ॥
पंचमः शोधनो भूयात्षष्ठो रोपण इष्यते ।
सप्तमो वर्णकरणः व्रणस्यैते क्रमा मताः ॥ ७६ ॥

किसी भी व्रणपर लेपकी औषधि करनी हो तो पहले उसकी सूजनको दूर करनेके लिए फिर व्रणमें रहनेवाले रक्तको पिघलानेके लिये लेप करे। तदनन्तर पसीना निकालनेकी कोई औषधि करे। फिर कोई ऐसा लेप दे, जिससे वह फोड़ा फूट जाय। फिर उसके मवाद आदि दूर करनेवाला लेप दे। तत्पश्चात् घाव भरनेके लिये और उसके बाद घावकी जगहपर रहनेवाले दाग आदि दूर होकर वह स्थान पहलेके समान कान्तिमान् हो जाय ऐसा लेप दे। इस तरह सब मिला-कर सात लेप देने होते हैं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

वातशोथपर लेप

बीजपूरजटामांसी देवदारु महौषधम् ।
रास्नाग्निमंथो लेपोऽयं वातशोथविनाशनः ॥ ७७ ॥

बिजौरेकी जड़, जटामासी, देवदारु, सोंठ, रास्ना और अनारकी जड़, इन छ औषधियोंको समान भागके अनुसार एकत्रित करके पानीमें पीसकर बादीकी सूजनपर लेप करे तो वह दूर हो जाती है ॥ ७७ ॥

पित्तकी सूजनपर लेप

मधुकं चंदनं मूर्वा नलमूलं च पद्मकम् ।
उशीरं बालकं पद्मं पित्तशोथे प्रलेपनम् ॥ ७८ ॥

मुलहठी, लालचन्दन, मूर्वा, नरकुलकी जड़, पद्माख, सुगन्धबाला, खस और कमल, इन सब चीजोंको समान भागसे एकत्रित करके जलमें पीसे और पित्तसे जायमान सूजनपर लेप करे तो सूजन दूर हो जाती है ॥ ७८ ॥

कफज व्रणके शोथपर लेप

कृष्णापुराणपिण्याकं शिग्रुत्वक्सिकता शिवा ।
मूत्रपिष्टः सुखोष्णोऽयं प्रदेहः श्लेष्मशोथहृत् ॥ ७९ ॥

पीपली, पुरानी खली, सहँजनकी छाल, खाँड और हर्रा, इन पाँच औषधियों-को समान भागके अनुसार एकत्रितकर गोमूत्रमें पीसे और श्लेष्मज सूजनपर लेप करे तो सूजन दूर हो जाती है ॥ ७९ ॥

आगन्तुक सूजन और रक्तजन्य शोथका लेप

द्वे निशे चंदने द्वे च शिवा दूर्वा पुनर्नवा ।
उशीरं पद्मकं लोध्रं गैरिकं च रसांजनम् ॥ ८० ॥
आगन्तुके रक्तजे च शोथे कुर्यात्प्रलेपनम् ।

हल्दी, दारुहल्दी, चन्दन, लालचन्दन, हड़, दूब, पुनर्नवा, गदहपुरना, पद्माख, लोध, गेरू और रसौत, इन चीजोंको समान भागके अनुसार एकत्रित करके पानीमें बारीक पीसे और आगन्तुक शोथ अथवा रक्तज शोथपर इसका लेप करे तो वह शोथ दूर हो जाता है ॥ ८० ॥

व्रणको पकानेका लेप

शणमूलकशिग्रूणां फलानि तिलसर्षपाः ॥ ८१ ॥
सवचः किण्वमतसीप्रदेहः पाचनः स्मृतः ।

सन और मूलीके बीज, सहँजनके बीज, तिल, सरसों, जौ, लौहचूर्ण और अलसी, इन आठ वस्तुओंको समान भागसे एकत्रितकर पानीमें पीसे और व्रणको पकानेके लिए इसका लेप करे । इसे लोग प्रदेहसंज्ञक लेप कहते हैं ॥ ८१ ॥

पके व्रणको फोड़नेके लिए लेप

दन्ती चित्रकमूलत्वक्स्नुह्यर्कपयसी गुडः ॥ ८२ ॥
भल्लातकश्च कासीसं सैंधवं दारणः स्मृतः ।

दन्तीकी जड़, चीतेकी छाल, थूहरका दूध, आकका दूध, गुड़, भेलावा, कसीस और सेंधानमक, इन चीजोंको समान भागसे एकत्रितकर चूर्ण करे । फिर उसे थूहरके दूध और मदारके दूधमें सानकर पके व्रणपर लेप करे तो वह फूट जाता है ॥ ८२ ॥

दूसरा प्रकार

चिरबिल्वोऽग्निको दंती चित्रको हयमारकः ॥ ८३ ॥
कपोतकंकगृध्राणां मलं लेपेन दारणम् ।

कंजके बीज, भेलावा, दन्तीकी जड़, चीतेकी छाल और कनेरकी जड़, इन पाँच औषधियोंका चूर्ण करे । इसके बाद कबूतर, सफेद चील तथा गीधकी विष्ठाको बराबर-बराबर लेकर चूर्णमें मिलावे और पके हुए फोड़ेपर लेप करे तो वह फूट जाता है ॥ ८३ ॥

तीसरा प्रकार

सर्जिकायावशूकाद्याः क्षारा लेपेन दारणाः ॥ ८४ ॥
हेमक्षीर्य्यास्तथा लेपो व्रणे परमदारणः ।

यदि फोड़ा फोड़नेकी इच्छा हो तो सज्जीखार और जवाखारका लेप करे । हेमक्षीरीका लेप भी फोड़ेको फोड़नेके लिए अच्छा है ॥ ८४ ॥

व्रणशोधनके लिए लेप

तिलसैंधवयष्ट्याह्वनिंबपत्रनिशायुगैः ॥ ८५ ॥
त्रिवृद्घृतयुतैः पिष्टैः प्रलेपो व्रणशोधनः ।

तिल, सेंधानमक, मुलहठी, नीमकी पत्तियें, हल्दी, दारुहल्दी और निसोथ, इन औषधियोंको समान भागके हिसाबसे इकट्ठी करके चूर्ण करे और घीमें फेंट-कर लेप करे तो व्रणका समस्त विकार दूर हो जाता है ॥ ८५ ॥

व्रणके शोधन और रोपणके लिए लेप

निंबपत्रघृतक्षौद्रदार्वीमधुकसंयुतः ॥ ८६ ॥

तिलैश्च सह संयुक्तो लेपः शोधनरोपणः ।

नीमकी पत्ती, घी, शहद, मुलहठी, तिल, इन पाँचमेंसे तीन अर्थात् नीमकी पत्ती, मुलहठी और तिलका चूर्ण करके उसमें घी और शहद मिलाकर व्रणका विकार दूर करने तथा घावको भरनेके लिए देवे ॥ ८६ ॥

व्रणके कृमि दूर करनेके लिए लेप

करंजारिष्टनिर्गुंडीलेपो हन्याद्व्रणक्रिमीन् ॥ ८७ ॥

लशुनस्याथवा लेपो हिंगुनिंबभवोऽथवा ।

कंजा, नीम, निर्गुंडी, इन तीन प्रकारकी औषधियोंके पत्तोंको थोड़ेसे पानी-के साथ पीसे और उस व्रणपर इसका लेप करे कि जिसमें कीड़े पड़ गये हों। ऐसा करनेसे कृमि दूर हो जाते हैं ॥ ८७ ॥

व्रणके शोधन और रोपणके लिए दूसरा लेप

निंबपत्रं तिला दंती त्रिवृत्सैंधवमाक्षिकम् ॥ ८८ ॥

दुष्टव्रणप्रशमनो लेपः शोधनरोपणः ।

निम्बपत्र, तिल, दन्ती, निसोथ और सेंधानमक, इन पाँच वस्तुओंको समान भागसे लेकर चूर्ण करे और शहदमें फेंटकर लेप करे। इससे दूषित व्रण शुद्ध होते, भयावह व्रण शान्त होते और घाव शीघ्र भर जाता है ॥ ८८ ॥

शूलमें नाभिपर करनेके लिए लेप

मदनस्य फलं तिक्ता पिष्ट्वा कांजिकवारिणा ॥ ८९ ॥

कोष्णं कुर्यान्नाभिलेपं शूलशांतिर्भवेत्ततः ।

मैनफल और कुटकी इन दोनों चीजोंको बराबर-बराबर लेकर कांजीमें पीसे और कुछ गरम करके नाभीपर लेप करे तो शूलरोग दूर होता है ॥ ८९ ॥

वातविद्रधिनामक लेप

शिग्रुशेफालिकैरंडयवगोधूममुद्गकैः ॥ ९० ॥

सुखोष्णो बहुलो लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ ।

सहँजनकी छाल, निर्गुंडीके पत्ते, रेंडकी जड़, जौ, गेहूँ तथा मूँग, इन छः चीजोंको समान भागके अनुसार एकत्रित करके पानीमें पीसे और थोड़ा गरम करके गाढ़ा लेप करे तो वातविद्रधि नामक रोग दूर होता है ॥ ९० ॥

पित्तविद्रधिनाशक लेप

पैत्तिके सर्पिषा लाजा मधुकैः शर्करान्वितैः ॥ ६१ ॥
प्रलिम्पेत्क्षीरपिष्टैर्वा पयस्योशीरचंदनैः।

धानका लावा और मुलहठी,इन दोनों चीजोंका चूर्ण करे और इन्हें घीमें फेंट-कर लेप करे। अथवा क्षीरकाकोली, लाल चन्दन तथा खस, इन तीन औषधियों-को दूधमें पीसकर लेप करे तो पित्तविद्रधि नामक रोग दूर हो जाता है॥ ६१ ॥

कफविद्रधिशामक लेप

इष्टका सिकता लोहकिट्टं गोशकृता सह ॥ ६२ ॥
सुखोष्णश्च प्रदेहोऽयं मूत्रैः स्याच्छ्लेष्मविद्रधौ।

ईंट, वालू, लोहेकी कीट और गौका गोबर, इन सब चोजोंको समान भागसे एकत्रितकर पानीमें पीसे और कुछ गरम करके गाढ़ा लेप करे तो वात-विद्रधि रोग दूर हो जाता है ॥ ६२ ॥

आगन्तुक विद्रधिशामक लेप

रक्तचंदनमंजिष्ठानिशामधुकगैरिकैः ॥ ६३ ॥
क्षीरेण विद्रधौ लेपो रक्तागंतुनिमित्तजे।

लाल चन्दन, मंजीठ, हल्दी, मुलहठी तथा गेरू, ये पाँच औषधियें समान भागके अनुसार एकत्रित करके दूधमें पीसे और अभिघातनिमित्तक दूषित रुधिरसे जायमान विद्रधिपर इसका लेप करे तो वह शान्त हो जाती है ॥ ९३ ॥

वातज गलगण्डपर लेप

निचुलः शिग्रुबीजानि दशमूलमथापि वा ॥ ६४ ॥
प्रदेहो वातगण्डेषु सुखोष्णः संप्रदीयते।

बेंत और सहँजनके बीज, इन दोनों वस्तुओं तथा दशमूलमें गिनायी हुई औषधियोंको जलमें पीसकर लेप करे तो वातज गलगंड रोग दूर हो जाता है ॥ ६४ ॥

कफज गलगण्डनाशक लेप

देवदारु विशाला च कफगण्डे प्रदेहकः ॥ ६५ ॥

देवदारु और इन्द्रायनकी छाल, इन दोनों वस्तुओंको जलमें पीसकर लेप करे तो कफके प्रकोपसे उत्पन्न गलगण्ड रोग दूर हो जाता है ॥ ६५ ॥

कफज गलगण्डका दूसरा लेप

सर्षपारिष्टपत्राणि दग्ध्वा भल्लातकैः सह ।
छागमूत्रेण संपिष्टमपचीघ्नं प्रलेपनम् ॥ ९६ ॥

सरसों, नीमकी पत्तियें तथा भिलावा इन चीजोंको समान भागके अनुसार एकत्रित करके फूँक दे । जब सब जलकर राख हो जाय तो उस राखको बकरीके मूत्रमें सानकर लेप करे । इस लेपके प्रभावसे गण्डमालाका एक भेद अपचीरोग शान्त हो जाता है ॥ ९६ ॥

गण्डमाला अर्बुद और गलगण्डनाशक लेप

सर्षपाः शिवबीजानि शणबीजातसीयवान् ।
मूलकस्य च बीजानि तक्रेणाम्लेन पेषयेत् ॥ ९७ ॥
गण्डमालार्बुदं गंडं लेपेनानेन शाम्यति ।

सरसों, सहँजनके बीज, सनके बीज, अलसीके बीज, जौ और मूलीके बीज ये औषधियें समान भागसे लेकर खट्टे मठ्ठेके साथ लेप करे तो गंडमाला अर्बुद तथा गलगंड रोग शान्त हो जाता है ॥ ९७ ॥

अपबाहुक और वातरोगपर लेप

तत्तयित्वा क्षुरेणांगं केवलानिलपीडितम् ॥ ९८ ॥
तत्र प्रदेहं दद्याच्च पिष्टं गुंजाफलैः कृतम् ।
तेनापबाहुजा पीडा विश्वाची गृध्रसी तथा ॥ ९९ ॥
अन्यापि वातजा पीडा प्रशमं याति वेगतः ।

घुंघचीको जलमें पीसकर लेप बनावे । फिर जिस स्थानपर केवल वायुके प्रकोपसे कोई व्याधि हो । उस स्थानके बालको छुरेसे मूड़ डाले और इसी लेप-का लेप करे तो अपबाहुक वायु, विश्वाची वायु तथा गृध्रसी वायु शान्त होती है । और और प्रकारकी व्याधियें भी इस लेपसे शान्त हो जाती है ॥९८ ॥ ९९ ॥

श्लीपदरोगनाशक लेप

धत्तूरैरंडनिर्गुंडीवर्षाभूशिग्रुसर्षपैः ॥ १०० ॥
प्रलेपः श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम् ।

धतूरेके पत्ते, रेंड़के पत्ते, निर्गुंडीकी पत्तियें, पुनर्नवा, सहँजनकी छाल और सरसों, इन औषधियोंको पीसकर लेप करनेसे बहुत पुराना और भयानक दारुण रोग शान्त हो जाता है ॥ १०० ॥

कुरण्डरोगनाशक लेप

अजाजीहपुषाकुष्ठमेरंडवदरान्वितम् ॥ १०१ ॥
कांजिकेन तु संपिष्टं कुरंडघ्नं प्रलेपनम् ।

जीरा, हाऊवेर, कूठ, रेंड़की जड़, बेरकी छाल, इन सब औषधियोंको समान भागके हिसाबसे एकत्रित करके काँजीमें पीसकर लेप करे तो अंडवृद्धि नामक रोग दूर हो जाता है ॥ १०१ ॥

उपदंशरोगनाशक लेप

करवीरस्य मूलेन परिपिष्टेन वारिणा ॥ १०२ ॥
असाध्यापि जरत्याशु लिंगोत्था रुक्प्रलेपनात् ।

यदि कनैलकी जड़को पानीमें पीसकर लेप करे तो लिंगमें होनेवाली गर्मीकी असाध्य व्याधि भी शान्त हो जाती है ॥ १०२ ॥

उपदंशनाशक दूसरा लेप

दहेत्कटाहे त्रिफलां सा मषी मधुसंयुता ॥ १०३ ॥
उपदंशे प्रलेपोऽयं सद्यो रोपयति व्रणम् ।

त्रिफलेको कड़ाहीमें रखकर जलावे। जब राख हो जाय तो उसे शहदमें मिलाकर लिंगमें लेप करे तो गर्मी रोग दूर हो जाता और उसके घाव शीघ्र भर आते हैं ॥ १०३ ॥

उपदंश नाश करनेका तीसरा लेप

रसांजनं शिरीषेण पथ्यया च समन्वितम् ॥ १०४ ॥
सक्षौद्रं लेपनं योज्यमुपदंशगदापहम् ।

रसौत, सिरसकी छाल तथा हर्रं, इन तीन चीजोंको समान भागसे लेकर शहदमें फेंटकर लेप करे तो गर्मी रोग शान्त हो जाता और लिंगके घाव शीघ्र भर जाते हैं ॥ १०४ ॥

अग्निदग्धके लिए लेप

अग्निदग्धे तुगाक्षीरी प्लक्षचन्दनगैरिकैः ॥ १०५ ॥
सामृतैः सर्पिषा स्निग्धैरालेपं कारयेद्भिषक् ।
तन्दुलीयकषायैर्वा घृतमिश्रैः प्रलेपयेत् ॥ १०६ ॥

वंशलोचन, पाकर, लाल चन्दन, गेरू और गुरुच, इन औषधियोंको समान

भागके हिसाबसे इकट्ठी करके चूर्ण करे और उस मनुष्यके शरीरमें इसका लेप करे कि जिसका शरीर अग्निसे जल गया हो। चौराईके काढ़ेमें घी डालकर लेप करनेसे भी लाभ होता है ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

दूसरा लेप

यवान्दग्ध्वा मषी कार्या तैलेन युतया तया ।
दद्यात्सर्वाग्निदग्धेषु प्रलेपो व्रणरोपणः ॥ १०७ ॥

यदि किसी तरह शरीर जल जाय तो थोड़ा-सा जौ जलाकर उसकी राख तेलमें मिलाकर जले स्थानपर लेप करे। ऐसा करनेसे वह घाव भर जाता है। यह औषधि सब प्रकारसे जले हुए घावोंपर काम देती है ॥ १०७ ॥

योनि कठोर करनेके लिए लेप

पलाशोदुम्बरफलैस्तिलतैलसमन्वितैः ।
मधुना योनिमालिंपेद्गाढीकरणमुत्तमम् ॥ १०८ ॥

पलाशके फूल और गूलरके फल, इन दोनों चीजोंको तिलके तेल या शहदमें मिलाकर लेप करनेसे ढीली योनि कस जाती है ॥ १०८ ॥

दूसरा लेप

माकन्दफलसंयुक्तमधुकर्पूरलेपनात् ।
गतेऽपि यौवने स्त्रीणां योनिर्गाढातिजायते ॥ १०९ ॥

आमके फल और कपूर, इन दोनोंके चूर्णको शहदमें मिलाकर योनिमें लेप करनेसे बुढ़िया स्त्रीकी भी योनि कड़ी हो जाती है ॥ १०९ ।

लिंग और स्तनादिककी वृद्धि करनेके लिए लेप

मरीचं सैन्धवं कृष्णा तगरं बृहतीफलम् ।
अपामार्गस्तिलाः कुष्ठं यवा माषाश्च सर्षपाः ॥ ११० ॥
अश्वगन्धा च तच्चूर्णं मधुना सह योजयेत् ।
अस्य सन्ततलेपेन मर्दनाच्च प्रजायते ॥ १११ ॥
लिङ्गवृद्धिः स्तनोत्सेधः संहतिर्भुजकर्णयोः ।

काली मिर्च, सेंधानमक, पीपली, तगर, कटेरीके फल, चिचिड़ीके बीज, काले तिल, कूठ, जौ, उड़द, सरसों और असगन्ध, इन सब वस्तुओंको समान भागके हिसाबसे लेकर चूर्ण करे और शहदमें मिलाकर प्रतिदिन लिंगपर मालिश

करे तो पतला लिंग भी मोटा हो जाता है। इसीको यदि स्त्रीके स्तन तथा भुजा या कानपर मालिश करे तो ये भी बढ़ जाते हैं॥ ११०॥ १११॥

लिंगवृद्धि करनेके लिए दूसरा लेप

सिताश्वगंधासिन्धूत्था छागक्षीरैर्घृतं पचेत्॥ ११२॥
तल्लेपान्मर्दनाल्लिङ्गवृद्धिः सञ्जायते परा।

सफेद असगन्ध और सेंधानमक, ये दोनों औषधियें महीन पीसकर उस चूर्णकी अपेक्षा चौगुना घृत और उसका भी चौगुना बकरीका दूध मिला करके चूल्हेपर चढ़ाकर औटवे। जब केवल घृतमात्र अवशिष्ट रहे तो उतारकर छान ले। इस घीको लेकर लिंगपर मालिश करनेसे लिंग खूब मोटा और बड़ा हो जाता है॥ ११२॥

योनिद्रावणकारी लेप

इन्द्रवारुणिकापत्ररसैः सूतं विमर्दयेत्॥ ११३॥
रक्तस्य करवीरस्य काष्ठेन च मुहुर्मुहुः।
तल्लिप्तलिंगसंयोगाद्योनिद्रावोऽभिजायते॥ ११४॥

इन्द्रायणके पत्तोंमें पारा डालकर लाल फूलवाले कनैलके डण्डेसे घोंटे। इस तरह बारंबार मर्दन करके पुरुषके लिंग और स्त्रीके योनिमें लेप करे तो पुरुषके लिंग और स्त्रीकी योनिसे सम्बन्ध होनेके कुछ ही देर बाद स्त्रीका वीर्य स्खलित हो जाता है॥ ११३॥ ११४॥

देहकी दुर्गन्धिको दूर करनेके लिए लेप

ताम्बूलपत्रचूर्णं तु चूर्णं कुष्ठशिवाभवम्।
वारिणा लेपनं कुर्याद्गात्रदौर्गन्ध्यनाशनम्॥ ११५॥

पान, कूठ, हर्रें, इन तीन चीजोंका चूर्ण करके जलमें मिलावे और शरीर पर लेप करे तो देहकी दुर्गन्धि दूर हो जाती है॥ ११५॥

दूसरा लेप

कुलित्थसक्तवः कुष्ठं मांसीचन्दनजं रजः।
सक्तवश्चणकस्यैव त्वक्चैवैकत्र कारयेत्॥ ११६॥
स्वेददौर्गंध्यनाशश्च जायतेऽस्यावधूलनात्।

कुलथीका सत्तू, कूठ, जटामांसी, सफेद चन्दनका बुरादा, चनेका सत्तू

और चनेका छिलका, इन सब चीजोंका चूर्ण करके शरीरमें मालिश करे तो शरीरसे निकले पसीनेकी दुर्गन्धि दूर हो जाती है ॥ ११६ ॥

वशीकरण करनेके लिए लेप

वचासौवर्चलं कुष्ठं रजन्यो मरिचानि च ॥ ११७ ॥
एतल्लेपप्रभावेण वशीकरणमुत्तमम् ।

वच, सोंचरनमक, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी और काली मिर्च, इन सब वस्तुओंको जुटाकर जलमें पीस करके शरीरमें मालिश करे तो मनुष्य जिसे चाहे, उसे अपने वशमें कर सकता है ॥ ११७ ॥

मस्तकमें तेल लगानेके चार प्रकार

अभ्यंगः परिषेकश्च पिचुर्बस्तिरिति क्रमात् ॥ ११८ ॥
मूर्धतैलं चतुर्धा स्याद्बलवच्च यथोत्तरम् ।

सिरमें तेल लगानेके चार प्रकार हैं, जैसे—अभ्यंग, परिषेक, पिचु और बस्ति। मस्तकमें तेल मालिश करनेकी क्रियाको लोग अभ्यंग कहते हैं। सिरपर तेलकी धार डालनेकी क्रियाको परिषेक कहते हैं। रुई या कपड़ेके टुकड़ेको तेलमें भिगोकर सिरपर रखनेकी क्रिया पिचु कहलाती है। चमड़ेकी बस्ति बनाकर उसके द्वारा मस्तकपर तैल धारण करनेकी क्रिया बस्ति कही जाती है। ये ही इसके चारों प्रकार हैं ॥ ११८ ॥

शिरोबस्ति देनेकी विधि

त्रयोऽभ्यंगादयः पूर्वे प्रसिद्धाः सर्वतः स्मृताः ॥ ११९ ॥
शिरोबस्तिविधिश्चात्र प्रोच्यते सुज्ञसंमतः ।
शिरोबस्तिश्चर्मणः स्याद् द्विमुखो द्वादशांगुलः ॥ १२० ॥
शिरःप्रमाणं तं बद्ध्वा मस्तके माषपिष्टकैः ।
संधिरोधं विधायादौ स्नेहैः कोष्णैः प्रपूरयेत् ॥ १२१ ॥

ऊपर बतलाये तैल धारणके चार प्रकारोंमेंसे तीन तो प्रसिद्ध ही हैं, किन्तु बस्तिविधिके विषयमें कहीं किसीने कुछ नहीं लिखा है। इस लिए मैं इस स्थानपर शिरोबस्तिकी विधि बतलाता हूँ। मस्तकपर धारण की जानेवाली बस्ति हरिण आदिके चमड़ेकी होनी चाहिए। उसका आकार ठीक टोपीकी तरह रहेगा। बारह अंगुल उसकी उँचाई रहेगी और नीचे-ऊपर दो छिद्र रहेंगे।

निचला छिद्र मस्तक घुसने भरका और ऊपरवाला छिद्र छोटा सा रहेगा। जब जिसे तैल सन्धारण कराना हो तो वह टोपी जैसी बस्ति पहननेके बाद जो सन्धियें दीखें, उन्हें उड़दकी पीठीसे बन्द कर दे। इसके बाद तेलको कुछ गरम करके ऊपरवाले छिद्रके मुखसे मस्तकपर डालता हुआ बस्तिको लबालब भर दे॥ ११९-१२१॥

शिरोबस्तिधारणमें समयका प्रमाण

तावद्धार्यस्तु यावत्स्यान्नासानेत्रमुखस्रुतिः।
वेदनोपशमो वापि मात्राणां वा सहस्रकम्॥ १२२॥

उस बस्तिको मस्तकपर तब तक रक्खी रहने दे जब तक नाक, आँख तथा मुखसे पानी न बहने लगे अथवा जब तक पीड़ा न दूर हो उस समय तक या हजार मात्रा पर्यन्त उस बस्तिको माथेपर रक्खे रहे॥ १२२॥

शिरोबस्ति धारण करनेका समय

विना भोजनमेवात्र शिरोबस्तिः प्रशस्यते।
प्रयोज्यस्तु शिरोबस्तिः पंचसप्ताहमेव वा॥ १२३॥

शिरोबस्ति धारण करनी हो तब रोगी कुछ खाय-पिये नहीं, भूखा ही रहे तो विशेष लाभ होता है। एक बार देकर बीचमें पाँच या सात दिनका अन्तर देकर शिरोबस्ति देनी चाहिए॥ १२३॥

शिरोबस्तिकर्मके अनन्तरकी क्रिया

विमोच्य शिरसो बस्तिं गृह्णीयाच्च समन्ततः।
ऊर्ध्वकायं ततः कोष्णनीरैः स्नानं समाचरेत्॥ १२४॥

समय पूरा हो जानेपर बस्तिको एक बारगी उतार ले, धीरे धीरे नहीं। बस्ति उतर जानेपर रोगीको खड़ा करके थोड़ा गरम पानीसे नहलावे॥ १२४॥

शिरोबस्ति देनेसे रोग कैसे दूर होते हैं?

अनेन दुर्जया रोगा वातजा यांति संक्षयम्।
शिरःकंपादयस्तेन सर्वकालेषु युज्यते॥ १२५॥

इस बस्तिके प्रभावसे दुर्जय शिरोरोग भी दूर हो जाते हैं। इस लिए लोगोंको चाहिए कि सब समय इसका उपयोग करें॥ १२५॥

कानमें औषधि डालनेकी विधि

स्वेदयेत्कर्णदेशं तु किंचिन्नुः पार्श्वशायिनः ।
मूत्रैः स्नेहै रसैः कोष्णैस्ततः कर्णं प्रपूरयेत् ॥ १२६ ॥

जिस रोगीको यह बस्ति देनी हो, उसे थोड़ा करवट सुलाकर उसके कानके आस-पाससे पसीना निकाले । फिर गोमूत्र, तेल तथा और कोई औषधि गरम करके कानमें डाल दे ॥ १२६ ॥

कानमें औषधि डालके कितनी देर रहने दे ?

कर्णं तु पूरितं रक्षेच्छतं पंच शतानि वा ।
सहस्रं वापि मात्राणां श्रोत्रकण्ठशिरोगदे ॥ १२७ ॥

कान, गला तथा मस्तकमें कोई रोग हो और उसके लिए यदि औषधि डाली जाय तो उस औषधिको सौ, पाँच सौ या हजार मात्रा तक कानमें रक्खे रहना चाहिए ॥ १२७ ॥

मात्राकी परिभाषा

स्वजानुनः करावर्तं कुर्याच्छोटिकया युतम् ।
एषा मात्रा भवेदेका सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥ १२८ ॥

अपने घुटनेकी चारों ओर हाथ फेरकर चुटकी बजावे, इसमें जितना समय लगता है, वह एक मात्रा कही जाती है । यह निश्चय सर्वत्रके लिए है ॥१२८॥

रसादिक तथा तैलादिकको कानमें डालनेका समय

रसाद्यैः पूरणं कर्णे भास्करेऽस्तमुपागते ॥ १२९ ॥

यदि कानमें कोई रसौषधी डालनी हो तो भोजन करनेके पहले डाले । यदि और किसी किस्मका तेल आदि डालना हो सूर्यास्तके बाद डालना चाहिए॥१२९॥

कर्णशूलनाशक औषधि

पीतार्कपत्रमाज्येन लिप्तमग्नौ प्रतापयेत् ।
तद्रसः श्रवणे क्षिप्तः कर्णशूलहरः परः ॥ १३० ॥

पककर पीले हो गये हों, ऐसे मदारके पत्तोंपर घी चुपड़कर आगपर गरम करे और उसका रस निचोड़कर कानमें डाले तो कर्णशूल रोग दूर हो जाता है ॥ १३० ॥

कर्णशूलनाशक मूत्रप्रयोग

कर्णशूलातुरे कोष्णवस्तमूत्रं ससैंधवम् ।
निक्षिपेत्तेन शाम्यंति शूलपाकादिका रुजः ॥ १३१ ॥

यदि बकरेके मूत्रमें सेंधानमक डाल गुनगुना कर ले और कानमें डाले तो कर्णशूल तथा किसी प्रकारके घावके कारण उत्पन्न कानकी पीड़ा दूर हो जाती है ॥ १३१ ॥

कर्णशूलनाशक प्रयोग

शृङ्गवेरं च मधुकं मधुसैंधवमामलम् ।
तिलपर्णीरसस्तैलं टंकणं निम्बुकद्रवम् ॥ १३२ ॥
कदुष्णं कर्णयोर्देयमेतद्वा वेदनापहम् ।

अदरखका रस, मुलहठी, मधु, सेंधा नमक, आँवले, तिलपर्णीका रस, सरसोंका तेल, सोहागा और नीमका रस, इन औषधियोंका रस इकट्ठा करके थोड़ा गरमकर कानमें डाले तो कानकी पीड़ा दूर हो जाती है ॥ १३२ ॥

कर्णशूलनाशक योग

कपित्थमातुलुंगाम्लशृंगवेररसैः शुभैः ॥ १३३ ॥
सुखोष्णैः पूरयेत्कर्णं कर्णशूलोपशांतये ।

कैथा, बिजौरा, आमलवेंत और अदरख, इन चार चीजोंके रसको एकत्रित-कर थोड़ा गरम करके कानमें डाले तो कानकी पीड़ा दूर हो जाती है ॥ १३३ ॥

कर्णशूलनाशक प्रयोग

अर्कांकुरानम्लपिष्टांस्तैलाक्ताँल्लवणान्वितान् ॥ १३४ ॥
संनिदध्यात्स्नुहीकांडे कोरिते तच्छदावृते ।
पुटपाकक्रमं कृत्वा रसैस्तच्च प्रपूरयेत् ॥ १३५ ॥
सुखोष्णैस्तेन शाम्यंति कर्णपीडाः सुदारुणाः ।

मदारकी मुलायम पत्तियोंको नीबूके रसमें घोंटकर उसमें थोड़ा-सा तिलका तेल और सेंधा नमक डालकर गोला बनावे । इसके बाद थूहरकी लकड़ीको भीतरसे पोली करके उसमें वह गोला रखकर ऊपरसे थूहरके ही पत्ते लपेटकर बाँध दे । उसके ऊपरसे गीली मिट्टी लपेटकर पुटपाककी विधिके अनुसार आँच दे । जब समझे औषधि पक गयी होगी तो गोला बाहर निकाल ले । फिर

उसके पत्ते आदि दूर कर दे और उसको लकड़ी समेत निचोड़कर रस निकाले और थोड़ा गरम करके कानमें डाले तो कानकी दारुण पीड़ा भी दूर हो जाती है ॥ १३४ ॥ १३५ ॥

कर्णशूलपर दीपिका तैल

महतः पंचमूलस्य कांडान्यष्टांगुलानि तु ॥ १३६ ॥
क्षौमेणावेष्ट्य संसिच्य तैलेनादीपयेत्ततः ।
यत्तैलं च्यवते तेभ्यः सुखोष्णं तेन पूरयेत् ॥ १३७ ॥
ज्ञेयं तद्दीपिकातैलं सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ।
एवं स्याद्दीपिकातैलं कुष्ठे देवतरौ तथा ॥ १३८ ॥

महापंचमूलमें गिनायी औषधियोंको आठ-आठ अंगुलकी लकड़ी लेकर रेशमी कपड़े या सूती ही कपड़ेमें लपेटकर तेलसे तर करे और आगसे जलावे। जलते समय लकड़ी सीधी कर दे, जिससे कि उसमेंसे तेलकी बूँदें टपकती रहें। वह तेल किसी पात्रमें इकट्ठा कर ले और थोड़ा गरम करके कानमें डाले तो कानकी पीड़ा तुरन्त दूर हो जाती है। यह दीपिका तेलके नामसे विख्यात है। इसी रीतिसे कूठ और देवदारुकी लकड़ी जलाकर भी जो तेल निकाला जाता, वह कर्णशूलको तत्काल दूर कर देता है ॥ १३६–१३८ ॥

कर्णशूलनाशक स्योनाकतैल

तैलं स्योनाकमूलेन मन्देऽग्नौ परिपाचितम् ।
हरेदाशु त्रिदोषोत्थं कर्णशूलं प्रपूरणात् ॥ १३९ ॥

स्योनाक (टेंटूकी) जड़के कल्कको चौगुने तिलके तेलमें डाले। फिर उसका चौगुना जल डालकर आगपर चढ़ा दे और मन्द आँचसे पकावे। जब सब चीजें जल जायँ और तेलमात्र अवशिष्ट रहे तो उतार ले और छानकर रख दे। इसके डालनेसे वात, पित्त और कफ, इन तीनोंके प्रकोपसे जायमान कर्णशूल दूर हो जाता है ॥ १३९ ॥

कर्णनादनाशक तैल

कल्कक्वाथेन यष्ट्याह्वकाकोलीमाषधान्यकैः ।
सूकरस्य वसां पक्त्वा कर्णनादार्तिहारिणी ॥ १४० ॥

मुलहठी, काकोली, उड़द और धनियाँ इन औषधियोंका काढ़ा तैयार करे

और उस काढ़ेमें इन्हीं चारोंका कल्क डाले। फिर सुअरकी चर्बी डालकर आग-पर चढ़ा दे जब केवल स्नेहमात्र अवशिष्ट बचे तो उतार ले। इसे कानमें डालनेसे कर्णनाद (कानमें धायँ-धायँ शब्द होना) रोग दूर हो जाता है ॥१४०॥

कर्णनादादिशामक तैल

सर्जिकामूलकं शुष्कं हिंगु कृष्णासमन्वितम्।
शतपुष्पा च तैस्तैलं पक्वं सूक्तं चतुर्गुणम् १४१॥
प्रणादं शूलबाधिर्यं स्रावं कर्णस्य नाशयेत्।

सज्जीखार, सूखी मूली, हींग, पीपली और सौंफ, इन पाँच औषधियों-को समान भागके अनुसार एकत्रितकर कल्क तैयार करे। फिर कल्ककी अपेक्षा चौगुना तिलतैल और तेलका चौगुना सिरका डालकर आगपर चढ़ावे। जब केवल तेलमात्र अवशिष्ट रहे तो उतारकर छान ले। इसे कानमें डालनेसे कर्णनाद, कर्णशूल, बहरापन तथा कान बहनेका रोग दूर हो जाता है॥ १४१॥

बहरेपनको दूर करनेके लिए अपामार्गक्षार तैल

अपामार्गक्षारजले तत्क्षारं कल्कितं क्षिपेत्॥ १४२॥
तेन पक्वं जयेत्तैलं बाधिर्यं कर्णनादकम्।

अपामार्ग (चिचिड़ीका) क्षार निकालकर क्षारकी अपेक्षा चौगुना पानी और उसका भी चौगुना तिलका तेल डालकर आँच दे। जब पानी जल जाय और तेल शेष रहे तो उतारकर छान ले। इसे कानमें डालनेसे कर्णनाद और बहरापन दूर हो जाता है॥ १४२॥

कर्णनाडीनाशक शम्बूक तैल

शम्बूकस्य तु मांसेन पचेत्तैलं तु सार्षपम्॥ १४३॥
तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति।

छोटे शशक (खरहे)का मांस लेकर मांसकी अपेक्षा चौगुने सरसोंके तेलमें डालकर आँचपर चढ़ावे। जब पक जाय तो उसमेंसे मांस निकाल ले और तेलको छान-कर रख छोड़े। इसे कानमें डालनेसे कानका फोड़ा शान्त हो जाता है॥ १४३॥

कर्णस्राव दूर करनेके लिए औषधि

चूर्णं पञ्चकषायाणां कपित्थरसमेव च॥ १४४॥
कर्णस्रावे प्रशंसंति पूरणं मधुना सह।

आगे कहे जानेवाले पंचकषायका चूर्ण करे और कैथेके फलोंके रसमें थोड़ी-सी शहदके साथ इस चूर्णको डालकर कानमें डाले तो कानका बहना रुक जाता है ॥ १४४ ॥

पंचकषायसंज्ञक वृक्षोंके नाम

तिन्दुकान्यभया लोध्रः समंगा चामलक्यपि ॥ १४५ ॥
ज्ञेयाः पञ्च कषायास्तु कर्मण्यस्मिन्भिषग्वरैः ।

तेंदु, हर्रा, लोध, मंजीठ और आँवला ये पाँचों पंचकषायके नामसे प्रसिद्ध है। पीछे पंचकषाय लेनेके लिए जो लिख आये हैं, सो इन्हें ही लेना चाहिए ॥ १४५ ॥

कर्णस्रावनामक औषधि

सर्जिकाचूर्णसंयुक्तं बीजपूररसं क्षिपेत् ॥ १४६ ॥
कर्णस्रावरुजो दाहाः प्रणश्यन्ति न संशयः ।

सज्जीखारका चूर्ण बिजौरेके रसमें मिलाकर कानमें डालनेसे कर्णस्रावके कारण होनेवाली पीड़ा और दाह शान्त हो जाती है । इसमें कोई संशय नहीं है॥१४६॥

कान बहनेपर औषधि

आम्रजंबूप्रवालानि मधूकस्य वटस्य च ॥ १४७ ॥
एभिः संसाधितं तैलं पूतिकर्णोपशांतिकृत् ।

आम, जामुन, बरगद और महुआ, इन चार वृक्षोंकी कोमल पत्तियोंको पीसकर कल्क करे और कल्ककी अपेक्षा चौगुना तिलतेल डालकर अग्निपर चढ़ा दे । जब सब चीजें जल जायँ और तेलमात्र अवशिष्ट रहे तो छान ले। इस तेलको कानमें डालनेसे कानोंका बहना बन्द हो जाता है ॥ १४७ ॥

कानके कीड़े दूर करनेका तेल

पूरणं हरितालेन गवां मूत्रयुतेन च ॥ १४८ ॥
अथवा सार्षपं तैलं कर्णकीटहरं परम् ।

गोमूत्रमें हड़ताल डालकर गरम करके कानमें डाले या कडुआ तेल डाले तो कानके कीड़े मर जाते हैं ॥ १४८ ॥

कानका कीड़ा दूर करनेका दूसरा उपाय

स्वरसं शिग्रुमूलस्य सूर्यावर्तरसं तथा ॥ १४९ ॥

त्र्यूषणं चूर्णितं चैव कपिकच्छूरसं तथा।
कृत्वैकत्र क्षिपेत्कर्णे कर्णकीटहरं परम् ॥ १५०॥

सहँजनकी छालका रस, हुलहुलका रस, सोंठ–मिर्च–पीपली इनका चूर्ण तथा केवाँचकी जड़का रस, इनको इकट्ठा करके त्रिकुटाके साथ कानमें डाले तो कानके कीड़े दूर हो जाते हैं ॥ १४९ ॥ १५० ॥

तीसरा प्रयोग

सद्यो मद्यं निहन्त्याशु कर्णकीटं सुदारुणम्।
सद्यो हिंगु निहन्त्याशु कर्णकीटं सुदारुणम् ॥ १५१ ॥

मदिरा तथा हींग, इन दोनोंमेंसे कोई भी चीज कानमें डाल दी जाय तो कानके कीड़े तुरन्त मर जाते हैं ॥ १५१ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायामुत्तरखण्डे चिकित्सास्थाने लेपविधिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

अथ द्वादशोऽध्यायः।

रक्तस्राव करनेकी विधि

शोणितं स्रावयेज्जंतोरामयं प्रसमीक्ष्य च।
प्रस्थं प्रस्थार्धकं वापि प्रस्थार्धार्धमथापि वा ॥ १ ॥

रोगीके रोगको देखकर उसकी योग्यताके अनुसार एक प्रस्थ, आधा प्रस्थ अथवा चौथाई प्रस्थ रुधिर निकालना चाहिए ॥ १ ॥

रक्तस्रावका समय

शरत्काले स्वभावेन कुर्याद्रक्तस्रुतिं नरः।
त्वग्दोषग्रन्थिशोथाद्या न स्यू रक्तस्रुतेर्यतः ॥ २ ॥

यदि शरीरसे रुधिर निकाल दिया जाता तो चमड़ेके दोष, ग्रन्थि तथा शोथ आदि रोग दूर हो जाते हैं। अतएव स्वभावतः शरत्कालमें नश्तर लगाकर रुधिर निकालना चाहिए ॥ २ ॥

रक्तका स्वरूप

मधुरं वर्णतो रक्तमशीतोष्णं तथा गुरु ।
शोणितं स्निग्धविस्त्रं स्याद्विदाहश्चास्य पित्तवत् ॥ ३ ॥

रुधिरका रस मीठा, वर्ण लाल और अशीतोष्ण यानी न ठंढा न गरम है । यह भारी, चिकना तथा आमगन्धमय है और पित्तके समान इसमें दाहशक्ति रहती है ॥ ३ ॥

रुधिरमें पृथिव्यादि तत्त्वोंके गुण

विस्त्रता द्रवता रागश्चलनं विलयस्तथा ।
भूम्यादिपञ्चभूतानामेते रक्तगुणाः स्मृताः ॥ ४ ॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, इन पाँचों तत्त्वोंके गुण रक्तमें विद्यमान रहते हैं । जैसे—विस्त्रता अर्थात् आमगन्धिता पृथ्वीका गुण, द्रवता, जल तथा लालिमा अग्निका गुण, चलन वायुका गुण और विलीनता यह आकाशका गुण है ॥ ४ ॥

दूषित रुधिरके लक्षण

रक्ते दुष्टे वेदना स्यात्पाको दाहश्च जायते ।
रक्तमण्डलता कण्डूः शोथश्च पिटिकोद्गमः ॥ ५ ॥

जिस मनुष्यका रुधिर दूषित हो जाता तो उसके शरीरमें पीड़ा होने लगती, अंग पकेसे मालूम देते, दाह उठती रहती, शरीरमें जहाँ-तहाँ चकत्ते पड़ जाते, खुजली तथा सूजन मालूम पड़ने लगती और बहुत-सी फुन्सियें निकल आती हैं ॥ ५ ॥

रुधिरवृद्धिके लक्षण

वृद्धे रक्तांगनेत्रत्वं शिराणां पूरणं तथा ।
गात्राणां गौरवं निद्रा मदो दाहश्च जायते ॥ ६ ॥

जब कि शरीरमें रुधिर बढ़ता तो शरीर तथा आँख लाल होती, नाड़ियें पूर्ण हो जातीं, देह भारी जान पड़ती, निद्रा, मद तथा दाह आदि उपद्रव खड़े हो जाते हैं ॥ ६ ॥

क्षीण रुधिरके लक्षण

क्षीणेऽम्लमधुराकांक्षा मूर्च्छा च त्वचि रूक्षता ।
शैथिल्यं च शिराणां स्याद्वाताद्दुन्मार्गगामिता ॥ ७ ॥

जब रुधिर क्षीण होने लगता तो खट्टे पदार्थ और मीठी चीजें खानेको विशेष इच्छा होती, कभी-कभी मूर्छा आ जाती, शरीरकी चमड़ी रूखी हो जाती, नाड़ियें ढीली पड़ जातीं और वायु ऊपरके मार्गसे चलने लगती है ॥ ७ ॥

वायुसे दूषित रुधिरके लक्षण

अरुणं फेनिलं रूक्षं परुषं तनु शीघ्रगम् ।
अस्कन्दि सूचि निस्तोदं रक्तं स्याद्वातदूषितम् ॥ ८ ॥

जो रक्त वातसे दूषित होता,वह लाल रंगका झागदार होता, उसमें रूखापन, कठोरता, हल्कापन और शीघ्रता विद्यमान रहती और शरीरमें ऐसी पीड़ा हुआ करती है मानों कोई सुई चुभा रहा है ॥ ८ ॥

पित्तसे दूषित रुधिरके लक्षण

पित्तेन पीतं हरितं नीलं श्यावं च विस्रकम् ।
अस्कंद्युष्णं मक्षिकाणां पिपीलीनामनिष्टकम् ॥ ९ ॥

जो रुधिर पित्तसे दूषित होता, उसका रंग पीला, हरा, नीला या काला होता है । उसे चींटी तथा मक्खियें नहीं खातीं ॥ ९ ॥

कफसे दूषित रुधिरके लक्षण

शीतं च बहुलं स्निग्धं गैरिकोदकसन्निभम् ।
मांसपेशीप्रभं स्कंदि मंदगं कफदूषितम् ॥ १० ॥

जो रुधिर कफसे दूषित होता वह छूनेमें ठंढा मालूम पड़ता, उसमें थोड़ी चिकनाहट मौजूद रहती, गेरूके पानीकी तरह उसका रंग होता अथवा मांसपेशी-के समान उसका स्वरूप होता और वह भारी तथा मंद गतिवाला होता है ॥१०॥

द्विदोष तथा त्रिदोषसे दूषित रुधिरके लक्षण

द्विदोषदुष्टसंसृष्टं त्रिदुष्टं पूतिगन्धकम् ।
सर्वलक्षणसंयुक्तं कांजिकाभं च जायते ॥ ११ ॥

दो दोषोंसे दूषित रुधिरमें दोनोंके लक्षण विद्यमान रहते, तीन दोषोंसे दूषित रक्तसे सड़ी दुर्गन्धि आती और उसमें तीनों दोषोंके लक्षण विद्यमान रहते और कांजीके समान उसका रंग रहता है ॥ ११ ॥

विषसे दूषित रुधिरके लक्षण

विषदुष्टं भवेच्छ्यावं नासिकोन्मागगं तथा ।
विस्रं कांजिकसंकाशं सर्वकुष्ठहरं बहु ॥ १२ ॥

विषसे दूषित रक्त काले रंगका होता, वह कभी-कभी नाकके मार्गसे गिरने लगता, उसमें आमगन्ध विद्यमान रहता और कांजीके रस जैसा वर्ण होता है। इस रुधिरसे नाना प्रकारके कुष्ठ जायमान होते हैं ॥ १२ ॥

शुद्ध रुधिरके लक्षण

इंद्रगोपप्रभं ज्ञेयं प्रकृतिस्थमसंहतम् ।

सर्वतरहसे शुद्ध रुधिरका रंग इन्द्रगोप नामक बरसाती कीड़ेके समान लाल रहता और पतला होता है।

रुधिरस्रावके योग्य रोगी

शोथे दाहेऽङ्गपाके च रक्तवर्णेऽसृजः स्रुतौ ॥ १३ ॥
वातरक्ते तथा कुष्ठे सपीडे दुर्जयेऽनिले ।
पाणिरोगे श्लीपदे च विषदुष्टे च शोणिते ॥ १४ ॥
ग्रंथ्यर्बुदापचीक्षुद्ररोगरक्ताधिमंथिषु ।
विदारीस्तनरोगेषु गात्राणां सादगौरवे ॥ १५ ॥
रक्ताभिष्यंदतंद्रायां पूतिघ्राणस्य देहके ।
यकृत्प्लीहविसर्पेषु विद्रधौ पिटिकोद्गमे ॥ १६ ॥
कर्णौष्ठघ्राणवक्त्राणां पाके दाहशिरोरुजि ।
उपदंशे रक्तपित्ते रक्तस्रावः प्रशस्यते ॥ १७ ॥

शोथ, दाह, अंगपाक, ये व्याधियें जिसके हो गयी हों, वह और जिसका शरीर लाल हो गया हो, जिसकी नाकसे रुधिर बहने लगा हो और वातरक्त, कुष्ठ, दुर्जय वातरोग, हाथका रोग, श्लीपद, विषदुष्ट, रुधिररोग, ग्रंथि, अर्बुद, अपची, क्षुद्ररोग, रक्ताधिमंथ, विदारीरोग, स्तनरोग, अंगोंकी शिथिलता, शरीरका भारी रहना, रक्ताभिष्यन्द, तन्द्रा, नाकसे दुर्गन्ध आना, यकृत्, प्लीहा, विसर्प, विद्रधि, शरीरमें फुन्सियें निकलना, कान, होंठ तथा मुखका पकना, दाह, मस्तकपीड़ा, उपदंश एवं रक्तपित्त, ये व्याधियें जिसके शरीरमें विद्यमान हों, उन्हींका रुधिर निकालना चाहिए ॥ १३–१७ ॥

रुधिर निकालनेकी विधि

एषु रोगेषु शृंगैर्वा जलौकालाबुकैरपि ।
अथवापि शिरामोक्षैः कुर्याद्रक्तस्रुतिं नरः ॥ १८ ॥

वैद्यको चाहिए कि ऊपर गिनाये हुए रोगोंमें सींगी, जोंक या तुम्बी लगाकर अथवा नश्तर देकर रुधिर निकाले ॥ १८ ॥

फस्त खोलनेके योग्य प्राणी

न कुर्वीत शिरामोक्षं कृशस्यातिव्यवायिनः।
क्लीवस्य भीरोर्गर्भिण्याः सूतिकापांडुरोगिणः ॥ १९ ॥
पंचकर्मविशुद्धस्य पीतस्नेहस्य चार्शसाम्।
सर्वांगशोथयुक्तानामुदरश्वासकासिनाम् ॥ २० ॥
छर्द्यतीसारयुक्तानामतिस्विन्नतनोरपि।
ऊनषोडशवर्षस्य गतसप्ततिकस्य च ॥ २१ ॥
आघातस्रुतरक्तस्य शिरामोक्षो न शस्यते।
एषां चात्ययिके योगे जलौकाभिस्तु निर्हरेत् ॥ २२ ॥
तथापि विषयुक्तानां शिरामोक्षोऽपि शस्यते।

दुर्बल, कामी, नपुंसक, डरपोक, गर्भिणी स्त्री, पांडुरोगी, जो पीछे बतलाये पंचकर्मसे जो शुद्ध किया गया हो, जिसने स्नेहपाक किया हो, जिसका सारा शरीर सूज गया हो, जिसे उदररोग, श्वास, खाँसी, वमन तथा अतिसार आदि रोग हों, जिसके शरीरसे पसीना निकाला जा चुका हो, जिसकी उमर सोलह वर्ष से कम हो, जो सत्तर बरसके ऊपरकी अवस्थाका हो, चोट लगनेके कारण जिसकी नाकसे रुधिर गिरने लग गया हो, इतने प्रकारके रोगियोंको नश्तर नहीं देना चाहिए। इन रोगियोंका रुधिर निकालना अत्यावश्यक मालूम पड़े तो जोंक लगाकर रुधिर निकाला जा सकता है ॥ १९–२२ ॥

वातादिसे दूषित रक्त निकालनेकी विधि

गोशृंगेण जलौकाभिरलाबुभिरपि त्रिधा ॥ २३ ॥
वातपित्तकफैर्दुष्टं शोणितं स्रावयेद्बुधः।
द्विदोषाभ्यां तु संसृष्टं त्रिदोषैरपि दूषितम् ॥ २४ ॥
शोणितं स्रावयेद्युक्त्या शिरामोक्षैः पदैस्तथा।

वातसे दूषित रुधिरको गौकी सींगकी सींगी लगाकर रुधिर निकाले। पित्तसे दूषित रुधिरको जोंक लगाकर और कफसे दूषित रुधिरको तुम्बी लगाकर रुधिर

निकालना चाहिये । किन्तु जो रुधिर दो या तीन दोषोंसे दूषित हो, उसे सम्हाल-कर नश्तर लगावे या उस्तरेकी सहायतासे रुधिर निकाल ले ॥ २३ ॥ २४ ॥

सींगी आदिसे रुधिर खींचनेका प्रमाण

गृह्णाति शोणितं शृंगं दशांगुलमितं बलात् ॥ २५ ॥
जलौकाहस्तमात्रं च तुंबी च द्वादशांगुलम् ।
पदमंगुलमात्रेण शिरासर्वांगशोधिनी ॥ २६ ॥

सींगी दस अंगुल तकके रुधिरको बलपूर्वक खींचती, जोंक हाथभर तककी दूरीका रुधिर खींचतीं, तुम्बी बारह अंगुल तकका रुधिर खींच लेती और उस्तरा एक अंगुलका रुधिर खींचता हैं। लेकिन नश्तर लगानेसे सारे शरीरका शोधन हो जाया करता है ॥ २५ ॥ २६ ॥

रुधिर नहीं निकलनेका कारण

शीते निरन्ने मूर्छातितन्द्राभीतिमदश्रमैः ।
युतानां न स्रवेद्रक्तं तथा विण्मूत्रसंगिनाम् ॥ २७ ॥

जाड़ेके दिनोंमें, जिसने भोजन नहीं किया है, जिसे मूर्छा, तन्द्रा, भय, मद तथा थकावटकी शिकायत होती, ऐसे मनुष्यके शरीरसे रक्त निकालनेपर भी नहीं निकलता ॥ २७ ॥

रुधिर न निकलनेपर उपाय

अप्रवर्तिनि रक्ते च कुष्ठचित्रकसैन्धवैः ।
मर्दयेद्व्रणवक्त्रं च तेन सम्यक्प्रवर्तते ॥ २८ ॥

यदि यत्न करनेपर भी रुधिर बाहर न आवे तो कूठ, चित्रक तथा सेंधा नमक इन तीन चीजोंका चूर्ण लेकर व्रणके मुखपर मले तो अच्छी तरह रुधिर निक-लने लग जाता है ॥ २८ ॥

रुधिर निकालनेके समयकी मर्यादा

तस्मान्न शीते नात्युष्णे न स्विन्ने नातितापिते ।
पीत्वा यवागूं तृप्तस्य शोणितं स्रावयेद् बुधः ॥ २९ ॥

इस कारण और ऐसे समय जब कि न विशेष सर्दी हो न गर्मी और ऐसे मनुष्योंके जिन्होंने पसीना न निकाला हो और यवागू पीसकर तृप्त हों, उन्हींके शरीरसे रुधिर निकाले ॥ २९ ॥

अधिक रुधिर निकलनेका कारण

अतिस्विन्नस्योष्णकाले तथैवातिशिराव्यधात् ।
अतिप्रवर्तते रक्तं तत्र कुर्यात्प्रतिक्रियाम् ॥ ३० ॥

जिसके शरीरसे विशेष पसीना निकालकर गरमीके ऋतुमें रुधिर निकाला जाता अथवा फस्त खोलते समय नस कट जाती तो बहुत अधिक रक्त निकलने लगता है । उसके लिये आगे बतलायी विधिके अनुसार प्रतीकार करना चाहिए ॥ ३० ॥

अधिक रुधिर निकलनेपर औषधि

अतिप्रवृत्ते रक्ते च लोध्रसर्जरसांजनैः ।
यवगोधूमचूर्णैर्वा धवधन्वनगैरिकैः ॥ ३१ ॥
सर्पनिर्मोकचूर्णैर्वा भस्मना क्षौमवस्त्रयोः ।
मुखं व्रणस्य बद्ध्वा च शीतैश्चोपचरेद् व्रणम् ॥ ३२ ॥
विध्येदूर्ध्वं शिरां तां वा दहेत्क्षारेण वाऽग्निना ।
व्रणं कषायः संधत्ते रक्तं स्कन्दयते हिमम् ॥ ३३ ॥
व्रणास्यं पाचयेत्क्षारो दाहः संकोचयेच्छिराम् ।

यदि ऊपर बतलाये कारणोंसे खून ज्यादा निकलने लगे तो लोध, राल और रसौत, इन तीन चीजोंका चूर्ण अथवा जौ तथा गेहूँका आटा या धामिन, जवासा और गेरू अथवा साँपकी केंचुलीका चूर्ण या रेशम तथा किसी सूती कपड़ेकी राख, इनमेंसे जो मौकेसे मिल जाय भरकर व्रणका मुख बन्द कर दे और चन्दन आदि ठंढी चीजोंका उपचार करे तो रुधिरका बहना बन्द हो जायगा । यदि इतना उपाय करनेपर भी रुधिर न रुके तो जिस नससे रुधिर बह रहा हो, उसमें ऊपरकी ओर दूसरा नश्तर दे अथवा आगसे उस नसको दाग दे । क्योंकि कसैली चीजें व्रणका मुख पकड़ लेती हैं, शीतोपचारसे रुधिरका प्रवाह रुकता है, क्षारसे पकता है और अग्निसे दागनेपर नसें सिकुड़ती हैं ॥ ३१-३३ ॥

दागनेसे दूर होनेवाले रोग

वामांडशोथे दक्षस्य परस्यांगुष्ठमूलजाम् ॥ ३४ ॥
दहेच्छिरां व्यत्यये तु वामांगुष्ठशिरां दहेत् ।
शिरादाहप्रभावेण शुष्कशोथः प्रशाम्यति ॥ ३५ ॥

विषूच्यां पाददाहेन जायतेऽग्नेः प्रदीपनम् ।
संकुचंति यतस्तेन रसश्लेष्मवहाः शिराः ॥ ३६ ॥
यदा वृद्धिर्यकृत्प्लीह्नोः शिशोः सञ्जायतेऽसृजः ।
तदा तत्स्थानदाहेन संकुचंत्यसृजः शिराः ॥ ३७ ॥

यदि किसीके बायें अण्डकोशमें सूजन हो तो दहिने हाथके अंगुठेकी जड़में दाग दे और दहिने अण्डकोशमें सूजन हो तो बायें हाथके अंगुठेकी जड़में दाग दे तो अण्डकोशकी सूजन दूर हो जाती है । यदि किसीको हैजा हो गया हो तो कोई लोहकी पत्ती अथवा कलछी गरम करके उसके पैरके तलवोंको दागे । ऐसा करनेसे उसकी पाचनशक्ति तीव्र हो उठेगी और रस तथा श्लेष्मावाहिनी नाड़ियें संकुचित हो जायँगी और हैजेका रोग दूर हो जायगा । यदि किसी बच्चेकी पिलही या कलेजा बढ़ आया हो तो जिस जगह कलेजा और पिलही रहती है । उस स्थानको दाग दे तो दोनों संकुचित हो जायँगे ॥ ३४–३७ ॥

सब दूषित रक्त न निकाल दे

रक्तदुष्टेऽवशिष्टेऽपि व्याधिर्नैव प्रकुप्यति ।
अतः स्राव्यं सावशेषं रक्तेनातिक्रमो हितः ॥ ३८ ॥
आंध्यमाक्षेपकं तृष्णां तिमिरे शिरसो रुजम् ।
पक्षाघातं श्वासकासौ हिक्कां दाहं च पांडुताम् ॥ ३९ ॥
कुरुते विस्रुतं रक्तं मरणं वा करोति च ।

रुधिर, निकालते समय शरीरका सब दूषित रुधिर न निकाल ले, बल्कि कुछ रहने भी दे । थोड़ा रुधिर रह जानेसे भी फिर वह रोग नहीं उमड़ता । यदि सब रुधिर निकाल लिया जाता तो अन्धापन, आक्षेपक, तृष्णा, मस्तकशूल, पक्षाघात (लकवा), श्वास, खाँसी, हिचकी, दाह तथा पाण्डुरोग, ये उपद्रव खड़े हो जाते और वह रोगी मरणासन्न हो जाता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

रुधिरसे देहकी उत्पत्ति आदिका विधान

देहस्योत्पत्तिरसृजा देहस्तेनैव धार्यते ॥ ४० ॥
विना तेन व्रजेज्जीवो रक्षेद्रक्तमतो बुधः ।

रुधिरसे ही देह बनती और इसीसे शरीरकी रक्षा होती है । रुधिरके बिना

जीवन नहीं रह सकता। इस लिए समझदार मनुष्यको उचित है कि रुधिरको रक्षा करे॥ ४०॥

रुधिर निकालनेके बाद दोष कुपित होनेपर उसका प्रतीकार

शीतोपचारैः कुपिते स्रुतरक्तस्य मारुते॥ ४१॥
कोष्णेन सर्पिषा शोथं सव्यथं परिषेचयेत्।

रुधिर निकालनेके बाद यदि व्रणकी जगहपर पित्तका प्रकोप हो जाय तो चन्दन आदि शीतल उपचार करे और यदि वातका प्रकोप हो तथा व्रणके स्थानपर पीडायुक्त सूजन हो तो उस जगह थोड़ासा गरम घी लगा दे॥ ४१॥

रुधिर निकल जानेपर पथ्य

क्षीणस्यैणशशोरभ्रहरिणच्छागमांसजः॥ ४२॥
रसः समुचितः पाने क्षीरं वा षष्टिका हिताः।

यदि रुधिर निकालनेके कारण रोगी क्षीण हो गया हो तो उसे हरिण या खरगोशके मांसका रस (शोरवा) बनाकर पिलावे या साठी चावलकी खीर अथवा गौका दूध पीनेको दे॥ ४२॥

अच्छी तरह रुधिर निकलनेके लक्षण

पीडाशांतिर्लघुत्वं च व्याधेरुद्रेकसंक्षयः॥ ४३॥
मनःस्वास्थ्यं भवेच्चिह्नं सम्यग्विस्राविते सृजि।

जिस रोगीके शरीरसे भली भाँति दूषित रुधिर निकल जाता, उसका शरीर हल्का-सा मालूम पड़ता, उभड़ता हुआ रोग दब जाता और चित्त प्रसन्न मालूम पड़ता है॥ ४३॥

रुधिर निकालनेपर त्याज्य पदार्थ

व्यायाममैथुनक्रोधशीतस्नानप्रवातकात्॥ ४४॥
एकाशनं दिवानिद्रा क्षाराम्लकटुभोजनम्।
शोकं वादमजीर्णं च त्यजेदाबलदर्शनात्॥ ४५॥

जिसका रुधिर निकाला गया हो, वह परिश्रम, मैथुन, क्रोध, शीतल जलसे स्नान, विशेष हवाखोरी, कई दिनों तक एक प्रकारके अन्नका भोजन, दिनमें शयन, जवाखार, खारे एवं खट्टे पदार्थका भक्षण, शोक और वादविवाद, तब

तकके लिए इनका परित्यागकर दे जब तक कि शरीरमें बल न आ जाय ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरेण विरचितायां संहितायामुत्तरखण्डे चिकित्सास्थाने रक्तमोक्षणविधिवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अथ त्रयोदशोऽध्यायः ।

नेत्रके उपचार

सेक आश्च्योतनं पिण्डी विडालस्तर्पणं तथा ।
पुटपाकोऽञ्जनं चैभिः कल्कैर्नेत्रमुपाचरेत् ॥ १ ॥

सेक, आश्च्योतन, पिंडी, विडाल, तर्पण, पुटपाक और अंजन, ये इतने उपाय नेत्ररोग दूर करनेके लिये कहे गये हैं । इनसे या पीछे जो कल्क द्वारा उपचार करनेकी क्रिया बतला आये हैं, उससे करे ॥ १ ॥

सेक

सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वस्मिन्नयने हितः ।
मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेयश्चतुरंगुलम् ॥ २ ॥

रोगीके नेत्र बन्द कराके दूध, घी तथा रस आदिकी धार चार अंगुल ऊपरसे डालनेकी क्रिया सेकक्रिया कही जाती है ॥ २ ॥

उस सेककी स्नेहादि भेदसे तीन विधियाँ

स चापि स्नेहनो वाते रक्तपित्ते च रोपणः ।
लेखनश्च कफे कार्यस्तस्य मात्राधुनोच्यते ॥ ३ ॥

उसमें भी यदि नेत्रमें कोई वातव्याधि हो तो स्नेहन सेक यानी घी-दूध आदिकी धार दे । रक्तपित्तके प्रकोपसे यदि कोई रोग उत्पन्न हुआ हो तो रोपण सेक अर्थात् लोध-मुलहठी आदिको पानी या दूधमें पीसकर धार दे और कफके प्रकोपसे यदि कोई व्याधि उत्पन्न हुई हो तो लेखन सेक अर्थात् सोंठ-मिर्च आदिको पानीमें पीसकर या काढ़ा करके उसकी धार देनी चाहिए ॥ ३ ॥

सेककी मात्रा

षड्वाक्शतैः स्नेहनेषु चतुर्भिश्चैव रोपणे।
वाक्छतैश्च त्रिभिः कार्यः सेको लेखनकर्मणि ॥ ४ ॥

यदि स्नेहन सेकक्रियाकी जा रही हो तो जितनी देरमें छः सौ तक की गिनती गिनी जाय तब तक, रोपक्रियामें चार सौ और लेखनक्रियामें तीन सौको गिनती गिनी जाय, उतने समय तक धार देते रहना चाहिए ॥ ४ ॥

सेकका समय

कार्यस्तु दिवसे सेको रात्रौ चात्ययिके गदे।

सेकक्रिया विशेषकर दिनमें ही करे और यदि रोग बहुत बढ़ गया हो तो रात्रिको भी करे।

वाताभिष्यंदनाशक औषधि

एरंडत्वक्पत्रमूलैः शृतमाजं पयो हितम् ॥ ५ ॥
सुखोष्णं सेचनं नेत्रे वाताभिष्यंदनाशनम्।

रेंड़की छाल, पत्ते तथा जड़, इन तीनोंको एकत्रित करके बकरीके दूधमें पकावे। फिर जब वह कुछ गुनगुना-सा रहे तो उसकी धार दे। ऐसा करनेसे वाताभिष्यन्द रोग दूर हो जाता है ॥ ५ ॥

वाताभिष्यंदनाशक दूसरा सेक

परिषेको हितो नेत्रे पयः कोष्णं ससैंधवम् ॥ ६ ॥
रजनीदारुसिद्धं वा सैंधवेन समन्वितम्।
वाताभिष्यंदशमनं हितं मारुतपर्यये ॥ ७ ॥
शुष्काक्षिपाके च हितमिदं सेचनकं तथा।

बकरीके दूधमें सेंधा नमक मिलावे और गरम करके उसकी धार आँखोंपर डाले अथवा हल्दी, देवदारु और सेंधानमक, इनका चूर्ण डालकर दूधके साथ गरम करे और नेत्रोंपर धार डाले। ऐसा करनेसे वाताभिष्यन्द, वातविपर्यय और शुष्काक्षि, ये तीनों रोग शान्त हो जाते हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥

रक्तपित्त तथा अभिघातशामक सेक

शाबरं मधुकं तुल्यं घृतभृष्टं सुचूर्णितम् ॥ ८ ॥
छागक्षीरं घृतं सेकात्पित्तरक्ताभिघातजित्।

लोध और मुलहठी, इन दो वस्तुओंको समान भागके हिसाबसे एकत्रित करके बकरीके दूधमें डालकर नेत्रोंपर धार डाले। ऐसा करनेसे पित्तविकार दूर हो जाते हैं ॥ ८ ॥

रक्ताभिष्यन्दनाशक सेक

त्रिफलालोध्रयष्टीभिः शर्कराभद्रमुस्तकैः ॥ ९ ॥
पिष्टैः शीतांबुना सेको रक्ताभिष्यन्दनाशनः ।

त्रिफला, लोध, मुलहठी, शक्कर और भद्रमोथा, इन चीजोंको समान भागके हिसाबसे इकट्ठी करके ठंढे पानीमें पीसे और उस पानीसे नेत्रोंपर धार दे तो रक्ताभिष्यन्द रोग दूर हो जाता है ॥ ९ ॥

रक्ताभिष्यन्दपर दूसरा सेक

लाक्षामधुकमंजिष्ठालोध्रकालानुसारिवाः ॥ १० ॥
पुण्डरीकयुतः सेको रक्ताभिष्यन्दनाशनः ।

लाख, मुलहठी, मंजीठ, लोध, सारिवा तथा सफेद कमल, इन सबको इकट्ठा करके जलमें पीसे और उस पानीसे नेत्रोंपर धार दे तो रक्ताभिष्यन्द रोग दूर हो जाता है ॥ १० ॥

नेत्रशूलपर सेक

श्वेतलोध्रं घृते भृष्टं चूर्णितं पटविस्रुतम् ॥ ११ ॥
उष्णांबुना विमृदितं सेकाच्छूलन्नमम्बके ।

श्वेत लोधको घीमें भूनकर चूर्ण करे और कपड़छान करके गरम जलमें पीसे और उस जलसे नेत्रोंपर धार दे तो नेत्रोंकी पीड़ा दूर हो जाती है ॥११॥

आश्च्योतनके लक्षण

अथ ह्याश्च्योतनं कार्यं निशायां न कथंचन ॥ १२ ॥
उन्मीलितेऽक्षिण दृङ्मध्ये विंदुभिद्व्यंगुलाद्धितम् ।

आँखें खोलकर दूध तथा काढ़े आदिकी बूँदें जो दो अंगुलकी दूरीसे डाली जातीं, उसे लोग आश्च्योतनक्रिया कहते हैं ॥ १२ ॥

लेखनादि आश्च्योतनमें बिन्दु डालनेका प्रमाण

बिन्दवोऽष्टौ लेखनेषु स्नेहने दश बिन्दवः ॥ १३ ॥

रोपणे द्वादश प्रोक्तास्ते शीते कोष्णरूपिणः ।
उष्णे च शीतरूपाः स्युः सर्वत्रैवैष निश्चयः ॥ १४ ॥

लेखनकर्ममें आठ बूँदें, स्नेहकर्ममें दस बूँदें और रोपणकर्ममें नेत्रसम्बन्धी औषधि बारह बूँद डाली जाती है। यदि गर्मीके दिन हों तो वे बूँदें ठंढी ही डाली जातीं और शीतऋतुमें कुछ गरम करके डालनी होती हैं। यह नियम सब जगहके लिये है ॥ १३ ॥ १४ ॥

वातादिकोंमें आश्च्योतन देनेकी योजना

वाते तिक्तं तथा स्निग्धं पित्ते मधुरशीतलम् ।
तिक्तोष्णरूक्षं च कफे क्रमादाश्च्योतनं हितम् ॥ १५ ॥

वातज रोगोंमें तिक्त तथा स्निग्ध, पित्तरोगमें मधुर तथा शीतल और कफ रोगमें कटु, उष्ण तथा रूक्ष आश्च्योतनकर्म करना चाहिए। इस रीतिसे आश्च्योतनकर्म करनेपर लाभ होता है ॥ १५ ॥

आश्च्योतनकी मात्राका प्रमाण

आश्च्योतनानां सर्वेषां मात्रा स्याद्वाक्छतं हिता ।
निमेषोन्मेषणं पुंसामंगुल्योश्छोटिकाथवा ॥ १६ ॥
गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृता बुधैः ।

समस्त आश्च्योतनक्रियाओंमें सौ वाङ्मात्राका समय लगाना चाहिए। कम या ज्यादा नहीं। पलक खोलने-मूदने, चुटकी बजाने अथवा किसी वर्णके उच्चारणमें जितना समय लगता उसे एक वाङ्मात्रा कहते हैं ॥ १६ ॥

वाताभिष्यन्दनाशक आश्च्योतन प्रयोग

विल्वादिपंचमूलेन बृहत्येरंडशिग्रुभिः ॥ १७ ॥
क्वाथ आश्च्योतने कोष्णो वाताभिष्यन्दनाशनः ।

बेल आदि पूर्वोक्त पाँच वनस्पतिको जड़, सहजनकी छाल, कटेरीकी जड़ और रेंड़की जड़, इन औषधियोंका काढ़ा बनाकर जब वह कुछ गरम ही रहे तो नेत्रोंमें डाले। ऐसा करनेसे नेत्रका वाताभिष्यन्द रोग नष्ट हो जाता है ॥ १७ ॥

वातज तथा रक्तपित्तज अभिष्यन्दनाशक आश्च्योतन

अम्बुपिष्टैर्निंबपत्रैस्त्वचं लोध्रस्य लेपयेत् ॥ १८ ॥
प्रताप्य वह्निना पिष्ट्वा तद्रसो नेत्रपूरणात् ।
वातोत्थं रक्तपित्तोत्थमभिष्यन्दं विनाशयेत् ॥ १९ ॥

नीमकी पत्तियोंको जलमें पीसकर लोधकी छालपर लेप कर दे। फिर उस छालको आगमें तपाकर पीस डाले और उसका रस निकालकर नेत्रोंमें डाले तो वातज तथा रक्तपित्तज अभिष्यन्द रोग दूर हो जाता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

सब प्रकारके अभिष्यन्दोंपर आश्च्योतन

त्रिफलाश्च्योतनं नेत्रे सर्वाभिष्यन्दनाशनम् ।

त्रिफलाका काढ़ा करके उसकी गरम-गरम बूँदें नेत्रमें डाले तो सब प्रकारका अभिष्यन्द दूर हो जाता है ।

रक्तपित्तादिसे जायमान अभिष्यन्दपर आश्च्योतन

स्त्रीस्तन्याश्च्योतनं नेत्रे रक्तपित्तानिलार्त्तिजित् ॥ २० ॥
क्षीरसर्पिर्घृतं वापि वातरक्तरुजं जयेत् ।

यदि स्त्रीके दूधकी बूँदें आँखमें डाले तो रक्तपित्त तथा वातसे उत्पन्न पीड़ा दूर हो जाती है। इसी प्रकार दूध, मलाई अथवा घीकी बूँदें डालनेसे वातज नेत्रव्यथा शान्त होती है ॥ २० ॥

पिण्डीका प्रमाण

पिंडी कवलिका प्रोक्ता वद्ध्यते पट्टवस्त्रकैः ॥ २१ ॥
नेत्राभिष्यन्दयोग्या सा व्रणेष्वपि निबद्ध्यते ।

विहित औषधिको पीस करके उसकी टिकिया बनाकर नेत्रपर रक्खे और रेशमी कपड़ेकी पट्टी बाँध दे। इसको लोग पिंडी या कवलिका कहते हैं। यह कवलिका नेत्राभिष्यन्दका शमन करती है। कुछ लोग इसे व्रणपर भी बाँधते हैं ॥ २१ ॥

कफाभिष्यन्दनाशक शिरोविरेचन

अभिष्यन्देऽधिमन्थे च सञ्जाते श्लेष्मसम्भवे ॥ २२ ॥
स्निग्धस्विन्नोत्तमांगस्य शिरस्तीक्ष्णैर्विरेचयेत् ।

यदि कफके प्रकोपसे अभिष्यन्द अथवा अधिमन्थ रोग हो तो उस रोगीके माथेमें तेल डालकर स्निग्ध करे और पसीना काढ़े। इसके बाद मस्तकको शुद्ध करनेके लिए तीक्ष्ण औषधियों द्वारा शिरोविरेचन कर्म करे॥ २२॥

अधिमन्थरोगनाशक दूसरा उपचार

अधिमन्थेषु सर्वेषु ललाटे वेधयेच्छिराम्॥ २३॥
अशांते सर्वथा मन्थे भ्रुवोस्तु परिदाहयेत्।

सब प्रकारके अधिमन्थोंके होनेपर मस्तकमें नश्तर लगाकर रुधिर निकाल दे तो वह शान्त हो जायगा। यदि ऐसा करनेपर भी न आराम हो तो भृकुटीके बीचो बीच गरम कलछीसे दाग दे॥ २३॥

अभिष्यन्दनाशिनी क्रिया

अभिष्यन्देषु सर्वेषु बध्नीयात्पिण्डिकां बुधः॥ २४॥
वाताभिष्यन्दशांत्यर्थं स्निग्धोष्णा पिंडिका भवेत्।

सब प्रकारके अभिष्यन्दोंमें पीछे बतलायी हुई पिंडी बाँधे और वातज अभिष्यन्दको दूर करनेके लिए चिकनी और गरम टिकिया बाँधनी चाहिए॥२४॥

वाताभिष्यन्द तथा पित्ताभिष्यन्दनाशक पिंडी

एरंडपत्रमूलत्वङ्निर्मिता वातनाशिनी॥ २५॥
पित्ताभिष्यन्दनाशाय धात्रीपिण्डी सुखावहा।

रेंड़के पत्ते, जड़ तथा छाल इन तीनोंको पीस करके टिकिया बनाकर आँखपर बाँधे तो वाताभिष्यन्द दूर हो जाता है और आँवलेकी टिकिया बाँधनेसे पित्ताभिष्यन्द शान्त हो जाता है॥ २५॥

पित्ताभिष्यन्दनाशक पिंडी

महानिम्बफलोद्भूता पिण्डी पित्तविनाशिनी॥ २६॥

उसी प्रकार बकायनके फलोंकी टिकिया बनाकर बाँधनेसे पित्ताभिष्यन्द शान्त हो जाता है॥ २६॥

कफाभिष्यन्दनाशिनी पिण्डी

शिग्रुपत्रकृता पिण्डी श्लेष्माभिष्यन्दनाशिनी।

सहँजनके पत्तोंको पीसकर नेत्रोंपर टिकिया बाँधनेसे कफाभिष्यन्द रोग नष्ट हो जाता है।

कफपित्ताभिष्यन्दनाशिनी पिण्डी

निम्बपत्रकृता पिण्डी श्लेष्मपित्तहरा भवेत् ॥ २७ ॥
त्रिफलापिण्डिका प्रोक्ता नाशने श्लेष्मपित्तयोः ।

नीमकी पत्तियोंकी टिकिया बनाकर नेत्रोंपर बाँधे तथा त्रिफला पीसकर टिकिया बना ले और बाँधे तो श्लेष्मज अभिष्यन्द रोग दूर हो जाता है ॥ २७ ॥

रक्ताभिष्यन्दनाशिनी पिंडी

पिष्ट्वा कांजिकतोयेन घृतभृष्टा च पिंडिका ॥ २८ ॥
लोध्रस्य हरति क्षिप्रमभिष्यन्दमसृग्भवम् ।

लोधको काँजीके पानीमें पीसकर टिकिया बना ले और नेत्रोंपर बाँधे तो रक्तज अभिष्यन्द रोग दूर हो जाता है ॥ २८ ॥

सूजन तथा खुजली नाश करनेवाली पिण्डी

शुण्ठीनिम्बदलैः पिण्डी सुखोष्णा स्वल्पसैन्धवा ॥ २९ ॥
धार्या चक्षुषि संयोगाच्छोथकण्डूव्यथापहा ।

सोंठ तथा नीमकी पत्तियोंको इकट्ठी करके पीसे और उसमें थोड़ा सेंधा नमक मिलाकर नेत्रपर बाँधे तो आँखोंकी सूजन और खूजलाहट दूर हो जाती है ॥ २९ ॥

विडालक चिकित्साकी परिभाषा

विडालको बहिर्लेपो नेत्रपक्ष्मविवर्जितः ॥ ३० ॥
तस्य मात्रा परिज्ञेया मुखलेपविधानवत् ।

नेत्र और नेत्रकी पलकोंको छोड़कर नेत्रके चारों ओर लेप करनेकी क्रिया विडालक क्रिया कहलाती है । इस लेपकी मात्रा पीछे बतलाये मुखलेपके समान होती है ॥ ३० ॥

सब नेत्ररोगोंपर लेप

यष्टीगैरिकसिन्धूत्थदार्वीतार्क्ष्यैः समांशकैः ॥ ३१ ॥
जलपिष्टैर्बहिर्लेपः सर्वनेत्रामयापहः ।

मुलहठी, गेरू, सेंधा नमक, दारुहल्दी और खपरिया, इन सब चीजोंको समान भागसे पीस करके नेत्रके बाहर चारों ओर लेप करे तो सब प्रकारके अभिष्यन्द दूर होते हैं ॥ ३१ ॥

सब प्रकारके नेत्ररोगोंपर दूसरा लेप

रसांजनेन वा लेपः पथ्या विश्वदलैरपि ॥ ३२ ॥
कुमारिकाग्निपत्रैर्वा दाडिमीपल्लवैरपि ।
वचा हरिद्रा विश्वैर्वा तथा नागरगैरिकैः ॥ ३३ ॥

केवल रसौतको जलमें पीसकर नेत्रके चारों तरफ लेप करे अथवा हर्रा, सोंठ और पत्रज, इन तीनों वस्तुओंको जलमें पीसकर नेत्रके चारों ओर लेप करे अथवा अनारकी पत्तियोंको पानीमें पीसकर लेप करे अथवा सोंठ और गेरू, इन दोनोंको जलमें पीसकर लेप करे । ये छ प्रकारके लेप करनेसे नेत्रकी समस्त व्याधियें दूर हो जाती हैं ॥ ३२-३३ ॥

सब नेत्ररोगोंपर लेप

दग्ध्वाग्नौ सैंधवं लोध्रं मधूच्छिष्टयुते घृते ।
पिष्टमंजनलेपाभ्यां सद्यो नेत्ररुजापहम् ॥ ३४ ॥

सेंधानमक और लोध, इन दोनोंको अग्निमें जलावे । फिर मोम तथा घीमें फेंटकर नेत्रोंमें अंजन करके आँखके बाहर भी इसीका लेप करे तो नेत्रके सब विकार दूर हो जाते हैं ॥ ३४ ॥

सब प्रकारके नेत्ररोगपर लेप

लोहस्य पात्रे संघृष्टो रसो निंबुफलोद्भवः ।
किञ्चिद्घनो वहिर्लेपान्नेत्रवाधां व्यपोहति ॥ ३५ ॥

नीबूके रसको किसी लोहेके पात्रमें घोटे । जब वह कुछ गाढ़ा हो जाय तो आँखोंके बाहर लेप करे । ऐसा करनेसे नेत्रकी सब पीड़ायें दूर हो जाती हैं ॥३५॥

अर्मरोगपर लेप

संचूर्ण्य मरिचं केशराजस्वरसमर्दनात् ।
लेपनादर्मणां नाशं करोत्येष प्रयोगराट् ॥ ३६ ॥

काली मिर्चको भँगरैयाके रसमें पीसकर यदि आँखोंपर लेप किया जाता तो शुक्लार्म आदि अर्म रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ३६ ॥

अञ्जननामिका फुंसीपर लेप

स्विन्नां भित्त्वा विनिष्पीड्य भिन्नामञ्जननामिकाम् ।
शिलैलानतसिंधूत्थैः सक्षौद्रैः प्रतिसारयेत् ॥ ३७ ॥

आँखके कोयेमें होनेवाली अंजननामिका (गुहेरी) को पहले बफारा देकर पसीना निकाले । फिर धीरेसे फोड़ दे और मुलायम हाथसे दबा-दबाकर उसमें जो कुछ मवाद वगैरह हो उसे निकाल दे । इसके बाद मैनसिल, इलायची, तगर तथा सेंधा नमक, इन चार चीजोंके चूर्णको शहदमें मिलाकर इस गुहेरीमें लगा दे तो वह नष्ट हो जायगी ॥ ३७ ॥

नेत्ररोगपर तर्पणचिकित्सा

अथ तर्पणकं वच्मि नेत्रतृप्तिकरं परम् ।
यद्रूक्षं परिशुष्कं च नेत्रं कुटिलमाविलम् ॥ ३८ ॥
शीर्णपक्ष्मशिरोत्पातकृच्छ्रोन्मीलनसंयुतम् ।
तिमिरार्जुनशुक्राद्यैरभिष्यन्दाधिमन्थकैः ॥ ३९ ॥
शुक्राक्षिपाकशोथाभ्यां युक्तं वातविपर्ययैः ।
तन्नेत्रं तर्पणे योज्यं नेत्रकर्मविशारदैः ॥ ४० ॥

अब नेत्रको तृप्त करनेवाली कुछ तर्पण औषधियें बतलाता हूँ । जिन आँखों-में रूखापन, शुष्कत्व, कुटिलता, गँदलापन हो और जिन नेत्रोंकी बरौनीके बाल जाते रहे हों, जिनके शिरोत्पात, कृच्छ्रोन्मीलन, तिमिर, अर्जुन, फूली, अभिष्यन्द, अधिमन्थ, शुक्राक्षिपाक, सूजन तथा वातविपर्यय, ये रोग विद्यमान हों, उसके लिए तर्पण औषधियोंका प्रयोग करना चाहिए ॥ ३८—४० ॥

तर्पणके अयोग्य समय

दुर्दिनात्युष्णशीतेषु चिन्तायासभ्रमेषु च ।
अशांतोपद्रवं चाक्षिण तर्पणं न प्रशस्यते ॥ ४१ ॥

बदलीके दिन, जिस रोज विशेष गर्मी या सर्दी हो, किसी प्रकारकी चिन्ता हो, किसी प्रकारका परिश्रम करना पड़ा हो या भ्रम हो अथवा नेत्रशूलादि कोई गंभीर उपद्रव हो तो तर्पण औषधिकी योजना न करे ॥ ४१ ॥

तर्पणकर्मकी विधि

वातातपरजोहीने देशे चोत्तानशायिनः ।
आधारौ माषचूर्णेन क्लिन्नेन परिमण्डलौ ॥ ४२ ॥
समौ दृढावसंबाधौ कर्तव्यौ नेत्रकोशयोः ।
पूरयेद्घृतमण्डेन विलीनेन सुखोदकैः ॥ ४३ ॥

अथवा शतधौतेन सर्पिषा क्षीरजेन वा ।
निमग्नान्यक्षिपक्ष्माणि यावत्स्युस्तावदेव हि ॥ ४४ ॥
पूरयेन्मीलिते नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनैः ।

जब रोगीको तर्पण औषधि देनी हो तो किसी ऐसे स्थानपर ले जाय कि जहाँ न हवा जा-आसके और न धूल-गर्दकी ही गति हो । उस जगह रोगीको चित्त लिटा दे और भिगोकर पीसी भयी उड़दकी पिट्ठीसे उसकी आँखोंके चारों ओर एक मंडल-सा बाँधे । कुछ देर बाद आँखें बन्द करके उस मंडलमें पिघलाया भया घी, माँड, गुनगुना पानी, सौ पानीका धुला भया घी अथवा दूध, ये पाँच चीजें तबतक भरे, जब तक कि नेत्रकी पलकें न डूब जायँ । इसके बाद धीरे-धीरे आँख खोले ॥ ४२–४४ ॥

तर्पणमात्राकी मर्यादा

धारयेद्वर्त्मरोगेषु वाङ्मात्राणां शतं बुधः ॥ ४५ ॥
स्वच्छे कफे संधिरोगे मात्रापंचशतं हितम् ।
शुक्ले च षट्शतं कृष्णरोगं सप्तशतं मतम् ॥ ४६ ॥
दृष्टिरोगेष्वष्टशतमधिमंथे सहस्रकम् ।
सहस्रं वातरोगेषु धार्यमेवं हि तर्पणम् ॥ ४७ ॥

यदि नेत्रकी पलकोंमें कोई व्याधि हो तो सौ वाङ्मात्रा पर्यन्त औषधि धारण किये रहे । यदि कफसे जायमान कोई रोग नेत्रकी सन्धियोंमें हो तो पाँच सौ वाङ्मात्रा पर्यन्त, नेत्रके भीतर सफेद भागमें यदि कोई रोग हो तो छ सौ वाङ् मात्रा, काली पुतलीमें हो तो सात सौ वाङ् मात्रा, दृष्टिमें हो तो आठ सौ मात्रा, अधिमंथरोग हो तो एक हजार और वातज रोगोंमें भी एक ही हजार वाङ् मात्रा पर्यन्त तर्पण औषधियोंको रोके रहे ॥ ४५–४७ ॥

कफके आधिक्यमें उपचार

स्विन्नेन यवपिष्टेन स्नेहवीर्येरितं ततः ।
यथास्वं धूम्रपानेन कफमस्य विशोधयेत् ॥ ४८ ॥

यदि तर्पण औषधियोंकी चिकनाहटके प्रभावसे कफ बढ़ चले तो जौ भिगोकर पीस ले और चिलममें भरकर धूम्रपान करे । ऐसा करनेसे सारा कफ छूँट जायगा ॥ ४८ ॥

तर्पणप्रयोगका समय

एकाहं वा त्र्यहं वापि पंचाहं चेष्यते परम् ।

एक दिन, तीन दिन अथवा पाँच दिन तर्पण औषधियोंका प्रयोग करना चाहिए । पाँच दिनवाला प्रयोग सबसे उत्कृष्ट माना गया है ।

तर्पणसे तृप्तिके लक्षण

तर्पणे तृप्तिलिंगानि नेत्रस्येमानि भावयेत् ॥ ४९ ॥
सुखस्वप्नावबोधत्वं वैशद्यं वर्णपाटवम् ।
निवृत्तिर्व्याधिशांतिश्च क्रियालाघमेव च ॥ ५० ॥

तर्पण औषधिका प्रयोग करनेसे यदि नींद अच्छी तरह आवे, जब इच्छा हो जाग जाय, अवलोकनशक्ति स्वच्छ हो, किसी प्रकारकी व्याधि न मालूम पड़ती हो, आँखें बिना किसी प्रयासके अपना काम करती और मजेमें खुलती बन्द होती हों तो समझ ले कि तर्पणप्रयोग अच्छी तरह हुआ है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

तर्पणकी अधिकताके लक्षण

अथ साश्रुगुरुस्निग्धं नेत्रं स्यादतितर्पितम् ।

यदि नेत्रोंमें अवश्यकतासे अधिक तर्पण औषधि दे दी जाती तो आँखोंसे पानी बहने लगता और नेत्रमें भारीपन तथा चिकनाहट-सी दीखने लगती है ।

हीनतर्पणके लक्षण

रूक्षमस्राविलं रुग्णं नेत्रं स्याद्धीनतर्पितम् ॥ ५१ ॥

यदि पूरी तरह तर्पण नहीं होता तो आँखोंकी दीप्ति घट जाती, नेत्रमें कुछ लाली आ जाती और तरह-तरहके रोग मालूम पड़ने लगते हैं ॥ ५१ ॥

तर्पण द्वारा नेत्रके अतिस्निग्ध तथा हीनस्निग्ध होनेपर उपचार

रूक्षस्निग्धोपचाराभ्यामेतयोः स्यात्प्रतिक्रिया ।

यदि तर्पणकी अधिकतासे नेत्र विशेष चिकने हो गये हों तो रुक्ष उपायों द्वारा उसका निवारण करे और यदि हीन तर्पणके कारण किसी कष्टने आ घेरा हो तो स्निग्ध उपचारोंसे उसे शान्त करना चाहिए ।

पुटपाकविधि

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि पुटपाकस्य साधनम् ॥ ५२ ॥
द्वौ बिल्वमात्रौ मांसस्य पिंडौ स्निग्धौ सुपेषितौ ।
द्रव्याणां बिल्वमात्रं तु द्रवाणां कुडवो मतः ॥ ५३ ॥
तदेकस्थं समालोड्य पत्रैः सुपरिवेष्टितम् ।
पुटपाकेन तत्पक्त्वा गृह्णीयात्तद्रसं बुधः ॥ ५४ ॥
तर्पणोक्तविधानेन यथावदुपाचरेत् ।

अब पुटपाककी विधि बतलाते हैं । दो बिल्व अर्थात् दो पल प्रमाण हरिण-का मांस लेकर तेल या घीमें मिलाकर खूब महीन पीसे । फिर पीछे बतलायी सूखी औषधियें एक पल प्रमाण लेकर और यदि कोई तरल पदार्थ डालना हो तो एक कुडव लेकर उस मांसमें मिलावे और उसका गोला बना ले । इसके बाद आम, जामुन आदिके पत्ते उस गोलेके चारों ओर लपेटकर ऊपरसे मिट्टीका लेप करे । फिर उसे आगमें रखकर पुटपाककी विधिसे पकावे । पक जानेपर गोलेको बाहर निकाले और उसकी मिट्टी तथा पत्ते आदि दूर करके रस निचोड़े और तर्पणकर्म-के अनुसार उस रसको आँखोंमें डाले ॥ ५२–५४ ॥

पुटपाकसम्बन्धी रसको नेत्रोंमें डालनेका समय

दृष्टिमध्ये निषेच्यः स्यान्नित्यमुत्तानशायिनः ॥ ५५ ॥
स्नेहनो लेखनश्चैव रोपणश्चेति स त्रिधा ।

पुटपाककी क्रियासे निकाला हुआ रस स्नेहन, लेखन तथा रोपण, इन भेदों-से तीन प्रकारका होता है । यह रस मनुष्यको उतान सुलाकर उसके नेत्रके बीचों बीच डाला जाता है ॥ ५५ ॥

स्नेहादि भेदसे पुटपाक करनेकी योजना

हितः स्निग्धोऽतिरूक्षस्य स्निग्धस्यापि हि लेखनः ।
दृष्टेर्बलार्थमितरः पित्तासृग्व्रणवातनुत् ॥ ५६ ॥

यदि आँखें अतिशय रूक्ष हों तो स्निग्ध पुटपाक और स्निग्ध नेत्रमें लेखन पुटपाक तथा आँखोंका बल बढ़ानेके लिए रोपण पुटपाककी योजना करनी चाहिए । यह पुटपाकका रस दूषित रुधिर, व्रण तथा वायुको दूर कर दिया करता है ॥ ५६ ॥

स्नेहन पुटपाककी विधि

सर्पिर्मांसवसामज्जामेदः स्वाद्वौषधैः कृतः ॥ ५७ ॥
स्नेहनः पुटपाकस्तु धार्यो द्वे वाक्शते दृशो ।

घी, हरिण आदि जन्तुओंका मांस, वसा, मज्जा और मेदा, इन चीजोंको घीमें मिलाकर पीसे । इसके बाद स्वादु (काकोल्यादिगणमें कही हुई) औषधियोंका चूर्ण उस मांस आदिमें मिलाकर गोला बनावे । उस गोलेपर आम-जामुन आदिके पत्ते लपेटकर मिट्टी लगावे और पुटपाककी विधिसे आँचमें रखकर पकावे । पक जानेपर उसे निकाले और मिट्टी-पत्ते आदि दूर करके निचोड़कर रस निकाल ले । यह रस आँखमें डालकर दो सौ वाङ्मात्रा पर्यन्त नेत्रमें धारण किये रहे । यह स्नेहन पुटपाक कहलाता है ॥ ५७ ॥

लेखन पुटपाककी विधि

जांगलानां यकृन्मांसैर्लेखनद्रव्यसंयुतैः ॥ ५८ ॥
कृष्णलोहरजस्ताम्रशंखविद्रुमसिंधुजैः ।
समुद्रफेनकासीसस्रोतोजदधिमस्तुभिः ॥ ५९ ॥
लेखनो वाक्छतं धार्यस्तस्य तावद्विधारणम् ।

हरिण आदि किसी जंगली पशुके कलेजेका मांस, लौहचूर्ण, ताम्रचूर्ण, शंख, सेंधानमक, समुद्रका फेन, मूँगा, कसीस और बकरीके दहीका पानी, इन चीजोंको एकत्रित करके सबका चूर्ण करे । फिर चूर्णमें दहीका पानी डालकर सबका गोलासा बना ले और पूर्वोक्त पुटपाककी विधिसे आँचमें रखकर पकावे । फिर उसे बाहर निकाल ले और रस निचोड़कर आँखमें डाले । यह लेखन पुटपाक कहलाता है । इसे नेत्रमें डालकर सौ वाङ्मात्रा पर्यन्त नेत्रमें धारण किये रहना चाहिए ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

रोपण पुटपाककी विधि

स्तन्यजांगलमध्वाज्यतिक्तकद्रव्यपाचितः ॥ ६० ॥
लेखनत्रिगुणो धार्यः पुटपाकस्तु रोपणः ।
वितरेत्तर्पणोक्तां तु क्रियां व्यापत्तिदर्शने ॥ ६१ ॥

स्त्रीके स्तनका दूध, जंगली पशुका मांस, मधु, घी तथा कुटकी, इन वस्तुओं-

को एकत्र करके उस मांसमें मिलाकर एक गोला बना ले। फिर पुटपाककी विधिसे पकाकर रस निचोड़ ले और आँखमें डालकर तीन सौ वाङ्मात्रा पर्यन्त इसको धारण किये रहे। यह रोपण पुटपाकके नामसे प्रसिद्ध है। यदि इससे किसी प्रकारकी असुविधा दीखे तो तर्पणकर्ममें बतायी हुई प्रतीकारकी विधिके अनुसार इसका भी प्रतीकार करे ॥ ६० ॥ ६१ ॥

दोषके पक्व होनेपर अञ्जनका विधान

अथ संपक्वदोषस्य प्राप्तमंजनमाचरेत् ।
हेमंते शिशिरे चैव मध्याह्नेऽञ्जनमिष्यते ॥ ६२ ॥
पूर्वाह्ने चापराह्ने च ग्रीष्मे शरदि चेष्यते ।
वर्षासु नाभ्रे नात्युष्णे वसन्ते च सदैव हि ॥ ६३ ॥

जब नेत्रमें उत्पन्न दोष पक जायँ, तब अंजन आदि देनेकी व्यवस्था करे। इस अंजनप्रदानमें भी यह विशेषता है कि शिशिर और हेमन्त ऋतुमें दोपहरके समय, ग्रीष्म अर्थात् ज्येष्ठ-आषाढ़ और शरद यानी कुवार-कार्तिकमें दोपहरके पहले अंजन लगाना चाहिए। वर्षा अर्थात् सावन-भादोंमें और जब बहुत ज्यादा गर्मी पड़ रही हो, उस समय अंजन नहीं ही लगावे। पाँच दिनमें नेत्रके दोष पक जाते हैं ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

अञ्जन और उसके भेद

लेखनं रोपणं चैव तथा तत्स्नेहनांजनम् ।
लेखनं क्षारतीक्ष्णाम्लरसैरञ्जनमिष्यते ॥ ६४ ॥
कषायतिक्तरसंयुक्तसस्नेहं रोपणं मतम् ।
मधुरस्नेहसम्पन्नमञ्जनं च प्रसादनम् ॥ ६५ ॥

अब अंजनके विषयमें कहते हैं। वह अंजन लेखन और स्नेहन, इन भेदोंसे तीन प्रकारका माना जाता है। जिस अंजनमें क्षार, तीक्ष्ण और अम्ल, ये तीन रस विद्यमान हों वह लेखन, जिसमें कसैला और तीता, ये दो रस हों तथा स्नेह भी हो तो वह रोपण, जिसमें मधुर रस हो और चिकनाहट भी मौजूद रहे वह स्नेहन अंजन कहलाता है ॥ ६४ ॥ ६५ ॥

अञ्जनके तीन और भेद

गुटिकां रसचूर्णानि त्रिविधान्यंजनानि च ।
कुर्याच्छलाकयांगुल्या हीनानि च यथोत्तरम् ।। ६६ ।।

अंजन तीन तरहके होते हैं। जैसे—गुटिका (गोली), रस अर्थात् गीला तथा चूर्ण अर्थात् सुरमेके सदृश। गुटिकासे रसरूप अंजन गुणमें न्यून है और रससे भी चूर्ण गुणमें न्यून माना गया है। ये अंजन सलाई अथवा उँगलियोंसे लगाने चाहिये ।। ६६ ।।

अञ्जनके विषयमें अयोग्य प्राणी

श्रांते प्ररुदिते भीते पीतमद्ये नवज्वरे ।
अजीर्णे वेगघाते च नांजनं संप्रचक्षते ।। ६७ ।।

जो मनुष्य थका हो, रो रहा हो, डरपोक हो, शराब पिये हो, नवीन ज्वर-वाला हो, अजीर्ण रोगी हो और मल-मूत्र आदिका वेग रोके हो, इतने प्रकारके मनुष्योंको अंजन न कराना चाहिए ।। ६७ ।।

अञ्जनवर्तीका प्रमाण

हरेणुमात्रां कुर्वीत वर्तिं तीक्ष्णांजने भिषक् ।
प्रमाणं मध्यमेऽध्यर्धं द्विगुणं तु मृदौ भवेत् ।। ६८ ।।

यदि किसी तीखी औषधिका अंजन लगाना हो तो वैद्यको चाहिए कि एक मसूरके वजनकी मात्रा दे। यदि मध्यम अंजन देना हो तो डेढ़ मसूर जितनी मात्रा दे और मृदु अंजन देना हो तो दो मसूरके बराबर मात्रा देनी चाहिए ।। ६८ ।।

अञ्जनमें रसका प्रमाण

रसक्रिया तूत्तमा स्यात्त्रिविडङ्गमिता हिता ।
मध्यमा द्विविडंगा स्याद्धीना त्वेकविडंगका ।। ६९ ।।

यदि नेत्रमें उत्तम रसक्रिया करनी हो यानी कोई पानी जैसी पतली दवा आँखमें डालनी हो तो तीन वायविडंगके समान मात्राकी दवा डाले। मध्यम रसक्रिया करनी हो तो दो वायविडंगके समान और हीन रसक्रियामें एक वायविडंग-के समान मात्राकी दवा डालनी चाहिए ।। ६९ ।।

विरेचन अञ्जनमें चूर्ण देनेका प्रमाण

वैरेचनिकचूर्णं तु द्विशलाकं विधीयते ।
मृदौ तु त्रिशालकं स्याच्चतस्रः स्नैहिकेऽञ्जने ॥ ७० ॥

जितने भी वैरेचनिक यानी आँखसे पानी निकालनेवाले चूर्ण हैं, उनमें दो बार सलाईको घुमाकर चूर्ण लपेटे और दो ही बार नेत्रमें फेरकर निकाल ले। जितने मृदु अंजन हैं, उनमें तीन बार सलाई घुमाकर चूर्ण लपेटे और तीन बार नेत्रोंमें फेरे। जितने स्निग्ध यानी घी या तेल आदिसे मिले हुए अंजन हैं, उनमें चार बार सलाई डुबावे और चार ही बार आँखोंमें फेरे ॥ ७० ॥

सलाई कैसी और किसकी बने ?

मुखयोः कुण्ठिता श्लक्ष्णा शलाकाष्टांगुलोन्मिता ।
अश्मजा धातुजा वा स्यात्कलायपरिमण्डला ॥ ७१ ॥

सुर्मा लगानेके लिए जो सलाई बनाई जाय, वह पत्थर या धातुकी हो, आठ अंगुलकी लम्बी रहे, उसका मुख गोल चिकना किन्तु पतला रहे और मोटाई मटरके दाने जितनी होनी चाहिए ॥ ७१ ॥

लेखनादिकोंके लिए सलाई

ताम्रलोहाश्मसंजाता शलाका लेखने मता ।
सुवर्णरजतोद्भूता शलाका स्नेहने मता ॥ ७२ ॥
अंगुली च मृदुत्वेन कथिता रोपणे बुधैः ।

पीछे बतलाये हुए लेखन अंजनमें तामा, लोहा या पत्थरकी सलाई काममें लावे। स्नेहन अंजनमें सुवर्ण या चाँदीकी सलाई लेनी चाहिए और रोपण नामक अंजन उँगलीसे ही लगावे। क्योंकि उँगलीमें पर्याप्त मृदुता रहती है ॥ ७२ ॥

कब किस भागमें अञ्जन करे ?

सायंप्रातश्चांजनं स्यात्तत्सदा नैव कारयेत् ॥ ७३ ॥
नातिशीतोष्णवाताभ्रवेलायां संप्रशस्यते ।
कृष्णभागादधः कुर्यादपांगं यावदंजनम ॥ ७४ ॥

सबेरे और शाम, इन्हीं दोनों समयोंमें अंजन लगाना चाहिये–हमेशा नहीं। मौसम ऐसा हो जब कि न बहुत ठंढक पड़ रही हो, न ज्यादा गर्मी हो। जिस समय हवा जोरोंसे चल रही हो और आकाशमें बादल छाये हों, ऐसे समयमें अंजन लगाना ठीक नहीं है। पुतलीमें जहाँ कि कृष्ण तारा है, उसके नीचेवाली पलकमें आँजन लगाना चाहिए–इधर-उधर नहीं ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

चन्द्रोदया बर्ती

शंखनाभिर्विभीतस्य मज्जा पथ्या मनःशिला ।
पिप्पली मरिचं कुष्ठं वचा चेति समांशकम् ॥ ७५ ॥
छागीक्षीरेण संपिष्य बर्तिं कुर्याद्यवोन्मिताम् ।
हरेणुमात्रां संघृष्य जलैः कुर्यादथांजनम् ॥ ७६ ॥
तिमिरं मांसवृद्धिं च काचं पटलमर्बुदम् ।
रात्र्यंधं वार्षिकं पुष्पं बर्तिश्चन्द्रोदया जयेत् ॥ ७७ ॥

शंखकी नाभी, बहेड़ेके फलका गूदा, हर्रा, मैनसिल, पीपली, काली मिर्च, कूठ तथा वच, इन सब वस्तुओंको समान भागके हिसाबसे एकत्रित करे और बकरीके दूधमें खूब महीन पीसकर जौ जितनी वजनकी बत्ती जैसी लम्बी गोली बनावे। समय पड़नेपर मसूरके बीजके बराबर पानीमें इस गोलीको घिसकर आँखोंमें लगावे तो तिमिर, मांसवृद्धि, काचबिन्दु, नेत्रपटलगत कोई भी रोग, अर्बुद, रतौंधी तथा एक वर्षकी पुरानी फूली दूर हो जाती है। इसे लोग चन्द्रोदया बर्ती कहते हैं ॥ ७५–७७ ॥

फूली आदि रोगोंपर बत्ती

पलाशपुष्पस्वरसैर्बहुशः परिभाविता ।
करंजबीजबर्तिस्तु शुक्रादीञ्छस्त्रवल्लिखेत् ॥ ७८ ॥

कंजेके बीजको पीसकर ढाकके फूलके रसमें कई बार भावना दे करके खरल करे और बत्तीके समान लंबी किन्तु छोटी-छोटी गोलियें बना ले। इस बत्तीको नेत्रोंमें लगानेसे नेत्रके फूली आदि रोग उसी तरह नष्ट हो जाते हैं, जैसे किसी औजारसे काटे गये हों ॥ ७८ ॥

समुद्रफेनादि वर्ती

समुद्रफेनसिन्धूत्थशंखदक्षांडवल्कलैः।
शिग्रुबीजयुतैर्वर्तिः शुक्रादीञ्छस्त्रवल्लिखेत् ॥ ७९ ॥

समुद्रफेन, सेंधा नमक, शंख, मुर्गीके अण्डेका छिलका और सहँजनके बीज, इन चीजोंको समान भागके हिसाबसे एकत्रित करे और जलसे पीसकर बत्ती बना ले। नेत्रोंमें इसके लगानेसे फूली आदि रोग औजारसे कटे हुएके समान दूर हो जाते हैं ॥ ७९ ॥

लेखनी दन्तवर्ती

दन्तैर्दंतिवराहोष्ट्रगोहयाजखरोद्भवैः।
शंखमुक्तांभोधिफेनयुतैः सर्वैर्विचूर्णितैः ॥ ८० ॥
दंतबर्तिः कृता श्लक्ष्णा शुक्राणां नाशिनी परा।

हाथी, सुअर, ऊँट, बैल, घोड़ा, बकरा और गधा, इन जानवरोंके दाँत एकत्रित करके सबका चूर्ण करे और पानीमें पीसकर लंबी-लंबी बत्तियें बना ले। यह दन्तबर्ती कहलाती है। इसके लगानेसे आँखकी फूली कट जाती है ॥ ८० ॥

तन्द्रा दूर करनेके लिए लेखनी वर्ती

नीलोत्पलं शिग्रुबीजं नागकेशरकं तथा ॥ ८१ ॥
एतत्कल्कैः कृता बर्तिरतितन्द्रां विनाशयेत्।

नील कमल, सहँजनके बीज और नागकेशर, इन तीन चीजोंको इकट्ठी करके पानीमें पीसकर बत्तियें बना ले। इसे जलमें घिसकर नेत्रोंमें लगानेसे तन्द्रा दूर हो जाती है ॥ ८१ ॥

कुसुमिका वर्ती

तिलपुष्पाण्यशीतिः स्युः षष्टिसंख्याः कणाकणाः ॥ ८२ ॥
जातीसुमानि पंचाशन्मरिचानि च षोडश।
सूक्ष्मं पिष्ट्वा जले बर्तिः कृता कुसुमिकाभिधा ॥ ८३ ॥
तिमिरार्जुनशुक्राणां नाशिनी मांसवृद्धिकृत्।
एतस्याश्चांजने मात्रा प्रोक्ता सार्धहरेणुका ॥ ८४ ॥

अस्सी तिलके फूल, आठ पीपलीके बीज, पचास चमेलीके फूल और सोलह काली मिर्च, इन चीजोंको इकट्ठी करके जलमें पीसकर बत्तियें बना ले। यदि डेढ़ हरेणुकाके बराबर पानीमें पीसकर इसका अंजन किया जाता तो तिमिर, अर्जुन, फूली तथा मांसवृद्धि ये सब रोग दूर हो जाते हैं। यह औषधि कुसुमिका बर्तीके नामसे विख्यात है॥ ८२–८४॥

रतौंधी दूर करनेकी बत्ती

रसांजनं हरिद्रे द्वे मालती निंबपल्लवाः।
गोशकृद्रससंयुक्ता वर्तिर्नक्तांध्यनाशिनी॥ ८५॥

रसौत, दोनों हल्दी, मालती और नीमकी पत्तियें, इन चीजोंको एकत्रित करके गौके गोबरके रसमें पीसकर बत्तियें बना ले और इसे जलमें घिसकर आँखमें लगावे तो रतौंधी दूर हो जाती है॥ ८५॥

नेत्रस्रावपर स्नेहनी बत्ती

धात्र्यक्षपथ्याबीजानि ह्येकद्विगुणानि च।
पिष्ट्वा वर्तिं जलैः कुर्यादंजनं द्विहरेणुकम्॥ ८६॥
नेत्रस्रावं हरत्याशु वातरक्तरुजं तथा।

आँवलेके फलका भीतरी गूदा एक भाग, बहेड़ेके फलका गूदा दो भाग, हर्रेके फलका भीतरी बीज तीन भाग, इन वस्तुओंको एकत्रित करके जलके साथ बारीक पीसे और बत्तियें बना ले। यदि इस गोलीको हरेणुकाके बीज बराबर पानीमें घिसकर नेत्रोंमें लगावे तो आँखसे पानी बहना और वातरक्तसम्बन्धी सब रोग दूर हो जाते है॥ ८६॥

रसक्रिया

तुत्थमाक्षिकसिंधूत्थं सिताशंखमनःशिलाः॥ ८७॥
गैरिकोदधिफेनं च मरिचं चेति चूर्णयेत्।
संयोज्य मधुना कुर्यादंजनार्थं रसक्रियाम्॥ ८८॥
वर्त्मरोगार्मतिमिरकाचशुक्रहरां पराम्।

लीला थोथा, स्वर्णमाक्षिक, सेंधानमक, मिश्री, शंख, मैनसिल, गेरू,

समुद्रका फेन और काली मिर्च, इन औषधियोंको समान भागके हिसाबसे एकत्र करके चूर्ण करे और शहदमें मिलाकर अंजन लगावे तो आँखोंकी बरौनीके रोग अर्मरोग, तिमिर, काचबिन्दु तथा फूली, ये सब रोग दूर हो जाते हैं ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

फूली दूर करनेके लिए रसक्रिया

वटक्षीरेण संयुक्तो मुख्यः कर्पूरजः कणः ॥ ८६ ॥
क्षिप्रमंजनतो हंति कुसुमं च द्विमासिकम् ।

कपूरको बरगदके दूधमें घिसकर अंजन करनेसे दो महीनेकी पुरानी फूली तुरन्त दूर हो जाती है ॥ ८६ ॥

अतिनिद्रानाशक रसक्रिया

क्षौद्राश्वलालासंघृष्टैर्मरिचैर्नेत्रमंजयेत् ॥ ६० ॥
अतिनिद्रा शमं याति तमः सूर्योदये यथा ।

जिस मनुष्यको नींद विशेष आती हो, उसकी आँखोंमें शहद तथा घोड़ेकी लार इन दोनों चीजोंको काली मिर्चके साथ पीसकर लगा दे। ऐसा करनेसे उसकी अति निद्रा इस प्रकार दूर हो जायगी, जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार भाग जाता है ॥ ९० ॥

तन्द्रानाशिनी रसक्रिया

जातीपुष्पं प्रवालं च मरिचं कटुका वचा ॥ ६१ ॥
सैंधवं बस्तमूत्रेण पिष्टं तंद्राघ्नमंजनम् ।

चमेलीके मुलायम अंकुर और फूल, काली मिर्च, कुटकी, वच तथा सेंधा नमक, इन सबको समान भागके हिसाबसे एकत्र करके बकरीके दूधमें बारीक पीसे और नेत्रोंमें लगावे तो तन्द्रा तत्काल दूर हो जाती है ॥ ९१ ॥

सन्निपात दूर करनेके लिए रसक्रिया

शिरीषबीजं गोमूत्रे कृष्णामरिचसैंधवैः ॥ ६२ ॥
अंजनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः ।

सिरसके बीज, पीपली, काली मिर्च, सेंधा नमक, लहसुन, मैनसिल और वच, इन औषधियोंको समान भागके हिसाबसे एकत्रित करके गोमूत्रमें पीसे और जो मनुष्य सन्निपातके कारण मूर्छित पड़ा हो, उसकी आँखोंमें इसे लगा दे तो उसे तुरन्त होश आ जायगा ॥ ९२ ॥

दाहादि रोगोंको दूर करनेवाली रसक्रिया

दार्वी पटोलं मधुकं सनिंबं पद्मकोत्पलम् ॥ ९३ ॥
सपौंडरीकं चैतानि पचेत्तोये चतुर्गुणे ।
विपाच्य पादशेष तु श्रृतं नीत्वा पुनः पचेत् ॥ ९४ ॥
शीते तस्मिन्मधुसितां दद्यात्पादांशकां नरः ।
रसक्रियैषा दाहाश्रुरक्तरोगरुजो हरेत् ॥ ९५ ॥

दारुहल्दी, परवलके पत्ते, मुलहठी, नीमकी छाल, पद्माख, कमल और श्वेत कमल, इन सब चीजोंको समान भागके हिसाबसे एकत्रितकर जौकूट करे और चौगुने जलमें डालकर आगपर चढ़ा दे । जब एक चौथाई जल बाकी रह जाय तो उतारकर छान ले और फिर आगपर चढ़ाकर गाढ़ा करे । जब वह गाढ़ा हो जाय तो उस अवलेहकी अपेक्षा एक चौथाई शहद तथा मिश्री मिलाकर नेत्रोंमें अंजन करे । इसका सेवन करनेसे आँखोंकी जलन, आँखोंसे पानी बहना, रुधिरविकारसे होनेवाली नेत्रोंकी लाली, ये सब रोग तत्काल दूर हो जाते हैं ॥ ९३-९५ ॥

पलकोंके उड़े बाल लाने तथा खुजली आदि
दूर करनेवाली रोपणी रसक्रिया

रसांजनं सर्जरसो जातीपुष्पं मनःशिला ।
समुद्रफेनो लवणं गैरिकं मरिचानि च ॥ ९६ ॥
एतत्समांशं मधुना पिष्ट्वा प्रक्लिन्नवर्त्मनि ।
अंजनं क्लेदकंडूघ्नं पक्ष्मणां च प्ररोहणम् ॥ ९७ ॥

रसौत, राल, चमेलीके फूल, मैनसिल, समुद्रफेन, सेंधा नमक, गेरू तथ काली मिर्च इन चीजोंके चूर्णको शहदमें मिलाकर नेत्रोंमें अंजन करनेसे पलकोंमें होनेवाला वर्त्मरोग, आँखसे कीचड़ विशेष निकलना तथा नेत्रकी खुजली

ये व्याधियें शांत हो जातीं और ओौनीके गिरे हुए बाल फिर उग आते हैं ॥ ९६ ॥ ९७ ॥

तिमिररोगपर रसक्रिया

गुडूचीस्वरसः कर्षः क्षौद्रं स्यान्माषकोन्मितम्।
सैंधवं क्षौद्रतुल्यं स्यात्सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥ ९८ ॥
अंजयेन्नयनं तेन पिल्लार्मतिमिरं जयेत्।
काचं कंडूं लिंगनाशं शुक्लकृष्णगतान्गदान् ॥ ९९ ॥

एक कर्ष गिलोयके स्वरसमें शहद और सेंधा नमक एक-एक मासा डालकर घोंटे और नेत्रमें इसका अंजन करे तो पिल्लार्म, तिमिर, काचबिन्दु, आँखमें होनेवाली खुजली तथा लिंगनाश, आँखोंके काले या सफेद भागमें होनेवाले ये सब रोग शांत हो जाते हैं ॥ ९८ ॥ ९९ ॥

अंजनमें पुनर्नवाका योग

दुग्धेन कंडूं क्षौद्रेण नेत्रस्रावं च सर्पिषा।
पुष्पं तैलेन तिमिरं कांजिकेन निशांधताम् ॥ १०० ॥
पुनर्नवा जयेदाशु भास्करस्तिमिरं यथा।

पुनर्नवाको यदि दूधमें रगड़कर लगावे तो आँखकी खुजली दूर हो जाती, उसी पुनर्नवाको यदि शहदमें घिसकर लगाया जाय तो आँखसे पानी बहना बन्द हो जाता, घीमें घिसकर अंजन करनेसे फूली कट जाती और तेलमें पुनर्नवाको घिसकर लगानेसे रातको होनेवाली रतौंधी दूर हो जाती है। ऊपर बतलाये रोगोंको पुनर्नवा उसी प्रकार जीत लेता है जैसे सूर्य नारायण अन्धकारपर विजयी होते हैं ॥ १०० ॥

नेत्रस्रावनाशक रोपणी रसक्रिया

बब्बूलदलनिष्क्वाथो लेहीभूतस्तदंजनात् ॥ १०१ ॥
नेत्रस्रावं जयत्येष मधुयुक्तो न संशयः।

बबूलकी पत्तियोंके काढ़ेको आगपर चढ़ा दे और जब तक वह लेईकी तरह गाढ़ा न हो जाय तब तक पकावे। इसके बाद उतार ले और उसमें थोड़ा-

सा शहद डालकर नेत्रोंमें अंजन करे तो नेत्रोंसे जल बहना तत्काल बन्द हो जाता है। इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १०१ ॥

अन्य प्रकार

हिञ्जुलस्य फलं पिष्ट्वा पानीये नित्यमंजनम् ॥ १०२ ॥
चक्षुःस्रावोपशांत्यर्थं कार्यमेतन्महौषधम् ।

यदि हिञ्जुल (समुद्र फल) को पानीमें घिसकर अंजन करे तो नेत्रसे पानी बहना बन्द हो जाता है ॥ १०२ ॥

नेत्र साफ करनेके लिए स्नेहनी रसक्रिया

कतकस्य फलं घृष्ट्वा मधुना नेत्रमंजयेत् ॥ १०३ ॥
ईषत्कर्पूरसहितं स्मृतं नेत्रप्रसादनम् ।

निर्मलीके फलको शहदके साथ घिसकर उसमें जरा-सा कपूर मिलावे और अंजन करे तो दृष्टि स्वच्छ हो जाती है ॥ १०३ ॥

शिरोत्पातरोगनाशक अंजन

सर्पिः क्षौद्रं चांजनं स्याच्छिरोत्पातस्य शातने ॥ १०४ ॥

शहद तथा घी, इन दोनों चीजोंको एकमें मिलाकर नेत्रोंमें लगावे तो शिरोत्पात रोग शान्त हो जाता है ॥ १०४ ॥

अंधापन दूर करनेकी रसक्रिया

कृष्णसर्पवसा शंखः कतकात्फलमंजनम् ।
रसक्रियेयमचिरादंधानां दर्शनप्रदा ॥ १०५ ॥

काले साँपकी चर्बी, शंख और निर्मलीके बीज, इन चीजोंको एकत्रित करके खरल करे और नेत्रोंमें लगावे तो अन्धा मनुष्य भी देखने लग जाता है॥१०५॥

लेखन चूर्णांजन

दक्षांडत्वक्छिलाकाचैः शंखचन्दनगैरिकैः ।
द्रव्यैरंजनयोगोऽयं पुष्पार्मादिविलेखनः ॥ १०६ ॥

मुर्गाके अण्डेका सफेद छिलका, मैनसिल, सफेद काँच, शंख, सफेद चन्दन और मुलायम (पत्थरवाला नहीं) गेरू, इन वस्तुओंको इकट्ठी करके बारीक

चूर्ण करे और नेत्रोंमें इसका अंजन करे तो फूली-मांसार्म आदि रोग दूर हो जाते हैं ॥ १०६ ॥

रतौंधी दूर करनेका लेखनचूर्ण

कणा छागयकृन्मध्ये पक्त्वा तद्रसपेषिता ।
अचिराद्धंति नक्तांध्यं तद्वत्सक्षौद्रमूषणम् ॥ १०७ ॥

बकरेके कलेजेके मांसमें पीपली तथा काली मिर्च रखकर आगपर पकावे। इसके अनन्तर उस मांसरस तथा पीपलोको पीसकर अंजन बना ले। इसको लगानेसे रतौंधी शीघ्र दूर हो जाती है ॥ १०७ ॥

नेत्रकी खुजली आदि दूर करनेको लेखनचूर्णाञ्जन

शाणार्धं मरिचं द्वौ च पिप्पल्यर्णवफेनयोः ।
शाणार्धं सैन्धवं शाणा नव सौवीरकांजनम् ॥ १०८ ॥
पिष्टं सुसूक्ष्मं चित्रायां चूर्णांजनमिदं शुभम् ।
कण्डूकाचकफार्तानां मलानां च विशोधनम् ॥ १०९ ॥

आधी शाण काली मिर्च, पीपली तथा समुद्रका फेन ये दोनों दो-दो शाण, सेंधानमक आधा शाण और सुर्मा नौ शाण, इन सब वस्तुओंको जिसदिन चित्रा नक्षत्र हो उस रोज पीसकर खूब महीन चूर्ण करे और नेत्रोंमें लगावे तो काचबिन्दु तथा आँखकी खुजली, ये दोनों रोग दूर होते और कफके प्रकोपसे उत्पन्न नेत्रके मल नष्ट हो जाते हैं ॥ १०८ ॥ १०९ ॥

समस्त नेत्ररोगोंको दूर करनेके लिए मृदु चूर्णांजन

शिलायां रसकं पिष्ट्वा सम्यगाप्लाव्य वारिणा ।
गृह्णीयात्तज्जलं सर्वं त्यजेच्चूर्णमधोगतम् ॥ ११० ॥
शुष्कं च तज्जलं सर्वं पर्पटीसन्निभं भवेत् ।
विचूर्ण्य भावयेत्सम्यक्त्रिवेलं त्रिफलारसैः ॥ १११ ॥
कर्पूरस्य रजस्तत्र दशमांशेन निक्षिपेत् ।
अंजयेन्नयने तेन सर्वदोषहरं हितम् ॥ ११२ ॥
सर्वरोगहरं चूर्णं चक्षुषोः सुखकारि च ।

पत्थरके खरलमें खपरिया डालकर काजलकी तरह बारीक चूर्ण करे और उसे जलमें मिलावे। फिर ऊपर-ऊपरसे जलको एक पात्रमें गिराकर रख छोड़े। नीचे बैठे हुए खपरियाके बड़े-बड़े टुकड़ोंको दूसरे पात्रमें रख दे। इसके बाद वह पानी जो खपरियासे निकाला गया हो, किसी चौड़े पात्रमें रखकर घाममें सुखा ले। ऐसा करनेसे पानीमें खपरियाका जो अंश रहा होगा, वह पपड़ीकी तरह जम जायगा। उस पपड़ीको लेकर फिर खरल करे और त्रिफलाके काढ़ेमें तीन भावना दे। फिर जितना चूर्ण हो, उसका दशमांश भीमसेनी कपूर मिला दे और शीशीमें भरकर रख छोड़े। अंजनको आँजनेसे नेत्रके सब विकार दूर हो जाते और आँखोंको बड़ा सुख मिलता है॥ ११०–११२॥

सौवीरांजन

अग्नितप्तं च सौवीरं निषिंचेत्त्रिफलारसैः॥ ११३॥
सप्तवेलं तथा स्तन्यैः स्त्रीणां सिक्तविचूर्णितम्।
अंजयेन्नयने तेन प्रत्यहं चक्षुषोर्हितम्॥ ११४॥।
सर्वानक्षिविकारांस्तु हन्यादेतन्न संशयः।

सुरमेको आगमें तपाकर उसपर त्रिफलाका रस छिड़के। जब वह ठंढा हो जाय, तब फिर त्रिफलेके रससे तर करे। इस तरह सात बार तपा-तपाकर ठंढा करता रहे। त्रिफलाके रसकी जगह सुरमा तपाकर यदि स्त्रीके दूधसे तर किया जाय तो और अच्छा हो। इस प्रकार शीतल करके उसका चूर्ण करे और सलाईसे आँखोंमें लगावे तो नेत्रके समस्त विकार दूर हो जायँ। इसमें कोई संशय नहीं है॥ ११३॥ ११४॥

सलाई बनानेकी विधि

त्रिफलाभृङ्गशुण्ठीनां रसैस्तद्वच्च सर्पिषा॥ ११५॥
गोमूत्रमध्वजाक्षीरैः सिक्तो नागः प्रतापितः।
तच्छलाका हरत्येव सर्वान्नेत्रभवान्गदान्॥ ११६॥

त्रिफलाका रस, भँगरैयाका रस, सोंटका काढ़ा, घी, गोमूत्र तथा बकरीका दूध

इन प्रत्येक रसोंमें शीशेको तपा-तपाकर बुझावे। इसके बाद उसकी सलाई बनावे। यदि केवल इस सलाईको प्रतिदिन आँखोंपर फेर दिया करे तो नेत्रके सब रोग दूर हो जाते हैं॥ ११५॥ ११६॥

प्रत्यंजन करनेका समय.

गतदोषमपेताश्रु संपश्यन्सम्यगंभसि।
प्रक्षाल्याक्षि यथादोषं कार्यं प्रत्यंजनं ततः॥ ११७॥

यदि प्रत्यंजन करनेकी इच्छा हो तो ऊपर बतलायी हुई सलाईको नेत्रोंमें फेरकर थोड़ी देर तक पानीमें ताके। जब आँसू बह जाय तो पानीसे आँखें धो डाले और नेत्रके विकारके अनुसार आगे बतलायी जानेवाली प्रत्यंजनक्रिया करे॥ ११७॥

सदोष नेत्र होनेसे निषेध.

न वानिर्गतदोषेऽक्षिण धावनं संप्रयोजयेत्।
प्रत्यंजनं तीक्ष्णतप्ते नेत्रे चूर्णः प्रसादनः॥ ११८॥

जब तक कि आँखोंमेंसे सब विकार न निकल जायँ, तब तक जलसे धोवे नहीं। इसके बाद कोई तीखा अंजन लगाकर नेत्रोंको संयत करे और उसमें प्रत्यंजन चूर्ण भी लगाया जा सकता है॥ ११८॥

प्रत्यंजन चूर्ण

शुद्धे नागद्रुते तुल्यं शुद्धं सूतं विनिक्षिपेत्।
कृष्णांजनं तयोस्तुल्यं सर्वमेकत्र चूर्णयेत्॥ ११९॥
दशमांशेन कर्पूरं तस्मिंश्चूर्णे प्रदापयेत्।
एतत्प्रत्यञ्जनं नेत्रगदजिन्नयनामृतम्॥ १२०॥

पहले सीसेको शुद्ध करे। फिर उसे आगपर चढ़ाकर गलावे। इसके अनन्तर जितना सीसा हो उतना ही शोधा भया पारा उसमें मिला दे और जितनी वजनकी ये दोनों चीजें हों, उतना सुरमा मिलाकर सबका चूर्ण बनावे। तदनन्तर उसमें चूर्णका दशमांश भीमसेनी कपूर मिला दे। यही प्रत्यंजन चूर्ण

है । इसे नेत्रमें लगानेसे सब प्रकारके नेत्रविकार दूर हो जाते हैं । यह चूर्ण अमृतके समान गुण करता है ॥ ११९ ॥ १२० ॥

सॉंपके विषपर अंजन

जयपालस्य मज्जां च भावयेन्निंवुकद्रवैः ।
एकविंशतिवेलं तत्ततो वर्ति प्रकल्पयेत् ॥ १२१ ॥
मनुष्यलालया घृष्ट्वा ततो नेत्रे तथांजयेत् ।
सर्पदष्टविषं जित्वा सञ्जीवयति मानवम् ॥ १२२ ॥

जमालगोटेके बीजके भीतरी गूदेको लेकर नीबूके रसमें इक्कीस भावना दे । फिर उसकी बत्ती बना ले । जब आवश्यकता पड़े तो मनुष्यको लारमें घिसकर नेत्रोंमें लगावे । ऐसा करनेसे यह अंजन सॉंप काटेका विष दूर करके मरते हुए मनुष्यको भी बचा लेता है ॥ १२१ ॥ १२२ ॥

हथेलीसे नेत्र पोंछनेके लाभ

भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दीयते ।
जाता रोगा विनश्यंति तिमिराणि तथैव च ॥ १२३ ॥

भोजनके अन्तमें हाथ धोकर दोनों हथेलियोंको आपसमें मलकर यदि आँखें पोंछ दिया करे तो तिमिर तथा नेत्रके सब विकार दूर हो जाते हैं ॥ १२३ ॥

ठंढे पानीसे आँखोंमें फुहारा देनेके लाभ

शीतांवुपूरितमुखः प्रतिवासरं यः–
कालत्रयेण नयनद्वितयं जलेन ।
आसिंचति ध्रुवमसौ न कदाचिदक्षि–
रोगव्यथाविधुरतां भजते मनुष्यः ॥ १२४ ॥

जो प्राणी प्रतिदिन मुखमें ठंढा पानी भरके आँखोंमें तीन बार ठंढे पानीका फुहारा देता है । उसे नेत्रसे सम्बन्ध रखनेवाला कोई भी रोग नहीं सताता ॥ १२४ ॥

ग्रन्थका समूलत्व

आयुर्वेदसमुद्रस्य गूढार्थमणिसंचयम् ।
ज्ञात्वा कैश्चिद्बुधैस्तैस्तु कृता विविधसंहिताः ॥ १२५ ॥
किंचिदर्थं ततो नीत्वा कृतेयं संहिता मया ।
कृपाकटाक्षविक्षेपमस्यां कुर्वंतु साधवः ॥ १२६ ॥

आयुर्वेदरूपी महासमुद्रसे गूढार्थरूपी मणियोंको संचित करके प्राचीन मुनियोंने जो संहितायें बनायी थीं । उन्हींका कुछ अर्थ लेकर मैंने इस शार्ङ्गधरसंहिताकी रचना की है । सज्जनोंसे प्रार्थना है कि वे इसे भी कृपादृष्टि करके देखें ॥ १२५ ॥ १२६ ॥

प्रार्थना

विविधगदार्तिदरिद्रनाशनं या—
हरिरमणीव करोति योगरत्नैः ।
विलसतु शार्ङ्गधरसंहिता सा
कविहृदयेषु सरोजनिर्मलेषु ॥ १२७ ॥

—जिस तरह लक्ष्मीजी दरिद्रके पास पहुँचकर सुयोगरूपी रत्नोंके दानसे उस दरिद्रकी दरिद्रता नष्ट कर देती हैं । उसी प्रकार विविध रोगरूपी दरिद्रताको दूर करनेवाली यह संहिता कमलकी तरह निर्मल मनवाले कवियोंके हृदयमें विराजमान हो ॥ १२७ ॥

अल्पायुषामल्पधियामिदानीं
कृतं समस्तश्रुतिपाठशक्ति ।
तदत्र युक्तं प्रतिबीजमात्र—
मभ्यस्यतामात्महितप्रयत्नात् ॥ १२८ ॥

इस कराल कलिकालमें मनुष्योंकी आयु बहुत थोड़ी होती है । अतएव समस्त

आयुर्वेदशास्त्रको पढ़नेकी शक्तिका भी अभाव ही रहता है। इसलिए लोगोंको चाहिए कि अपना कल्याण करनेके लिए सारांशरूपमें संकलित इस ग्रन्थका अभ्यास करें ॥ १२८ ॥

इति श्रीशार्ङ्गधरविरचितायां संहितायामुत्तरखण्डे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

समाप्तोऽयं ग्रन्थः ।

मुद्रक—रामनिधि त्रिपाठी, शिवराम प्रेस, मध्यमेश्वर, काशी ।

सरंगधरसंहित